डॉ० बांकेलाल शर्मा

# तर्कशास्त्र प्रवेश

प

5
प स̄ म̄

2
प स म̄

7
प̄ स म̄

स

1
प स म

3
प स̄ म

4
प̄ स म

प̄ स̄ म̄
8

6
प̄ स̄ म

म

प = पक्षपद
स = साध्यपद
म = मध्यपद

प तपस्वी
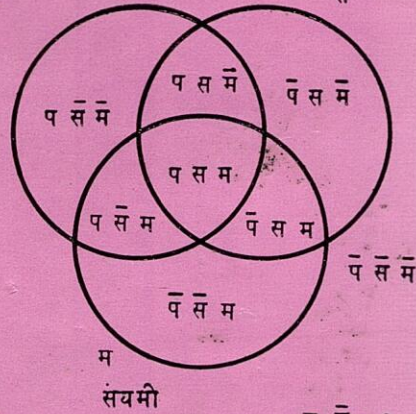
म स̄ = 0
और
प म̄ = 0
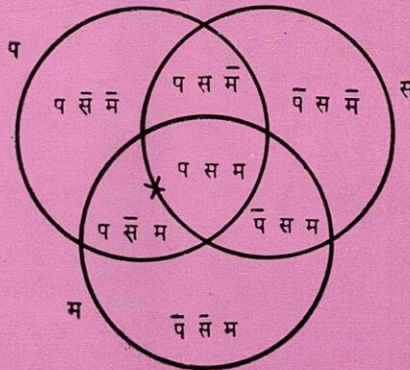
स म̄ = 0
और
प म ≠ 0

हरियाणा
साहित्य अकादमी चण्डीगढ़

तर्कशास्त्र प्रवेश

# तर्कशास्त्र प्रवेश

(तर्कशास्त्र का आधुनिक विवेचन)

डॉ० बांकेलाल शर्मा
दर्शन-विभाग
यूनिवर्सिटी कालेज, कुरुक्षेत्र

हरियाणा साहित्य अकादमी
चण्डीगढ़

भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय की प्रादेशिक भाषाओं में विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थ निर्माण योजना के अन्तर्गत हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़ के तत्वावधान में रचित एवं प्रकाशित।

प्रथम संस्करण : 1978
द्वितीय संस्करण : 1986
तृतीय संस्करण : 1989
चतुर्थ संस्करण : 1997
मुद्रित प्रतियां : 1100
मूल्य : Rs. 75/- (पिचहत्तर रुपये मात्र)

मित्तल प्रिण्टर्स, के-13, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 द्वारा मुद्रित

# प्रस्तावना

राष्ट्रभाषा हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं को विश्वविद्यालयों में सर्वोच्च स्तर तक शिक्षा का माध्यम बनाने के प्रयत्नों की सफलता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि इन भाषाओं में ज्ञान-विज्ञान की विविध शाखाओं के पर्याप्त ग्रन्थ उपलब्ध हों। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा परिचालित एक विशेष योजना के अन्तर्गत हरियाणा साहित्य अकादमी हिन्दी में मौलिक मानक ग्रन्थों की रचना करवा रही है। इस योजना के अधीन अंग्रेजी आदि भाषाओं में उपलब्ध छात्रोपयोगी साहित्य के अधिकृत अनुवाद भी सुलभ किये जा रहे हैं।

**तर्कशास्त्र** प्रवेश नामक पुस्तक विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम को ध्यान में रख कर लिखी गयी है। इससे बी० ए० एवं एम० ए० के छात्रों की आवश्यकताएं पूरी होंगी। इस पुस्तक को लिखवाने की सिफारिश कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के दर्शन-विभाग द्वारा की गयी और तदनुसार इसे सम्पन्न करने का भार उसी विभाग के डॉ० बाँकेलाल शर्मा को सौंपा गया। पाण्डुलिपि का सम्पादन एवं सज्जा संयोजन अकादमी के प्रकाशन अनुभाग ने किया है।

प्रस्तुत पुस्तक में तर्कशास्त्र का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसमें प्राचीन निगमनात्मक तर्कशास्त्र तथा आगमन तर्कशास्त्र के मूल विषयों का नवीन शैली में प्रतिपादन करने के साथ-साथ नवीन तर्क-शास्त्र के प्रमुख विभागों का, विशेषकर उनकी प्रतीकात्मक भाषा का, परिचय करवाने का प्रयत्न किया गया है। प्रतिपाद्य सामग्री की सुव्यवस्था और स्पष्टता की दृष्टि से सम्पूर्ण ग्रन्थ को तीन खण्डों में विभाजित किया गया है। प्रथम खण्ड में भाषा तथा परम्परागत न्याय का विवेचन है। द्वितीय खण्ड में आधुनिक प्रतिज्ञप्तीय न्याय और परिमापन की व्याख्या नवीन वर्ग न्याय के सन्दर्भ में प्रस्तुत की गई है। तृतीय खण्ड का प्रधान विषय आगमन और वैज्ञानिक विधि है। तर्कशास्त्र की प्रारम्भिक पुस्तक होने के कारण इसमें भाषा की सरलता और विषय-प्रतिपादन की सुबोधता पर विशेष ध्यान दिया गया है।

पुस्तक में भारत सरकार द्वारा तैयार की गयी शब्दावली का प्रयोग किया गया है, ताकि देश की सभी संस्थाओं में छात्रों की सुविधा के लिए एक ही पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

पुस्तक का प्रथम संस्करण सन् 1978 में प्रकाशित किया गया था। पुस्तक की अत्यधिक मांग को देखते हुये इसका दूसरा संस्करण प्रस्तुत है।

आशा है प्रस्तुत प्रकाशन हिन्दी माध्यम से इस विषय को पढ़ने-पढ़ाने वाले स्नातक कक्षा के छात्रों व अध्यापकों में लोकप्रिय सिद्ध होगा।

शिक्षा राज्य मंत्री, हरियाणा सरकार
एवं अध्यक्ष, हरियाणा साहित्य अकादमी
चण्डीगढ़

निदेशक
हरियाणा साहित्य अकादमी,
चण्डीगढ़

## तृतीय संस्करण

पाठकों की मांग पर प्रस्तुत पुस्तक का तृतीय संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें प्रसन्नता है। आशा है पहले की भांति पुस्तक का पाठकों द्वारा स्वागत होगा।

अध्यक्ष
हरियाणा साहित्य अकादमी
चण्डीगढ़

निदेशक
हरियाणा साहित्य अकादमी
चण्डीगढ़

## चतुर्थ संस्करण

तर्कशास्त्र पुस्तक के तीन संस्करण बिक चुके हैं। हमें प्रसन्नता है कि सुधि पाठकों द्वारा पुस्तक का स्वागत हुआ। इसी विश्वास के साथ पुस्तक का चतुर्थ संस्करण प्रस्तुत है।

निदेशक
हरियाणा साहित्य अकादमी,
चण्डीगढ़

# तीसरे संस्करण की भूमिका

"तर्क-शास्त्र प्रवेश" के तीसरे संस्करण का प्रकाशन इस पुस्तक की लोकप्रियता और इसकी उपयोगिता को सिद्ध करता है। यह प्रसन्नता की बात है कि जिस उद्देश्य को लेकर कठिन परिश्रम से यह पुस्तक लिखी गई थी, उस उद्देश्य को पूरा करने में इस पुस्तक को सफलता मिली है।

इस संस्करण में कई स्थानों पर महत्त्वपूर्ण संशोधन किए गए हैं, यद्यपि पुस्तक का कलेवर पूर्ववत् ही रहा है।

पाठकों के अनेक सुझावों में से एक सुझाव यह मिलता रहा है कि 'प्रतिज्ञप्तियों के आधुनिक वर्गीकरण' पर अलग से संगठित सामग्री दी जाए। पुस्तक के सुगठित कलेवर को बिगाड़े बिना इस सामग्री को किसी अध्याय में शामिल कर पाना सम्भव नहीं लगा है। इसलिए, इस विषय का स्पष्टीकरण यहीं देना उचित लगा है। प्रतिज्ञप्तियों का परम्परागत विवेचन अध्याय 6 में दिया है। यहाँ प्रतिज्ञप्तियों का आधुनिक विवेचन संक्षेप में दिया जाता है।

परम्परागत तर्क-शास्त्र और आधुनिक तर्क-शास्त्र के अन्तर का मूल आधार प्रतिज्ञप्तियों (propositions) के विवेचन के सम्बन्ध में इनका अन्तर है। परम्परागत तर्क-शास्त्र में प्रत्येक सरल प्रतिज्ञप्ति (simple proposition) का विश्लेषण, उद्देश्य (subject), विधेय (predicate) और संयोजक (copula) के रूप में किया है। इस प्रकार, इसके अनुसार प्रत्येक सरल प्रतिज्ञप्ति में दो पद, उद्देश्य पद और विधेय पद, होते हैं। इसके अनुसार, 'राम बहादुर है', 'राम बहादुर पुरुष है', 'राम सीता का पति है', 'राम ने सुग्रीव की सहायता से रावण मारा' सब प्रतिज्ञप्तियों का तार्किक स्वरूप उद्देश्य, विधेय और संयोजक का है। आधुनिक तर्क-शास्त्र इसे दोषपूर्ण मानता है। परम्परागत तर्क-शास्त्र 'सब मनुष्य मरणशील हैं' और 'राम मरणशील है' को भी समान रूप से उद्देश्य-विधेय प्रतिज्ञप्ति मानता है, जो आधुनिक तर्क-शास्त्र में गलत समझा जाता है। आधुनिक तर्क-शास्त्र एक तो यह स्वीकार नहीं करता कि सब सरल प्रतिज्ञप्तियों की रचना एक सी होती है अर्थात् सब में दो पद होते हैं। दूसरे, इसमें एक व्यापी प्रतिज्ञप्ति (singular proposition) और सामान्य प्रतिज्ञप्ति (genral proposition)

में बुनियादी अन्तर माना जाता है। तीसरे आधुनिक तर्क-शास्त्र में सरल प्रतिज्ञप्ति (simple proposition) और मिश्र प्रतिज्ञप्ति (compound proposition) के अन्तर को महत्त्वपूर्ण माना है और इसमें मिश्र प्रतिज्ञप्तियों का वर्गीकरण और विवेचन परम्परागत तर्क-शास्त्र की तुलना में अधिक सशक्त हुआ है। इस प्रकार आधुनिक तर्क-शास्त्र प्रतिज्ञप्तियों को तीन वर्गों में रखता है।

1. सरल प्रतिज्ञप्ति (simple proposition)
2. मिश्र प्रतिज्ञप्ति (compound proposition)
3. सामान्य प्रतिज्ञप्ति (general proposition)

**सरल प्रतिज्ञप्ति** (simple proposition)—जिस प्रतिज्ञप्ति की रचना में कोई प्रतिज्ञप्ति शामिल न हो वह सरल प्रतिज्ञप्ति है। आधुनिक तर्क-शास्त्र के अनुसार सब सरल प्रतिज्ञप्तियों की रचना भी समान नहीं होती। रचनाभेद के आधार पर सरल प्रतिज्ञप्तियों के निम्नलिखित प्रकार हैं :

(1) उद्देश्य-विधेय प्रतिज्ञप्ति (subject-predicate proposition) : उद्देश्य-विधेय प्रतिज्ञप्ति धर्मी-धर्म सम्बन्ध बोधक प्रतिज्ञप्ति है। यह एक विशिष्ट वस्तु अथवा व्यक्ति में एक गुण-धर्म का होना बताती है। जैसे, 'लक्ष्मी सुन्दर है', 'राम वीर है' उद्देश्य-विधेय प्रतिज्ञप्तियाँ हैं।

(2) वर्ग-सदस्यता बोधक प्रतिज्ञप्ति (class-membership proposition): जो प्रतिज्ञप्ति एक व्यक्ति को एक वर्ग का सदस्य बताए वह वर्ग-सदस्यता बोधक प्रतिज्ञप्ति है। जैसे, 'लक्ष्मी सुन्दर स्त्री है', 'राम वीर पुरुष है', वर्ग-सदस्यता बोधक प्रतिज्ञप्ति है। यहाँ, ध्यान देने की बात यह है कि 'लक्ष्मी सुन्दर है' और 'लक्ष्मी सुन्दर स्त्री है' एक ही प्रकार की प्रतिज्ञप्तियाँ नहीं हैं, यद्यपि इनमें से एक को दूसरे प्रकार में बदला जा सकता है। इनमें से पहली प्रतिज्ञप्ति यह बताती है कि लक्ष्मी में सुन्दरता का गुण है, जबकि दूसरी यह बताती है कि लक्ष्मी सुन्दर स्त्रियों के वर्ग की एक सदस्य है।[1]

(3) तादात्म्य बोधक-प्रतिज्ञप्ति (identity proposition) : जो प्रतिज्ञप्ति दो पदों में तादात्म्य-सम्बन्ध बताए, वह तादात्म्य बोधक प्रतिज्ञप्ति है। जैसे, रघुवंशम् का लेखक वही है जो अभिज्ञान शाकुन्तलम् का लेखक है। यह प्रतिज्ञप्ति रघुवंशम् के लेखक और अभिज्ञान शाकुन्तलम् के लेखक में तादात्म्य सम्बन्ध बताती है।

(4) सम्बन्धी प्रतिज्ञप्तियाँ (relational propositions) : जो प्रतिज्ञप्तियाँ दो अथवा अधिक पदों का सम्बन्ध बताएं वे सम्बन्धी प्रतिज्ञप्तियाँ होती

---

1. देखिए अध्याय 7।

हैं। सम्बन्धी प्रतिज्ञप्तियाँ दो पदों की, तीन पदों की, चार पदों की अथवा इनसे भी अधिक पदों की हो सकती हैं। 'राम ने रावण मारा' दो पदों की प्रतिज्ञप्ति है। इसमें, 'राम' और 'रावण' पद हैं और 'ने मारा' सम्बन्ध है। 'राम ने सुग्रीव की मदद से रावण मारा' में तीन पद, 'राम' 'सुग्रीव' और 'रावण' हैं और 'ने की मदद से मारा' सम्बन्ध है।

यद्यपि वर्ग-सदस्यता और तादात्म्य भी सम्बन्ध हैं, लेकिन इनके विशेष तार्किक महत्त्व को ध्यान में रखकर इन्हें स्पष्टता के लिए अन्य सम्बन्धों से पृथक् रखकर प्रतिज्ञप्तियों का वर्गीकरण किया जाता है।

**मिश्र प्रतिज्ञप्ति** (compound proposition)—जिस प्रतिज्ञप्ति की रचना में कोई प्रतिज्ञप्ति शामिल न हो, वह सरल प्रतिज्ञप्ति है और जिस प्रतिज्ञप्ति की रचना में कम से कम एक प्रतिज्ञप्ति शामिल हो वह मिश्र प्रतिज्ञप्ति है। सरल प्रतिज्ञप्ति सकारात्मक ही होती है। नकारात्मक प्रतिज्ञप्ति मिश्र प्रतिज्ञप्ति होती है, इसे सकारात्मक प्रतिज्ञप्ति का निषेध माना जाता है। तार्किक दृष्टि से मिश्र प्रतिज्ञप्तियों के निम्नलिखित पाँच प्रकार हैं:

1. निषेधात्मक प्रतिज्ञप्ति (negative proposition)—जैसे श्रीमती इन्दिरा गांधी महात्मा गांधी की पुत्री नहीं हैं। इसका अर्थ है: ऐसा नहीं है कि श्रीमती इन्दिरा गांधी महात्मा गांधी की पुत्री हैं।
2. संयोजक प्रतिज्ञप्ति (conjunctive proposition)—जैसे, श्रीमती इन्दिरा गांधी पं० जवाहरलाल की पुत्री हैं और वे श्री राजीव गांधी की माँ हैं।
3. वियोजक प्रतिज्ञप्ति (disjunctive proprosition)—जैसे, राम गणित पढ़ता है या दर्शन-शास्त्र पढ़ता है।
4. आपादनात्मक प्रतिज्ञप्ति (conditional proposition)—जैसे, यदि राम प्रथम श्रेणी में पास होगा तो उसका पिता इनाम में मोटर साइकिल देगा।
5. द्वि-आपादनात्मक प्रतिज्ञप्ति (bi-conditional proposition)—जैसे, राम का पिता राम को मोटर-साइकिल इनाम में तब देगा जब और 'केवल जब वह' परीक्षा में प्रथम श्रेणी में पास होगा।[2]

**सामान्य प्रतिज्ञप्तियाँ** (general propositions)—सरल प्रतिज्ञप्तियों का अन्तर एक ओर मिश्र प्रतिज्ञप्तियों से है और दूसरी ओर सामान्य प्रतिज्ञप्तियों से है। सरल प्रतिज्ञप्तियाँ (simple propositions) एक व्यापी प्रतिज्ञप्तियाँ (singular propositions) होती हैं अर्थात् इनमें एक विशिष्ट व्यक्ति के गुण-

---

2. मिश्र प्रतिज्ञप्तियों की अधिक जानकारी के लिए देखिए अध्याय 16।

धर्म या सम्बन्ध का कथन होता है। लेकिन जिन प्रतिज्ञप्तियों में एक विशिष्ट व्यक्ति के बारे में कुछ न कहकर सामान्य रूप से एक वर्ग के व्यक्तियों के बारे में कोई बात कही जाए वह सामान्य प्रतिज्ञप्तियाँ होती हैं। वास्तव में एक सामान्य प्रतिज्ञप्ति एक वर्ग (class) के दूसरे वर्ग (class) में शामिल होने या शामिल न होने के सम्बन्ध को प्रकट करती है। सामान्य प्रतिज्ञप्तियों के चार प्रकार हैं :

(1) सर्वव्यापी सकारात्मक प्रतिज्ञप्ति (A) (universal affirmative proposition)—जैसे : सब मनुष्य मरणशील प्राणी हैं।
इसका अर्थ है, यदि एक व्यक्ति मनुष्य है तो वह मरणशील प्राणी है।

(2) सर्वव्यापी नकारात्मक प्रतिज्ञप्ति (E) (universal negative proposition)—जैसे : कोई मनुष्य पूर्ण व्यक्ति नहीं है।
इसका अर्थ है कि यदि कोई व्यक्ति मनुष्य है तो वह पूर्ण व्यक्ति नहीं है।

(3) अंश-व्यापी सकारात्मक प्रतिज्ञप्ति (I) (particular affirmative proposition)—जैसे : कुछ मनुष्य शतायु व्यक्ति होते हैं।
इसका अर्थ है; कम से कम एक व्यक्ति मनुष्य है और वह शतायु व्यक्ति है।

(4) अंश व्यापी नकारात्मक प्रतिज्ञप्ति (O) (particular negative proposition)—जैसे : कुछ मनुष्य शतायु व्यक्ति नहीं हैं।
इसका अर्थ है : कम से कम एक व्यक्ति मनुष्य है और वह शतायु व्यक्ति नहीं है।[3]

**निष्कर्ष**—आधुनिक तर्क-शास्त्र के ज्ञान के सन्दर्भ में परम्परागत तर्क-शास्त्र के प्रतिज्ञप्तियों के विवेचन में निम्नलिखित दोष हैं :

(1) इसमें सब सरल प्रतिज्ञप्तियों का विश्लेषण समान रूप से उद्देश्य, विधेय और संयोजक के रूप में किया गया है जो गलत है।

(2) इसमें एक व्यापी प्रतिज्ञप्ति (singular proposition) और सामान्य प्रतिज्ञप्ति (general proposition) में अन्तर नहीं किया गया जो गलत है।[4]

(3) इसमें सामान्य प्रतिज्ञप्तियों, A, E, I, O का विवेचन भी इस कारण से दोषपूर्ण है कि इसमें सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्तियों A, E प्रतिज्ञप्तियों का विवेचन अस्तित्व बोधक प्रतिज्ञप्ति के रूप में किया गया है, जो दोषपूर्ण है।[5]

---

3. सामान्य प्रतिज्ञप्तियों के विशेष अध्ययन के लिए देखिए अध्याय 7 और अध्याय 20।

4. देखिए पृष्ठ 107, अन्तिम अनुच्छेद।

5. देखिए पृष्ठ 113।

(4) इसमें मिश्र प्रतिज्ञप्तियों का विवेचन अपूर्ण और दोषपूर्ण है।

परम्परागत तर्क-शास्त्र में इनमें से अनेक त्रुटियों का कारण "है" का वाक्यों में अनेकार्थक प्रयोग है, जिसे प्राचीन तर्क-शास्त्री नहीं समझ सके थे। इसी कारण सम्भवतः उनसे उन सब प्रतिज्ञप्तियों को जिनमें "है" का प्रयोग हुआ है, एक ही प्रकार की प्रतिज्ञप्ति मानने की और उन सबका एक ही प्रकार से उद्देश्य, विधेय, संयोजक के रूप में विश्लेषण करने की गलती हुई थी। आधुनिक तर्क-शास्त्रियों ने प्रतिज्ञप्तियों का जो विवेचन प्रस्तुत किया है उसमें ये दोष नहीं हैं और प्रतिज्ञप्तियों के आधुनिक विवेचन के कारण तर्क-शास्त्र के विस्तार का अनन्त क्षेत्र खुल गया है।

इस पुस्तक में परम्परागत तर्क-शास्त्र की विषय-सामग्री को आधुनिक तर्क-शास्त्र के ज्ञान के प्रकाश में प्रस्तुत किया है, जिससे विद्यार्थियों को इनका तुलनात्मक ज्ञान प्रारम्भ से ही हो सके।

मैं यहाँ उन सब अपने मित्रों, पाठकों और विद्यार्थियों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने इस पुस्तक में रुचि ली है और इसमें संशोधन और परिमार्जन करने के सुझाव दिए हैं। आशा है यह तीसरा संस्करण अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

20-6-1989 —बाँके लाल शर्मा

# विषय-सूची

## खण्ड 1

## भाषा तथा परम्परागत न्याय

## खण्ड 2

## आधुनिक प्रतिज्ञप्तीय न्याय और परिमापन

खण्ड I

# भाषा तथा परम्परागत न्याय

# 1

# तर्कशास्त्र का विषय-क्षेत्र, परिभाषा और महत्त्व

## 1. तर्कशास्त्र का विषय

साधारण पाठक इतना जानते होंगे कि तर्कशास्त्र के अध्ययन का विषय तर्क है। लेकिन सम्भवतः उन्हें इस बात की स्पष्ट जानकारी न हो कि तर्कशास्त्र में तर्क से सम्बन्धित किन समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। इस बात को स्पष्ट करने से पहले कि तर्कशास्त्र में तर्क से सम्बन्धित किन समस्याओं का अध्ययन किया जाता है और किन समस्याओं का अध्ययन नहीं किया जाता तर्क के स्वरूप को स्पष्ट करना आवश्यक है।

**तर्क और अनुमान**

तर्क करना अथवा तर्कपूर्वक विचार करना एक जटिल मानसिक क्रिया है। एक व्यक्ति किसी समस्या का समाधान ढूंढ़ने के लिए तर्कपूर्वक विचार करता है। तर्कपूर्वक विचार करके समस्या का समाधान खोजते समय, व्यक्ति उस समस्या से सम्बन्धित विचारों को अपने मन में आने देता है और फिर मन ही मन उनमें से उन विचारों को चुनता है जिन्हें वह सत्य समझता है। तर्क की क्रिया का अन्तिम चरण चुने हुए विचारों से नया विचार निकालना है। पहले से दिये हुए विचारों से नया विचार निकालने की क्रिया को अनुमान कहते हैं। इस प्रकार, तर्क में अनुमान शामिल है।

**अनुमान और प्रतिज्ञप्ति**

जब हम कहते हैं कि अनुमान पहले से निश्चित विचारों से अन्य विचार निकालने की प्रक्रिया है तो हम "विचार" शब्द का प्रयोग पूर्ण विचार के लिए करते हैं। पूर्ण विचार वह विचार है जिसे सत्य या असत्य कहा जा सके। वाक्य के रूप में प्रकट किये हुए ऐसे विचार को जिसे हम सत्य या असत्य कह सकें प्रतिज्ञप्ति* कहते हैं।

---

*कुछ पुस्तकों में 'प्रतिज्ञप्ति' के लिए 'तर्क-वाक्य' शब्द का प्रयोग हुआ है। कभी-कभी 'प्रतिज्ञप्ति' (proposition) के स्थान पर 'कथन' (statement) शब्द का भी प्रयोग होता है, यद्यपि इनमें सूक्ष्म अन्तर है।

या

मैं 'क' शब्द का प्रयोग इस अर्थ में करूँगा।

इस प्रकार, पहले से दी हुई प्रतिज्ञप्तियों से अन्य प्रतिज्ञप्ति निकालने की मानसिक क्रिया अनुमान है। यहाँ यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि 'अनुमान' का तर्कशास्त्र में अर्थ अन्दाजा लगाना या तीर-तुक्का लगाना नहीं है। यह प्राप्त ज्ञान के आधार पर नये ज्ञान तक पहुँचने की निश्चित प्रक्रिया है।

अनुमान की क्रिया के दो पहलू हैं—मानसिक और तार्किक। अनुमान की क्रिया किस समय, किस-व्यक्ति के मन में किस प्रयोजन से हुई है, इन बातों का सम्बन्ध अनुमान की क्रिया के मानसिक पहलू से है और तर्कशास्त्र का इन प्रश्नों से सम्बन्ध नहीं है। तर्कशास्त्र के अध्ययन का विषय अनुमान का तार्किक पहलू है। अनुमान का तार्किक पहलू दी हुई प्रतिज्ञप्तियों और उनसे निकाली गयी प्रतिज्ञप्ति के सम्बन्ध से बनता है। अनुमान का तार्किक रूप तभी देखा जा सकता है, जब उसे भाषा में प्रकट किया जाये। भाषा में प्रकट किया हुआ अनुमान 'युक्ति' कहलाता है। इस प्रकार यह कहना कि तर्कशास्त्र अनुमान के तार्किक रूप का अध्ययन है या यह कहना कि तर्कशास्त्र युक्ति के तार्किक रूप का अध्ययन है, एक ही बात है।

**युक्ति**

युक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है :

प्रतिज्ञप्तियों की वह व्यवस्था जिसमें एक प्रतिज्ञप्ति की सत्यता का प्रतिपादन अन्य प्रतिज्ञप्तियों के आधार पर किया गया हो युक्ति कहलाती है। जहाँ अनुमान दी हुई प्रतिज्ञप्तियों से अन्य प्रतिज्ञप्ति निकालने की किसी व्यक्ति की मानसिक क्रिया है, वहाँ युक्ति प्रतिज्ञप्तियाँ अथवा कथनों की एक व्यवस्था है। मेरा यह सोचना कि "78505 की संख्या 5 से विभक्त हो जायेगी क्योंकि इसके अन्त में 5 है और यदि संख्या के अन्त में 5 है तो वह 5 से विभक्त हो जाती है", अनुमान करना है। लेकिन, "78505 की संख्या 5 से विभक्त हो जाती है, क्योंकि इस संख्या के अन्त में 5 है और यदि एक संख्या के अन्त में 5 हो तो वह 5 से विभक्त हो जाती है।" एक युक्ति है। इसमें '78505 संख्या 5 से विभक्त हो जाती है' इस कथन की सत्यता का प्रतिपादन शेष दो कथनों की सत्यता के आधार पर किया गया है। एक युक्ति में जिस कथन का प्रतिपादन किया जाता है उसे निष्कर्ष कहते हैं तथा निष्कर्ष का प्रतिपादन जिन कथनों के आधार पर किया जाता है उन्हें आधारिकाएँ कहते हैं। साधारण व्यवहार में इस बात का कोई नियम नहीं होता कि एक युक्ति में पहले आधारिकाओं का कथन हो या निष्कर्ष का। लेकिन तर्कशास्त्र में युक्ति को प्रकट करने का मानक रूप निश्चित किया जाता है। युक्ति के मानक रूप में पहले आधारिकाओं का और अन्त में निष्कर्ष का कथन होना चाहिये। और निष्कर्ष के पहले 'इसलिए' अथवा इसका सूचक चिह्न '∴' लगा होना चाहिये। उपर्युक्त युक्ति का मानक रूप निम्नलिखित होगा :

| | |
|---|---|
| आधारिकाएँ | प्रतिज्ञप्ति 1. यदि एक संख्या के अन्त में 5 हो तो वह 5 से विभक्त हो जायेगी । |
| | प्रतिज्ञप्ति –2. 78505 संख्या के अन्त में 5 है । |
| निष्कर्ष | प्रतिज्ञप्ति 3. ∴ 78505 संख्या 5 से विभक्त हो जायेगी । |

युक्ति में भिन्न-भिन्न प्रतिज्ञप्तियाँ आधारिकाएँ और निष्कर्ष के रूप में बँध जाती हैं । निष्कर्ष के पहले 'इसलिए' अथवा '∴' चिह्न युक्ति की इकाई का बोधक है । यदि उपर्युक्त युक्ति की तीसरी प्रतिज्ञप्ति के पहले लगे '∴' चिह्न को हटा दें, तो तीनों प्रतिज्ञप्तियाँ अलग-अलग हो जायेंगी, फिर उनमें न कोई आधारिका होगी और न निष्कर्ष । युक्ति की रचना में बँधने पर ही एक कथन आधारिका या निष्कर्ष बनता है । युक्ति के बाहर एक कथन न आधारिका होता है और न निष्कर्ष ।

**निगमनात्मक युक्ति और आगमनात्मक युक्ति**

यद्यपि प्रत्येक युक्ति में आधारिकाओं के सत्य होने को निष्कर्ष के सत्य होने का प्रमाण बताया जाता है, लेकिन प्रत्येक युक्ति में यह दावा नहीं किया जाता कि आधारिकाओं का सत्य होना निष्कर्ष के लिए पर्याप्त प्रमाण है । जिस युक्ति में यह दावा किया जाये कि आधारिकाओं का सत्य होना निष्कर्ष के सत्य होने के लिए पर्याप्त प्रमाण है उसे निगमनात्मक युक्ति (नि० यु०) कहते हैं । जिस युक्ति में केवल यह दावा किया जाये कि आधारिकाओं का सत्य होना निष्कर्ष के सत्य होने के लिए थोड़ा-बहुत प्रमाण है, उसे आगमनात्मक युक्ति (आ० यु०) कहते हैं । युक्ति के निम्नलिखित चार उदाहरणों में से (1) और (2) नि० यु० के उदाहरण हैं और (3) और (4) आ० यु० के उदाहरण हैं :

उदाहरण 1. मोहन सोहन से आयु में बड़ा है ।
राम मोहन से आयु में बड़ा है ।
∴ राम सोहन से आयु में बड़ा है ।

उदाहरण 2. सब मनुष्य मरणशील प्राणी हैं ।
सब अध्यापक मनुष्य हैं ।
∴ सब अध्यापक मरणशील प्राणी हैं ।

उदाहरण 3. मंगल ग्रह पर पृथ्वी के समान वायु-मण्डल है ।
पृथ्वी पर जीव रहते हैं ।
∴ मंगल पर भी जीव रहते होंगे ।

उदाहरण 4. राम दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी है और सच्चरित्र है।
सोहन दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी है और सच्चरित्र है।
मोहन दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी है और सच्चरित्र है।
∴ दर्शनशास्त्र के सब विद्यार्थी सच्चरित्र हैं।

नि० यु० और आ० यु० के अन्तर की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :

1. नि० यु० में आधारिकाओं और निष्कर्ष के ऐसे सम्बन्ध का दावा किया जाता है कि यदि आधारिकाएँ सत्य हों तो निष्कर्ष अवश्य सत्य होगा। आ० यु० में आधारिकाओं और निष्कर्ष के ऐसे सम्बन्ध का दावा किया जाता है कि यदि आधारिकाएँ सत्य हों तो निष्कर्ष के सत्य होने की सम्भावना है।

2. यदि एक प्रतिज्ञप्ति के सत्य होने पर दूसरी प्रतिज्ञप्ति का सत्य होना निश्चित हो तो पहली प्रतिज्ञप्ति के दूसरी प्रतिज्ञप्ति से सम्बन्ध को आपादन कहते हैं। क्योंकि नि० यु० में यह दावा किया जाता है कि आधारिकाओं के सत्य होने पर निष्कर्ष अवश्य सत्य होगा, इसलिए, दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि नि० यु० में आधारिकाओं से निष्कर्ष के आपादित होने का दावा होता है। नि० यु० के बारे में यह भी कह सकते हैं कि इसमें निष्कर्ष आधारिकाओं से निकलता है। लेकिन आ० यु० के सम्बन्ध में न तो यह कह सकते हैं कि आधारिकाओं द्वारा निष्कर्ष का आपादन होता है और न यह कह सकते हैं कि निष्कर्ष आधारिकाओं से निकलता है।

3. नि० यु० और आ० यु० का मूल्यांकन भी भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जाता है। नि० यु० का मूल्यांकन वैध या अवैध युक्ति के रूप में किया जाता है, जबकि आ० यु० का मूल्यांकन कमजोर और बलवान् युक्ति के रूप में किया जाता है। यदि नि० यु० में आधारिकाओं द्वारा निष्कर्ष का आपादन होता है, तो युक्ति वैध है, अन्यथा अवैध। आ० यु० की परीक्षा करते समय यह देखा जाता है कि उसकी आधारिकाओं के सत्य होने पर निष्कर्ष के सत्य होने की कितनी सम्भावना है। उसकी जितनी अधिक सम्भावना आँकी जायेगी, युक्ति उतनी ही बलवान् समझी जायेगी।

4. परम्परागत ढंग से नि० यु० और आ० यु० का अन्तर बताते हुए यह कहा जाता है कि नि० यु० में सामान्य कथनों से कम सामान्य या विशेष कथन निष्कर्ष के रूप में निकाला जाता है, जबकि आ० यु० में विशेष कथनों के आधार पर सामान्य कथन का समर्थन किया जाता है।

नि० यु० और आ० यु० में इस प्रकार अन्तर करना दोषपूर्ण है। पहले तो यह आवश्यक नहीं है कि नि० यु० में आधारिकाएँ निष्कर्ष से अधिक सामान्य हों, जैसे उदाहरण (1) में आधारिकाओं को निष्कर्ष से अधिक सामान्य नहीं कहा जा सकता। दूसरे, नि० यु० और आ० यु० के अन्तर का प्रधान कारण आधारिकाओं अथवा निष्कर्ष का अपना अपना स्वरूप नहीं है, बल्कि उनके सम्बन्ध का स्वरूप है। निगमनात्मक युक्ति में आधारिकाओं और निष्कर्ष का सम्बन्ध आकारिक होता है, जबकि आगमनात्मक युक्ति में यह वास्तविक होता है।

**आकार और विषय-वस्तु**

निगमनात्मक युक्ति की वैधता आधारिकाओं और निष्कर्ष के आकारिक सम्बन्ध पर निर्भर करती है। इस बात को समझने के लिए आकार और विषय-वस्तु में अन्तर जानना आवश्यक है।

भौतिक वस्तुओं के आकार और उनके द्रव्य में अन्तर साधारण अनुभव की बात है। दो वस्तुएँ एक ही द्रव्य की बनी होने पर भी भिन्न-भिन्न आकार वाली हो सकती हैं और दो वस्तुएँ भिन्न-भिन्न द्रव्यों से बनी होने पर भी एक ही आकार में ढली हो सकती हैं। दो सोने की अंगूठियों का आकार भिन्न-भिन्न हो सकता है और एक पीतल की अंगूठी का भी वही आकार हो सकता है जो एक सोने की अंगूठी का। इसी प्रकार अन्य भौतिक वस्तुओं जैसे, मकान, बग़ीचा, मेज़, कुर्सी, कोट-पतलून, आदि के आकार और वस्तु-सामग्री में अन्तर होता है।

आकार और वस्तु-सामग्री का अन्तर अमूर्त वस्तुओं की रचनाओं में भी होता है। संगीत रचना में वस्तु-सामग्री और आकार का अन्तर होता है। दो गीतों की विषय-वस्तु भिन्न होने पर भी उनकी लय (आकार) एक हो सकती है। इसी प्रकार दो दोहों अथवा दो चौपाइयों में भिन्न-भिन्न विचार (विषय-वस्तु) होने पर भी उनका आकार एक ही होता है। इसी प्रकार प्रतिज्ञप्तियों और युक्तियों के आकार और विषव-वस्तु में अन्तर होता है।

निम्नलिखित दो प्रतिज्ञप्तियों का आकार एक है, लेकिन उनकी विषय-वस्तु भिन्न है :

1. सब मनुष्य मरणशील प्राणी हैं।
2. सब मनुष्य सींग वाले प्राणी हैं।

इन दोनों प्रतिज्ञप्तियों की विषय-वस्तु भिन्न-भिन्न है लेकिन इनका आकार एक है। इन दोनों में एक वर्ग का दूसरे वर्ग में शामिल होना बताया है। यदि हम किसी एक वर्ग के लिए **क** और दूसरे वर्ग के लिए **ख** प्रतीक मान लें तो इन दोनों प्रतिज्ञप्तियों का सामान्य आकार इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है :

सब क, ख हैं।

यह प्रतिज्ञप्ति का एक सामान्य आकार है। प्रतिज्ञप्ति और प्रतिज्ञप्ति के आकार में अन्तर है। प्रतिज्ञप्ति तो सत्य या असत्य होती है। लेकिन प्रतिज्ञप्ति का आकार न सत्य होता है और न असत्य। एक ही आकार की दो प्रतिज्ञप्तियों में से एक सत्य और दूसरी असत्य हो सकती है। जैसे ऊपर की दो प्रतिज्ञप्तियों में से पहली सत्य और दूसरी असत्य है।

एक युक्ति के रूप और विषय-वस्तु में भी अन्तर है।

जैसे :

| | | |
|---|---|---|
| उदाहरण 5. | सब मनुष्य मरणशील प्राणी हैं। | (सत्य) |
| | सब अध्यापक मनुष्य हैं। | (सत्य) |
| | ∴ सब अध्यापक मरणशील प्राणी हैं। | (सत्य) |

यह एक ऐसी युक्ति है जिसमें तीनों प्रतिज्ञप्तियां सत्य हैं। इस युक्ति की विषय-वस्तु 'मनुष्य', 'मरणशील प्राणी' और 'अध्यापक' पदों से बनती है, जबकि युक्ति का आकार इन पदों के सम्बन्ध अथवा व्यवस्था से। यदि इस युक्ति के पदों को निकाल दें और उनके स्थान पर क्रमशः क, ख, ग रख दें तो इस युक्ति का आकार इस प्रकार दर्शाया जा सकता है :

सब क ख हैं।
सब ग क हैं।
∴ सब ग ख हैं।

यह युक्ति का एक आकार है। इसमें क, ख और ग के स्थान पर कोई भी तीन पद रखने से जो युक्ति बनेगी उसका आकार यही होगा। मान लो हम क के स्थान पर 'पक्षी', ख के स्थान पर 'सींगवाले प्राणी', ग के स्थान पर 'चूहे' पद रखते हैं। उपर्युक्त आकार में इन पदों को भरने से जो युक्ति बनेगी वह इस प्रकार होगी :

| | | |
|---|---|---|
| उदाहरण 6. | सब पक्षी सींगवाले प्राणी हैं। | (असत्य) |
| | सब चूहे पक्षी हैं। | (असत्य) |
| | ∴ सब चूहे सींगवाले प्राणी हैं। | (असत्य) |

इस प्रकार उदाहरण 5 और 6 की युक्तियों का आकार एक है, जबकि इनकी विषय-वस्तु भिन्न है। उदाहरण 5 की युक्ति में तीनों प्रतिज्ञप्तियां सत्य हैं जबकि उदाहरण 6 की युक्ति में तीनों प्रतिज्ञप्तियां असत्य हैं।

**सत्य और वैधता**

एक कथन अथवा प्रतिज्ञप्ति को सत्य या असत्य कहते हैं और एक युक्ति को वैध या अवैध।

एक युक्ति की वैधता उसके आकार की विशेषता है। यदि एक युक्ति का आकार वैध है, तो युक्ति वैध है अन्यथा अवैध। युक्ति के वैध आकार की परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं : युक्ति का वह आकार वैध है जिसमें निष्कर्ष के सत्य हुए बिना, आधारिकाओं का सत्य होना असम्भव हो, जैसे :

सब क ख हैं।
सब ग क हैं।
∴ सब ग ख हैं।

यह युक्ति का एक वैध आकार है। इसमें क, ख और ग के स्थान पर कोई भी तीन पद रखने से जो युक्ति बनेगी उसके सम्बन्ध में यह नहीं हो सकता कि उसकी आधारिकाएँ

सत्य हों लेकिन उसका निष्कर्ष असत्य हो। हाँ, यह हो सकता है कि उसकी आधारिकाएँ असत्य हों और निष्कर्ष भी असत्य हो। युक्ति का निम्नलिखित आकार अवैध है :

सब क ख हैं।
सब ग ख हैं।
∴ सब ग क हैं।

यह युक्ति का एक अवैध आकार है, क्योंकि इसमें आधारिकाओं के सत्य होने पर निष्कर्ष असत्य हो सकता है। मान लो, हम क के स्थान पर 'मनुष्य', ख के स्थान पर 'मरणशील प्राणी', ग के स्थान पर 'बन्दर' पद रखें तो इस आकार की युक्ति यह बनेगी :

**उदाहरण 7.** सब मनुष्य मरणशील प्राणी हैं। (सत्य)
सब बन्दर मरणशील प्राणी हैं। (सत्य)
∴ सब बन्दर मनुष्य हैं। (असत्य)

इस युक्ति में आधारिकाएँ तो सत्य हैं लेकिन निष्कर्ष असत्य है। इसलिए यह युक्ति अवैध है, अर्थात् इसका आकार अवैध है। यह सम्भव हो सकता है कि इस आकार में कोई ऐसी युक्ति भी बन जाये जिसकी आधारिकाएँ और निष्कर्ष दोनों ही सत्य हों, लेकिन इससे वह युक्ति वैध नहीं बन जायेगी। वह अवैध ही मानी जायेगी क्योंकि उसका आकार अवैध है।

यदि हम उपर्युक्त आकार में क के स्थान पर 'मनुष्य', ख के स्थान पर 'मरणशील प्राणी', ग के स्थान पर 'विद्यार्थी' पद रखें तो निम्नलिखित युक्ति बनेगी :

**उदाहरण 8.** सब मनुष्य मरणशील प्राणी हैं। (सत्य)
सब विद्यार्थी मरणशील प्राणी हैं। (सत्य)
∴ सब विद्यार्थी मनुष्य हैं। (सत्य)

इस युक्ति में आधारिकाएँ और निष्कर्ष दोनों सत्य हैं, लेकिन फिर भी यह युक्ति अवैध है क्योंकि इसका आकार अवैध है और इसका आकार अवैध इसलिए है कि इसी आकार वाली ऐसी युक्ति हो सकती है जिसमें आधारिकाएँ सत्य हों और निष्कर्ष असत्य हो, जैसे उदाहरण 7 की युक्ति।

उपर्युक्त विवेचन से इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि युक्ति की वैधता का अर्थ न तो आधारिकाओं का सत्य होना है, न निष्कर्ष का सत्य होना और न आधारिकाओं और निष्कर्ष दोनों का सत्य होना। सत्य या असत्य होना प्रतिज्ञप्तियों का गुण-धर्म है जबकि वैध या अवैध होना युक्ति के आकार का। युक्ति की वैधता-अवैधता तथा निष्कर्ष की सत्यता-असत्यता का सम्बन्ध इस प्रकार है :

1. युक्ति के वैध होने पर भी निष्कर्ष असत्य हो सकता है, जैसे उदाहरण 6 में।

2. युक्ति के वैध होने पर निष्कर्ष असत्य हो, तो यह निश्चित है कि कम-से-कम एक आधारिका असत्य है, जैसे उदाहरण 6 में।

3. अवैध युक्ति का भी निष्कर्ष सत्य हो सकता है, जैसे उदाहरण 8 में। इसलिए किसी युक्ति के निष्कर्ष के सत्य होने का अर्थ यह नहीं है कि वह युक्ति वैध है। दोनों आधारिकाओं और निष्कर्ष के सत्य होने पर भी युक्ति अवैध हो सकती है। यह भी उदाहरण 8 से स्पष्ट है।

4. यदि युक्ति वैध है और उसकी आधारिकाएँ सत्य हैं तो निष्कर्ष अवश्य सत्य होगा। वैध युक्ति में आधारिकाओं के सत्य होने पर निष्कर्ष असत्य नहीं हो सकता।

5. यदि युक्ति की सब आधारिकाएँ सत्य हैं और निष्कर्ष असत्य है तो युक्ति का अवैध होना निश्चित है, जैसे उदाहरण 7।

**ठोस युक्ति**

एक वैध युक्ति का निष्कर्ष असत्य हो सकता है। इसलिए, किसी युक्ति के मान्य होने के लिए उसका वैध होना ही पर्याप्त नहीं है, इसके लिए यह भी आवश्यक है कि उसका निष्कर्ष सत्य हो। ठोस युक्ति उस युक्ति को कहते हैं जिसमें युक्ति के आकार के वैध होने के साथ-साथ उसका निष्कर्ष भी सत्य हो।

**सत्य : अनुभव सापेक्ष और अनुभव निरपेक्ष**

सत्य का स्वरूप क्या है, इस प्रश्न का विस्तृत विवेचन तो ज्ञानमीमांसा में किया जाता है। यहाँ केवल सत्य के दो रूपों, अनुभव-सापेक्ष सत्य और अनुभव-निरपेक्ष सत्य में अन्तर समझना महत्त्वपूर्ण है। हम यह तो जान चुके हैं कि प्रतिज्ञप्तियों को सत्य या असत्य कहते हैं। लेकिन सब प्रतिज्ञप्तियों को समान अर्थ में सत्य या असत्य नहीं कहते। कुछ प्रतिज्ञप्तियाँ ऐसी होती हैं कि उनके सत्य या असत्य का निश्चय करने के लिए उनका अर्थ समझना पर्याप्त नहीं होता, बल्कि अनुभव का सहारा लेना आवश्यक होता है, अर्थात् वास्तविक तथ्यों का अवलोकन आवश्यक होता है। ऐसी प्रतिज्ञप्तियों को अनुभव-सापेक्ष प्रतिज्ञप्ति कहते हैं और इनके सत्य या असत्य को आनुभविक सत्य या असत्य कहते हैं। उदाहरण के रूप में,

1. दिल्ली की जनसंख्या बम्बई की जनसंख्या से कम है।
2. चन्द्रमा पर मनुष्य रहते हैं।

ये दो अनुभव-सापेक्ष प्रतिज्ञप्तियाँ हैं। इनके सत्य या असत्य का प्रमाण अनुभव है। उपर्युक्त प्रतिज्ञप्तियों में से (1) सत्य है और (2) असत्य है। यदि कोई प्रश्न करे कि (1) सत्य क्यों है तो इसके उत्तर में यही कहा जायेगा कि वास्तविक गणना इसका प्रमाण है। इस वाक्य का अर्थ समझना ही इसके सत्य-असत्य का निश्चय करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

आनुभविक सत्य को आकस्मिक सत्य भी कहते हैं। इसी प्रकार आनुभविक असत्य को आकस्मिक असत्य कहते हैं। जिस प्रतिज्ञप्ति के सत्य या असत्य होने का प्रमाण तथ्यों का अवलोकन है, वह तथ्यों की स्थिति के कारण सत्य या असत्य है और वह अवलोकन में आने वाली केवल इस दुनिया के सम्बन्ध में लागू होती है। आज जो कथन तथ्य के अनुरूप होने के कारण सत्य है, कल को वही कथन तथ्यों में परिवर्तन होने के कारण असत्य भी हो सकता है। मान-लो, कल को दिल्ली की जनसंख्या बम्बई की जनसंख्या से अधिक हो जाये, तो उपर्युक्त कथन (1) असत्य हो जायेगा। इसी प्रकार कथन (2) आकस्मिक असत्य है। इसके सत्य होने की भी कभी सम्भावना हो सकती है।

इस प्रकार अनुभव-सापेक्ष कथन तथ्य-सम्बन्धी होते हैं और उनका सत्य या असत्य होना आकस्मिक होता है, आवश्यक नहीं।

कुछ कथनों के सत्य-असत्य का निश्चय करने के लिए तथ्यों का अवलोकन आवश्यक नहीं होता। ऐसे कथनों को अनुभव-निरपेक्ष कथन कहते हैं। अनुभव-निरपेक्ष कथन आवश्यक रूप से सत्य या आवश्यक रूप से असत्य होता है। जैसे :

1. मनुष्य एक प्राणी है।
2. लाल एक रंग है।
3. चन्द्रमा पर मनुष्य रहते हैं या चन्द्रमा पर मनुष्य नहीं रहते।
4. यदि सब पापी नरक में जाते हैं और सब धोखेबाज पापी होते हैं तो सब धोखेबाज नरक में जाते हैं।

ये सब कथन अनुभव-निरपेक्ष सत्य अथवा आवश्यक सत्य हैं। इनका सत्य होना तथ्यों पर निर्भर नहीं है बल्कि इनके अर्थ या आकार पर निर्भर है। जो व्यक्ति 'मनुष्य' और 'प्राणी' शब्दों का अर्थ जानता है, वह निश्चित रूप से कह सकता है कि उपर्युक्त कथन (1) सत्य है।

यद्यपि उपर्युक्त चारों कथन अनुभव-निरपेक्ष सत्य हैं, लेकिन इनमें से केवल (3) और (4) ऐसे कथन हैं जो अपने आकार के कारण सत्य हैं। कथन (3) का सामान्य आकार है : प सत्य है या प सत्य नहीं है। यहाँ प किसी भी एक कथन का प्रतीक है। इस आकार में प के स्थान पर कोई भी कथन रखने से, जो कथन बनेगा वह अपने इस आकार के कारण ही निश्चित रूप में सत्य होगा जैसे :

5. मंगल ग्रह पर मनुष्य रहते हैं या मंगलग्रह पर मनुष्य नहीं रहते।
6. राम दर्शनशास्त्र पढ़ता है या राम दर्शनशास्त्र नहीं पढ़ता।

कथन (3), (5) और (6) का आकार एक-सा है और ये सब अपने आकार के कारण सत्य हैं।

कथन (4) का आकार है :

यदि सब क ख हैं और सब ग क हैं, तो सब ग ख हैं।

इस आकार में क, ख तथा ग के स्थान पर कोई से भी पद रखने से जो सार्थक कथन बनेगा वह निश्चित रूप में सत्य होगा।

तर्क-शास्त्रियों का काम कथनों अथवा प्रतिज्ञप्तियों के वे आकार निश्चित करना है, जिनमें प्रकट किया हुआ प्रत्येक कथन आवश्यक रूप से सत्य हो।

**यक्ति की वैधता और आपादन**

युक्ति को वैध या अवैध कहते हैं और प्रतिज्ञप्ति या कथन को सत्य या असत्य। हम यह देख चुके हैं कि वैध युक्ति वही है जिसमें आधारिकाएँ निष्कर्ष का आपादन करती हों। दो या अधिक प्रतिज्ञप्तियों के आपादन-सम्बन्ध को "यदि...तो..." के सम्बन्ध में एक वाक्य में प्रकट किया जा सकता है। ऐसे वाक्य को आपादन-वाक्य कहते है। एक निगमनात्मक युक्ति को भी आपादन-वाक्य के रूप में बदला जा सकता है। उदाहरण के रूप में :

सब मनुष्य मरणशील हैं।
सब अध्यापक मनुष्य हैं।
∴ सब अध्यापक मरणशील हैं।

को एक आपादन वाक्य के आकार में इस प्रकार बदल सकते हैं :

यदि सब मनुष्य मरणशील हैं और सब अध्यापक मनुष्य हैं तो सब अध्यापक मरणशील हैं।

यह एक आपादन-वाक्य है और सत्य है। लेकिन इसका सत्य होना इसके आकार के कारण है। यदि सब क ख हैं और सब ग क हैं तो सब ग ख हैं, यह आपादन का ऐसा आकार है कि इसमें जो भी प्रतिज्ञप्ति होगी वह अपने आकार के कारण ही सत्य होगी। एक वैध युक्ति को ऐसे आपादन-वाक्य में बदला जा सकता है, जो अपने आकार के कारण ही सत्य हो। एक वैध युक्ति में आधारिकाएँ निष्कर्ष का आपादन करती हैं और यह आपादन आकारिक होता है। इस प्रकार निगमनात्मक युक्ति की वैधता का आधार आधारिकाओं और निष्कर्ष के बीच आकारिक आपादन का सम्बन्ध है।

**आपादन और अनुमान में अन्तर**

यद्यपि आपादन निगमनात्मक अनुमान या युक्ति की वैधता का आधार है, लेकिन आपादन ही अनुमान नहीं है। आपादन और अनुमान में अन्तर है। आपादन प्रतिज्ञप्तियों का एक सम्बन्ध है। एक आपादन-वाक्य दो या अधिक प्रतिज्ञप्तियों के आपादन-सम्बन्ध को प्रकट करता है, यह उन प्रतिज्ञप्तियों के सत्य होने को प्रकट नहीं करता। लेकिन अनुमान या युक्ति में आधारिकाओं के सत्य होने तथा उनके आधार पर निष्कर्ष के सत्य होने के दावे का कथन होता है। अनुमान या युक्ति में निष्कर्ष के पहले 'इसलिए' या चिह्न '∴' का होना उसके सत्य होने के दावे को प्रकट करता है। अनुमान की क्रिया के लिए अनुमान करने वाले व्यक्ति की आवश्यकता होती है जो प्रतिज्ञप्तियों के बीच आपादन-सम्बन्ध को जानता हो और जो आपादक प्रतिज्ञप्ति के सत्य होने के निश्चय के आधार पर आपादित प्रतिज्ञप्ति के सत्य होने का दावा करता हो। लेकिन प्रतिज्ञप्तियों के बीच आपादन का

होना या न होना प्रतिज्ञप्तियों के अपने स्वरूप पर निर्भर होता है, किसी व्यक्ति के ज्ञान पर नहीं।

### अभ्यास

1. बताइये निम्नलिखित कथन सत्य हैं या असत्य :

(क) निगमनात्मक युक्ति का निष्कर्ष आधारिकाओं में निहित होता है।

(ख) ऐसी भी निगमनात्मक युक्ति हो सकती है, जिसमें विशेष आधारिकाओं से विशेष निष्कर्ष निकाला गया हो।

(ग) आगमनात्मक युक्ति का मूल्यांकन उसके आकारिक सम्बन्धों पर निर्भर होता है।

(घ) आधारिकाओं के सत्य होने पर आगमनात्मक युक्ति का निष्कर्ष निश्चित रूप से सत्य होता है।

(ङ) निगमनात्मक युक्ति की वैधता आधारिकाओं और निष्कर्ष के बीच आपादन पर निर्भर है।

(च) निगमनात्मक युक्ति की वैधता निष्कर्ष की सत्यता पर निर्भर है।

(छ) निगमनात्मक युक्ति की वैधता आधारिकाओं और निष्कर्ष की सत्यता पर निर्भर होती है।

(ज) यदि आधारिकाएँ सत्य हों और युक्ति का आकार वैध हो तो निष्कर्ष अवश्य सत्य होगा।

(झ) यदि निष्कर्ष सत्य हो और युक्ति का आकार वैध हो तो आधारिकाएँ अवश्य सत्य होती हैं।

(ञ) यदि युक्ति का आकार वैध हो और निष्कर्ष असत्य हो तो कम-से-कम एक आधारिका अवश्य असत्य होती है।

2. निम्नलिखित कथन-समूहों में से कौन-कौनसे युक्ति हैं; जो युक्ति हैं उनकी आधारिकाओं और निष्कर्ष को अलग-अलग करके युक्ति के आकार को स्पष्ट करो :

(क) भगवान् का अवतार शीघ्र होगा, क्योंकि जब-जब धर्म का ह्रास होता है भगवान् अवतार लेते हैं और आजकल धर्म का ह्रास हो रहा है।

(ख) राम को इस समय क्रोध आ रहा है क्योंकि उसकी आँखें लाल और होंठ काँप रहे हैं। जब एक व्यक्ति की आँखें लाल हों, होंठ काँप रहे हों तब वह क्रोध में होता है।

(ग) यदि एक व्यक्ति दूसरे का बुरा चाहता है तो उसी का बुरा हो जाता है।

(घ) देश के उत्थान की पहली अवस्था आज़ादी है और दूसरी समाजवाद। लेकिन समाजवाद के नारों से ही देश की तरक्की नहीं हो सकती। उसके लिए परिश्रम आवश्यक है।

(ङ) यदि एक देश के शासक अपने किसी भाग के लोगों को पीड़ित करते हैं तो वे वास्तव में उसके शत्रु हैं। इसलिए, ऐसे शासकों के विरुद्ध विद्रोह अनुचित नहीं है।

(च) यदि राम परीक्षा में प्रथम आयेगा तो उसे विद्यालय की ओर से छात्रवृत्ति मिलेगी और उसकी पूरी फीस माफ हो जायेगी और यदि राम को छात्रवृत्ति मिली और उसकी फीस माफ हो गयी तो वह आगे पढ़ेगा।

(छ) पूत कपूत तो क्यों धन संचिए, पूत सपूत तो क्यों धन संचिए।

(ज) मोहन आज कालेज नहीं आ सकता क्योंकि उसे टाइफ़ाइड है और टाइफ़ाइड वाले रोगी को चलना-फिरना मना होता है।

(झ) इस रेतीले स्थान पर कोई मनुष्य पहले अवश्य आया है क्योंकि यहाँ मनुष्य के पैर के निशान हैं और मनुष्य के आये बिना पैर के निशान बन नहीं सकते।

(ञ) यदि एक व्यक्ति हर समय रुपये-पैसे के ही चक्कर में रहता है, तो वह जीवन का ठीक-ठीक मूल्य नहीं समझता और इसलिए वह जीवन का ठीक-ठीक उपयोग नहीं कर पाता।

3. निम्नलिखित युक्तियों में निगमनात्मक और आगमनात्मक युक्ति की पहचान करो :

(क) यदि भारत शक्तिशाली बनना चाहता है, तो उसे परमाणु-बम बनाना चाहिये।

भारत शक्तिशाली बनना चाहता है।

∴ भारत को परमाणु-बम बनाना चाहिये।

(ख) रामकिशन मिशन के जिन महात्माओं का अंग्रेज़ी में भाषण सुना है, वे उच्च कोटि के वक्ता लगते हैं।

∴ रामकिशन मिशन के सब महात्मा उच्च कोटि के वक्ता होते हैं।

(ग) जिन सिख लोगों से मेरा परिचय है, वे अपने धर्म में अगाध श्रद्धा रखते हैं।

∴ सब सिख अपने धर्म में अगाध श्रद्धा रखते हैं।

(घ) ये जूते बहुत चलेंगे क्योंकि मेरे पास भी ऐसे ही जूते थे और वे बहुत चले थे।

(ङ) भारतीय सेना के सब सिपाही रणबांकुरे हैं।

गोरखा रेजीमेन्ट के सिपाही भारतीय सेना के सिपाही हैं।

∴ गोरखा रेजीमेन्ट के सिपाही रणबांकुरे हैं।

4. युक्ति किसे कहते हैं ? युक्ति की तार्किक रचना उदाहरण सहित स्पष्ट करो।

5. युक्ति, तर्क और अनुमान का सम्बन्ध और अन्तर स्पष्ट करो।

6. अनुमान किसे कहते हैं ? अनुमान के मानसिक और तार्किक पहलू का अन्तर स्पष्ट करो। क्या तर्कशास्त्र का विषय अनुमान की मानसिक क्रिया है ?

7. निगमनात्मक युक्ति और आगमनात्मक युक्तियों का अन्तर उदाहरण-सहित स्पष्ट करो ।

8. निगमनात्मक युक्ति के आकार और विषय-वस्तु का अन्तर उदाहरण-सहित स्पष्ट करो ।

9. युक्ति के वैध रूप की परिभाषा दो और उदाहरणों सहित यह स्पष्ट करो कि युक्ति के वैध रूप का अर्थ निष्कर्ष की सत्यता नहीं है ।

10. वैध युक्ति और ठोस युक्ति का अन्तर स्पष्ट करो तथा वैध युक्तियों के आकारों के अध्ययन के महत्त्व पर टिप्पणी लिखो ।

11. अनुभव-सापेक्ष सत्य-असत्य तथा अनुभव-निरपेक्ष सत्य-असत्य कथनों का उदाहरण सहित अन्तर स्पष्ट करो । क्या प्रत्येक ऐसे कथन को जो अनुभव-निरपेक्ष सत्य हो आकारिक सत्य कह सकते हैं ?

12. तर्कशास्त्र में आकारिक सत्य कथनों के अध्ययन के महत्त्व पर प्रकाश डालो ।

13. युक्ति की वैधता और आपादन (Implication) का सम्बन्ध स्पष्ट करो । आपादन और अनुमान का अन्तर भी स्पष्ट करो ।

## 2. तर्कशास्त्र की परिभाषा तथा विषय-क्षेत्र

युक्ति प्रस्तुत करने वाला प्रत्येक व्यक्ति यह दावा करता है कि उसकी युक्ति की आधारिकाएँ सत्य हैं और आधारिकाओं और निष्कर्ष का ऐसा सम्बन्ध है कि आधारिकाओं की सत्यता के आधार पर निष्कर्ष की सत्यता का समर्थन किया जा सकता है । लेकिन युक्ति देने वालों का यह दावा हमेशा सत्य नहीं होता । यदि प्रत्येक युक्ति देने वाले का यह दावा सत्य होता तो कोई युक्ति अमान्य न होती । हम व्यवहार में देखते हैं कि बहुत-सी युक्तियाँ अमान्य होती हैं, या तो उनकी आधारिकाएँ असत्य होती हैं या उनसे निष्कर्ष का समर्थन ही नहीं होता । एक युक्ति में जिन आधारिकाओं को सत्य मानकर चला जाता है, वे वास्तव में सत्य हैं या नहीं इसका निर्णय तर्कशास्त्र नहीं कर सकता । इसका निर्णय करना तो विशिष्ट विज्ञानों का काम है । लेकिन एक युक्ति में आधारिकाओं द्वारा निष्कर्ष का प्रतिपादन होता है या नहीं अर्थात् आधारिकाओं की सत्यता निष्कर्ष की सत्यता के लिए कितना प्रमाण है, इसका मूल्यांकन करना तर्कशास्त्र का काम है । हम तर्कशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं : तर्कशास्त्र वह विज्ञान है जिसमें युक्तियों के विविध प्रकारों का मूल्यांकन करने के मापदण्डों का अध्ययन किया जाता है ।

युक्तियों के मूल्यांकन का मापदण्ड निश्चित करने के लिए तर्कशास्त्र में युक्तियों के विभिन्न प्रकारों में अन्तर किया जाता है । प्रमुख रूप से तर्कशास्त्र में दो प्रकार की युक्तियाँ—निगमनात्मक युक्ति और आगमनात्मक युक्ति में अन्तर किया जाता है ।

निगमनात्मक युक्तियाँ वे युक्तियाँ हैं जिनमें आधारिकाओं का सत्य होना निष्कर्ष के सत्य होने के लिए पर्याप्त आधार बन सकता हो। आगमनात्मक युक्तियाँ वे हैं जिनमें आधारिकाओं से निष्कर्ष के सत्य होने की सम्भावना ही प्रतिपादित हो सकती हो। आगमनात्मक युक्तियों का मूल्यांकन निर्बल और बलवान् युक्ति के रूप में किया जाता है। यह मूल्यांकन आधारिकाओं तथा निष्कर्ष के वास्तविक सम्बन्धों के आधार पर किया जाता है। ज्ञान के किसी क्षेत्र में तथ्य-सम्बन्धी विचारों को निश्चित करना भिन्न-भिन्न विज्ञानों का काम है। इसलिए, आगमनात्मक युक्तियों के मूल्यांकन का मापदण्ड निश्चित करने के लिए तर्कशास्त्र में वैज्ञानिक विधि का भी अध्ययन किया जाता है। तर्कशास्त्र का वह भाग जिसमें आगमनात्मक युक्तियाँ तथा वैज्ञानिक विधि का अध्ययन किया जाता है, आगमनात्मक तर्कशास्त्र कहलाता है।

निगमनात्मक युक्तियों का मूल्यांकन वैध-युक्ति या अवैध-युक्ति के रूप में किया जाता है। जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है, निगमनात्मक युक्ति की वैधता या अवैधता उसकी विचार-वस्तु पर निर्भर नहीं होती अपितु उसके आकार पर निर्भर होती है।

सब क ख हैं।
सब ग क हैं।
∴ सब ग ख हैं।

यह निगमनात्मक युक्ति का एक वैध आकार है। निगमनात्मक युक्ति का वह आकार वैध है जिसमें निष्कर्ष के सत्य हुए बिना आधारिकाओं का सत्य होना असम्भव है। युक्ति का उपर्युक्त आकार वैध है क्योंकि इसमें निष्कर्ष के सत्य हुए बिन आधारिकाओं का सत्य होना असम्भव है। तर्कशास्त्र का वह भाग जिसमें निगमनात्मक युक्तियों के वैध आकारों तथा प्रतिज्ञप्तियों के आकारिक-सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है निगमनात्मक तर्कशास्त्र कहलाता है। निगमनात्मक तर्कशास्त्र विशुद्ध रूप से आकारिक तर्कशास्त्र है। कभी-कभी तर्कशास्त्र का अर्थ केवल निगमनात्मक तर्कशास्त्र लिया जाता है। लेकिन यह तर्कशास्त्र का संकुचित अर्थ है।

कुछ निगमनात्मक युक्तियाँ ऐसी भी होती हैं जिनका ठीक या ग़लत होना उनके आकार पर आश्रित नहीं होता बल्कि आधारिकाओं और निष्कर्ष के विचारों के सम्बन्ध पर निर्भर होता है। यद्यपि प्रधान रूप में, निगमनात्मक तर्कशास्त्र युक्तियों के वैध आकारों का अध्ययन है, लेकिन इसके व्यापक क्षेत्र में युक्तियों के उन दोषों का अध्ययन भी आ जाता है, जो विचारों की असम्बद्धता के कारण पैदा होते हैं।

युक्ति के बहुत से दोष भाषा का ठीक-ठीक प्रयोग न करने के कारण होते हैं। इसलिए, भाषा के स्वरूप तथा उसके कार्यों का अध्ययन तर्कशास्त्र का महत्त्वपूर्ण अंग है।

**तर्कशास्त्र विज्ञान है**

किसी विषय का वह क्रमबद्ध अध्ययन जो अपने विषय के बारे में सामान्य नियम निश्चित करता हो विज्ञान कहलाता है। प्रत्येक विज्ञान की तीन सामान्य विशेषताएँ हैं : (1) इसका एक निश्चित विषय होता है, (2) यह क्रमबद्ध अध्ययन होता है, और (3) इसका उद्देश्य सामान्य नियम निश्चित करना होता है। तर्कशास्त्र एक विज्ञान है। युक्तियों के आकार इसके अध्ययन का विषय हैं। युक्तियों के भिन्न-भिन्न प्रकारों, उनके आवश्यक तत्त्वों और उनकी वैधता तथा स्पष्टता की समस्याओं और इनसे सम्बन्धित अन्य समस्याओं का इसमें क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है। मेरी कोई युक्ति ठीक है या नहीं यह तर्कशास्त्र की समस्या नहीं है। तर्कशास्त्र की समस्या तो युक्ति की वैधता के सामान्य आकारों या नियमों को जानना है। इस प्रकार तर्कशास्त्र एक विज्ञान है।

**तर्कशास्त्र आकारिक विज्ञान है :** तर्कशास्त्र तथ्य-सम्बन्धी विज्ञान या वर्णनात्मक विज्ञान नहीं है, बल्कि एक आकार सम्बन्धी विज्ञान है। जो विज्ञान अनुभव में आने वाले तथ्यों का वर्णन करता है और घटनाओं के सम्बन्ध में सामान्य नियम निश्चित करता है, वह तथ्य-सम्बन्धी विज्ञान, वर्णनात्मक विज्ञान या प्राकृतिक विज्ञान कहलाता है। वर्णनात्मक विज्ञानों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है :

1. भौतिक जगत् से सम्बन्धित विज्ञान, जैसे भौतिकी, रसायन विज्ञान, ज्योतिष, भू-विज्ञान।

2. प्राणिजगत् से सम्बन्धित विज्ञान, जैसे जीव-विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, शरीर रचना-विज्ञान।

3. मानवीय क्रियाओं से सम्बन्धित विज्ञान, जैसे मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र।

ये सब विज्ञान विषय की दृष्टि से भिन्न-भिन्न हैं, किन्तु फिर भी इनके विषयों में सम्बन्ध हैं। भौतिक-विज्ञानों का ज्ञान प्राणि-विज्ञानों के अध्ययन का और प्राणि-विज्ञानों का ज्ञान मानवीय-विज्ञानों के अध्ययन का आधार है।

इन भिन्न-भिन्न विज्ञानों के क्षेत्रों में तथा साधारण व्यवहार में जो युक्तियाँ दी जाती हैं, उनकी वैधता या अवैधता उनकी विषय-वस्तु पर निर्भर नहीं करती, बल्कि उनके आकार पर निर्भर करती है। युक्ति की वैधता के विविध आकारों के उदाहरण प्रधान रूप से भिन्न-भिन्न विज्ञानों में मिलते हैं। तर्कशास्त्र का काम विभिन्न विज्ञानों के क्षेत्रों में प्रदर्शित युक्तियों के वैध आकारों को पहचानना और उन्हें एक व्यवस्था में बाँध कर प्रकट करना है। इस प्रकार तर्कशास्त्र आकार-सम्बन्धी विज्ञान है।

**तर्कशास्त्र विज्ञानों का विज्ञान है :** तर्कशास्त्र को कभी-कभी विज्ञानों का विज्ञान कहते हैं। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न विज्ञान अपने-अपने विषय के विज्ञान—क्रमबद्ध अध्ययन—हैं, उसी प्रकार तर्कशास्त्र सब विज्ञानों में प्रदर्शित वैध युक्तियों के आकारों का अध्ययन है। इस प्रकार, आकार-सम्बन्धी विज्ञान होने के कारण ही तर्कशास्त्र सब

विज्ञानों का विज्ञान है। इसका सम्बन्ध सब विज्ञानों की विषय-वस्तु से नहीं है, बल्कि अपनी-अपनी विषय-वस्तु के बारे में जो विचार अर्थात् प्रतिज्ञप्तियाँ या युक्तियाँ उनमें दी हैं, उनके सामान्य आकारों से इसका सम्बन्ध है।

**तर्कशास्त्र नियामक विज्ञान है :** तर्कशास्त्र को नियामक विज्ञान भी कहते हैं और इनका अन्तर तथ्य-सम्बन्धी विज्ञानों से करते हैं। जो विज्ञान किसी मानवीय क्रिया के मूल्यांकन का मापदण्ड या नियम निश्चित करता हो उसे नियामक विज्ञान कहते हैं। तर्कशास्त्र युक्तियों के वैध या अवैध होने का मापदण्ड निश्चित करता है, इसलिए तर्कशास्त्र एक नियामक विज्ञान है। यहाँ यह दोहराना आवश्यक है कि युक्तियों के वैध आकार ही उनके वैध अवैध होने के मापदण्ड हैं। इन वैध आकारों को ही युक्तियों की वैधता के नियम कहते हैं। युक्तियों की वैधता के नियम आकार-सम्बन्धी हैं। ये नियम आदेशात्मक या उपदेशात्मक नहीं हैं। इस प्रकार तर्कशास्त्र का आकार-सम्बन्धी विज्ञान होना ही इसके नियामक विज्ञान होने का आधार है।

**क्या तर्कशास्त्र कला है**

क्या तर्कशास्त्र कला है अथवा विज्ञान और कला दोनों हैं अथवा यह एक विशुद्ध विज्ञान है—यह प्रश्न भी तर्कशास्त्रियों के विवाद का विषय रहा है। लेकिन अब शायद ही कोई ऐसा तर्कशास्त्री हो जो तर्कशास्त्र को विज्ञान न मानता हो और इसे केवल कला ही मानता हो। लेकिन अब भी कुछ लेखक तर्कशास्त्र को विज्ञान और कला दोनों मानते हैं।

विज्ञान का काम एक विषय के सम्बन्ध में सामान्य नियमों की खोज करना है, लेकिन कला का काम किसी कर्म में निपुण बनने के लिए अभ्यास करने के नियम निर्धारित करना है। कला का उद्देश्य कर्म में निपुणता प्राप्त करने का प्रशिक्षण देना है। जो तर्कशास्त्री तर्कशास्त्र को कला मानते हैं, उनके अनुसार तर्कशास्त्र का उद्देश्य विद्यार्थी को स्पष्ट और वैध तर्क करने में निपुण बनना होना चाहिये और यह इस ढंग से लिखा जाना चाहिये कि पढ़ने वाले को स्पष्ट और वैध तर्क करने का अभ्यास करना पड़े।

यदि यह मान भी लिया जाये कि तर्कशास्त्र का उद्देश्य स्पष्ट और वैध तर्क करने में निपुण बनाना है, फिर भी यह बात तो स्पष्ट है कि यह काम तब तक पूरा नहीं हो सकता, जब तक वैध और अवैध तर्क के आकार स्पष्ट न हों अर्थात् जब तक विज्ञान के रूप में तर्कशास्त्र का विकास न हो। तर्कशास्त्र का मूलरूप एक विज्ञान का रूप है। कुछ तर्कशास्त्री इसे व्यावहारिक दृष्टि से अर्थात् कला की दृष्टि से भी लिखते हैं, लेकिन यह तर्कशास्त्र का गौण रूप है।

तर्कशास्त्र मूलरूप में एक विज्ञान है। केवल गौण रूप में इसे कला कहा जा सकता है।

**तर्कशास्त्र की उपयोगिता**

तर्कशास्त्र की उपयोगिता क्या है, इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए यह जानना आवश्यक है कि तर्कशास्त्र का उद्देश्य क्या है या तर्कशास्त्र का उद्देश्य क्या नहीं है। तर्कशास्त्र का उद्देश्य न तो लोगों को तर्क करना सिखाना है और न वैध रूप से तर्क करना सिखाना है। तर्कशास्त्र के अध्ययन के बिना लोग तर्क करना जानते हैं। तर्कशास्त्र के अध्ययन के बिना लोग (जैसे वैज्ञानिक) वैध और स्पष्ट तर्क करना भी सीख सकते हैं। वास्तव में यदि लोग तर्कशास्त्र के बिना वैध तर्क न कर सकते, तो तर्कशास्त्र का जन्म ही सम्भव न होता। तर्कशास्त्र तर्क के वैध आकारों की रचना नहीं करता, यह तो विज्ञान तथा साधारण व्यवहार में प्रदर्शित तर्कों तथा युक्तियों के वैध आकारों की खोज करता है, उन्हें पहचानता है और उन्हें उनकी विषय सामग्री से पृथक् करता है। इस प्रकार वैध तर्क के आकारों के जो उदाहरण देखने में आते हैं, उन आकारों के बारे में स्पष्टता प्रदान करना तर्कशास्त्र का काम है।

तर्कशास्त्र का अध्ययन किये बिना भी लोग अच्छे विचारक बन सकते हैं और तर्कशास्त्र पढ़ने पर भी तर्क करने में ग़लतियाँ हो सकती हैं, फिर भी तर्कशास्त्र निरर्थक नहीं है। तर्कशास्त्र के अध्ययन से निम्नलिखित लाभ हैं :

1. इसके अध्ययन से इस बात का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त होता है कि किसी युक्ति की रचना का क्या आकार है, तर्क अथवा युक्ति के कितने प्रकार हैं और युक्ति का मान्य होना किन बातों पर निर्भर करता है। इससे दिन-प्रतिदिन के व्यवहार में तथा विज्ञानों के क्षेत्र में दी जाने वाली युक्तियों की ठीक-ठीक आलोचनात्मक परख करने में सहायता मिलती है।

2. तर्कशास्त्र अनुमान अथवा युक्ति के वे आकार प्रदान करता है, जो कथनों की सत्यता निश्चित करने में सहायक हैं। तर्कशास्त्र हमें ज्ञान प्राप्ति के तार्किक उपकरण प्रदान करता है।

3. अधिकतर अव्यवस्थित, अस्पष्ट तथा दोषपूर्ण चिन्तन का कारण भाषा का प्रचलित रूप है। तर्कशास्त्र में भाषा के तार्किक स्वरूप, भाषा के कार्यों तथा परम्परागत भाषा की सीमाओं का अध्ययन किया जाता है। इससे, निरर्थक कथनों को गम्भीर कथन समझने तथा भाषा-जाल में सुन्दर दिखायी देने वाले ग़लत तर्कों से बचने में सहायता मिलती है।

4. विचारों की असम्बद्धता के कारण युक्तियों के जो दोष होते हैं उन्हें स्पष्ट रूप से समझने में तर्कशास्त्र से सहायता मिलती है।

5. तर्कशास्त्र का अध्ययन स्वयं स्पष्ट चिन्तन की आवश्यकता रखता है। इस प्रकार तर्कशास्त्र के अध्ययन से कथनों का स्पष्ट विश्लेषण करने और स्पष्ट चिन्तन का अभ्यास होता है।

इस प्रकार तर्कशास्त्र चाहे कला नहीं है लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह स्पष्ट चिन्तन करना सीखने के लिए उपयोगी है। दार्शनिकों ने तो इसे "सब विद्याओं का प्रदीप" (प्रदीपः सर्वविद्यानाम्) बताया है।

**परम्परागत तर्कशास्त्र और आधुनिक तर्कशास्त्र**

तर्कशास्त्र के सम्बन्ध में परम्परागत शास्त्र और आधुनिक तर्कशास्त्र में अन्तर किया जाता है।

परम्परागत तर्कशास्त्र अरस्तू के तर्कशास्त्र का परिवर्द्धित और संशोधित रूप है। परम्परागत तर्कशास्त्रियों के अनुसार तर्कशास्त्र का विषय विचार है। विचार भाषा में व्यक्त होता है और विचार वस्तुओं के बारे में होता है। इस प्रकार परम्परागत तर्कशास्त्र का विषय भाषा में व्यक्त विचार है। क्योंकि विचार तर्कशास्त्र के अध्ययन का विषय है और विचार वस्तुओं के बारे में होते हैं, इसलिए परम्परागत तर्कशास्त्री यह मानते थे कि तर्कशास्त्र विचार के जिन मूलभूत नियमों का अध्ययन करता है वे विचार-सम्बन्धी-ही नियम नहीं हैं अपितु, वस्तु-सम्बन्धी नियम भी हैं।

परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार विचार के तीन रूप हैं :

(1) प्रत्यय, (2) निर्णय, और (3) तर्क। इनका शब्दमय रूप क्रमशः पद, प्रतिज्ञप्ति और युक्ति कहलाता है। विचार के इन तीनों रूपों का अध्ययन परम्परागत तर्कशास्त्र का विषय रहा है।

परम्परागत तर्कशास्त्रियों ने इस बात पर बल दिया है कि विचार के आकार को विचार की विषय-वस्तु से पृथक् नहीं किया जा सकता। यद्यपि वे यह मानते थे कि तर्कशास्त्र का सम्बन्ध विचार के आकार से है उसकी विषय-वस्तु से नहीं, तथापि उनके मत में विचार के आकार को विचार की विषय-वस्तु से पृथक् करने में विचार का आकार छिन्न-भिन्न हो जाता है। इसलिए, उनके अनुसार विचार के आकारों को प्रतीकात्मक भाषा में प्रकट करके अध्ययन करना उचित नहीं है।

क्योंकि परम्परागत तर्कशास्त्री यह मान बैठे थे कि विचार के आकारों को विचार की विषय-वस्तु से पृथक् करना असम्भव है, इसलिए तर्कशास्त्र का विकास रुक गया था।

नवीन तर्कशास्त्रियों ने, जिनमें बूले, फ्रेग, बर्ट्रेण्ड रसेल, व्हाइट हैड, क्वाइन और कार्नप, आदि के नाम प्रसिद्ध हैं, यह कहा है कि विचार के आकार उसकी विषय-वस्तु से स्वतन्त्र हैं और उनकी स्पष्टता के लिए उन्हें प्रतीकों में प्रकट करना अनिवार्य है। परम्परागत भाषा तार्किक आकारों को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने में सर्वथा अनुपयुक्त है।

आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार तर्कशास्त्र का विषय कोई मानसिक तत्त्व नहीं है। इसलिए, आधुनिक तर्कशास्त्रियों के अनुसार तर्कशास्त्र का विषय विचार नहीं है। इसके अध्ययन का विषय प्रतिज्ञप्तियों के तार्किक (आकारिक) सम्बन्ध हैं जो न तो किसी व्यक्ति की मानसिक क्रिया पर निर्भर हैं और न किसी विचार की विषय-वस्तु पर। इन तार्किक सम्बन्धों या तार्किक आकारों को प्रतीकात्मक भाषा में ही व्यक्त किया

जा सकता है। इस प्रकार, आधुनिक तर्कशास्त्र विशुद्ध रूप से आकार सम्बन्धी तर्कशास्त्र हैं और आकार-सम्बन्धी तर्कशास्त्र होने के नाते यह प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र है।

परम्परागत तर्कशास्त्र की विषय-वस्तु भी आधुनिक तर्कशास्त्र के विषय-क्षेत्र में आ जाती है। परन्तु आधुनिक तर्कशास्त्र की शैली प्रतीकात्मक है।

आधुनिक तर्कशास्त्र के प्रधान रूप से तीन क्षेत्र माने जाते हैं :

1. वर्गीय तर्कशास्त्र,
2. प्रतिज्ञप्तीय तर्कशास्त्र, और
3. प्रतिज्ञप्तीय फलन का तर्कशास्त्र, या परिमाणनात्मक तर्कशास्त्र।

निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों के परम्परागत तर्कशास्त्र का समावेश आधुनिक तर्कशास्त्र में वर्गीय तर्कशास्त्र के अन्तर्गत हो जाता है। इस प्रकार आधुनिक तर्कशास्त्र में परम्परागत तर्कशास्त्र का समावेश हो जाता है।

**तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान**

तर्कशास्त्र अनुमान के वैध आकारों का अध्ययन है। अनुमान एक मानसिक क्रिया है और सभी मानसिक क्रियाओं का अध्ययन करना मनोविज्ञान का काम है। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान का कुछ विषय समान है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। तर्कशास्त्र मनोविज्ञान से भी उतना ही भिन्न है जितना अन्य किसी विज्ञान से।

मनोविज्ञान में अनुमान की मानसिक क्रिया का अध्ययन किया जाता है, जबकि तर्कशास्त्र में अनुमान के तार्किक आकार का। कोई व्यक्ति अनुमान क्यों करता है, अनुमान की क्रिया में एक व्यक्ति के मन में विचारों की गति किस प्रकार होती है, अनुमान की क्रिया पर भाव संवेग इच्छा आदि का क्या असर पड़ता है, आदि प्रश्न मनोविज्ञान के लिए महत्त्वपूर्ण हैं, लेकिन इनका तर्कशास्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। तर्कशास्त्र का काम अनुमान के वैध आकारों का अध्ययन है, और अनुमान के वैध आकार मानसिक क्रियाओं पर निर्भर नहीं होते।

मनोविज्ञान एक वर्णनात्मक विज्ञान है, जबकि तर्कशास्त्र एक आकार-सम्बन्धी विज्ञान है। मनोविज्ञान का काम एक व्यक्ति की मानसिक तथा बाहरी क्रियाओं का वर्णन करना है। परन्तु तर्कशास्त्र का काम किसी तथ्य का वर्णन करना नहीं है, बल्कि युक्तियों या अनुमानों के विविध उदाहरणों में मिलने वाले वैध आकारों को पहचानना और प्रतीकों में उन्हें व्यवस्थित ढंग से प्रकट करना है। अन्य विज्ञानों की तरह मनोविज्ञान में भी अनुमान का प्रयोग होता है और मनोविज्ञान की खोजों को युक्तियों के रूप में प्रकट किया जाता है। परन्तु एक तर्कशास्त्री की रुचि मनोविज्ञान की विषय-वस्तु में नहीं है बल्कि इसमें प्रदर्शित युक्तियों के विविध आकारों में है।

मनोविज्ञान तथ्य-सम्बन्धी विज्ञान है, जबकि तर्कशास्त्र नियामक विज्ञान है। लेकिन तर्कशास्त्र के नियामक होने का आधार उसका आकार-सम्बन्धी विज्ञान होना ही

है। तर्कशास्त्र में युक्ति के आकार निश्चित किये जाते हैं, जिससे वैध और अवैध युक्तियों का अन्तर स्पष्ट हो सके।

एक आकार-सम्बन्धी विज्ञान होने के नाते तर्कशास्त्र का विषय मनोविज्ञान के विषय से बिल्कुल स्वतन्त्र है।

**तर्कशास्त्र और भाषा**

तर्कशास्त्र का विषय भाषा है या विचार यह प्रश्न कुछ विवाद का विषय है। वास्तव में इस प्रश्न का आधार शब्द और विचार के सम्बन्ध की दार्शनिक समस्या है। सामान्यतः हम यह मानते हैं कि एक नाम और उससे व्यक्त होने वाले विचार में अन्तर है क्योंकि दो भिन्न-भिन्न नाम जैसे 'पुस्तक' और 'पोथी' एक ही विचार के वाचक हो सकते हैं। इसी प्रकार, एक वाक्य और उसमें व्यक्त विचार का अन्तर किया जाता है क्योंकि दो भिन्न-भिन्न वाक्यों का अर्थ एक ही हो सकता है। जैसे, "सब मनुष्य मरणशील हैं" और "all men are mortal", इन दो वाक्यों का एक ही अर्थ है। तर्कशास्त्र की भाषा में निर्देशात्मक वाक्य के अर्थ को प्रतिज्ञप्ति कहते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ये दोनों वाक्य एक ही प्रतिज्ञप्ति को प्रकट करते हैं। कुछ तर्कशास्त्री वाक्य और प्रतिज्ञप्ति में कोई अन्तर नहीं करते। उनके अनुसार, तर्कशास्त्र के अध्ययन का विषय वाक्य और वाक्य की रचना में प्रयुक्त शब्द हैं। परन्तु जो तर्क-शास्त्री वाक्य और प्रतिज्ञप्ति में अन्तर करते हैं, उनके अनुसार तर्कशास्त्र के अध्ययन का विषय प्रतिज्ञप्ति और इनके सम्बन्ध हैं। यहाँ हम इस दार्शनिक समस्या में उलझे बिना कि वाक्य और प्रतिज्ञप्ति का क्या सम्बन्ध है, यह प्रचलित विचारधारा अपना लेते हैं कि प्रतिज्ञप्ति निर्देशात्मक वाक्य का अर्थ है। यदि हम प्रतिज्ञप्ति को तर्कशास्त्र के अध्ययन का विषय मानें, फिर भी तर्कशास्त्र वाक्य के भाषात्मक रूप के अध्ययन की उपेक्षा नहीं कर सकता क्योंकि प्रतिज्ञप्ति वाक्य में प्रकट की जाती है और प्रतिज्ञप्ति का विश्लेषण वाक्य विश्लेषण के रूप में तथा प्रतिज्ञप्तियों के सम्बन्ध का अध्ययन वाक्यों के सम्बन्ध के रूप में ही हो सकता है। इस प्रकार तर्कशास्त्रियों का भाषा के स्वरूप के अध्ययन में रुचि रखना स्वाभाविक है। भाषा के सम्बन्ध में तर्कशास्त्री निम्नलिखित समस्याओं का विशेष रूप से अध्ययन करते हैं :

1. शब्द और अर्थ का सम्बन्ध : शब्द प्रतीक होते हैं, उनका कुछ अर्थ होता है। एक शब्द के अर्थ कितने प्रकार से हो सकते हैं, इस प्रश्न का अध्ययन तर्कशास्त्र का महत्त्वपूर्ण कार्य है।

2. अनेकार्थक और अस्पष्ट शब्दों के प्रयोग से पैदा होने वाली युक्तियों से बचने के लिए पदों की परिभाषा देने की तार्किक प्रक्रिया का अध्ययन।

3. भाषा के प्रयोगों का अध्ययन : भाषा का प्रयोग विभिन्न उद्देश्यों के लिए, भाव-संवेग प्रकट करने के लिए, शंका तथा विस्मय प्रकट करने के लिए, इच्छा, अभिलाषा, प्रार्थना, आज्ञा, आदि प्रकट करने के लिए, केवल औपचारिकता निभाने के लिए तथा विचारों को प्रकट करने के लिए किया जाता है। तर्कशास्त्र की मुख्य समस्या

भाषा के उस रूप का अध्ययन है जो विचार प्रकट करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। भाषा के इस रूप को वर्णनात्मक रूप कहते हैं। इसमें निर्देशात्मक वाक्यों का ही प्रयोग होता है।

4. क्योंकि भाषा का प्रयोग अनेक उद्देश्यों के लिए होता है, इसलिए भाषा का प्रचलित रूप लचीला होता है। एक ही प्रतिज्ञप्ति विभिन्न प्रकार के वाक्यों में प्रकट हो सकती है और विभिन्न सम्बन्धों को प्रकट करने वाले वाक्यों का भाषात्मक रूप एक-सा हो सकता है। भाषा के इस लचीलेपन से तर्कशास्त्र के क्षेत्र में बड़ी गड़बड़ी की सम्भावना रहती है। इसलिए, तर्कशास्त्री विभिन्न तार्किक-सम्बन्धों अर्थात् विभिन्न प्रतिज्ञप्तियों को प्रकट करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की वाक्य-रचना निश्चित करना चाहते हैं जिससे एक वाक्य-रचना एक प्रकार की प्रतिज्ञप्ति की ही बोधक हो। वाक्यों के प्रचलित रूप में कुछ शब्द तो भिन्न-भिन्न वस्तुओं, गुणों, क्रियाओं के बोधक होते हैं तो कुछ शब्द तार्किक-सम्बन्धों तथा तार्किक प्रक्रियाओं को प्रकट करते हैं। 'सब', 'कुछ है', 'नहीं है', 'और', 'या' 'यदि तो', आदि ऐसे शब्द हैं जो तार्किक-सम्बन्धों या प्रक्रियाओं के बोधक हैं। परन्तु इनका भी अर्थ प्रचलित व्यवहार में निश्चित नहीं होता। तर्कशास्त्री तार्किक-सम्बन्धों को प्रकट करने वाले भाषा के इन शब्दों का अर्थ निश्चित करते हैं जिससे इनके द्वारा तार्किक-सम्बन्धों को स्पष्ट रूप से प्रकट किया जा सके।

### तर्कशास्त्र और व्याकरण

तर्कशास्त्र भाषा में व्यक्त विचारों अर्थात् प्रतिज्ञप्तियों का अध्ययन है, तो व्याकरण विचारों को प्रकट करने वाली भाषा के स्वरूप का अध्ययन है। तर्कशास्त्र के विषय-क्षेत्र में भाषा का अध्ययन अनिवार्य है तो व्याकरण प्रधानतः भाषा-सम्बन्धी अध्ययन ही है। क्योंकि तर्कशास्त्र और व्याकरण दोनों का सम्बन्ध भाषा से है, इसलिए इनका सम्बन्ध होना स्वाभाविक है।

व्याकरण में वाक्यों की रचना का आदर्श रूप निश्चित करने के लिए पदों के तार्किक-सम्बन्धों को भी ध्यान में रखा जाता है। व्याकरण में भी उसी वाक्य-रचना को अच्छा समझा जाता है, जिसमें विचारों का रूप स्पष्ट रूप से झलकता हो। जिस वाक्य में विचारों की असंगति है, वह व्याकरण में भी मान्य नहीं हो सकता। यदि 'व्याकरण' का अर्थ भिन्न-भिन्न भाषाओं का व्याकरण न लेकर सामान्य व्याकरण लें तो यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि व्याकरण तर्कशास्त्र पर आधारित है। भाषा में अस्पष्टता तथा अनिश्चितता के दोषों को दूर करने में तर्कशास्त्र व्याकरण की सहायता करता है।

एक तर्कशास्त्री प्रतिज्ञप्तियों के सामान्य आकारों की खोज का प्रारम्भ व्याकरण में निश्चित किये हुए वाक्यों के अध्ययन से करता है। इस प्रकार, तर्कशास्त्र भी व्याकरण का सहारा लेता है।

तर्कशास्त्र और व्याकरण दोनों का भाषा के अध्ययन से सम्बन्ध होने पर भी इनके दृष्टिकोण में अन्तर है। संक्षेप में, तर्कशास्त्र और व्याकरण में निम्नलिखित अन्तर है :

1. व्याकरण में भाषा-प्रयोग के विभिन्न रूपों—भावोत्पादक और भाव-व्यंजक भाषा, आदेशात्मक भाषा, औपचारिक भाषा तथा वर्णनात्मक भाषा—का अध्ययन किया जाता है, जबकि तर्कशास्त्र में भाषा के वर्णनात्मक रूप का ही अध्ययन किया जाता है। व्याकरण में निर्देशात्मक वाक्यों के अलावा, प्रश्नवाचक, आज्ञावाचक, प्रार्थनावाचक तथा विस्मयबोधक वाक्यों के शुद्ध रूप निश्चित किये जाते हैं, जबकि तर्कशास्त्र में केवल निर्देशात्मक वाक्य ही अध्ययन का विषय बनते हैं।

2. निर्देशात्मक वाक्यों के अध्ययन के सम्बन्ध में भी व्याकरण और तर्कशास्त्र का दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न है। व्याकरण भाषा की प्रचलित परम्परा के अनुसार वाक्यों के शुद्ध और अशुद्ध रूप निश्चित करता है। वैय्याकरण अपनी ओर से वाक्यों के आदर्श रूप का निर्माण नहीं करता, बल्कि भाषा की परम्परा में से ही वाक्य-रचना के आदर्श रूप को अर्थात् मान्य रूप को निश्चित करने का प्रयास करता है। परन्तु तर्कशास्त्री भाषा की प्रचलित परम्परा का आलोचनात्मक विश्लेषण करके भाषा के एक ऐसे आदर्श रूप का निर्माण करने की चेष्टा करता है जो सभी तार्किक-सम्बन्धों और प्रक्रियाओं को व्यक्त करने में समर्थ हो, चाहे भाषा का यह रूप परम्परागत भाषा के रूप से बिल्कुल भिन्न हो। तर्कशास्त्र का उद्देश्य प्रतिज्ञप्तियों के अनुरूप वाक्य-रचना निश्चित करना है। इस प्रकार, वाक्य के तार्किक विश्लेषण और उसके व्याकरण के अनुसार विश्लेषण में भी अन्तर है।

3. भाषा का तार्किक विश्लेषण करने के आधार पर, तर्कशास्त्रियों को यह निश्चित हो गया है कि परम्परागत भाषा तर्कशास्त्र के लिए अनुपयुक्त है क्योंकि इसमें तार्किक आकारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने की क्षमता नहीं है। इसलिए, तर्कशास्त्री परम्परागत भाषा को छोड़कर प्रतीकों की एक कृत्रिम भाषा का विकास करते हैं। तर्कशास्त्र की भाषा प्रधानतः प्रतीकात्मक है।

**अलंकारशास्त्र और तर्कशास्त्र**

अलंकारशास्त्र में भाषा की उन विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है जिनसे भाषा का सौष्ठव बढ़ता हो। किसी शब्दमयी रचना के विचार और भाषा दो पहलू होते हैं। अलंकारशास्त्र रचना के शाब्दिक पहलू से सम्बन्ध रखता है। इसका विषय भाषा की सुन्दर, चमत्कारी तथा मोहक रचना है।

तर्क के सम्बन्ध में चमत्कारी, मोहक भाषा कभी अच्छी समझी जाती है तो कभी बुरी। जब तर्क का उद्देश्य किसी को अपनी बात मनवाना हो या किसी को अपने जाल में फँसाना हो तो वहाँ आलंकारिक भाषा बहुत उपयोगी होती है। प्रभावशाली वक्ता भाषा की इस कला में निपुण होते हैं। तथापि यह स्पष्ट है कि तर्क की शुद्धता आलंकारिक भाषा पर निर्भर नहीं है। वास्तव में तर्क का जहाँ उद्देश्य सत्य की स्थापना करना हो वहाँ सरल, सीधी भाषा ही उपयोगी होती है। वहाँ आलंकारिक भाषा का प्रयोग दोष ही माना जाता है। इस प्रकार, आलंकारिक भाषा का जीवन में बहुत महत्त्व है परन्तु तर्क की शुद्धता को स्पष्ट करने के लिए ऐसी भाषा का प्रयोग दोषपूर्ण है। क्योंकि तर्कशास्त्र तर्क की शुद्धता का विज्ञान है, इसलिए अलंकारशास्त्र से भिन्न है।

### तर्कशास्त्र और ज्ञानमीमांसा

ज्ञानमीमांसा दर्शनशास्त्र की वह शाखा है जिसमें ज्ञान के स्वरूप, उसके आवश्यक तत्त्व, उसके स्रोत, उसकी सीमा तथा उसकी सत्यता का अध्ययन किया जाता है। कुछ तर्कशास्त्रियों के अनुसार तर्कशास्त्र विचार का विज्ञान है। उनके अनुसार तर्कशास्त्र आवश्यक रूप से ज्ञानमीमांसा के प्रश्नों के साथ जुड़ा हुआ है। लेकिन तर्कशास्त्र का जो आधुनिक रूप विकसित हुआ है और जिसका हम यहाँ अनुसरण कर रहे हैं यह ज्ञान-मीमांसा से बिल्कुल स्वतन्त्र है। तर्कशास्त्र का सम्बन्ध तो तर्क अथवा अनुमान के आकार की वैधता से है और यह प्रश्न ज्ञानमीमांसा के प्रश्नों से स्वतन्त्र है।

### अभ्यास

1. तर्कशास्त्र की परिभाषा दो तथा उसका विषय-क्षेत्र निश्चित करो।

2. तर्कशास्त्र के वैज्ञानिक स्वरूप का विवेचन करो। तर्कशास्त्र को विज्ञानों का विज्ञान तथा नियामक विज्ञान कहने का क्या अभिप्राय है?

3. तर्कशास्त्र को क्या कला कहा जा सकता है? इस प्रश्न का विवेचन करो।

4. "तर्कशास्त्र एक आकार-सम्बन्धी विज्ञान है" इस कथन के अनुसार तर्कशास्त्र का स्वरूप स्पष्ट करो।

4. निगमनात्मक तर्कशास्त्र तथा आगमनात्मक तर्कशास्त्र की समस्याओं का विवेचन करो।

5. परम्परागत तर्कशास्त्र और आधुनिक तर्कशास्त्र के प्रमुख अन्तर को स्पष्ट करें। क्या आप आधुनिक तर्कशास्त्र के दृष्टिकोण को स्वीकार करते हैं?

6. तर्कशास्त्र का क्या उद्देश्य है? तर्कशास्त्र की उपयोगिता पर टिप्पणी लिखो।

7. तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान का सम्बन्ध और अन्तर स्पष्ट करो।

8. तर्कशास्त्र में भाषा के अध्ययन का क्या महत्त्व है? इस प्रश्न पर एक टिप्पणी लिखो।

# 2

# भाषा
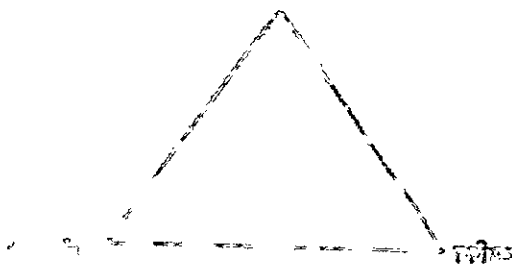
## 1. भाषा का स्वरूप

भाषा शब्दमयी रचना है। भाषा के स्वरूप को समझने के लिए हमें शब्द के स्वरूप को समझना आवश्यक है।

**चिह्न**

शब्द एक प्रकार के चिह्न (sign) हैं। वह वस्तु, आकृति या ध्वनि जो अपने से अन्य किसी वस्तु की बोधक हो, चिह्न कहलाती है। वही चिह्न कहला सकता है, जिसका अर्थ हो और चिह्न अर्थवान् तभी होता है, जब उसका अर्थ लगाने वाला कोई व्यक्ति हो। इस प्रकार, चिह्न-अर्थ का सम्बन्ध तिकोना सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को नीचे के त्रिकोण से स्पष्ट किया गया है :
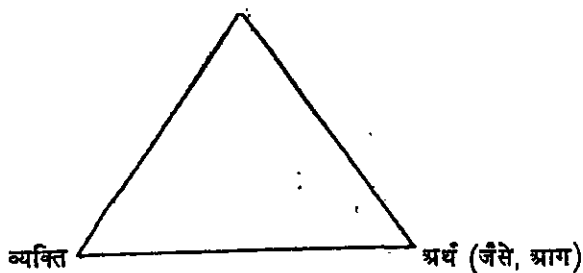
इस आकृति से यह स्पष्ट है कि एक चिह्न के अर्थवान् होने के लिए तीन बातें आवश्यक हैं : (1) चिह्न का अपना स्वरूप, जो आँख, नाक, कान, आदि किसी इन्द्रिय से

जाना जाता है । (2) चिह्न का अर्थ जो चिह्न से भिन्न होता है । (3) चिह्न का अर्थ लगाने वाला व्यक्ति । उदाहरण के लिए धुआँ आग का चिह्न है क्योंकि धुएँ से आग का बोध होता है । धुआँ एक प्रकार का पदार्थ है, इसका अपना स्वरूप है । आग धुएँ का चिह्नार्थ है । यह एक अलग वस्तु है । लेकिन हर व्यक्ति के लिए धुआँ आग का चिह्न नहीं है । जो व्यक्ति इन दोनों का सम्बन्ध जानता है, उसके लिए ही धुआँ आग का चिह्न है ।

### प्राकृतिक चिह्न और कृत्रिम चिह्न

मनुष्य जिन चिह्नों का प्रयोग करता है उन्हें हम दो वर्गों में रख सकते हैं : (1) प्राकृतिक चिह्न, (2) कृत्रिम चिह्न । जो चिह्न अपने अर्थ का बोध प्राकृतिक साहचर्य अथवा स्वाभाविक समानता के आधार पर कराते हों, उन्हें प्राकृतिक चिह्न कहते हैं और जिन चिह्नों का अपने अर्थ के साथ प्राकृतिक सम्बन्ध नहीं होता, वे कृत्रिम चिह्न होते हैं । बिजली की चमक बादलों की गड़गड़ाहट का, और धुआँ आग का प्राकृतिक चिह्न प्राकृतिक साहचर्य के आधार पर है और एक व्यक्ति का अंजलि बाँधकर मुँह से लगाना उसके प्यासे होने का चिह्न समानता के आधार पर है । मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणी भी प्राकृतिक चिह्नों का प्रयोग करते हैं ।

### प्रतीक

कृत्रिम चिह्नों के प्रमुख उदाहरण शब्द हैं । कुछ शब्द ऐसे हो सकते हैं, जिनकी अपने अर्थ के साथ समानता हो । जैसे 'म्याऊँ' शब्द और बिल्ली की बोली में समानता है । लेकिन ऐसे शब्दों की संख्या बहुत कम है । जिन शब्दों की अपने अर्थ के साथ समानता होती है, उनके विषय में भी अर्थ-बोध के कारण उनकी समानता इतनी नहीं होती जितनी की मानव व्यवहार में शब्द प्रयोग की परम्परा । गुलाब की सुगन्ध और गुलाब में प्राकृतिक साहचर्य है । इसलिए, गुलाब की सुगन्ध गुलाब का प्राकृतिक चिह्न है । लेकिन 'गुलाब' शब्द और गुलाब में न तो प्राकृतिक साहचर्य है और न समानता । इस प्रकार, 'गुलाब' शब्द और गुलाब का सम्बन्ध प्राकृतिक नहीं है, बल्कि मानव निर्मित है । 'गुलाब' शब्द तथा अन्य सभी शब्द कृत्रिम चिह्न हैं । विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए मानव जिन कृत्रिम चिह्नों को निर्मित करता है, वे प्रतीक कहलाते हैं । एक राष्ट्र का झण्डा एक प्रतीक है । शब्द भी प्रतीक होते हैं ।

शब्दों से भिन्न प्रतीकों का प्रयोग भी भिन्न-भिन्न विज्ञानों, विशेषकर गणित और तर्कशास्त्र में किया जाता है । इन विशिष्ट प्रतीकों और भाषा के शब्दों में यह अन्तर है कि जहाँ शब्दों का अर्थ लोक की परम्परा में विकसित होता है, वहाँ गणित के प्रतीकों का अर्थ जन-जीवन में विकसित नहीं होता, बलिक शास्त्रीय परम्परा में निश्चित किया जाता है । क्योंकि शब्दों का अर्थ लोक में उनके प्रचलन से निश्चित होता है, इसलिए शब्दों को परम्परागत प्रतीक कहते हैं और भाषा परम्परागत प्रतीकों की एक व्यवस्था है । शब्दों की तुलना में गणित आदि के प्रतीक कृत्रिम प्रतीक अथवा केवल प्रतीक कहलाते हैं और

इनसे निर्मित भाषा कृत्रिम भाषा कहलाती है। तर्कशास्त्र की आधुनिक परम्परा में कृत्रिम भाषा या प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया जाता है।

## 2. संकेतविज्ञान

चिह्न के शास्त्रीय अध्ययन को जॉन लॉक ने संकेतविज्ञान (semiotics) नाम दिया है।

भाषा का अध्ययन संकेतविज्ञान का एक अंग है। संकेतविज्ञान की तीन शाखाएँ हैं :

(क) शब्दार्थ-विज्ञान,
(ख) वाक्य-विन्यास विज्ञान,
(ग) संकेत प्रयोग विज्ञान।

(क) शब्दार्थ-विज्ञान : इसमें शब्द और उसके अर्थ के सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। भिन्न-भिन्न भाषाओं में शब्द-अर्थ के सम्बन्ध की भिन्न-भिन्न परम्पराएँ होती हैं। एक भाषा में भी शब्द-अर्थ सम्बन्धी परम्परा बदलती रहती है। एक भाषा के शब्द-कोष में इस परम्परा को व्यवस्थित ढंग से प्रकट करने का प्रयत्न किया जाता है। प्रत्येक भाषा में शब्द और अर्थ का सम्बन्ध बड़ा लचीला होता है। एक शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं और एक ही अर्थ के प्रकट करने वाले भी अनेक शब्द होते हैं।

(ख) वाक्य-विन्यास विज्ञान : एक भाषा के शब्द-कोष द्वारा भिन्न-भिन्न शब्दों का अर्थ सीखने से ही उस भाषा को नहीं सीखा जा सकता। किसी भाषा को सीखने के लिए शब्दों के अर्थ को सीखने के अलावा यह जानना भी आवश्यक है कि उसमें भिन्न-भिन्न शब्दों को संयोजित करके वाक्य-रचना करने की क्या परम्परा है। भिन्न-भिन्न भाषाओं में वाक्य-रचना की परम्परा भी भिन्न-भिन्न होती है। एक भाषा की वाक्य-रचना की परम्परा को व्यवस्थित ढंग से प्रकट करना भाषा के व्याकरण-शास्त्र का काम है। जिस प्रकार एक भाषा के शब्द-अर्थ सम्बन्ध की परम्परा बदलती रहती है उसी प्रकार वाक्य-रचना की परम्परा में भी परिवर्तन होता रहता है। इसलिए, जहाँ एक भाषा के शब्द-कोष में समय-समय पर संशोधन की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार उसके व्याकरण में भी संशोधन की आश्वयकता होती है।

(ग) संकेत प्रयोग विज्ञान : संकेत प्रयोग विज्ञान का काम संकेतों और उनका प्रयोग करने वाले व्यक्ति के सम्बन्ध निश्चित करना है। क्योंकि भाषा भी संकेतों की व्यवस्था है, इसलिए भाषा और भाषा का प्रयोग करने वाले व्यक्ति के सम्बन्धों का अध्ययन भी इसमें शामिल है। मनुष्य भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न उद्देश्यों के लिए भाषा का प्रयोग करता है। एक व्यक्ति ने किस समय किस उद्देश्य के लिए किसी वाक्य का प्रयोग किया है यह जान कर उसके तात्पर्य को ठीक-ठीक समझा जा सकता है। कभी तो व्यक्तियों का तात्पर्य स्पष्ट होता है परन्तु कभी स्पष्ट नहीं होता। कूटनीतिज्ञ तो जानबूझ कर भाषा का प्रयोग इस प्रकार करते हैं जिससे उनका तात्पर्य

स्पष्ट न हो। वक्ता का तात्पर्य ठीक-ठीक न समझने पर व्यवहार में अशोभनीयता आ जाती है। परिहास में कहे किसी के वचन को गम्भीर वचन समझने तथा व्यंग्य वचन को सत्य कथन समझने पर व्यवहार कैसा कुरूप बन जाता है, इससे पाठक परिचित होंगे। केवल औपचारिक वचन को गम्भीरतापूर्वक लेने से भी व्यवहार में गड़बड़ हो जाती है। जब मरीज से डाक्टर यह प्रश्न करे कि 'क्या हाल है' तो इसके उत्तर में मरीज द्वारा अपनी हालत का वर्णन करना उचित होगा। लेकिन सड़क पर सैर करते समय साधारण परिचित व्यक्ति यह प्रश्न करे, 'क्या हाल है' और आप उसके सामने अपना दुःखड़ा रोने लगें तो आप उसका तात्पर्य न समझने की ग़लती करते हैं। ऐसी हालत में 'क्या हाल है ?' वाक्य वास्तव में प्रश्न के तात्पर्य से प्रयुक्त नहीं हुआ बल्कि केवल परिचित होने का उपचार निभाने के लिए हुआ है। इसका तात्पर्य वही है जो 'हलो !' का है। किसी उत्सव पर मुख्य अतिथि की प्रशंसा में जो कुछ कहा जाता है अथवा शादी के सेहरे में जो कुछ कहा जाता है उसका तात्पर्य तथ्यों का वर्णन नहीं होता अपितु औपचारिकता को निभाना होता है। विशिष्ट अवसरों पर विशिष्ट भाषा के प्रयोग की परम्परा जन-जीवन का अंग बन जाती है। भाषा प्रयोग करने वाले के तात्पर्य को समझने के लिए, इन सब परम्पराओं को ध्यान में रखना आवश्यक है।

## 3. भाषा के तीन प्रमुख कार्य

जीवन की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के अनुसार भाषा के इतने विविध प्रयोग हो सकते हैं कि उन्हें बताना कठिन है। फिर भी हम भाषा के प्रमुख कार्यों या प्रयोगों का विवेचन कर सकते हैं। भाषा के प्रमुख कार्य तीन हैं : (1) वर्णन करना, (2) भावों को अभिव्यक्त करना, (3) आदेश देना अथवा कार्य के लिए प्रेरित करना।

**वर्णनात्मक भाषा**

तथ्यों का वर्णन करने के लिए प्रयुक्त की गयी भाषा वर्णनात्मक भाषा कहलाती है। जब हम किसी घटना या तथ्य का वर्णन करते हैं, तो यह बताते हैं कि तथ्य क्या है या क्या नहीं है। निम्नलिखित वाक्य वर्णनात्मक भाषा के प्रयोग के उदाहरण हैं :

1. भारत 15 अगस्त 1947 को स्वतन्त्र हुआ।
2. क्रोध में पाचन क्रिया बन्द हो जाती है।
3. विटामिन 'बी' की कमी से 'बैरी-बैरी' की बीमारी हो जाती है।
4. पारा गर्मी से फैलता है।
5. चुम्बक लोहे के छोटे-छोटे टुकड़ों को अपनी ओर खींच सकता है।

यद्यपि हम साधारण व्यवहार में भी वर्णनात्मक भाषा का प्रयोग करते हैं, तथापि वर्णनात्मक भाषा के प्रयोग का विशुद्ध रूप इतिहास और विज्ञानों में मिलता है।

वर्णनात्मक भाषा के प्रयोग के अनेक दोषपूर्ण रूप हो सकते हैं। वर्णनात्मक भाषा के प्रयोग का उद्देश्य तो दूसरों को सच्ची बात बताना होना चाहिये। लेकिन भाषा का प्रयोग जहाँ सच्चाई बताने के लिए करते हैं, वहाँ सच्चाई को छुपाने के लिए

दूसरों को पथभ्रष्ट करने के लिए भाषा का दुरुपयोग भी किया जाता है। झूठ बोलने वाला भाषा का दुरुपयोग करता है। वह दिखाता तो यह है कि वह भाषा द्वारा सच्ची बात बता रहा है, परन्तु वास्तविकता यह नहीं होती। जब एक व्यक्ति जानबूझ कर पूरी बात नहीं बताता, तब भी वर्णनात्मक भाषा का ठीक प्रयोग नहीं करता। अस्पष्ट और बहुअर्थक कथनों में भी वर्णनात्मक भाषा का शुद्ध प्रयोग नहीं होता। कूटनीति की भाषा का वर्णनात्मक रूप शुद्ध नहीं होता।

क्योंकि इतिहासकार और वैज्ञानिक का उद्देश्य तथ्यों का वर्णन करना है, इसलिए भाषा प्रयोग में सावधानी बरतना इनके लिए अतिआवश्यक है।

**भावात्मक भाषा**

भाषा का दूसरा कार्य भावों को अभिव्यक्त करना और दूसरों में भावों को जाग्रत् करना है। दाढ़ में दर्द होने पर जब एक व्यक्ति बोलता है, "आह, मरा !" तो वह अपना कष्ट प्रकट करता है। एक अध्यापक नालायक विद्यार्थी से जब कहता है, "गधे कहीं के !" तो वह अपने मन की झुंझलाहट प्रकट करता है। इस प्रकार, मानसिक भावात्मक स्थिति को दर्शाने वाली भाषा भावात्मक भाषा कहलाती है।

भावव्यंजन और भावों के वर्णन में अन्तर है। "मुझे एक नालायक विद्यार्थी की बुरी हरकतों पर बहुत गुस्सा आया और गुस्से में मैंने उसे गधा कहा", वर्णनात्मक वाक्य है, भावव्यंजक नहीं। लेकिन "गधे कहीं के !" भावव्यंजक वचन है। इसी प्रकार, घृणा, द्वेष, प्रेम, उल्लास, आदि भावों की अभिव्यक्ति करने वाली भाषा भावव्यंजक भाषा या भावात्मक भाषा कहलाती है।

जहाँ हम भाषा में अपने भावों को प्रकट करते हैं, वहाँ भाषा के द्वारा दूसरों में भी भावों को जाग्रत् करते हैं। एक कवि के कविता लिखने का उद्देश्य मन के भावों की अभिव्यक्ति करना हो सकता है, लेकिन प्रायः एक कवि जो कविता लिखता है वह दूसरों के लिए लिखता है और वह कविता द्वारा दूसरों के मन में भावों का संचार करना चाहता है। वीर रस, हास्य रस, शृंगार रस, आदि की कविताओं में जो अन्तर किया जाता है उसका आधार सुनने या पढ़ने वालों में उन भावों का संचार कर सकने की उनकी विशेषताएँ हैं। कविता की भाषा प्रधान रूप में भावात्मक होती है। उसका मुख्य उद्देश्य मानसिक स्थिति की अभिव्यक्ति या भावोत्पादन होता है। साधारण व्यवहार में भी भावात्मक भाषा के नमूने मिल सकते हैं।

**भावात्मक शब्द**

साधारण प्रयोग में आने वाले बहुत से शब्द प्रधान रूप में भावात्मक होते हैं। 'अच्छा', 'बुरा', 'गन्दा', 'सुन्दर', 'नीच', 'महान्'; आदि शब्द प्रधान रूप में भावात्मक हैं। इनका प्रयोग प्रशंसा या निन्दा के भावों को अभिव्यक्त करने के लिए किया जाता है। साधारण भाषा में शुद्ध वर्णनात्मक शब्द बहुत कम होते हैं। जिन शब्दों का प्रयोग हम वर्णन करने के लिए करते हैं, उनके अर्थ में भी प्रायः भावात्मकता का अंश

होता है। 'कवि', 'वैज्ञानिक', दार्शनिक', 'म्लेच्छ', 'शूद्र', 'गँवार', 'भोलाभाला', 'पण्डित', 'मूर्ख', 'गुरु', 'साहब', 'बाबू', 'लाला', 'नारी', 'ब्राह्मण', 'चमार', 'भंगी', आदि शब्दों के प्रयोग के साथ प्रशंसा या निन्दा के भाव भी जुड़े रहते हैं। कभी-कभी तो इन शब्दों के प्रयोग का प्रधान उद्देश्य भावाभिव्यंजन होता है। व्यंग्यात्मक भाषा प्रधान रूप में भावाभिव्यंजक होती है।

1. आइये, कवि जी।
2. तुम तो निरे दार्शनिक हो।

इन वाक्यों में 'कवि' और 'दार्शनिक' शब्दों से कुछ-कुछ निन्दा का भाव प्रकट होता है।

वर्णनात्मक भाषा में भावात्मक शब्दों के प्रयोग से वर्णन का रूप विकृत हो जाता है। इसलिए, वर्णन करते समय भावात्मक शब्दों के प्रयोग से बचना चाहिये।

**प्रेरणात्मक या अनुशासनमूलक भाषा**

भाषा का प्रयोग कर्म की प्रेरणा देने के लिए भी किया जाता है। "यह करो, वह मत करो" ऐसे वाक्यों द्वारा एक व्यक्ति को कर्म करने या कर्म न करने के लिए कहा जाता है। आज्ञा, आदेश, निवेदन, प्रार्थना, उपदेश, आदि प्रकट करने वाले वाक्यों का रूप प्रेरणात्मक होता है। आज्ञा और प्रार्थना दोनों का उद्देश्य समान रूप से दूसरों से कोई कार्य करवाना होना है। कानून की भाषा का प्रधान रूप अनुशासनमूलक होता है। "अपना टैक्स ठीक समय पर अदा करो", "सड़क के बाईं ओर चलो", "पुस्तकालय में मौन रहो", आदि वाक्य अनुशासनमूलक हैं।

**भाषा का जटिल रूप**

यद्यपि भाषा के उपर्युक्त तीन प्रयोगों में अन्तर किया जा सकता है और एक-दूसरे के वचनों को ठीक-ठीक समझने के लिए इनका अन्तर समझना भी आवश्यक है, लेकिन साथ-साथ यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि साधारण व्यवहार में भाषा के ये तीनों प्रयोग मिले-जुले रहते हैं। जब भाषा में ये तीनों रूप या इनमें से कोई दो मिले-जुले हों, तब भी भाषा-प्रयोग का प्रधान उद्देश्य तो कोई एक ही होता है। चुनाव के भाषणों में ये तीनों रूप मिले-जुले होते हैं। भाषण करने वाला नेता उन कार्यों का वर्णन करता है, जो उसकी पार्टी ने किये हैं। वह उन कार्यों का वर्णन शुद्ध वर्णनात्मक भाषा में नहीं करता, अपितु भावोत्पादक भाषा में करता है और उसके भाषण का प्रधान उद्देश्य क्या होता है, यह तो स्पष्ट ही है। उसका प्रधान उद्देश्य इस वाक्य से स्पष्ट है—अपना कीमती वोट मुझे दो। यदि चुनाव अभियान के भाषणों में कोई नेता स्पष्टतः वोट न माँगे फिर भी उसके भाषण का उद्देश्य तो जनता को अपने पक्ष में ही वोट डालने के लिए प्रेरित करना होता है। विज्ञापनों के वाक्य प्रायः वर्णनात्मक शैली में होते हैं, परन्तु उनका उद्देश्य विज्ञापित वस्तुओं को खरीदने के लिए लोगों को प्रेरित करना होता है। "डालडा में विटामिन ए और डी होता है" वर्णनात्मक शैली

का वाक्य है। लेकिन उसका प्रधान उद्देश्य है—डालडा खाओ। कविताओं में वर्णन, भावाभिव्यंजन और कर्म की प्रेरणा तीनों का मिश्रण होता है। लेकिन कोई कविता वर्णन प्रधान होती है, कोई भाव प्रधान और कोई प्रेरणा प्रधान।

यद्यपि व्यवहार में भाषा के प्रयोग का कोई भी रूप पूर्णतः विशुद्ध नहीं हो सकता, लेकिन यदि हम किसी कथन, भाषण, कविता या लेख के प्रधान उद्देश्य को समझते हैं, तो हम भाषा-जाल में फँसने से बच सकते हैं और भाषा का अधिक-से-अधिक सदुपयोग कर सकते हैं। विज्ञान के क्षेत्र में विशुद्ध वर्णनात्मक भाषा का प्रयोग करने के लिए भी भाषा-प्रयोग के इन विविध रूपों को ध्यान में रखना उपयोगी है।

**अभ्यास**

1. चिह्न किसे कहते हैं ? चिह्नों के तिकोने स्वरूप को स्पष्ट करो।

2. प्राकृतिक चिह्न और कृत्रिम चिह्न का अन्तर उदाहरण सहित स्पष्ट करो। शब्द किस प्रकार के चिह्न हैं ?

3. संकेत-विज्ञान की तीन शाखाओं की प्रमुख समस्याओं का संक्षिप्त विवेचन करो।

4. भाषा के विविध कार्यों का वर्णन करो।

5. उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करो कि भाषा का व्यावहारिक रूप जटिल होता है।

6. हिन्दी की अपनी पाठ्य-पुस्तक से भाषा के प्रयोग के भिन्न-भिन्न रूप छाँटो।

## 4. प्रयोग और कथन

भाषा के प्रमुख कार्यों का विवेचन ऊपर किया गया है। परन्तु भाषा का प्रयोग एक और विशिष्ट कार्य के लिए भी होता है, और यह कार्य है भाषा का तार्किक विश्लेषण। हम हिन्दी भाषा का तार्किक विश्लेषण करने के लिए हिन्दी भाषा का ही प्रयोग करेंगे। फिर भी जिस हिन्दी भाषा का विश्लेषण किया जायेगा और जिस हिन्दी भाषा में उसका विश्लेषण होगा वे हिन्दी भाषा के प्रयोग के दो भिन्न-भिन्न स्तर होंगे। इनका अन्तर जानना बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस अन्तर को समझने के लिए पहले शब्दों के प्रयोग और शब्दों के कथन का अन्तर समझना आवश्यक है।

### वस्तु का प्रयोग और वस्तु का कथन

एक वस्तु का प्रयोग करने में और उस वस्तु का कथन करने में अन्तर समझना एक सरल बात है। जब मैं कुछ लिखना चाहता हूँ तो मैं एक विशेष उपकरण का प्रयोग करता हूँ। लेकिन यदि मैं इस उपकरण का कथन करना चाहूँ अर्थात् यह बताना चाहूँ कि यह क्या उपकरण है, तो यह कार्य इस उपकरण से नहीं किया जा सकता। किसी वस्तु या किसी उपकरण का कथन करने के लिए शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे हम लिखने के उपकरण का कथन 'कलम' शब्द से करते हैं। "मेरे हाथ में कलम है"

इस वाक्य में 'कलम' शब्द द्वारा एक वस्तु का कथन किया गया है। जब हम शब्द द्वारा किसी वस्तु का कथन करते हैं, तब हम शब्द का एक उपकरण के रूप में प्रयोग करते हैं। "यह कलम सुन्दर है", इस वाक्य में हम 'कलम' शब्द का प्रयोग एक वस्तु का कथन करने के लिए कर रहे हैं।

**शब्द का प्रयोग और शब्द का कथन**

शब्द का प्रयोग वस्तुओं का कथन करने के लिए किया जाता है। इस प्रकार शब्द वाचक हैं और वस्तु वाच्य है। लेकिन शब्द का अपना स्वरूप भी है, जो उसकी वाच्य वस्तु के स्वरूप से भिन्न है। जैसे किसी वस्तु की रचना की विशेषताओं को बताने के लिए उस वस्तु के कथन की आवश्यकता होती है, वैसे ही एक शब्द की रचना की विशेषताओं को बताने के लिए शब्द का कथन करने की आवश्यकता होती है। एक वस्तु का कथन तो एक अन्य वस्तु अर्थात् शब्द द्वारा किया जाता है। लेकिन एक शब्द का कथन करने के लिए अन्य शब्द का प्रयोग नहीं करते बल्कि उसी शब्द द्वारा अपना कथन या वाचन किया जाता है। एक शब्द द्वारा वस्तु का कथन करने और उस शब्द द्वारा अपना ही कथन करने की क्रियाएँ बिल्कुल भिन्न हैं। जिस वाक्य में शब्द द्वारा अन्य वस्तु का कथन किया गया है, वहाँ शब्द का प्रयोग होता है। जिस वाक्य में शब्द द्वारा अपना ही कथन किया जाता है, वहाँ उस शब्द का कथन या वाचन माना जाता है।

हम कहाँ एक वस्तु का कथन करने के लिए एक शब्द का प्रयोग कर रहे हैं और कहाँ एक शब्द द्वारा उसी शब्द का कथन कर रहे हैं, इस अन्तर को ध्यान में रखना बहुत महत्त्वपूर्ण है। विचार के क्षेत्र में बहुत कुछ गड़बड़ी इस अन्तर को ध्यान में न रखने के कारण होती है। शब्द के कथन को शब्द का प्रयोग समझने की ग़लती से बचने के लिए यह आवश्यक समझा जाता है कि जहाँ शब्द का कथन किया जा रहा हो वहाँ उस शब्द को उद्धरण चिह्नों—' '— में रखा जाये।

1. राम सुन्दर है।
2. 'राम' नाम सुन्दर है।

यहाँ (1) में 'राम' शब्द का प्रयोग हुआ है। इस वाक्य का अर्थ है 'राम' नाम जिस व्यक्ति का है, वह व्यक्ति सुन्दर है। लेकिन (2) में 'राम' शब्द का कथन किया गया है। शब्द के प्रयोग और कथन के अन्तर के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

| | प्रयोग | कथन |
|---|---|---|
| 1. | सीता स्त्री है। | 'सीता' स्त्रीलिंग है। |
| 2. | दशरथ राजा थे। | 'दशरथ' में चार अक्षर हैं। |
| 3. | जवाहरलाल इन्दिरा गांधी के पिता थे। | 'जवाहरलाल' के अन्त में 'लाल' है। |
| 4. | विद्यालय अध्यापक और छात्रों से बनता है। | "विद्यालय", 'विद्या' और 'आलय' से बनता है। |

वाक्यों में शब्द का ठीक-ठीक प्रयोग न करने पर कथन ही ग़लत हो जाता है।

**अभ्यास**

बताइये निम्नलिखित कथनों में से कौनसा कथन सत्य है और कौनसा असत्य :

1. भारतवर्ष विशाल देश है ।
2. 'भारतवर्ष' विशाल देश है ।
3. भारतवर्ष भारतवर्ष का नाम है ।
4. 'भारतवर्ष' भारतवर्ष का नाम है ।
5. 'भारतवर्ष' की राजधानी दिल्ली है ।
6. भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली है ।
7. 'भारतवर्ष' भारत और वर्ष से बना है ।
8. भारतवर्ष, 'भारत' और 'वर्ष' से बना है ।
9. 'भारतवर्ष' 'भारत' और 'वर्ष' से बना है ।
10. 'भारतवर्ष' संयुक्तराष्ट्र का सदस्य है ।

**वाक्यों का प्रयोग और वाक्यों का कथन**

जिस प्रकार एक शब्द के प्रयोग और कथन में अन्तर है, उसी प्रकार एक वाक्य के प्रयोग और कथन में भी अन्तर है ।

नीचे कुछ उदाहरणों से इस अन्तर को स्पष्ट किया गया है :

| | वाक्य का प्रयोग | वाक्य का कथन |
|---|---|---|
| 1. | भारत विशाल देश है । | "भारत विशाल देश है" निर्देशात्मक वाक्य है । |
| 2. | क्या चन्द्रमा पर मनुष्य रहते हैं ? | "क्या चन्द्रमा पर मनुष्य रहते हैं ?" प्रश्नवाचक वाक्य है । |
| 3. | सदा सत्य बोलो । | "सदा सत्य बोलो", आज्ञावाचक वाक्य है । |
| 4. | सदा सत्य बोलो । | "सदा सत्य बोलो" तीन शब्दों का वाक्य है । |
| 5. | भगवान् ! हमें सद्बुद्धि दो । | "भगवान् हमें सद्बुद्धि दो" प्रार्थनावाचक वाक्य है । |
| 6 | अहो: क्या सुन्दर मूर्ति है ! | "अहो: ! क्या सुन्दर मूर्ति है !" विस्मय-बोधक वाक्य है । |

## 5. वस्तुपरक भाषा

जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, भाषा का एक प्रमुख कार्य घटनाओं तथा तथ्यों का विश्लेषण करना और उनका वर्णन करना है । तथ्यों का वर्णन करने के लिए प्रयुक्त भाषा वस्तुपरक भाषा कहलाती है । भौतिक विज्ञानों, जैसे भौतिकी, रसायन-शास्त्र, खगोल-विज्ञान, भू-विज्ञान; प्राणि-विज्ञानों, जैसे जीव-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, आदि तथा मानव-व्यवहार सम्बन्धी विज्ञानों, जैसे मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र में प्रयुक्त भाषा वस्तुपरक भाषा होती है ।

भाषा तथ्यों का वर्णन करने के लिए प्रयुक्त होती है। लेकिन भाषा स्वयं एक तथ्य है। इसकी अपनी रचना है और इस रचना का तार्किक स्वरूप है, यद्यपि भाषा की तार्किक-रचना का स्वरूप बहुत स्पष्ट नहीं होता। जिस प्रकार अन्य तथ्यों की रचना की खोज शास्त्रीय अध्ययन से हो सकती है, उसी प्रकार भाषा के तार्किक स्वरूप की खोज और उसका स्पष्ट विश्लेषण भी शास्त्रीय अध्ययन से हो सकता है। तर्कशास्त्र का काम भाषा की तार्किक-रचना का स्पष्ट विश्लेषण करना है।

जिस प्रकार तथ्यों का वर्णन और विश्लेषण भाषा द्वारा ही हो सकता है, उसी प्रकार भाषा का विश्लेषणात्मक अध्ययन भी भाषा द्वारा ही हो सकता है। यहाँ भाषा के दो रूप या स्तर बन जाते हैं। वह भाषा जिसका अध्ययन या विश्लेषण किया जाता है तथा वह भाषा जिसमें यह विश्लेषण किया जाता है। इनमें से भाषा के पहले रूप को वस्तुपरक भाषा और दूसरे रूप को अधिभाषा कहते हैं। वस्तुपरक भाषा का विषय वे तथ्य होते हैं जिनका विश्लेषण इसमें किया जाता है। अधिभाषा का विवेच्य-विषय स्वयं वस्तुपरक भाषा होती है।

साधारणतः एक भाषा का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने के लिए भी उसी भाषा का प्रयोग किया जाता है। हिन्दी भाषा का विश्लेषण करने के लिए, उसमें शब्द-अर्थ सम्बन्ध की व्याख्या करने के लिए तथा उसके वाक्यों की तार्किक-रचना का विश्लेषण करने के लिए, हिन्दी भाषा का ही प्रयोग करेंगे। परन्तु हिन्दी भाषा की सामान्य रचना में और जिस हिन्दी में हिन्दी भाषा की रचना का अध्ययन किया गया हो महत्त्वपूर्ण अन्तर है। हिन्दी के दूसरे रूप में पहले रूप की हिन्दी के शब्दों तथा वाक्यों का कथन होगा, प्रयोग नहीं।

क्योंकि तर्कशास्त्र का प्रमुख कार्य वस्तुपरक भाषा का विवेचन समझा जाता है, इसलिए तर्कशास्त्र में प्रयुक्त भाषा अन्य विज्ञानों की भाषा की तुलना में अधिभाषा है।

स्पष्टता तथा सुगमता की दृष्टि से तर्कशास्त्र में अधिभाषा की रचना परम्परागत भाषा की शब्दावली को छोड़कर नये प्रतीकों से की जाती है। इसके वाक्य-विन्यास (syntax) की परम्परा भी अपनी होती है।

## अभ्यास

1. निम्नलिखित कथनों में से कौनसे सत्य हैं और कौनसे असत्य :
   (क) 'चन्द्रमा पर मनुष्य रहते हैं'- चार शब्दों का वाक्य है।
   (ख) चन्द्रमा पर मनुष्य रहते हैं।
   (ग) अधिभाषा में वस्तुपरक भाषा का अध्ययन किया जाता है।
   (घ) अधिभाषा में वस्तुपरक भाषा के शब्दों तथा वाक्यों का कथन किया जाता है।
2. शब्दों तथा वाक्यों के प्रयोग और कथन का अन्तर स्पष्ट करो।
3. वस्तुपरक भाषा और अधिभाषा के अन्तर पर एक टिप्पणी लिखो।

# 3

# पद

तार्किक दृष्टि से पद प्रतिज्ञप्ति की रचना के तत्त्व हैं। एक सरल-प्रतिज्ञप्ति की रचना में कितने पद होते हैं, इस प्रश्न का अध्ययन प्रतिज्ञप्ति के अध्ययन के सन्दर्भ में करेंगे। यहाँ पद के स्वरूप तथा पद और अर्थ के सम्बन्ध के बारे में विचार करेंगे।

## 1. पद, नाम और शब्द

**पद और नाम**

जिस वस्तु के सम्बन्ध में कुछ विचार किया जाता है उसे शब्द द्वारा प्रकट करते हैं। पद विचार का वह विषय है जिसे शब्द में प्रकट किया गया हो। जैसे, "भारतवर्ष विशाल देश है" इस कथन में 'भारतवर्ष' एक पद है। पद के दो पहलू हैं : शब्दरूपी पहलू और अर्थरूपी पहलू। पिछले अध्याय में इस अन्तर को हम अच्छी प्रकार स्पष्ट कर चुके हैं। 'भारतवर्ष' शब्द और उसके अर्थ में अन्तर है। इस अन्तर को ध्यान में न रखने पर 'पद' शब्द का अर्थ निश्चित नहीं किया जा सकता। कभी तो 'पद' का अर्थ विचार की वस्तु को प्रकट करने वाला शब्द लिया जाता है और कभी इसका अर्थ शब्द में प्रकट किया गया विचार का विषय लिया जाता है। विचार की स्पष्टता के लिए विचार के विषय को पद कहना ठीक है और उसे प्रकट करने वाले शब्द को नाम कहना ठीक है। इस प्रकार, 'भारतवर्ष विशाल देश है', इस कथन में 'भारतवर्ष' पद है क्योंकि विशाल देश होना भारतवर्ष की विशेषता है। लेकिन यहाँ 'भारतवर्ष' शब्द नाम है। इस प्रकार नाम विचार की विषय-भूत वस्तु को प्रकट करने वाला एक चिह्न है। कभी-कभी पद और नाम में कोई अन्तर नहीं किया जाता। तब पद की परिभाषा इस प्रकार करते हैं : "वह शब्द या शब्द-समूह जिसमें विचार की विषय-वस्तु प्रकट की गयी हो पद (अथवा नाम) है। इस प्रकार पद के शब्दरूपी पहलू और उसके अर्थरूपी पहलू दोनों के आधार पर पद की परिभाषाएँ दी जाती हैं। लेकिन इनके अन्तर को ध्यान में रखना आवश्यक है।

**पद और शब्द**

प्रत्येक शब्द विचार की वस्तु प्रकट नहीं करता। इसलिए, प्रत्येक शब्द पद नहीं होता। बहुत से शब्द, जैसे, 'क्योंकि', 'इसलिए', 'है', तार्किक क्रियाओं को प्रकट

करते हैं, विचार के किसी विषय को नहीं। इसी प्रकार, सम्बोधन शब्द, जैसे, रे, अरे, ओ, विस्मय-बोधक शब्द, जैसे, ओहा, ओहो, आदि तथा वेदना-बोधक शब्द, जैसे, हाय, आदि किसी विचार के विषय को प्रकट नहीं करते। इसलिए, ये शब्द पद नहीं होते।

संज्ञा शब्द ही प्रधान रूप में पद होते हैं। विशेषण, क्रिया तथा क्रियाविशेषण शब्द स्वयं पद नहीं बन सकते, लेकिन ये संज्ञा शब्द के साथ पद के अंग बन सकते हैं।

एक पद एक शब्द का हो सकता है, जैसे, राम, मोहन, आदि और अनेक शब्दों का भी, जैसे, भारत का वर्तमान प्रधानमंत्री।

एक ही शब्द अर्थभेद से दो पदों का कार्य कर सकता है, जैसे : 'ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी नहीं है' इस कथन में 'ब्रह्मचारी' शब्द पहले व्यक्तिविशेष का बोधक है और फिर ब्रह्मचर्यव्रत पालन करने वाले व्यक्ति का।

इस प्रकार शब्द और पद में अन्तर है।

## 2. पद और अर्थ

यह बताया जा चुका है कि एक पद के दो पहलू होते हैं शब्दरूपी पहलू और अर्थरूपी पहलू। लेकिन यहाँ प्रश्न यह है कि पद और उसके अर्थ का क्या सम्बन्ध है ? इस प्रश्न के विवेचन के लिए पहले यह समझना आवश्यक है कि वे कौन-कौनसी चीजें हैं जो विचार का विषय बनती हैं और जिन्हें पद के रूप में प्रकट किया जाता है। वस्तु और वस्तु के गुण-धर्म विचार का विषय बनते हैं। इसलिए वस्तु और गुण-धर्म का स्वरूप बताना आवश्यक है।

**वस्तु और गुण-धर्म**

गुण जैसे, लाल, मीठा, छोटा, बड़ा, आदि तथा सम्बन्ध जैसे, किसी का पिता होना या पुत्र होना, आदि तथा कर्म जैसे, गतिशील होना, सामान्य रूप से वस्तु के गुण-धर्म हैं। वस्तु किसे कहते हैं इस प्रश्न का उत्तर देना यहाँ कठिन है। सामान्य रूप से हम सब जानते हैं कि वस्तु किसे कहते हैं। यहाँ इतना कहना पर्याप्त है कि जिसकी ओर हम संकेत कर सकते हैं और जो 'यह', 'वह' शब्दों द्वारा निर्देशित हो सकती है, वह वस्तु है। 'यह मेज है' इस कथन में हम 'यह' शब्द से वस्तु का निर्देशन करते हैं। वस्तु और वस्तु में रहने वाले गुण-धर्म में अन्तर है। जहाँ गुण-धर्म सामान्य होते हैं वहाँ वस्तु विशिष्ट होती है। उदाहरण के रूप में मेरे हाथ की यह कलम एक वस्तु है, लेकिन सस्ता होना, अच्छा चलना इसके गुण-धर्म हैं। ये गुण-धर्म सामूहिक रूप से अथवा अलग-अलग अन्य वस्तुओं में भी हो सकते हैं। यहाँ 'वस्तु' शब्द से हम मूर्त वस्तुएँ अर्थात् स्पर्श-योग्य वस्तुएँ ही नहीं समझते बल्कि अमूर्त वस्तुएँ भी समझते हैं। इस प्रकार शब्द भी वस्तुएँ हैं, यद्यपि ये अमूर्त हैं।

वस्तु और उसके गुण-धर्म का क्या सम्बन्ध है ? क्या कोई ऐसी वस्तु हो सकती है, जिसमें कोई गुण-धर्म न हो और क्या कोई ऐसे गुण-धर्म हो सकते हैं जो किसी वस्तु में न हों ? ये प्रश्न दार्शनिक विवेचन के विषय हैं। सामान्य रूप से हम यह जानते हैं कि गुण-धर्म रहित कोई वस्तु नहीं होती और कोई ऐसा गुण भी नहीं होता जो किसी वस्तु में न रहता हो। लेकिन हम ऐसे गुण-समूह को सोच सकते हैं जो अपने सामूहिक रूप में किसी वस्तु में न रहता हो। जैसे, पुत्रवती होना एक स्त्री का गुण-धर्म है। बांझ होना भी स्त्री का गुण-धर्म है। लेकिन पुत्रवती-बांझ होना किसी का भी गुण-धर्म नहीं है। वस्तु और गुण-धर्म के सम्बन्ध के इस स्पष्टीकरण के बाद अब हम एक पद के दो अर्थों वस्त्वर्थ (denotation) और गुणार्थ (connotation) में अन्तर स्पष्ट कर सकते हैं।

**पद का वस्त्वर्थ और गुणार्थ**

एक पद जिस वस्तु का संकेतक होता है उस वस्तु को उस पद का वस्त्वर्थ (denotation) कहते हैं। व्यक्तिवाची पद के उदाहरणों से पद के वस्त्वर्थ का रूप सरलता से स्पष्ट हो सकता है। 'जवाहरलाल नेहरू' पद का वस्त्वर्थ वह व्यक्ति है जिसकी ओर इस नाम से संकेत करते हैं। बहुत से पद ऐसे होते हैं जिनसे असंख्य व्यक्तियों में से किसी भी एक व्यक्ति की ओर संकेत कर सकते हैं जैसे; मनुष्य, वृक्ष, आदि। एक पद के वस्त्वर्थ में वे सब विशिष्ट वस्तुएँ आ जाती हैं, जिन पर वह पद लागू हो सकता है। राम, मोहन, सोहन, आदि प्रत्येक व्यक्ति 'मनुष्य' पद का वस्त्वर्थ है क्योंकि इनमें से प्रत्येक पर 'मनुष्य' पद लागू हो सकता है।

एक पद वस्तुओं का वाचक होने के साथ-साथ उनके गुण-धर्मों का भी बोधक हो सकता है। एक पद जिन गुण-धर्मों का बोधन कराता है उन गुण-धर्मों को उस पद का गुणार्थ कहते हैं : जैसे, 'मनुष्य' पद राम, मोहन, सोहन, आदि व्यक्तियों का तो संकेत करता है लेकिन इनके सामान्य-गुण-धर्मों जैसे, विचारशीलता तथा प्राणित्व का बोधन कराता है। इस प्रकार, जहाँ राम, मोहन, आदि व्यक्ति 'मनुष्य' पद के वस्त्वर्थ हैं वहाँ विचारशीलता और प्राणित्व इस पद के गुणार्थ हैं।

एक वस्तु में अनन्त गुण होते हैं। एक पद के गुणार्थ में उसकी वाच्य-वस्तु के अनन्त गुण नहीं आते बल्कि केवल वे ही गुण आते हैं जो भाषा की परम्परा में उस पद से जाने जाते हैं और जो उस पद का प्रयोग समझने के लिए पर्याप्त समझे जाते हैं। किसी पद के गुणार्थ में कौन-कौनसे गुण आते हैं यह निश्चित करना भाषाविदों और वैज्ञानिकों का कार्य है। मनुष्य में अनन्त गुण हैं। लेकिन मनुष्य' पद के गुणार्थ में केवल प्राणित्व और विचारशीलता के गुण ही माने जाते हैं।

**क्या गुणार्थक होने के लिए पद का वस्त्वर्थक होना आवश्यक है**

साधारणतः यह माना जाता है कि गुण-धर्म वस्तुओं में रहते हैं। इसलिए, जो पद गुण-धर्म का बोधक है, वह उन गुण-धर्मों वाली वस्तुओं की ओर संकेत भी

करता है। परम्परागत तर्कशास्त्री यह मानते थे कि जो पद गुण-बोधक है वह वस्तु-वाचक भी है और ऐसे पद की वाच्य-वस्तु का किसी न किसी रूप में अस्तित्व होता है।

आधुनिक तर्कशास्त्री इस मत को नहीं मानते। क्योंकि एक पद गुण-बोधक है, इसलिए, वह अवश्य ही किसी न किसी वस्तु की ओर संकेत करता है, यह सोचना गलत है। उदाहरण के रूप में 'पुत्रवती बाँझ स्त्री', तथा 'वर्गाकार वृत्त' गुण-बोधक तो हैं लेकिन ये किसी वस्तु के निर्देशक नहीं हैं, क्योंकि ऐसी एक भी वस्तु नहीं है जिस पर ये पद लागू हो सकते हों। प्राचीन तर्कशास्त्रियों के अनुसार एक पद का 'वस्त्वर्थ' उसके गुणार्थ का आधार है। लेकिन तार्किक दृष्टि से एक पद गुण-बोधक होने के कारण वस्त्वर्थक बनता है। एक पद जिन-जिन गुणों का बोधक है वह उन गुणों वाले प्रत्येक व्यक्ति का निर्देशक होता है। लेकिन यह सम्भव है कि एक पद जिन गुण-धर्मों का बोधक है वे किसी भी व्यक्ति में न हों। तब हम उस पद का वस्त्वर्थ शून्य मानेंगे। उदाहरण के रूप में 'पुत्रवती बाँझ' पद का वस्त्वर्थ शून्य है।

### व्यक्ति-वाचक नाम और गुणार्थ

क्या व्यक्ति-वाचक पद भी गुणार्थक होते हैं? इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि हम गुणार्थ का क्या अर्थ लेते हैं। यदि एक पद के गुणार्थ में सर्व-मान्य निश्चित गुण ही लेते हैं, तब तो व्यक्ति-वाचक नाम गुणार्थक नहीं हैं। लेकिन यदि 'गुणार्थक' से अभिप्राय किसी भी व्यक्ति के लिए किन्हीं गुणों का बोधक होना है तो व्यक्तिवाची नाम गुणार्थक हैं। 'टीटू' पद का कोई सर्वमान्य गुणार्थ नहीं है। लेकिन जिस पिता ने अपने पुत्र का नाम टीटू रखा है, उसके लिए तो यह पद पुत्र के गुणों का बोधक है। तार्किक दृष्टि से, जहाँ, सामान्य पद प्रधानरूप में गुण-बोधक होते हैं और गुण-बोधक होने के कारण ही वस्तु-निर्देशक होते हैं वहाँ व्यक्तिवाची पद प्रधान रूप में वस्तु-निर्देशक होते हैं और वस्तु-निर्देशक होने के कारण ही गुण-बोधक होते हैं।

### वस्त्वर्थ और गुणार्थ का सम्बन्ध

दो पदों का संयोजन करके एक नया पद बनाया जा सकता है। अब प्रश्न यह है कि इस नये पद के गुणार्थ और वस्त्वर्थ उन दोनों पदों के गुणार्थ और वस्त्वर्थ से किस प्रकार भिन्न होंगे? दो पदों से बनने वाले संयुक्त पद के गुणार्थ में उन दोनों पदों का गुणार्थ शामिल होता है। लेकिन यह सोचना ग़लत है कि उसके वस्त्वर्थ में उन दोनों पदों का वस्त्वर्थ शामिल है। उदाहरण के रूप में, 'पुरुष' एक पद है और 'विवाहित व्यक्ति' दूसरा पद है; इन दोनों का अपना-अपना गुणार्थ और वस्त्वर्थ है। इन दोनों का संयोजन करके 'विवाहित पुरुष' पद बना। 'विवाहित पुरुष' के गुणार्थ में 'पुरुष' का गुणार्थ और 'विवाहित व्यक्ति' का गुणार्थ शामिल है। विवाहित पुरुष में पुरुष होने का गुण-धर्म है और विवाहित होने का भी। लेकिन 'विवाहित पुरुष' के वस्त्वर्थ में 'विवाहित व्यक्ति' और 'पुरुष' इन दोनों पदों का वस्त्वर्थ शामिल नहीं है। जिसे

विवाहित व्यक्ति कह सकते हैं उसे आवश्यक रूप से 'विवाहित पुरुष' नहीं कह सकते। इसी प्रकार, जो पुरुष है उसका विवाहित पुरुष होना आवश्यक नहीं है। इस प्रकार वस्त्वर्थ की दृष्टि से दो पद और उनसे निर्मित संयुक्त पद का सम्बन्ध भिन्न-भिन्न है। संयुक्त पद का वस्त्वर्थ उसके प्रत्येक घटक पद के वस्त्वर्थ में शामिल होता है। 'विवाहित-पुरुष' का वस्त्वर्थ 'विवाहित व्यक्ति' के वस्त्वर्थ में शामिल है और 'पुरुष' के वस्त्वर्थ में भी। संक्षेप में, संयुक्त पद का गुणार्थ उसके प्रत्येक घटक पद के गुणार्थ से अधिक होता है लेकिन उसका वस्त्वर्थ घटक पदों के वस्त्वर्थ से अधिक नहीं होता। सामान्यतया संयुक्त पद का वस्त्वर्थ उसके घटक पदों के वस्त्वर्थ से कम होता है।

इस प्रकार ज्यों-ज्यों अधिक पदों का संयोजन करते जायेंगे त्यों-त्यों गुणार्थ बढ़ता जायेगा और वस्त्वर्थ कम होता जायेगा। लेकिन जितना गुणार्थ बढ़े उसी अनुपात में वस्त्वर्थ घटे यह आवश्यक नहीं है। यह हो सकता है कि जहाँ दो पदों के अलग-अलग वस्त्वर्थ में असंख्य व्यक्ति आते हों, वहाँ उनके संयुक्त पद के वस्त्वर्थ में एक भी व्यक्ति न आता हो। जैसे, जहाँ 'पुत्रवती स्त्री' और 'बाँझ स्त्री' पदों के अलग-अलग वस्त्वर्थ में असंख्य व्यक्ति आते हैं, वहाँ 'पुत्रवती बाँझ स्त्री' के वस्त्वर्थ में एक भी व्यक्ति नहीं आता।

पदों के संयोजन से गुणार्थ के बढ़ने और वस्त्वर्थ के घटने के सम्बन्ध को गुणार्थ और वस्त्वर्थ का प्रतिलोम सम्बन्ध (inverse relation) कहते हैं। लेकिन प्रतिलोमता का अनुपात समान नहीं होता।

पदों के गुणार्थ और वस्त्वर्थ के सम्बन्ध में यह बताना भी आवश्यक है कि दो भिन्न-भिन्न गुणार्थ वाले पदों का वस्त्वर्थ बिल्कुल एक हो सकता है। जैसे : 'समान कोणीय त्रिभुज' और 'समबाहु त्रिभुज' के गुणार्थ भिन्न हैं लेकिन वस्त्वर्थ एक है।

"स्वतन्त्र भारत का प्रथम प्रधानमन्त्री" और "मोतीलाल नेहरू का पुत्र" पदों का गुणार्थ भिन्न है, लेकिन वस्त्वर्थ एक है। ऐसे दो पदों को तादात्म्यक (identical) कहते हैं।

## अभ्यास

1. निम्नलिखित कथन सत्य हैं या असत्य :

(क) "यह बन्दर नाच रहा है" इस वाक्य में 'बन्दर' शब्द का प्रयोग प्रधानरूप से वस्तु-निर्देशन के लिए हुआ है।

(ख) "यह लंगूर नहीं है बल्कि बन्दर है" इस वाक्य में 'बन्दर' शब्द का प्रयोग प्रधानरूप में गुण-बोधन के लिए हुआ है।

(ग) वृक्ष, पुष्प, स्त्री, पुरुष, शब्दों का वस्त्वर्थ भी है और गुणार्थ भी।

(घ) 'विद्वान्' पद का गुणार्थ 'भारतीय विद्वान्' पद के गुणार्थ से अधिक है।

(ङ) जो पद किसी वस्तु का निर्देशन नहीं करता, वह गुणार्थक नहीं हो सकता।

(च) दो भिन्न-भिन्न गुणार्थक पदों का वस्त्वर्थ एक हो सकता है।

(छ) व्यक्ति-वाचक नाम प्रधानरूप में गुण-बोधक होते हैं।

(ज) व्यक्ति-वाचक नाम किसी रूप में गुण-बोधक नहीं होते।

2. पद किसे कहते हैं ? पद के नाम और शब्द का अन्तर स्पष्ट करो।

3. पद के गुणार्थ और वस्त्वर्थ से क्या समझते हैं ? इनके सम्बन्ध की व्याख्या करो।

4. क्या व्यक्ति-वाचक नाम गुणार्थक होते हैं ? इस प्रश्न का विवेचन करो।

5. ऐसे पाँच पद बताओ जो गुणार्थक होने पर भी किसी व्यक्ति का निर्देशन न करते हों।

## 3. पदों के प्रमुख भेद

परम्परागत तर्कशास्त्र में पदों के निम्नलिखित भेद माने जाते हैं :

**सरल पद या सम्मिश्रित पद**

एक शब्द का पद सरल पद होता है और अनेक शब्दों का पद सम्मिश्र पद होता है। सरल पदों के संयोजन से सम्मिश्र पद बनता है। राम, मन्त्री, सेनापति सरल पद हैं लेकिन, प्रधानमन्त्री, योग्य मन्त्री, कुशल सेनापति सम्मिश्र पद हैं।

**व्यक्ति पद** (Singular term) **या सामान्य पद** (General term)

जो पद एक निश्चित वस्तु पर लागू होने योग्य हो, वह व्यक्ति पद होता है और जो पद एक प्रकार के किसी भी व्यक्ति पर लागू होने के योग्य हो वह सामान्य पद है। जैसे, "यह पुस्तक" व्यक्ति पद है, जबकि 'पुस्तक' सामान्य पद। इसी प्रकार, राम, सीता, भारत का वर्तमान प्रधानमंत्री, सौ की संख्या, शून्य, व्यक्ति पद हैं, जबकि मनुष्य, स्त्री, प्रधानमंत्री, भारत का प्रधानमंत्री, संख्या, जवाहरलाल की बेटी*, सामान्य पद हैं।

व्यक्ति पदों में वस्त्वर्थक व्यक्ति पद (denotative singular term) और अभिधानरूप व्यक्ति पद (designation) का अन्तर भी महत्वपूर्ण है। वस्त्वर्थक पद का काम एक निश्चित वस्तु की ओर संकेत करना है। व्यक्तिवाची नाम जैसे, राम, मोहन, हरि, आदि वस्त्वर्थक व्यक्तिपद हैं। वस्त्वर्थक व्यक्तिपद या नाम सार्थक तभी समझा जाता है जब कोई उस नाम का व्यक्ति हो।

अभिधानरूप व्यक्ति पद ऐसी विशेषताओं का बोधक पद है जो किसी एक व्यक्ति में ही सम्भव हो सकती हों, लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि उन विशेषताओं वाला व्यक्ति वास्तव में हो। जैसे, "भारत का 1970 का प्रधानमंत्री" और "भारत का 1970 का सम्राट्" ये दोनों पद व्यक्ति पद हैं, और दोनों अभिधानरूप हैं। लेकिन जहाँ ऐसे व्यक्ति का अस्तित्व रहा है जिस पर पहला पद लागू होता है वहाँ ऐसे किसी व्यक्ति का अस्तित्व नहीं रहा है जिस पर दूसरा पद लागू होता हो। इस प्रकार अभिधान-रूप पद के सार्थक होने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उस नाम का वास्तव में कोई व्यक्ति हो अर्थात् अभिधानात्मक पद का वस्त्वर्थक होना आवश्यक नहीं है।

---

* ध्यान दीजिये कि "जवाहरलाल की बेटी" सामान्य पद है, व्यक्ति पद नहीं, भले ही यह एक व्यक्ति पर लागू होता है।

सामान्य पद सामान्य गुणों का बोधक होने के कारण एक प्रकार के प्रत्येक व्यक्ति पर लागू होता है। सामान्य पद अनेक व्यक्तियों पर लागू हो सकता है, जैसे, 'मनुष्य'। सामान्य पद केवल एक व्यक्ति पर लागू हो सकता है, जैसे, "जवाहरलाल की पुत्री"। यह भी सम्भव है कि सामान्य पद किस पर लागू न हो, जैसे, "परी", "सोने का पहाड़" और "बांझ का बेटा"।

**मूर्त पद** (Concrete Term) **और अमूर्त पद** (Abstract term)

जिन वस्तुओं का स्पर्श हो सकता हो, उनके नाम को मूर्त पद कहते हैं। जिन वस्तुओं का स्पर्श न हो सकता हो, उनके नाम को अमूर्त पद कहते हैं। राम, मोहन, मनुष्य, वृक्ष मूर्त पद हैं, मनुष्यता, मानवता, मनुष्यवर्ग, शून्य, त्रिकोण, ईमानदारी, मित्रता, अमूर्त पद हैं। 'भारतदेश' मूर्तपद हैं लेकिन 'भारतराष्ट्र' अमूर्तपद है।

**व्यष्टिवाचक पद** (Distributive term) **और समष्टिवाचक पद** (Collective term)

जो पद एक प्रकार के प्रत्येक व्यक्ति पर लागू हों वे व्यष्टि-वाची पद होते हैं, जैसे, 'मनुष्य' पद। जो पद एक प्रकार की वस्तुओं की समष्टि के बोधक हों, उन्हें समष्टि-वाची पद कहते हैं : जैसे, भीड़, झुण्ड, सेना, आदि। यह ध्यान देने की बात है कि समान गुण-धर्मों वाले भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की समष्टि का वाचक पद ही समष्टि बोधक होता है। "ईंटों का चिट्टा" समष्टि बोधक पद है लेकिन 'मकान' समष्टि बोधक पद नहीं है।

**निरपेक्ष और सापेक्ष पद**

जो पद एक वस्तु पर अन्य किसी वस्तु के सम्बन्ध की अपेक्षा के बिना लागू हो वह निरपेक्ष पद है और जो पद अन्य वस्तु से सम्बन्ध की अपेक्षा पर आधारित हो वह सापेक्ष पद है। "मनुष्य", "वृक्ष", "पुस्तक", "स्त्री", "पुरुष", निरपेक्ष पद हैं लेकिन, "चाचा", "मामा", "भाई", "पति-पत्नि", "दाएँ", "बाएँ", "छोटा", "बड़ा", आदि सापेक्ष पद हैं।

**भाववाचक** (Positive) **अभाववाचक** (Negative) **और राहित्य वाचक** (Privative) **पद**

जो पद वस्तु या गुण के भाव का बोधक हो, वह भाववाचक पद है और जो वस्तु या गुण के अभाव का बोधक हो वह अभाववाचक पद है। प्रत्येक भाववाचक पद का एक अभाववाचक पद होगा। जैसे, 'मनुष्य' भाववाचक है और 'अमनुष्य' अभाववाचक। 'भारतीय' भाववाचक है और 'अभारतीय' अभाववाचक। भाव-वचाक पद और उसका अभाववाचक पद दोनों एक-दूसरे के व्याघाती पद (contradictory) होते हैं, क्योंकि इनमें से एक का वस्त्वर्थ दूसरे के वस्त्वर्थ से बिल्कुल भिन्न होता है। ये दोनों पद एक-दूसरे के पूरक पद (complementary term) भी कहे जाते हैं क्योंकि एक सन्दर्भ में जिन बातों का निर्देशन एक पद नहीं करता उन बातों का निर्देशन उसका व्याघाती पद या पूरक पद करता है।

जो पद किसी वस्तु में ऐसे गुण के अभाव का बोधक हो जिसकी उसमें सम्भावना हो उसे राहित्यवाची पद (privative term) कहते हैं। "अंधा", "लंगड़ा", "बहरा", आदि पद राहित्यवाची पद हैं।

**गुणार्थक** (Connotative term) **या अ-गुणार्थक पद** (Non-Connotative term)

जो पद वस्तुओं का निर्देशन उनके गुण-धर्म के आधार पर करते हों, वे गुणार्थक पद होते हैं। सब सामान्य पद गुणार्थक होते हैं। 'मनुष्य', 'वृक्ष' गुणार्थक हैं। अभिधान भी गुणार्थक पद होते हैं। "यह पुस्तक", "भारत का वर्तमान प्रधानमंत्री" गुणार्थक पद हैं।

जो पद केवल गुण या केवल वस्तु के नाम हैं उन्हें अगुणार्थक पद कहते हैं। 'राम' 'मोहन', 'ईमानदारी', 'मनुष्यता' अगुणार्थक पद हैं।

**अभ्यास**

हल किये प्रश्न :

निम्नलिखित पदों का तार्किक रूप निश्चित करें :- मनुष्य, बुद्धि, धर्म, वृक्ष, नगर, देहली।

हल .

मनुष्य : सरल, सामान्य, मूर्त, व्यष्टिवाची, निरपेक्ष, भाववाची, गुणार्थक।
बुद्धि : सरल, व्यक्ति पद, अमूर्त, निरपेक्ष, भाववाची, अगुणार्थक।
धर्म : सरल, सामान्य, अमूर्त, व्यष्टिवाची, निरपेक्ष, भाववाची, गुणार्थक।
वृक्ष : सरल, सामान्य, मूर्त, व्यष्टिवाची, निरपेक्ष, भाववाची, गुणार्थक।
नगर : सरल, सामान्य, मूर्त, व्यष्टिवाची, निरपेक्ष, भाववाची, गुणार्थक।
देहली : सरल, व्यक्ति पद, निरपेक्ष, भाववाची और गुणार्थक।

**अभ्यास**

निम्नलिखित पदों का तार्किक स्वरूप निश्चित करें।

मित्र, बाग, ग्राम का बाग, हरियाणा, हरियाणवी मनुष्य, हरियाणवीपन, दो, जवाहरलाल नेहरू, मोतीलाल नेहरू का पुत्र, कांग्रेस, कांग्रेस का प्रधान, सरकार।

## 4. शब्द प्रयोग के दोष

**अनिश्चितार्थ** (Vagueness)

हम अपने अनुभव से यह जानते हैं कि बहुत से कथनों तथा शब्दों का अर्थ निश्चित नहीं होता, बल्कि गोलमाल होता है और ऐसे कथनों की तुलना में कुछ अन्य कथनों का अर्थ निश्चित होता है। उदाहरण के रूप में "राम का कद लम्बा है" एक गोलमाल कथन है। इस वाक्य में 'लम्बा' शब्द का अर्थ अनिश्चित है। हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि कितने कद वाले व्यक्ति को 'लम्बा' कहा जायेगा और कितने कद वाले को ठिगना कहा जायेगा। छः फुट कद को हम निश्चित रूप से लम्बा

कद कह सकते हैं। लेकिन यदि 6 फुट कद लम्बा कद है तो पाँच फुट ग्यारह इंच कद को क्या लम्बा कहा जायेगा। इस प्रकार, कद के सम्बन्ध में एक न एक बिन्दु ऐसा होगा जिसके बारे में निश्चित रूप से यह कहना कठिन होगा कि वह लम्बा है या नहीं। इसलिए, 'लम्बा', 'ठिगना' अनिश्चितार्थक (vague) शब्द हैं। इसी प्रकार अमीर, ग़रीब, बुद्धिमान, मूर्ख, विद्वान्, गंजा, आदि शब्द अनिश्चितार्थक हैं।

"राम का कद लम्बा है" से "राम का कद साढ़े पाँच फुट से अधिक है" अधिक निश्चित कथन है और इससे भी "राम का कद पाँच फुट दस इंच है" अधिक निश्चित है। जब हमें किसी घटना अथवा व्यक्ति के किसी गुण या विशेषता की मात्रा ठीक-ठीक मालूम नहीं होती तो उसे गोलमाल शब्दों में प्रकट करते हैं। एक गोलमाल कथन के सच होने की सम्भावना एक निश्चित कथन से अधिक होती है। "राम को बहुत तेज़ बुखार है" के सच होने की जितनी सम्भावना है उतनी "राम को 104° बुखार है" की नहीं है। यदि राम को 103° बुखार है तो दूसरा कथन स्पष्ट रूप से ग़लत है, जबकि पहले कथन के सच होने का दावा किया जा सकता है। यह स्पष्ट है कि निश्चित और सत्य कथन कितना कठिन है। इसलिए आमतौर पर हम अनिश्चित कथनों से ही काम चलाते हैं।

व्यवहार में हर बात को निश्चित शब्दों में कहना कठिन है और इसकी आवश्यकता भी नहीं है। हम यही कहते हैं कि "चाय गरम है" या "चाय ठण्डी है"। यह कहने की आवश्यकता नहीं समझते कि चाय का तापमान ठीक-ठीक कितना है। यदि हर कथन की निश्चितता पर ही सोच-विचार करने के चक्कर में पड़ जायें, तो जीवन की गति ही रुक जाये। लेकिन फिर भी हमें निश्चितार्थक कथन और गोलमाल कथन में भेद समझना आवश्यक है, जिससे कि जहाँ निश्चित कथन की आवश्यकता समझी जाये, वहाँ निश्चितार्थ कथन पर ही बल दिया जा सके। जिस प्रकार विज्ञान में ठीक-ठीक माप-तोल की आवश्यकता होती है उसी प्रकार विज्ञान में इस बात की भी आवश्यकता होती है कि विज्ञान में जो कुछ कहा जाये उसे अधिक-से-अधिक निश्चित शब्दों में कहा जाये। लेकिन पूर्ण निश्चितता शब्दों में लाना कठिन है। इसलिए, जिन विज्ञानों में नाप-तौल, संख्या, परिमाण, आदि के सम्बन्ध में पूर्ण निश्चितार्थक कथनों की आवश्यकता होती है वहाँ भाषा अधिक उपयोगी नहीं होती। वहाँ भाषा से भिन्न प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है, जिनका अर्थ बिल्कुल निश्चित होता है। गणित में निश्चित कथन की जितनी आवश्यकता है, उतनी शायद अन्यत्र नहीं है। इसलिए गणित में शब्दों का प्रयोग न करके दूसरे प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है।

**अस्पष्ट कथन** (Ambiguous statement) **तथा अस्पष्ट शब्द** (Ambiguous word)

बहुत से कथन और बहुत से शब्द अस्पष्ट होते हैं। जिस कथन के एक से अधिक अर्थ निकाले जा सकते हों उसे अस्पष्ट कथन कहते हैं। "बसो मेरे नैनन में नन्दलाल" का अर्थ अस्पष्ट है। इसका कोई यह अर्थ निकाल सकता है कि 'हे नन्दलाल ! आप मेरी आँखों में आकर बस जाओ' और कोई दूसरा व्यक्ति इसका यह अर्थ भी निकाल सकता है कि 'नन्दलाल

मेरी आँखों में बस चुका है'। इसी प्रकार बहुत से शब्दों का अर्थ स्पष्ट नहीं होता, अर्थ शब्द में साफ-साफ नहीं झलकता बल्कि उसे ढूँढ़ा जाता है और एक ही शब्द के एक व्यक्ति कोई अर्थ ढूंढ़ता है तो दूसरा व्यक्ति कोई अन्य अर्थ। नीचे के वाक्यों के तिरछे शब्दों के अर्थ के बारे में आपको कोई दुविधा या सन्देह है या नहीं :

(क) समाजवाद में ही न्याय हो सकता है।

(ख) भारतवासी कर्म में आस्था रखते हैं।

(ग) एक व्यक्ति को अपनी आत्मा नहीं गिरानी चाहिये।

(घ) स्त्रियों को अभी अपनी स्वतन्तता के लिए संघर्ष करना है।

(ङ) मानव-जीवन का परम-लक्ष्य मोक्ष है।

यहाँ तिरछे शब्दों का अर्थ स्पष्ट नहीं है। यह इस बात से स्पष्ट है कि भिन्न-भिन्न व्यक्ति इन्हीं शब्दों का अर्थ भिन्न-भिन्न लगायेंगे। क्योंकि उपर्युक्त वाक्यों में प्रयुक्त तिरछे शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ लगाये जा सकते हैं, अतः ये शब्द अस्पष्ट हैं, ये संदिग्धार्थक हैं।

हमारे बहुत से वाद-विवादों का कारण अस्पष्ट शब्दों का प्रयोग है। उपर्युक्त कथनों में से पहला कथन वाद-विवाद का विषय प्रायः बनता है। इसका मुख्य कारण 'समाजवाद' और 'न्याय' शब्दों का स्पष्ट अर्थ न होना है। यदि हम समाजवाद और न्याय के सम्बन्ध पर विचार करना चाहते हैं, तो हमें पहले इन शब्दों का अर्थ स्पष्ट करना पड़ेगा, इसके बिना इस सम्बन्ध में हमारी चर्चा बिलकुल व्यर्थ रहेगी। अस्पष्टार्थक शब्दों के विभिन्न अर्थों में स्पष्ट भेद न कर सकने के कारण किस प्रकार अनन्त व्यर्थ वाद-विवाद छिड़ जाता है, इसका एक रोचक उदाहरण विलियम जेम्स ने अपनी पुस्तक 'प्रैगमैटिज्म' में दिया है। इसका सारांश इस प्रकार है :

एक स्थान पर कुछ व्यक्तियों में एक काल्पनिक समस्या को लेकर वाद-विवाद छिड़ा हुआ था। समस्या इस प्रकार थी : एक पेड़ के तने पर एक जीवित गिलहरी है। उसके सामने पेड़ के तने के दूसरी ओर एक आदमी खड़ा है। इस प्रकार पेड़ का तना गिलहरी और उस आदमी के बीच है। आदमी गिलहरी को देखना चाहता है। लेकिन वह ज्यों ही गिलहरी को देखने को दौड़ता है, गिलहरी भी उतना ही और आगे को दौड़ती है। इस प्रकार गिलहरी आगे-आगे और वह आदमी उसके पीछे-पीछे पेड़ के इर्द-गिर्द दौड़ रहे हैं। अब प्रश्न यह है कि क्या वह आदमी उस गिलहरी का चक्कर लगा रहा है या नहीं? इस समस्या का उत्तर कुछ 'हाँ' में देते थे, तो कुछ 'ना' में। वाद-विवाद बहुत रोषपूर्ण होता जा रहा था और कोई निर्णय नहीं हो पा रहा था। वहाँ एक दार्शनिक आ पहुँचा। उससे इस सम्बन्ध में निर्णय देने की प्रार्थना दोनों पक्षों ने की। वह निवेदन करने लगा कि इस समस्या का समाधान तब तक नहीं हो सकता जब तक इस बात का निर्णय न किया जाये कि "चक्कर लगाने" का क्या अर्थ है। यदि इसका अर्थ यह है कि पहले वह आदमी गिलहरी के उत्तर में, फिर उसके पश्चिम में,

फिर दक्षिण में और उसके बाद उसके पूर्व में और फिर उत्तर में स्थिति अपनाता है, तब तो वह गिलहरी का चक्कर लगा रहा है। और यदि इसका अर्थ पहले गिलहरी के सामने होना फिर बायें, फिर पीछे और फिर बायें और फिर सामने होना है तो निश्चित ही वह आदमी गिलहरी का चक्कर नहीं लगा रहा है।

इस उत्तर से यह स्पष्ट हो गया कि वाद-विवाद का कारण शब्द "चक्कर लगाना" की अस्पष्टता था और वाद-विवाद शान्त हो गया।

**अस्पष्ट शब्द और अनिश्चित शब्द में अन्तर**

अस्पष्ट शब्द और अनिश्चित शब्द में भेद करना आवश्यक है। अनिश्चित शब्द तो वह शब्द है जो किसी गुण की ठीक-ठीक मात्रा प्रकट न करता हो। इसके विपरीत अस्पष्ट शब्द वह है जिससे भिन्न-भिन्न गुण या विशेषताएँ समझी जा सकें। बहुत से शब्द अनिश्चित और अस्पष्ट दोनों ही होते हैं। उदाहरण के रूप में 'समाजवाद' शब्द अस्पष्ट भी है और अनिश्चित भी। 'समाजवाद' शब्द अस्पष्ट तो इसलिए है कि इससे भिन्न-भिन्न प्रकार की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाएँ समझी जा सकती हैं और अनिश्चित इसलिए है कि यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि अर्थ-व्यवस्था पर राज्य का अधिकार कितना हो कि उसे समाजवादी कहा जा सके। लेकिन कुछ शब्द अस्पष्ट तो होते हैं लेकिन अनिश्चत नहीं। इसी प्रकार कुछ शब्द अनिश्ति होते हैं, अस्पष्ट नहीं। उदाहरण के रूप में 'कर्म' शब्द अस्पष्ट है क्योंकि इसका अर्थ भाग्य लिया जा सकता है और उद्यम भी। लेकिन इस शब्द के अर्थ के बारे में मात्रा की निश्चितता का प्रश्न नहीं उठता।

**अस्पष्ट शब्द और अनेकार्थ शब्द में अन्तर**

अस्पष्ट शब्द (ambiguous word) और अनेकार्थ शब्द (equivocal word) में भेद करना भी आवश्यक है। एक ही वाक्य में जिस शब्द के प्रयोग से भिन्न-भिन्न अर्थ निकलते हों, वह अस्पष्टार्थक है, और अनेकार्थ शब्द वह शब्द है जो भिन्न-भिन्न वाक्यों में भिन्न-भिन्न अर्थ प्रकट करता हो। "मैं कल मेरठ गया था" और "मैं कल मेरठ जाऊँगा" में 'कल' शब्द के अर्थ भिन्न-भिन्न हैं, लेकिन प्रत्येक वाक्य में इसका अर्थ बिल्कुल स्पष्ट है। इस प्रकार 'कल' शब्द अनेकार्थक है लेकिन अस्पष्ट नहीं है। वास्तव में जिस शब्द को हम अनेकार्थ शब्द कहते हैं, वह एक शब्द ही अनेक शब्दों का काम करता है, अर्थात् भिन्न-भिन्न वाक्यों में वह भिन्न-भिन्न शब्दों के रूप में प्रयुक्त होता है। ऊपर के दो वाक्यों में 'कल' शब्द दो भिन्न-भिन्न शब्दों के रूप में प्रयुक्त हुआ है जबकि 'समाजवाद' और 'कर्म' शब्द एक ही वाक्य में प्रयुक्त होने पर भिन्न-भिन्न अर्थ वाले समझे जा सकते हैं। इसलिए ये शब्द अनेकार्थक नहीं हैं, बल्कि अस्पष्ट हैं।

अस्पष्टता हमारे कथनों का एक भयंकर दोष है, यद्यपि कूटनीतिक कथनों में यही गुण समझा जाता है। लेकिन विज्ञान में अस्पष्ट शब्दों के प्रयोग से बचना चाहिये और यदि साधारण भाषा के अस्पष्ट शब्दों का प्रयोग विज्ञान में करना ही पड़े, जैसाकि प्रायः करना पड़ता है, तो उसकी अस्पष्टता को ठीक-ठीक परिभाषा द्वारा कम-से-कम

कर देना चाहिये । इसलिए, स्पष्ट चिन्तन के लिए शब्दों के अर्थ का ठीक-ठीक निर्धारण आवश्यक है और उसके लिए परिभाषा की प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है । परिभाषा के स्वरूप और उद्देश्यों पर अगले अध्याय में विचार करेंगे ।

**अभ्यास**

1. उदाहरणों द्वारा अनिचितार्थ शब्द (vague word) और अस्पष्टार्थ शब्द (ambiguous word) का अन्तर स्पष्ट करो । निम्नलिखित शब्दों में से कौनसे शब्द अनिश्चितार्थक हैं, कौनसे अस्पष्टार्थक हैं तथा कौनसे दोनों हैं :

आध्यात्मवाद, यथार्थवाद, प्रजातन्त्र, दरिद्र, धनवान्, मूर्ख, प्रतिभाशाली, स्थिर-बुद्धिवाला, शान्त, पद, व्यक्तित्व ।

2. अस्पष्टार्थ शब्द (ambiguous word) तथा अनेकार्थ शब्द (equivocal word) का अन्तर उदाहरणों सहित स्पष्ट करो :

"कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय" में 'कनक' शब्द अस्पष्टार्थक है या अनेकार्थक ।

## 5. प्रचलित भाषा तथा तार्किक भाषा

साधारण व्यवहार में प्रचलित भाषा व्यवहार के विविध प्रयोगों की दृष्टि से विकसित हुई होती है । इसलिए, इसमें लचीलापन होता है । साधारण भाषा में, एक शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं और एक ही अर्थ को प्रकट करने वाले भी अनेक शब्द हो सकते हैं । बहुत से शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ जहाँ स्पष्ट होते हैं, वहाँ बहुत से शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ स्पष्ट नहीं होते । बहुत से शब्दों के अर्थ अनिश्चित होते हैं ।

वाक्य-रचना की दृष्टि से भी साधारण भाषा बड़ी लचीली होती है । एक ही अर्थ को प्रकट करने वाले भिन्न-भिन्न वाक्य बनाये जा सकते हैं । वाक्य की रचना ऐसी भी हो सकती है जिससे उसके अनेक अर्थ निकल सकें । वाक्य-रचना ऐसी भी हो सकती है कि उसका अस्पष्ट अर्थ निकलता हो । ऐसे वाक्य भी हो सकते हैं जो देखने में किसी गूढ़ अर्थ के वाचक लगते हों, लेकिन वास्तव में बिल्कुल अर्थ-हीन हों । भाषा का यह लचीलापन व्यवहार की दृष्टि से बहुत उपयोगी है क्योंकि व्यवहार में हम कभी तो स्पष्ट बात कहना चाहते हैं, कभी गोलमाल ढंग से कहना चाहते हैं और कभी अपने पाण्डित्य का रौब जमाने के लिए गूढ़ार्थ प्रतीत होने वाले अर्थहीन वाक्य भी रच देते हैं ।

भाषा का यह लचीलापन व्यवहार की दृष्टि से जहाँ उपयोगी है वहाँ तार्किक दृष्टि से यह एक बड़ा दोष है । तर्कशास्त्र का उद्देश्य तार्किक आकारों (logical forms) का अध्ययन है । लेकिन साधारण भाषा में तार्किक आकारों को व्यक्त करने की क्षमता नहीं होती । इसलिए, तर्कशास्त्री परम्परागत भाषा को छोड़कर नयी कृत्रिम भाषा (artificial language) की रचना करते हैं । यह कृत्रिम भाषा भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रतीकों से बनती है । इसमें प्रतीक और अर्थ के सम्बन्ध (semantical) की तथा प्रतीकों को वाक्य-रूप में व्यवस्थित करने (syntaxtical) की अपनी ही परम्पराएँ होती हैं । तार्किक वाक्य-रचना के कुछ रूपों का विवेचन अध्याय 6, 7, 17 तथा 20 में किया गया है ।

## 6. प्रतीकों के लाभ

परम्परागत शब्दों के स्थान पर कृत्रिम प्रतीकों के प्रयोग करने के निम्नलिखित प्रमुख लाभ हैं :

1. परम्परागत भाषा में शब्दों के अस्पष्ट तथा अनिश्चितार्थ होने के दोष होते हैं। लेकिन कृत्रिम प्रतीक नये बने होते हैं, उनके साथ व्यवहार की परम्परा से कोई अर्थ जुड़ा हुआ नहीं होता। इन प्रतीकों का अर्थ परिभाषा द्वारा स्पष्ट और निश्चित कर दिया जाता है।

2. व्याकरण की दृष्टि से भिन्न-भिन्न रचना वाले वाक्यों से प्रकट की गयी प्रतिज्ञप्तियों का तार्किक आकार एक हो सकता है और एक-सी रचना वाले वाक्यों से व्यक्त प्रतिज्ञप्तियों के रूप भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। इसलिए, प्रतिज्ञप्तियों के विभिन्न आकारों का स्पष्ट अन्तर प्रकट करने के लिए प्रचलित भाषा के वाक्यों का रूप अनुपयुक्त है। प्रतीकात्मक भाषा में प्रतिज्ञप्तियों के आकारों को स्पष्टता के साथ व्यक्त किया जा सकता है।

3. तार्किक आकार सामान्य होते हैं। भाषा में तार्किक आकारों को प्रकट करने की सीमा है। हम भाषा के एक वाक्य द्वारा किसी एक वर्ग के किसी दूसरे वर्ग में शामिल होने के सम्बन्ध को प्रकट नहीं कर सकते। लेकिन, एक वर्ग के लिए क, दूसरे वर्ग के लिए ख तथा एक वर्ग के दूसरे वर्ग में शामिल होने के सम्बन्ध के लिए '$\subset$' प्रतीक मानकर सम्बन्ध के इस आकार को सरलता से 'क $\subset$ ख' के रूप में प्रकट करते हैं।

4. प्रतीकों में समय, स्थान, श्रम तथा चिन्तन का लाघव होता है। "दो का दो से गुणा, फिर इस गुणन का दो से गुणा" इसे $2 \times 2 \times 2$ के रूप में लाघव के साथ व्यक्त कर सकते हैं। और इसी बात को और भी लाघव के '$2^3$' के रूप में व्यक्त कर सकते हैं।

यद्यपि कृत्रिम प्रतीक शब्दों की अपेक्षा अधिक सरल और निश्चित होते हैं, लेकिन ये आरम्भ में हमें कठिन प्रतीत होते हैं। तार्किक उद्देश्य की दृष्टि से इनको सीखने में श्रम करना आवश्यक ही है।

### अभ्यास

1. भाषा के सामान्य दोषों को बताते हुए यह स्पष्ट करो कि परम्परागत भा' तार्किक उद्देश्य के लिए अनुपयुक्त है।

2. "प्रचलित भाषा का लचीलापन उसका गुण भी है और दोष भी" कथन का विवेचन करो।

3. प्रतीकों के प्रयोग के महत्त्व पर टिप्पणी लिखो।

4. "तार्किक आकार भाषा के वाक्यों में व्यक्त नहीं हो सकता" कथन का स्पष्टीकरण करो।

# 4
# परिभाषा

## 1. परिभाषा का स्वरूप

एक शब्द की परिभाषा ऐसा कथन है जो उसके अर्थ को सुगम, निश्चित और स्पष्ट रूप से प्रकट करता हो। यह शब्द या अन्य प्रतीक का अर्थ स्पष्ट करने की एक प्रक्रिया है।

परिभाषा के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें ध्यान में रखने की हैं :

**परिभाषा शब्द या अन्य प्रतीक की होती है, वस्तु की नहीं**

परिभाषा शब्द या अन्य प्रतीक की होती है, वस्तु की नहीं। परिभाषा देने की प्रक्रिया अर्थ स्पष्ट करने की प्रक्रिया है। क्योंकि वस्तु का कोई अर्थ नहीं होता, इसलिए वस्तु की परिभाषा नहीं हो सकती। अर्थ किसी प्रतीक का ही होता है। प्रतीक शब्द के रूप में हो सकता है और अन्य रूपों में भी।

'मनुष्य' एक शब्द है। इसका कुछ अर्थ है। हम, इसलिए, यह प्रश्न कर सकते हैं कि 'मनुष्य' का क्या अर्थ है अर्थात् 'मनुष्य' शब्द की क्या परिभाषा है। लेकिन किसी मनुष्य की ओर इशारा करके यह प्रश्न करना कि इसका क्या अर्थ है, हँसी की बात होगी।

**परिभाषा के दो अंग, परिभाष्य** (definiendum) **और परिभाषक** (definiens)

एक शब्द का अर्थ शब्दों द्वारा समझाया जा सकता है और शब्दों के बिना भी। मान लीजिए एक अंग्रेज ने 'गाय' शब्द तो सुना है, लेकिन वह इसका अर्थ नहीं जानता। यदि वह आप से पूछे कि 'गाय' का क्या अर्थ है तो आप दो प्रकार से उसका अर्थ स्पष्ट कर सकते हैं : 'गाय' के अर्थ वाला दूसरा शब्द बताकर या किसी गाय की ओर संकेत करके*। यद्यपि एक शब्द के अर्थ को स्पष्ट करने की इन दोनों विधियों को परिभाषा की विधियाँ माना जाता है, लेकिन इनमें से पहली विधि ही प्रमुख विधि है। जब हम एक शब्द का अर्थ दूसरे शब्द या शब्दों द्वारा प्रकट करते हैं, तो जिस शब्द का अर्थ स्पष्ट किया जाता है उसे परिभाष्य (definiendum) कहते हैं और जिन शब्दों

---

* परिभाषा की इस विधि को "निदर्शनात्मक परिभाषा" कहा जाता है।

द्वारा परिभाष्य का अर्थ बताया जाता है, उन्हें परिभाषक (definiens) कहते हैं। इस प्रकार परिभाष्य और परिभाषक प्रत्येक शब्दमयी परिभाषा के दो आवश्यक अंग होते हैं। परिभाषा के कथन के बायें सिरे पर परिभाष्य और दायें सिरे पर परिभाषक होता है। जैसे, 'गाय' का अर्थ अंग्रेज को समझाने के लिए कहेंगे कि

'गाय'=Cow

या

'गाय' का वही अर्थ है जो Cow का, तो यहाँ 'गाय' परिभाष्य है और Cow परिभाषक।

परिभाष्य और परिभाषक दोनों ही शब्द होते हैं। एक शब्द दूसरे शब्द का अर्थ नहीं हो सकता। इसलिए, यह कहना ग़लत है कि परिभाषक परिभाष्य का अर्थ होता है। इसके विपरीत यह कहना ठीक है कि परिभाष्य के अर्थ को प्रकट करने वाला अन्य शब्द या शब्द-समूह परिभाषक होता है। परिभाषक एक शब्द का हो सकता है जैसे कि ऊपर की परिभाषा में, और एक से अधिक शब्दों का भी, जैसाकि मनुष्य की निम्नलिखित परिभाषा में।

'मनुष्य' विचारशील प्राणी है।

प्राय: परिभाषक में शब्दों की संख्या अधिक होती है।

**परिभाषा और वर्णन**

परिभाषा और वर्णन दोनों ही शब्दों द्वारा किये जाते हैं। इसलिए परिभाषा और वर्णन के सम्बन्ध में हमें धोखा हो सकता है। इनमें निम्नलिखित अन्तर है :

(क) परिभाषा शब्द की होती है। जबकि वर्णन शब्द की वाच्य वस्तु का। 'मनुष्य' शब्द की परिभाषा हो सकती है, जबकि मनुष्य अर्थात् 'मनुष्य' नाम वाले व्यक्तियों का वर्णन हो सकता है।

(ख) वर्णन के लिए शब्द की वाच्य-वस्तु के अस्तित्व का होना आवश्यक है। लेकिन शब्द की परिभाषा के लिए उसकी वाच्य-वस्तु का होना आवश्यक नहीं है। परिभाषा का उद्देश्य एक शब्द के प्रयोग की सीमा निश्चित करना है, जबकि वर्णन का उद्देश्य किसी वास्तविक घटना, तथ्य या वस्तु की विशेषताओं को गिनाना। भाषा में ऐसे अनेक शब्द होते है, जिनकी वाच्य-वस्तु ही नहीं होती, लेकिन भाषा में उनका प्रयोग सार्थक रूप से होता है। उदाहरण के रूप में 'परी' शब्द का प्रयोग भाषा में सार्थक रूप से होता है, जबकि यथार्थ में 'परी' नाम का कोई प्राणी नहीं है। इस प्रकार यद्यपि परी का वर्णन नहीं हो सकता क्योंकि परी है ही नहीं, जबकि "परी" की परिभाषा, "परी उड़ने वाली सुन्दर स्त्री है" हो सकती है।

(ग) जिस दृष्टि से वर्णन को सत्य या असत्य कह सकते हैं, उसी दृष्टि से परिभाषा को सत्य या असत्य नहीं कह सकते। यदि एक वस्तु का वर्णन उसकी वास्तविक विशेषताओं को प्रकट करता है तो वह सत्य है अन्यथा असत्य। किसी वर्णन की सत्यता

की परख वर्णित वस्तु को देखकर की जा सकती है। लेकिन एक शब्द की परिभाषा की सत्यता की परख उस शब्द की वाच्य-वस्तु को देखकर नहीं की जा सकती।

एक वस्तु को देखकर यह तो निर्णय किया जा सकता है कि उसकी जो विशेषताएँ एक वर्णन में बतायी हैं, वे उसमें हैं या नहीं, लेकिन उसे देखकर यह निर्णय नहीं किया जा सकता कि उस वस्तु का जो नाम बताया है वह ठीक है या ग़लत क्योंकि वस्तु पर उसका नाम तो लिखा नहीं होता।

सारांश यह है कि एक शब्द और उसके अर्थ का कोई स्वाभाविक सम्बन्ध नहीं होता, केवल कृत्रिम और परम्परागत सम्बन्ध होता है। और, एक परिभाषा की सत्यता का केवल इतना अर्थ है कि वह शब्द प्रयोग की परम्परा को ठीक-ठीक व्यक्त करती है। शब्द की परिभाषा का क्षेत्र भाषा की परम्परा का क्षेत्र है, वास्तविता का क्षेत्र नहीं, जबकि वर्णन में वास्तविकता को शब्दों में प्रकट करने का दावा किया जाता है।

### अभ्यास

1. परिभाषा शब्द की होती है या वस्तु की ? स्पष्ट करो।
2. 'परिभाष्य' और 'परिभाषक' शब्दों का अर्थ उदाहरण सहित स्पष्ट करो।
3. स्पष्ट करो कि एक शब्द की परिभाषा, उसका प्रयोग करके दी जा सकती है और उसका कथन करके भी।
4. परिभाषा और वर्णन का अन्तर स्पष्ट करो।
5. क्या एक वस्तु को देखकर यह जान सकते हैं कि उसका क्या नाम है ? क्या एक वस्तु को देखकर यह जान सकते हैं कि उसकी क्या विशेषताएँ हैं ? उत्तर स्पष्ट करो।

## 2. परिभाषा के प्रकार

भिन्न-भिन्न परिस्थितियों और भिन्न-भिन्न उद्देश्यों के अनुसार परिभाषा के अनेक प्रकार हो सकते हैं। परिभाषा के कुछ प्रमुख प्रकारों का यहाँ विवेचन किया जाता है :

**स्वनिर्मित परिभाषा** (Stipulative definition)

किसी नये शब्द या प्रतीक की एक व्यक्ति जो परिभाषा देता है, वह स्वनिर्मित परिभाषा कहलाती है। स्वनिर्मित परिभाषा एक प्रस्ताव, समझौता या संकल्प के रूप में होती है। इसका रूप कुछ इस प्रकार होता है :

मैं 'क' शब्द का प्रयोग अमुक अर्थ में करने का प्रस्ताव करता हूँ।

या

आओ, हम 'क' शब्द का प्रयोग इस अर्थ को प्रकट करने के लिए करें।

या

मैं 'क' शब्द का प्रयोग इस अर्थ में करूँगा।

'इन्डीकेट'="इन्दिरा गांधी का गुट" स्वनिर्दिष्ट परिभाषा थी। बर्ट्रेण्ड रसेल ने एक तार्किक सम्बन्ध के लिए बिल्कुल नये प्रतीक '⊃' का प्रयोग करते हुए उसकी परिभाषा प्रचलित प्रतीकों में इस प्रकार दी :

प ⊃ फ=~प V फ परिभाषा।

यह '⊃' की स्वनिर्मित परिभाषा है। स्वनिर्मित परिभाषा न सत्य होती है और न असत्य। जिस प्रकार किसी के शादी के प्रस्ताव को सत्य या असत्य नहीं कह सकते उसी प्रकार स्वनिर्मित परिभाषा को भी सत्य या असत्य नहीं कह सकते।

**कोशीय परिभाषा**

भाषा में जो शब्द प्रचलित होते हैं उनकी परिभाषा कोशीय परिभाषा होती है। कोशीय परिभाषा एक शब्द के लोक-सम्मत अर्थ को स्पष्ट करती है। कोश में परिभाषाओं द्वारा शब्दों का लोक-सम्मत अर्थ स्पष्ट किया जाता है। कोशीय परिभाषा सत्य या असत्य कही जा सकती है। यदि एक कोशीय परिभाषा शब्द के लोक-सम्मत अर्थ को ठीक-ठीक व्यक्त करती है, तो वह सत्य मानी जायेगी, अन्यथा असत्य। 'फल' शब्द की यह परिभाषा कि "फल पेड़ पौधों का फूल से बनने वाला वह भाग है जिसमें बीज सुरक्षित रहते हैं" सत्य मानी जायेगी क्योंकि हिन्दी भाषा में 'फल' शब्द के इस अर्थ की परम्परा है। और 'फल' की यह परिभाषा कि "फल एक सुन्दर पक्षी है" गलत मानी जायेगी।

**स्वनिर्मित परिभाषा और कोशीय परिभाषा में अन्तर**

स्वनिर्मित परिभाषा और कोशीय परिभाषा का अन्तर संक्षेप में यह है :

1. स्वनिर्मित परिभाषा नये शब्द या प्रतीक की होती है, जबकि कोशीय परिभाषा पूर्व प्रचलित शब्द की।

2. स्वनिर्मित परिभाषा में शब्द के साथ अर्थ जोड़ा जाता है, जबकि कोशीय परिभाषा में शब्द के लोक-सम्मत अर्थ को स्पष्ट किया जाता है।

3. स्वनिर्मित परिभाषा को सत्य या असत्य नहीं कहा जा सकता, जबकि कोशीय परिभाषा को सत्य या असत्य कहा जा सकता है।

**स्वनिर्मित परिभाषा का महत्त्व**

क्योंकि स्वनिर्मित परिभाषा, शब्द के प्रचलित अर्थ को तो बताती नहीं, इसलिए, यह प्रश्न किया जा सकता है कि इसकी क्या आवश्यकता है। इसकी आवश्यकता मुख्य रूप से दो कारणों से पड़ती है :

1. साधारण भाषा में जो लम्बे-लम्बे शब्द प्रचलित होते हैं, उनके स्थान पर लघु प्रतीकों के प्रयोग की आवश्यकता विज्ञान में पड़ती है। इन प्रतीकों की स्वनिर्मित परिभाषा दी जाती है।

2. भाषा में प्रचलित कुछ शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ निकाले जा सकते हैं। जब तक स्वनिर्मित परिभाषा द्वारा ऐसे शब्दों का अर्थ विशेष सन्दर्भ में बाँध न दिया जाये,

तब तक वे स्पष्ट चिन्तन में बाधक रहते हैं। कानून के बहुत से शब्दों का अर्थ बाँधने के लिए उच्च-न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा उन शब्दों की स्वनिर्मित परिभाषा दी जाती है।

**वस्त्वर्थक परिभाषा** (Denotative definition) **और गुणार्थक परिभाषा** (Connotative definition)

परिभाषा में शब्द का अर्थ स्पष्ट किया जाता है। एक शब्द का अर्थ दो रूपों में हो सकता है : वस्त्वर्थ के रूप में और गुणार्थ के रूप में। इस प्रकार परिभाषा के भी दो रूप हो सकते हैं : वस्त्वर्थक परिभाषा और गुणार्थक परिभाषा। ग्रह किसे कहते हैं, इसके दो उत्तर हो सकते हैं :

(अ) बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेप्च्युन, वरुण को ग्रह कहते हैं।

(आ) ग्रह उन आकाशीय पिण्डों को कहते हैं जो सूर्य के इर्द-गिर्द घूमते हैं और उससे प्रकाश ग्रहण करते हैं। पहले उत्तर में हम ग्रहों के दृष्टान्तों की ओर संकेत करते हैं, दूसरे उत्तर में उन गुणों को बताते हैं जो प्रत्येक ग्रह में मिलते हैं। पहला उत्तर 'ग्रह' की वस्त्वर्थक परिभाषा और दूसरा उत्तर गुणार्थक परिभाषा माना जायेगा।

किसी शब्द का अर्थ समझाने के लिए उसकी वाच्य-वस्तु की ओर संकेत करना, वस्त्वर्थक परिभाषा का एक अन्य रूप है। उदाहरण के रूप में बच्चे को 'मनुष्य' शब्द का अर्थ समझाने के लिए जब हम कुर्सी पर बैठे एक व्यक्ति की ओर संकेत करते हुए यह कहते हैं कि यह एक मनुष्य है तो यहाँ हम वस्त्वर्थक परिभाषा का प्रयोग करते हैं। वस्त्वर्थक परिभाषा के इस रूप को निदर्शनात्मक परिभाषा (ostensive definition) कहते हैं।

यद्यपि वस्त्वर्थक परिभाषा भी विशेष परिस्थितियों में शब्द का अर्थ समझाने में उपयोगी होती है, लेकिन विज्ञान के क्षेत्र में इसकी बहुत कम उपयोगिता है।

विज्ञान के क्षेत्र में और साधारण व्यवहार में भी गुणार्थक परिभाषा अधिक उपयोगी होती है। एक शब्द की गुणार्थक परिभाषा वह परिभाषा है जिसमें उस शब्द के गुणार्थ का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है। "मनुष्य विचारशील प्राणी है", यह 'मनुष्य' शब्द की गुणार्थक परिभाषा है, क्योंकि इसमें 'मनुष्य' शब्द के गुणार्थ को स्पष्ट शब्दों में प्रकट किया गया है।

पिछले अध्याय में शब्द के गुणार्थ की व्याख्या करते हुए यह स्पष्ट किया जा चुका है कि किसी शब्द के गुणार्थ के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उस शब्द की वाच्य-वस्तु का वास्तव में कोई दृष्टान्त हो। इसलिए किसी शब्द की गुणार्थक परिभाषा का इस बात से कोई सम्बन्ध नहीं है कि उसकी वाच्य-वस्तु का अस्तित्व है या नहीं।

मनुष्य विचारशील प्राणी है

और

परी उड़ने वाली सुन्दर स्त्री है।

ये दोनों परिभाषाएँ गुणार्थक परिभाषाएँ हैं यद्यपि मनुष्य का जहाँ अस्तित्व है, वहाँ परी का नहीं।

परम्परागत तर्कशास्त्र गुणार्थक में परिभाषा को ही तार्किक परिभाषा/माना गया है।

**शाब्दिक परिभाषा और वास्तविक परिभाषा** (nominal definition and real definition)

एक अन्य दृष्टि से परिभाषा के दो प्रमुख प्रकार, शाब्दिक परिभाषा और वास्तविक परिभाषा माने जाते हैं।

जिस परिभाषा में, परिभाष्य शब्द के बदले अन्य शब्द या शब्द-समूह रखा जाता है, और परिभाष्य शब्द के गुणार्थ का विश्लेषण नहीं किया जाता, उसे शाब्दिक परिभाषा कहते हैं। जो परिभाषा परिभाषक द्वारा परिभाष्य के गुणार्थ का विश्लेषण प्रकट करती है, उसे वास्तविक परिभाषा कहते हैं।

शाब्दिक परिभाषा के दो प्रकार हैं : (अ) स्वनिर्मित परिभाषा (stipulative definition) और (आ) पर्याय परिभाषा (synonymous definition)।

(अ) स्वनिर्मित परिभाषा में, जैसाकि हम देख चुके हैं, परिभाष्य का अपना कोई गुणार्थ ही नहीं होता जिसे परिभाषक द्वारा स्पष्ट किया जाता हो। इसमें तो परिभाष्य को नया अर्थ परिभाषक द्वारा प्रदान किया जाता है।

(आ) पर्याय परिभाषा वह परिभाषा है जिसमें प्रचलित शब्द के स्थान पर दूसरा, समानार्थक प्रचलित शब्द रख दिया जाता है और परिभाष्य के गुणार्थ का विश्लेषण नहीं किया जाता। जैसे :

'मानव' का अर्थ है मनुष्य
'बाजि' का अर्थ है घोड़ा

पर्याय परिभाषा भी कभी-कभी उपयोगी होती है। जब बच्चे को 'घोड़ा' शब्द का प्रयोग तो आता हो, लेकिन 'बाजि' शब्द का प्रयोग न आता हो, तो हम उसे 'बाजि' का प्रयोग यह कहकर समझा सकते हैं कि 'बाजि' का वही अर्थ है जो 'घोड़े' का।

लेकिन, जहाँ परिभाषा का उद्देश्य परिभाष्य के वाच्य विचार का विश्लेषण करना हो, वहाँ इस प्रकार की परिभाषा अनुपयोगी होती है।

जब हम एक शब्द का प्रयोग जानते हैं, लेकिन यह जानना चाहते हैं कि उस शब्द से जो विचार प्रकट किया जाता है, उसका मूल स्वरूप क्या है, अर्थात् उसमें कौन-कौनसे विचार संश्लिष्ट हैं, तो हमें वास्तविक परिभाषा का सहारा लेना पड़ता है। वास्तविक परिभाषा वह परिभाषा है जो परिभाष्य के गुणार्थ का विश्लेषण करके उसके स्वरूप को स्पष्ट करती है। गुणार्थक परिभाषा वास्तविक परिभाषा होती है। 'मनुष्य विचारशील प्राणी है' और 'परी उड़ने वाली सुन्दर स्त्री है'। ये दोनों परिभाषाएँ वास्तविक परिभाषाएँ कहलायेंगी।

यहाँ यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि वास्तविक परिभाषा का इस बात से कोई सम्बन्ध नहीं है कि परिभाष्य की वाच्य-वस्तु का अस्तित्व है या नहीं।

वैज्ञानिक खोज में वास्तविक परिभाषा का प्रयोग किया जाता है। वास्तविक परिभाषा एक वास्तविक प्रतिज्ञप्ति के रूप में होती है जो निगमनात्मक तर्क की आधारिका बन सकती है। लेकिन शाब्दिक परिभाषा निगमनात्मक तर्क की आधारिका नहीं बन सकती।

संक्षेप में भिन्न-भिन्न आधारों पर परिभाषा के जो भेद किये जाते हैं वे इस प्रकार हैं :

1. स्वनिर्मित परिभाषा और कोशीय परिभाषा।
2. वस्त्वर्थक परिभाषा और गुणार्थक परिभाषा।
3. शाब्दिक परिभाषा और वास्तविक परिभाषा।

## अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर हाँ या ना में दो :

(क) स्वनिर्मित परिभाषा शब्द के लोक-सम्मत अर्थ को प्रकट करती है।

(ख) कोशीय परिभाषा को सत्य या असत्य कर सकते हैं।

(ग) स्वनिर्मित परिभाषा के परिभाष्य का उसके परिभाषक से अलग अपना कोई अर्थ नहीं होता।

(घ) वस्त्वर्थक परिभाषा का कोई उपयोग नहीं है।

(ङ) स्वनिर्मित परिभाषा वास्तविक परिभाषा है।

(च) स्वनिर्मित परिभाषा शाब्दिक परिभाषा है।

(छ) वास्तविक परिभाषा उन्हीं शब्दों की हो सकती है जिनकी वाच्य-वस्तुओं का अस्तित्व हो।

2. स्वनिर्मित परिभाषा और कोशीय परिभाषा का अन्तर उदाहरणों सहित स्पष्ट करो तथा स्वनिर्मित परिभाषा के महत्त्व पर प्रकाश डालो।

3. वस्त्वर्थक परिभाषा और गुणार्थक परिभाषा का अन्तर स्पष्ट करो तथा इनका महत्त्व बताओ।

4. शाब्दिक परिभाषा और वास्तविक परिभाषा का अन्तर स्पष्ट करो। क्या शाब्दिक परिभाषा निगमनात्मक युक्ति की आधारिका बन सकती है? स्पष्ट करो।

5. पर्याय परिभाषा किसे कहते हैं? उसकी क्या उपयोगिता है? क्या तार्किक दृष्टि से परिभाषा का यह रूप उपयुक्त है?

6. निम्नलिखित परिभाषाओं में कौनसी शाब्दिक हैं और कौनसी वास्तविक :

(क) बाह्यार्थवाद दर्शनशास्त्र का वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार ज्ञान के विषय की बाह्य सत्ता है।

(ख) '·' का वही अर्थ है जो 'और' का।

(ग) जिस वर्ग में कोई सदस्य न हो उसे हम रिक्त वर्ग कहेंगे।
(घ) वह संख्या जो दो से पूरी-पूरी विभाजित हो जाये समसंख्या है।
(ङ) 'इन्दीवर' का अर्थ है नीलकमल।

## 3. परिभाषा के उद्देश्य

हम यह संकेत दे चुके हैं कि परिभाषा के भिन्न-भिन्न उद्देश्य हो सकते हैं और उद्देश्यों के अनुसार परिभाषाएँ भी विभिन्न प्रकार की हो सकती हैं। यहाँ हम परिभाषा के कुछ प्रमुख उद्देश्य गिनाते हैं :

**नवीन शब्द या प्रतीकों का अर्थ निर्धारित करना**

जब एक वैज्ञानिक किसी ऐसे शब्द या प्रतीक का प्रयोग करता है, जो नया है अर्थात् जो पहले से प्रयोग में प्रचलित नहीं है, तो उस शब्द या प्रतीक का अर्थ प्रचलित शब्दों के रूप में बताने की आवश्यकता होती है। इस उद्देश्य के लिए स्वनिर्मित परिभाषा का प्रयोग किया जाता है।

**अस्पष्ट शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थों का स्पष्ट भेद करना**

'समाजवाद' शब्द के अनेक अर्थ हैं। किसी सन्दर्भ में इसका कौन-सा अर्थ लिया जाये, इसके लिए इसकी परिभाषा की आवश्यकता है।

**अनिश्चित अर्थ वाले शब्दों का अर्थ निश्चित करना**

जिन शब्दों का अर्थ ठीक-ठीक निश्चित न हो, उन्हें अनिश्चितार्थक (vague) कहते हैं। प्रायः व्यवहार में प्रचलित शब्द अनिश्चितार्थक होते हैं और उनसे व्यवहार में कोई बाधा नहीं आती। 'ग़रीब', 'अमीर' का हम प्रयोग अपने व्यवहार में करते हैं, लेकिन ये दोनों ही शब्द अनिश्चितार्थक हैं। जहाँ हम कुछ व्यक्तियों को निश्चित रूप से ग़रीब कह सकते हैं और कुछ को निश्चित रूप से अमीर कह सकते है, वहाँ कुछ व्यक्तियों के सम्बन्ध मे हम यह ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर पाते कि उन्हें 'ग़रीब' कहा जाये या नहीं। इसलिए ये अनिश्चितार्थक शब्द हैं। मानलो, सरकार यह फैसला करती है कि ग़रीब छात्रों की फीस माफ होगी, तब वहाँ यह प्रश्न उठेगा कि 'ग़रीब' की ठीक-ठीक परिभाषा क्या है।

**शब्द के वाच्य प्रत्यय का स्वरूप निश्चित करना**

परिभाषा की आवश्यकता की पहली तीन स्थितियों की समान बात यह है कि इन सब में परिभाषा का मुख्य उद्देश्य शब्द-प्रयोग को निश्चित करना है। लेकिन कभी-कभी हमारे सामने यह प्रश्न नहीं होता कि एक परिस्थिति में एक शब्द का प्रयोग किया जाये या नहीं बल्कि यह होता है कि एक शब्द के वाच्य प्रत्यय का वास्तव में क्या स्वरूप है। 'समाज' शब्द के सम्बन्ध में यह प्रश्न इतना नहीं उठता कि 'समाज' शब्द से भिन्न-भिन्न व्यक्ति क्या-क्या समझते हैं, बल्कि यह प्रश्न उठता है कि समाज का प्रत्यय क्या है, उसका क्या स्वरूप है। इसी प्रकार सद्वृत्त, न्याय, मोक्ष के सम्बन्ध में इन शब्दों के वाच्य प्रत्यय के स्वरूप विश्लेषण का प्रश्न ही मुख्य होता है।

इस सम्बन्ध में यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिये कि वाद-विवाद का आधार सदा शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में ही मतभेद नहीं होता, बल्कि वास्तव में विचार-सम्बन्धी मतभेद भी होता है। जहाँ परिभाष्य के वाच्य प्रत्यय के विश्लेषण की आवश्यकता हो वहाँ वास्तविक परिभाषा की आवश्यकता होती है।

कोहन और नागल ने परिभाषा के पहले तीन उद्देश्यों को परिभाषा के मनोवैज्ञानिक उद्देश्य और चतुर्थ उद्देश्य को परिभाषा का तार्किक उद्देश्य बताया है।

**अभ्यास**

1. परिभाषा के प्रमुख उद्देश्यों का विवेचन करो।
2. वाद-विवाद में शब्दों की ठीक-ठीक परिभाषा के महत्त्व पर प्रकाश डालो।

## 4. विधेय-धर्म (Predicables)

परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार परिभाषा शाब्दिक नहीं होनी चाहिये, बल्कि वास्तविक होनी चाहिये। इसका स्वरूप गुणार्थक परिभाषा का होना चाहिये। एक शब्द के गुणार्थ में कौन-कौनसे गुण आने चाहियें, इसे स्पष्ट करने के लिए परम्परागत तर्कशास्त्र के विधेय-धर्म (predicables) के सिद्धान्त को स्पष्ट करना आवश्यक है। एक विधानात्मक प्रतिज्ञप्ति में विधेय का उद्देश्य के साथ जो सम्बन्ध हो उसे विधेय-धर्म कहते हैं।

पारफीरी के अनुसार विधेय का उद्देश्य के साथ सम्बन्ध पाँच प्रकार से हो सकता है :

विधेय उद्देश्य का
1. जाति (genus)
या
2. उपजाति (species)
या
3. व्यावर्तक (differentia)
या
4. सहज-धर्म (property)
या
5. आकस्मिक धर्म (accident)
हो सकता है।

इस प्रकार, पारफीरी के अनुसार जाति, उपजाति, व्यावर्तक, सहज-धर्म तथा आकस्मिक धर्म ये पाँच विधेय-धर्म हैं।

**जाति और उपजाति**

जब दो वर्ग इस प्रकार सम्बन्धित हों कि एक वर्ग दूसरे वर्ग में समा जाये तो उनमें से बड़े वर्ग को जाति (genus) और छोटे वर्ग को उपजाति (species) कहते हैं। जैसे, मनुष्य-वर्ग प्राणि-वर्ग के अन्दर आ जाता है। इसलिए, प्राणि-वर्ग मनुष्य-वर्ग की जाति है और मनुष्य-वर्ग प्राणि-वर्ग की एक उपजाति है।

जाति और उपजाति के सम्बन्ध में दो बातें ध्यान में रखनी हैं : (क) जाति और उपजाति दोनों ही वर्ग होते हैं। एक व्यक्ति न तो जाति होता है और न उपजाति। सुकरात न तो जाति है और न उपजाति। (ख) जाति और उपजाति सापेक्ष होते हैं। मनुष्य प्राणी की उपजाति है लेकिन यह भारतीय मनुष्य की जाति है।

**परा जाति** (Summum genus)

वर्गों के एक विशेष क्रम में जो वर्ग सब से अधिक व्यापक हो, उसे सर्वोच्च जाति कहते हैं। सर्वोच्च-जाति में उपजातियाँ होती हैं लेकिन वह किसी की उपजाति नहीं होता। पारफीरी के वृक्ष में द्रव्य सर्वोच्च जाति है।

**निम्नतम जाति** (Infima species)

एक विशेष क्रम में जो जाति सब से छोटी हो, उसे निम्नतम जाति कहते हैं। निम्नतम जाति की कोई उपजाति नहीं होती। पारफीरी के वृक्ष में मानव निम्नतम जाति है।

**समकक्ष जाति** (Co-ordinate species)

एक जाति की जितनी उपजातियाँ होती हैं, वे एक-दूसरे के सम्बन्ध में समकक्ष उपजाति कहलाती हैं।

**पारफीरी का वृक्ष**

जाति और उपजाति के सम्बन्ध को पारफीरी ने निम्नलिखित रूप से प्रकट किया है। इसे पारफीरी का वृक्ष (Tree of Porphyry) कहते हैं :

पारफीरी का वृक्ष
(Tree of Porphyry)
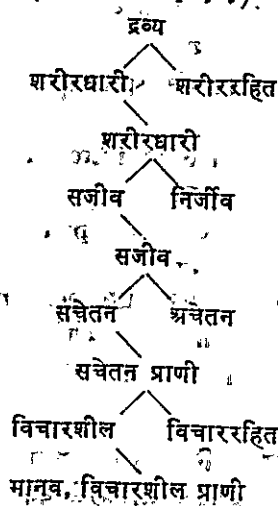
द्रव्य
/ \
शरीरधारी शरीररहित
\
शरीरधारी
/ \
सजीव निर्जीव
\
सजीव
/ \
सचेतन अचेतन
\
सचेतन प्राणी
/ \
विचारशील विचाररहित
\
मानव, विचारशील प्राणी
↓
सुकरात, अरस्तू, राम, मोहन, सोहन, सलीम, आदि

**आसन्न जाति (Proximate genus) और आसन्न उपजाति (Proximate species)**

एक क्रम में जो वर्ग निकटतम रूप से जाति और उपजाति के रूप में सम्बन्धित हों, वे क्रमशः आसन्न जाति और आसन्न उपजाति कहलाते हैं। मनुष्य की आसन्न जाति प्राणि है और प्राणि की आसन्न उपजाति मनुष्य है।

**व्यावर्तक (Differentia)**

जो गुण एक उपजाति को उसकी समकक्ष उपजातियों से पृथक् करता है उसे व्यावर्तक कहते हैं। जैसे, विचारशील होना मानव को अन्य प्राणियों से पृथक् करता है। इसलिए विचारशील होना मानव का व्यावर्तक है।

अरस्तू के अनुसार एक उपजाति के गुणार्थ में जाति-धर्म और व्यावर्तक-धर्म शामिल होते हैं।

**सहज-धर्म (Property)**

जो गुण न तो जाति-धर्म और न व्यावर्तक हो लेकिन इन से निकलता हो उसे सहज-धर्म कहते हैं। सहज-धर्म की अपेक्षा जाति-धर्म और व्यावर्तक अधिक बुनियादी होते हैं। जैसे, 'मरणशीलता' मानव का एक धर्म है। लेकिन उसका इससे अधिक बुनियादी धर्म प्राणि-धर्म है। क्योंकि एक मनुष्य प्राणि है, इसलिए वह मरणशील है। इस प्रकार 'मरणशीलता' प्राणित्व से फलित होने के कारण मानव का सहज-धर्म माना जायेगा। इसी प्रकार त्रिकोण का जाति-धर्म 'रेखाकृति होना' और उसका व्यावर्तक-धर्म तीन सीधी रेखाओं से बँधा होना है। त्रिकोण के जाति-धर्म और व्यावर्तक के सम्मिलित रूप से 'त्रिकोण के तीन कोणों के दो समकोणों के बराबर होने की' विशेषता फलित होती है। इसलिए यह त्रिकोण का सहज-धर्म है।

**आकस्मिक धर्म (Accident)**

जो धर्म किसी जाति के कुछ उदाहरणों में या सभी उदाहरणों में देखा तो जाता हो, लेकिन उस जाति के गुणार्थ से उसका आवश्यक सम्बन्ध न हो, वह आकस्मिक धर्म कहलाता है। निषेधात्मक रूप से हम यह भी कह सकते हैं कि जो धर्म न जाति-धर्म हो, न व्यावर्तक और न सहज-धर्म उसे आकस्मिक धर्म कहते हैं। जैसे, 'गौरवर्ण' मानव का आकस्मिक धर्म है। 'दो टाँगों पर खड़े होकर चलना भी' मानव का आकस्मिक धर्म माना जायेगा क्योंकि इसका मानव के जाति-धर्म और व्यावर्तक से आवश्यक सम्बन्ध नहीं है।

**अभ्यास**

1. परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार विधेय-धर्म किसे कहते हैं तथा कौन-कौन से विधेय-धर्म हैं। स्पष्ट व्याख्या करो।
2. 'जाति, उपजाति तथा सहज-धर्म का अन्तर स्पष्ट करो।

3. 'परा-जाति', 'निम्नतम-जाति', 'आसन्न-जाति' तथा 'सम-कक्ष' जाति शब्दों का अर्थ स्पष्ट करो।
4. 'पारफ़ीरी के वृक्ष' द्वारा जाति, उपजाति का सम्बन्ध स्पष्ट करो।

## 5. परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार परिभाषा का स्वरूप

**जाति-धर्म और अवच्छेदक द्वारा परिभाषा** (Definition per genus et differentium)

परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार किसी पद की परिभाषा का अर्थ उसके गुणार्थ का स्पष्ट और सरल शब्दों में कथन करना है। पद के गुणार्थ में दो धर्म आते हैं, जाति-धर्म और व्यावर्तक। इस प्रकार किसी पद की परिभाषा का अर्थ उसके जाति-धर्म और व्यावर्तक धर्म बताना है। "मनुष्य विचारशील प्राणी है"- यह 'मनुष्य' की परिभाषा है। इसी प्रकार "त्रिभुज वह रेखाकृति है जो तीन सीधी रेखाओं से बँधी हो"- 'त्रिभुज' की परिभाषा है।

## 6. परिभाषा के नियम

परिभाषा के निम्नलिखित नियम हैं :

**1. परिभाषा में परिभाष्य के गुणार्थ का कथन होना चाहिये**

क्योंकि गुणार्थ में केवल जाति-धर्म और व्यावर्तक आते हैं, इसलिए परिभाषा में जाति और व्यावर्तक का कथन होना चाहिये, न उनसे अधिक और न उनसे कम। इससे यह बात भी निकलती है कि परिभाषक परिभाष्य के समव्याप्त हो अर्थात् जहाँ-जहाँ परिभाष्य का प्रयोग होता है, वहाँ-वहाँ बिना किसी दोष के परिभाषक का प्रयोग हो सकता हो। यह नियम निम्नलिखित अवस्थाओं में टूटता है :

(क) जब परिभाषा में केवल जाति-धर्म का कथन हो : जिस परिभाषा में परिभाष्य के जाति-धर्म का ही कथन हो, उसमें अति-व्याप्त दोष होगा अर्थात् वह परिभाषा वहाँ भी लागू होगी जहाँ वह नहीं लागू होनी चाहिये। "मनुष्य प्राणी है", "कुनीन दवा है", "त्रिभुज एक रेखाकृति है", आदि परिभाषाओं में केवल जाति-धर्म का कथन होने के कारण अति-व्याप्ति दोष हैं।

(ख) जब परिभाषा में जाति-धर्म और व्यावर्तक के साथ-साथ सहज-धर्म का भी कथन हो : जो परिभाषा गुणार्थ के लिए सहज-धर्म का कथन करती है, उसमें 'अनावश्यकता' का दोष होता है। परिभाषा के शास्त्रीय स्वरूप के अनुसार अनावश्यक धर्म का कथन दोषपूर्ण है। "मनुष्य मरणशील विचारशील प्राणी है" में मरणशील अनावश्यक है।

(ग) जब परिभाषा में आकस्मिक गुण का कथन हो : आकस्मिक गुण के कथन के कारण या तो अव्याप्त दोष होगा या आकस्मिकता का दोष। यदि परिभाषा में किसी ऐसे गुण का कथन है जो परिभाष्य से निर्देशित कुछ उदाहरणों में मिलता हो और कुछ में नहीं, तो परिभाषा में अव्याप्ति दोष होता है क्योंकि वह परिभाष्य के सभी उदाहरणों पर लागू नहीं होती। "मनुष्य पढ़ा लिखा विचारशील प्राणी है" एक अव्याप्त परिभाषा है क्योंकि यह मनुष्य के सभी उदाहरणों पर नहीं घटती।

जब परिभाषा में ऐसे आकस्मिक गुण का कथन हो जो परिभाष्य से निर्देशित सभी उदाहरणों में मिलता हो, तो आकस्मिक परिभाषा का दोष होता है। "मनुष्य आग से पका भोजन खाने वाला प्राणी है" में आकस्मिक दोष है।

**2. परिभाषा पर्यायवाची (Synonymous) या चक्रक (Circular) नहीं होनी चाहिये**

परिभाष्य पद या उसका कोई पर्यायवाची पद परिभाषक के रूप में प्रयुक्त नहीं होना चाहिये, क्योंकि इससे परिभाष्य के गुणार्थ को समझने में कोई सहायता नहीं होती। यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि जहाँ परिभाषा का उद्देश्य परिभाष्य पद का प्रयोग सिखाना हो, वहाँ पर्यायवाची परिभाषा भी उपयोगी होती है, लेकिन जब परिभाष्य का उद्देश्य परिभाष्य के गुणार्थ का निश्चय करना हो, तब इस प्रकार की परिभाषा बिल्कुल व्यर्थ होती है। 'सद्वृत्त' की परिभाषा के रूप में यदि एक व्यक्ति कहता है कि 'सद्वृत्त' का अर्थ सद्गुण है तो यह 'सद्वृत्त' की पर्यायवाची परिभाषा होगी। क्योंकि 'सद्गुण' शब्द 'सद्वृत्त' की अपेक्षा सरल है, इसलिए, इससे यह तो समझ में आ जायेगा कि जहाँ-जहाँ हम 'सद्गुण' शब्द का प्रयोग करते हैं वहाँ-वहाँ 'सद्वृत्त' शब्द का प्रयोग कर सकते हैं। लेकिन इस परिभाषा से सद्वृत्त के स्वरूप को समझने में सहायता नहीं मिलेगी, क्योंकि सद्गुण का स्वरूप क्या है यह प्रश्न फिर भी बना रहेगा। 'सद्वृत्त सद्गुण है' और 'सद्गुण सद्वृत्त है' इस प्रकार के कथन हमें शब्दों के चक्कर में ही डाले रखते हैं, और विचार का कोई स्पष्टीकरण नहीं करते। इसलिए, इस प्रकार की परिभाषा में चक्रक दोष होता है। कभी-कभी परिभाषा में चक्रक दोष बहुत स्पष्ट नहीं होता। जैसे, "सूर्य वह तारा है जो दिन में चमकता है" सूर्य की चक्रक परिभाषा है, क्योंकि हम 'दिन' की परिभाषा भी 'सूर्य' शब्द के द्वारा ही कर सकते हैं।

**3. जहाँ परिभाषा विधायक शब्दों में हो सके वहाँ यह निषेधात्मक शब्दों में नहीं होनी चाहिये**

इस नियम के तोड़ने पर निषेधात्मक परिभाषा का दोष होता है। निषेधात्मक परिभाषा से परिभाष्य के स्वरूप को समझने में सहायता नहीं मिलती। "हिन्दू वह है जो मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, पारसी नहीं है" 'हिन्दू' की निषेधात्मक परिभाषा है।

इस नियम के कुछ अपवाद भी हैं। जिन पदों का स्वरूप ही निषेधात्मक है, उनकी परिभाषा निषेधात्मक ही हो सकती है, और वह दोषपूर्ण नहीं समझी जायेगी। "अंधेरा स्थान वह स्थान है जहाँ प्रकाश न हो" निषेधात्मक परिभाषा होते हुए भी दोषपूर्ण नहीं समझी जायेगी।

**4. परिभाषा सरल और स्पष्ट शब्दों में होनी चाहिये**

इस नियम में दो बातें निहित हैं :- (क) परिभाषक शब्द अतिकठिन या दुर्बोध नहीं होने चाहिएँ। (ख) परिभाषक शब्द स्पष्ट हों, वे आलंकारिक न हों क्योंकि आलंकारिक भाषा स्पष्ट नहीं होती।

यदि परिभाषा की भाषा आलंकारिक होगी तो उसमें आलंकारिक परिभाषा का दोष होगा।

दुर्बोध परिभाषा का एक उदाहरण हरबर्ट स्पेन्सर की विकास की परिभाषा है : "विकास का अर्थ रचना और क्रिया की अनिश्चित और अव्यवस्थित समरूपता से निश्चित-व्यवस्थित विविधरूपता की ओर विभेदीकरण और क्रमशः संयोजन द्वारा होने वाला परिवर्तन है।"

परिभाषा में प्रयुक्त कोई शब्द दुर्बोध समझा जाये या नहीं, यह इस बात पर निर्भर है कि परिभाषा किन लोगों को ध्यान में रखकर दी गयी है। इसलिए, परिभाषा का दुर्बोध होना तार्किक दृष्टि से उतना दोष नहीं है जितना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से। "एक धर्मी में नानाविरोधी धर्मों का अवग्राही ज्ञान संशय है"—'संशय' की परिभाषा साधारण जन के लिए दुर्बोध है। इसलिए, यदि यह परिभाषा साधारण जन के लिए दी जाये तो इसमें दुर्बोधता का दोष होगा। लेकिन भारतीय न्यायशास्त्र के विद्यार्थी के लिए यह दुर्बोध नहीं। परिभाषक का आलंकारिक होना एक तार्किक दोष है क्योंकि आलंकारिक भाषा परिभाष्य के अर्थ को अस्पष्ट ही नहीं छोड़ देती बल्कि वह भ्रामक भी हो सकती है। "राजा राज्य रूपी जहाज का कप्तान है", राजा की इस परिभाषा में आलंकारिकता का दोष है। इससे इस गलत बात की ध्वनि निकल सकती है कि जिस प्रकार जहाज का कप्तान प्रचलित मार्ग से जहाज को ले जाने में सफल होता है, उसी प्रकार राजा भी प्रचलित मार्ग पर चलकर राज्य की उन्नति कर सकता है।

## 7. परिभाषाओं का परीक्षण

उपर्युक्त नियमों के अनुसार परिभाषा के दोषों की परीक्षा के कुछ उदाहरण नीचे दिये हैं :

1. "राजनीतिज्ञ वह व्यक्ति है, जो संसद सदस्य हो।" राजनीतिज्ञ की यह परिभाषा अव्याप्त परिभाषा है, क्योंकि संसद से बाहर के लोग भी राजनीतिज्ञ हो सकते हैं।

2. राजनीतिज्ञ वह व्यक्ति है जो समाज-सेवा के कार्यों में रुचि रखता हो। यह परिभाषा अतिव्याप्त है, क्योंकि राजनीतिज्ञों के अलावा भी अन्य लोग समाज-सेवा में रुचि रखते हैं।

3. "राजनीतिज्ञ वह व्यक्ति है जो राजनीति की चालों को जानता हो।" इस परिभाषा में पर्यायवाची परिभाषा या चक्रक परिभाषा का दोष है क्योंकि इसमें परिभाषक के रूप में कुछ परिवर्तन के साथ परिभाष्य का प्रयोग किया है। यह परिभाषा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कुछ उपयोगी होते हुए भी तार्किक दृष्टि से बिल्कुल अनुपयुक्त है।

4. "दिगम्बर जैन वे लोग हैं जो श्वेताम्बर नहीं हैं।" इस परिभाषा में निषेधात्मक परिभाषा का दोष है, इससे दिगम्बर जैन की विशेषताओं का कुछ पता नहीं चलता।

5. "परमात्मा प्रेम का रूप है।" यह परिभाषा अस्पष्ट है। इसमें आलंकारिक भाषा का प्रयोग है। 'प्रेम' शब्द भी यहाँ उतना ही अस्पष्ट है जितना 'परमात्मा'। इसलिए इस परिभाषा में आलंकारिकता का या अस्पष्टता का दोष है।

6. 'सत्य' सत्य कथनों की विशेषता है। इस परिभाषा में चक्रकता का दोष स्पष्ट है।

7. कार्य वह है जो अपने अभाव का प्रतियोगी हो।

इस परिभाषा में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दुर्बोधता का दोष है क्योंकि साधारण व्यक्ति की समझ में 'कार्य' का अर्थ तो आता भी है लेकिन 'प्रतियोगी' शब्द का अर्थ तो वह बिल्कुल ही नहीं जानता। लेकिन भारतीय न्यायशास्त्र के विद्यार्थी के लिए यह परिभाषा दोषरहित समझी जायेगी।

8. समाजवादी राज्य वह राज्य है जिसमें पूँजी का अधिक भाग राज्य के अधीन हो।

यह परिभाषा अस्पष्ट है क्योंकि इसमें 'अधिक भाग' का अर्थ स्पष्ट नहीं है।

9. समाज सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था है।

यह परिभाषा 'समाज' शब्द के अर्थ को कुछ स्पष्ट करती है। लेकिन 'सामाजिक सम्बन्ध' का स्पष्टीकरण 'समाज' के अर्थ के स्पष्टीकरण की अपेक्षा रखता है। अतः यह परिभाषा कुछ उपयोगी होते हुए भी चक्रक परिभाषा के दोष से दूषित है।

10. 'निद्रा' का अर्थ अभाव प्रत्यय का अवलम्बन करने वाली वृत्ति है।

निद्रा की यह परिभाषा योगशास्त्र में दी है। साधारण व्यक्ति के लिए यह परिभाषा दुर्बोध परिभाषा समझी जायेगी। लेकिन योगशास्त्र के विद्यार्थी के लिए यह निश्चित और स्पष्ट परिभाषा मानी जायेगी।

## अभ्यास

निम्नलिखित परिभाषाओं का मूल्यांकन करें :

1. सच्चरित्र व्यक्ति वह है जिसका चरित्र अच्छा हो।
2. भारतीय भारतवर्ष का वह नागरिक है जो साम्राज्यवाद का विरोधी हो।
3. असामान्य व्यक्तित्व वह है जो सामान्य न हो।
4. पाप वह कर्म है जो व्यक्ति को नरक में डाले।
5. सुख सुखानुभूति है।
6. धर्म व्यक्ति की आन्तरिक उन्नति की चेष्टा है।
7. "जो प्रवृत्ति व्यक्तिगत हानि होने की आशंका होने पर भी, और बाधाओं के विरोध में भी, किसी आदर्श लक्ष्य को पाने के लिए जारी रखी जाती है, और जिसके पीछे यह विश्वास हो कि वह सामान्य और स्थायी उपयोगितावादी है वह स्वरूप में धार्मिक है।" जॉन डेवी।
8. साम्यवाद एक राजनीतिक विचारधारा है जो पूँजीवाद की विरोधी है।

9. मनुष्य आदतों की गठरी है।

10. आन्तरिक सम्बन्धों का बाह्य सम्बन्धों से निरन्तर होने वाला समायोजन जीवन है।

11. जगत् माया है।

12. दर्शनशास्त्र घोर अन्धकार में अन्धे व्यक्ति द्वारा ऐसी काली बिल्ली की खोज है जो वास्तव में है ही नहीं।

13. युद्ध शान्ति का अभाव है।

14. समाज एक यान्त्रिक तन्त्र है।

15. न्याय अन्तरात्मा की पुकार है।

16. अनुमान विचार की प्रक्रिया है।

17. निर्णय ज्ञान की क्रिया है।

18. अहिंसा परम धर्म है।

19. फासिज्म नौकरशाही है।

20. व्यक्ति सामाजिक सम्बन्धों का पुंज है।

# 5

# दोष (युक्ति)

'दोष' शब्द का प्रयोग युक्ति के दोष अथवा दोषपूर्ण युक्ति के लिए किया जाता है। लेकिन शास्त्रीय दृष्टि से प्रत्येक दोषपूर्ण युक्ति को 'दोष' की संज्ञा नहीं दी जाती। जो युक्ति गलत होते हुए भी प्रभावोत्पादक हो सके उसे शास्त्रीय दृष्टि से दोष कहते हैं।

दोषों का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया जाता है। एक प्रसिद्ध वर्गीकरण के अनुसार दोषों के पहले दो वर्ग किये जाते हैं : (1) आकारिक दोष, (2) अनाकारिक दोष। अनाकारिक दोषों के फिर दो वर्ग कर दिये जाते हैं : संगति दोष और भाषागत दोष। आकारिक दोष वे हैं जो युक्ति के आकार सम्बन्धी नियमों की अवहेलना के कारण पैदा होते हैं। इन्हें हम अनुमान के भिन्न-भिन्न प्रकारों के सन्दर्भ में बतायेंगे। इस अध्याय में केवल अनाकारिक दोषों की व्याख्या करेंगे।

## भाषागत दोष

पिछले अध्याय में हम इस बात की ओर संकेत कर चुके हैं कि भाषा जहाँ विचारों को व्यक्त करने का साधन है, वहाँ यह विचारों को अस्पष्ट रखने, उनके वास्तविक स्वरूप को छुपाने का साधन भी बन जाती है। जहाँ भाषा के कुशल कारीगर अपने गलत तर्कों को भ्रामक शब्दों तथा अस्पष्ट भाषा द्वारा प्रभावोत्पादक बनाने में सफल हो जाते हैं, वहाँ भाषा का ठीक-ठीक प्रयोग न करने के कारण एक व्यक्ति जाने-अनजाने दोषपूर्ण चिन्तन कर बैठता है। तर्क के सम्बन्ध में भाषागत दोष शब्दों की अस्पष्टता या अनेकार्थकता तथा वाक्य-रचना की अस्पष्टता के कारण होते हैं। भाषागत दोष निम्नलिखित हैं :

1. अनेकार्थक दोष (Fallacy of equivocation)
2. वाक्य-छल (Fallacy of amphiboly)
3. पदाघात दोष (Fallacy of accent)
4. संग्रह दोष (Fallacy of composition)
5. विग्रह दोष (Fallacy of division)

### 1. अनेकार्थक दोष

जिस शब्द के एक से अधिक अर्थ हों उसे अनेकार्थक शब्द कहते हैं। एक युक्ति में यदि एक शब्द का प्रयोग एक से अधिक स्थानों पर हो, तो उसका अर्थ हर स्थान पर एक ही होना चाहिये, उसमें कोई अन्तर नहीं आना चाहिये। जिस युक्ति में एक ही शब्द का प्रयोग भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न अर्थों में हो उसमें अनेकार्थक दोष होता है।

कुछ शब्दों के अर्थ तो अनेक होते हैं, लेकिन उनका आपसी भेद इतना स्पष्ट होता है कि उनमें भ्रान्ति की कोई सम्भावना नहीं होती। जैसे द्विज का अर्थ ब्राह्मण है और पक्षी भी। लेकिन एक ही युक्ति में 'द्विज' शब्द का प्रयोग इन दो अर्थों में करने की ग़लती शायद ही कभी किसी से हो। लेकिन ऐसे शब्दों को लेकर भी अनेकार्थक दोष के उदाहरण पाठ्य-पुस्तकों में देने की परम्परा है। इसका एक उदाहरण निम्नलिखित है :

**उदाहरण 1** द्विज यज्ञोपवीत पहनते हैं।
पक्षी द्विज होते हैं।
∴ पक्षी यज्ञोपवीत पहनते हैं।

यह युक्ति वास्तव में हास्यास्पद है और व्यवहार में शायद इस प्रकार का तर्क कोई न देता हो। लेकिन कुछ अनेकार्थक शब्द ऐसे होते हैं कि उनके भिन्न-भिन्न अर्थों का भेद बहुत स्पष्ट नहीं होता। इसलिए, एक विचारक एक ही युक्ति में एक शब्द के एक अर्थ से उसके अन्य अर्थ पर पहुँचने की ग़लती कर बैठता है। जाति, समाजवाद, धर्म, आत्मा, महात्मा, आदि शब्द अनेकार्थक शब्द हैं। इन शब्दों के प्रयोग में सावधानी न रखने पर अनेकार्थक दोष हो सकता है।

**उदाहरण 2.** जिस प्रकार गीदड़ जाति सिंह जाति से भिन्न है, उसी प्रकार शूद्र जाति क्षत्रिय जाति से भिन्न है।

जिस प्रकार गीदड़ का बच्चा कभी सिंह के बच्चे की बराबरी नहीं कर सकता, उसी प्रकार शूद्र का बच्चा क्षत्रिय बच्चे की बराबरी नहीं कर सकता।

**व्याख्या :** इस युक्ति में 'जाति' शब्द के प्रयोग के कारण अनेकार्थक दोष है। 'जाति' शब्द का पशुओं की भिन्न-भिन्न जाति के रूप में जो अर्थ हैं, वही अर्थ हिन्दू समाज में मनुष्यों की जाति के रूप में नहीं हैं।

**उदाहरण 3.** मार्क्सवाद का लक्ष्य समाजवाद है।
गांधीवाद का लक्ष्य भी समाजवाद है।
∴ गांधीवाद और मार्क्सवाद दोनों का लक्ष्य एक ही है।

यहाँ समाजवाद शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थों में भेद की ओर ध्यान नहीं दिया।

**उदाहरण 4.** धर्म के आचरण के बिना मनुष्य पशु के समान है।
चोटी रखना हिन्दू का धर्म है।
∴ जो हिन्दू चोटी नहीं रखते वे पशु के समान हैं।

**व्याख्या :** इस युक्ति में "धर्म" शब्द का भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग करने के कारण अनेकार्थ दोष हुआ है। पहले वाक्य में "धर्म" शब्द का अर्थ नैतिकता लिया है तो अन्तिम वाक्य में "धर्म" शब्द का अर्थ वेषभूषा।

**उदाहरण 5.** गांधी जी महात्मा थे।
महात्मा गेरुआ वस्त्र पहनते हैं।
∴ गांधी जी गेरुआ वस्त्र पहनते थे।

**व्याख्या :** यहाँ "महात्मा" शब्द को पहले महान् आत्मा के अर्थ में लिया है तो दूसरी बार संन्यासी के अर्थ में।

**2. वाक्य-छल**

जिस वाक्य की रचना ऐसी हो कि उसके भिन्न-भिन्न अर्थ लगाये जा सकते हों, उसमें वाक्य-छल होता है।

**उदाहरण 1.** भागो मत लड़ो।

इस वाक्य की रचना स्पष्ट नहीं है क्योंकि इसमें यह स्पष्ट नहीं है कि 'मत' का सम्बन्ध 'भागो' के साथ है अथवा 'लड़ो' के साथ।

**उदाहरण 2.** आज वर्षा होगी या बादल छाये रहेंगे और ठण्डी हवा चलेगी।

इस वाक्य में 'या' का प्रयोग अस्पष्ट होने के कारण इसके निम्नलिखित दो अर्थ किये जा सकते हैं :

(क) आज वर्षा होगी,
या
बादल छाये रहेंगे और ठण्डी हवा चलेगी

(ख) आज वर्षा होगी या बादल छाये रहेंगे,
और
ठण्डी हवा चलेगी।

**उदाहरण 3.** यदि मोहन ने समझदारी से काम लिया तो मोहन जीतेगा और अन्य लोगों को कोई लाभ नहीं होगा।

इस वाक्य की रचना से यह स्पष्ट नहीं है कि मोहन के समझदारी से काम लेने पर क्या केवल मोहन का जीतना आश्रित है अथवा मोहन का जीतना और अन्य लोगों को कोई लाभ न होना दोनों बातें आश्रित हैं।

**उदाहरण 4.** शिकारी ने गड्ढे में गिरने पर शेर को गोली मार दी।

इस वाक्य की रचना से यह स्पष्ट नहीं है कि शिकारी गड्ढे में गिरा अथवा शेर गड्ढे में गिरा।

**उदाहरण 5.** तीन और चार को दुगुना करो।

इस वाक्य के दो अर्थ हो सकते हैं :

(क) तीन को दुगुना करो और चार को दुगुना करो।

(ख) तीन और चार के योग को दुगुना करो।

### 3. पदाघात दोष

जिस वाक्य के भिन्न-भिन्न शब्दों पर बल देकर उच्चारण करने से भिन्न-भिन्न अर्थ निकलते हों, उस वाक्य में पदाघात दोष होता है।

**उदाहरण 1.** तोबा तोबा शराब से तोबा।

इस वाक्य का साधारण उच्चारण शराब का निन्दासूचक अर्थ देता है। लेकिन इसी वाक्य का उच्चारण विस्मय बोधक ढंग से (तोबा तोबा शराब से तोबा !) किया जाये तो अर्थ निकलेगा कि शराब भी कोई तोबा की चीज है।

**उदाहरण 2.** तुम राम के विरुद्ध गवाही दोगे।

इस वाक्य का साधारण ढंग से उच्चारण करने पर यह अर्थ निकलेगा कि तुम्हें राम के विरुद्ध गवाही देने का मेरा आदेश है। लेकिन प्रश्न बोधक ढंग से उच्चारण भेद के अनुसार इसके दो और अर्थ निकल सकते हैं। 'राम' पर बल देकर प्रश्न-सूचक ढंग से उच्चारण करने पर (तुम राम के विरुद्ध गवाही दोगे ?) इसका यह अर्थ निकलेगा कि तुम्हें राम के विरुद्ध गवाही नहीं देनी चाहिये, हाँ अन्य किसी के विरुद्ध गवाही दे सकते हो। इसी वाक्य के 'विरुद्ध' शब्द पर बल देकर उच्चारण करने पर (तुम राम के विरुद्ध गवाही दोगे ?) इसका यह अर्थ निकलेगा कि तुम्हें राम के विरुद्ध गवाही नहीं देनी चाहिये बल्कि उसके पक्ष में गवाही देनी चाहिये।

**अनेकार्थ दोष, वाक्य-छल दोष तथा पदाघात दोष की तुलना**

ये तीनों दोष अर्थ की अस्पष्टता या अनेकार्थता के दोष हैं। इनमें से अनेकार्थ दोष एक शब्द के विभिन्न अर्थों के कारण होता है। 'रामसिंह पंजाबी है', इस वाक्य के दो अर्थ पंजाबी शब्द के दो अर्थों के कारण होंगे: (क) रामसिंह पंजाबी राज्य का रहने वाला है, और (ख) रामसिंह पंजाबी वंश-परम्परा का है। क्योंकि यहाँ पर एक ही वाक्य के दो अर्थ उसमें प्रयुक्त एक शब्द के दो अर्थों के कारण हैं, इसलिए इसमें अनेकार्थ दोष अथवा अस्पष्टार्थ दोष है। वाक्य-छल दोष एक वाक्य में प्रयुक्त किसी शब्द के अनेकार्थ होने के कारण नहीं होता बल्कि वाक्य की रचना के कारण होता है। जहाँ पदाघात दोष होता है वहाँ न तो किसी शब्द का अर्थ अस्पष्ट होता है और न वाक्य की रचना ही भ्रामक होती है। वहाँ वाक्य के शब्दों पर अलग-अलग ढंग से बल देकर उच्चारण करने पर उससे अलग-अलग अर्थ निकलते हैं। अनेकार्थ दोष तो तर्क का दोष है, लेकिन वाक्य-छल और पदघात दोष वास्तव में संवाद के दोष हैं।

### 4. संग्रह दोष

समुदाय या संगठन की विशेषताएँ उनको बनाने वाली इकाइयों या अंगों की विशेषताओं से भिन्न होती हैं। एक हॉकी की टीम भिन्न-भिन्न खिलाड़ियों से बनती है लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि टीम की विशेषता भी भिन्न-भिन्न खिलाड़ियों की विशेषताओं के जोड़ से बनी हो। यह हो सकता है कि विश्वविद्यालय की हॉकी टीम में जो खिलाड़ी हों उनमें से प्रत्येक अपने विद्यालय का सबसे अच्छा खिलाड़ी हो, लेकिन

फिर भी टीम बहुत अच्छी न हो। टीम का अच्छा होना प्रत्येक खिलाड़ी के अच्छा होने के साथ-साथ खिलाड़ियों के अनुशासन, उनके आपस में तालमेल और इकट्ठे अभ्यास पर निर्भर करता है। इसलिए, यदि हम इस बात से कि टीम का प्रत्येक सदस्य अच्छा खिलाड़ी है, यह अनुमान लगाने लगें कि टीम अच्छी है तो यह अनुमान दोषपूर्ण होगा। जब हम एक संगठन के अवयवों के गुण-धर्मों से संगठन के गुण-धर्मों का अनुमान लगाते हैं, तो संग्रह दोष होता है। इसके कुछ अन्य उदाहरण निम्नलिखित हैं :

**उदाहरण 1.** इस मशीन का प्रत्येक पुर्जा हल्का है।
∴ यह मशीन हल्की है।

मशीन के प्रत्येक पुर्जे के हल्के होने पर भी, मशीन भारी हो सकती है।

**उदाहरण 2.** यह रस्सा कच्चे धागों से बना है, इसलिए यह कच्चा है।

**उदाहरण 3.** पंचायत के किसी एक सदस्य को गांव वालों पर कोई टैक्स लगाने का अधिकार नहीं है।
∴ पंचायत को गांव वालों पर कोई टैक्स लगाने का अधिकार नहीं है।

**उदाहरण 4.** 3 विषम संख्या है और 2 समसंख्या है।
5, 3 और 2 का जोड़ है।
∴ 5 सम और विषम दोनों हैं।

**उदाहरण 5.** क्योंकि इस पिक्चर का प्रत्येक दृश्य कलात्मक दृष्टि से पूर्ण है।
∴ यह पिक्चर कलात्मक दृष्टि से पूर्ण है।

संग्रह दोष का एक दूसरा रूप और है। यह एक पद के व्यष्टिवाचक रूप और समष्टिवाचक रूप के कारण होता है। कमरे की सब कुर्सियाँ लकड़ी की बनी हैं—इस वाक्य में प्रत्येक कुर्सी के बारे में यह बताया गया है कि वह लकड़ी की बनी है। लेकिन जब हम कहते हैं कि "इस कमरे की सब कुर्सियों का मूल्य एक हजार रुपया है" तो इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक कुर्सी का एक हजार रुपया मूल्य है, बल्कि यह है कि सब कुर्सियों का इकट्ठा मूल्य एक हजार रुपया है। जब आधारिका में एक पद का व्यष्टिवाची प्रयोग हो और निष्कर्ष में उसका समष्टिवाची या समूहवाची प्रयोग हो तो भी संग्रह-दोष होता है।

**उदाहरण 6.** प्रेमचन्द का प्रत्येक उपन्यास एक दिन में पढ़ा जा सकता है।
∴ प्रेमचन्द के सब उपन्यास एक दिन में पढ़े जा सकते हैं।

इस तर्क के निष्कर्ष के दो अर्थ हो सकते हैं :

(क) प्रेमचन्द का प्रत्येक उपन्यास एक दिन में पढ़ा जा सकता है।

(ख) प्रेमचन्द के सब उपन्यासों के पूरे ढेर को एक दिन में पढ़ कर समाप्त किया जा सकता है।

यदि इस तर्क में निष्कर्ष का पहला अर्थ लिया जाये तो तर्क ही नहीं बनता क्योंकि फिर तो एक ही बात को दुहराना होगा और यदि इसका दूसरा अर्थ लिया जाये तो इसमें संग्रह दोष होगा ।

उदाहरण 7. कक्षा का कोई विद्यार्थी दस किलो दूध नहीं पी सकता ।
∴ कक्षा के सब विद्यार्थी दस किलो दूध नहीं पी सकते ।

उदाहरण 8. इस टीम के प्रत्येक खिलाड़ी का कद 6 फुट है ।
इस टीम में दस खिलाड़ी हैं ।
∴ इस टीम का कद 60 फुट है ।

यह ठीक है कि टीम दस खिलाड़ियों से बनी है, लेकिन एक खिलाड़ी के ऊपर दूसरे खिलाड़ी को खड़ा कर टीम नहीं बनती । लेकिन इस तर्क का निष्कर्ष इसी भ्रान्ति पर आधारित है ।

5. **विग्रह-दोष**

विग्रह-दोष संग्रह-दोष का विपरीत है । इसके भी दो रूप हैं । इस दोष का एक रूप वह है जिसमें एक संगठन के गुण से उसके एक अंग के गुण का अनुमान लगाया जाता है । इसका दूसरा रूप वह है जिसमें पद के समूह-वाची अर्थ से हम उसके व्यष्टि-वाची अर्थ पर पहुँच जाते हैं ।

विग्रह दोष के पहले रूप के उदाहरण :

उदाहरण 1. राम, मोहन और सोहन की सहकारी फर्म का दीवाला निकल गया है ।
∴ राम का दीवाला निकल गया है ।

यह आवश्यक नहीं है कि राम का उद्योग-धन्धा केवल 'राम-मोहन सोहन फर्म' ही हो । उसका अपना भी व्यवसाय हो सकता है ।

उदाहरण 2. राम, मोहन, सोहन, राधा और शीला को सामूहिक गान में प्रथम पुरस्कार मिला ।
∴ राम को सामूहिक गान में प्रथम पुरस्कार मिला ।

इस युक्ति का निष्कर्ष इतना ही अर्थहीन है जितना कि निम्नलिखित युक्ति का ।

उदाहरण 4 भारतवासियों की औसत आयु 30 वर्ष है ।
राम भारतवासी है ।
∴ राम की औसत आयु 30 वर्ष है ।
औसत समूह का होता है, व्यक्ति का नहीं ।

विग्रह के दूसरे रूप के उदाहरण :

उदाहरण 5. कक्षा के सब विद्यार्थियों ने सौ रुपया चन्दा दिया ।
राम कक्षा का विद्यार्थी है ।
∴ राम ने सौ रुपया चन्दा दिया ।

उदाहरण 6. प्रेमचन्द की पुस्तकें एक दिन में नहीं पढ़ी जा सकतीं।
'गोदान' प्रेमचन्द की पुस्तक है।
∴ 'गोदान' एक दिन में नहीं पढ़ा जा सकता।

अभ्यास

1. निम्नलिखित में जिन शब्दों के कारण अनेकार्थ दोष है उन्हें पहचानो और दोष की व्याख्या करो।

(क) सभी मनुष्य बुद्धिमान् हैं।
राम मनुष्य है।
∴ राम बुद्धिमान् है।

(ख) आजकल शिक्षकों का वेतन-वृद्धि के लिए आन्दोलन चल रहा है।
साधु-सन्त समाज के शिक्षक हैं।
∴ आजकल साधु-सन्तों का वेतन-वृद्धि के लिए आन्दोलन चल रहा है।

2. धर्म, समाज, साधु, स्वतन्त्रता, समाजवाद, न्याय, कर्तव्य, शब्दों के अर्थ पर विचार करें। क्या ये शब्द अस्पष्ट हैं? प्रत्येक शब्द के अनेकार्थ दोष का एक-एक नया उदाहरण सोचें।

3. निम्नलिखित युक्तियों तथा संवादों पर विचार करें और उनमें जो भाषा-सम्बन्धी दोष हो उसकी व्याख्या करें।

(क) इस रेजिमैन्ट के सभी सैनिक बलवान् हैं।
∴ यह रेजिमैन्ट बहुत शक्तिशाली है।

(ख) भारत कर्ज से लदा हुआ है।
राम भारतीय है।
∴ राम कर्ज से लदा हुआ है।

(ग) प्रत्येक पागल व्यक्ति को पागलखाने भेज देना चाहिये।
मोहन तो आज अपनी पत्नी की दुर्दशा देखकर क्रोध में पागल हो गया।
∴ मोहन को पागलखाने भेज देना चाहिये था।

(घ) जो लोग अपने ही विचारों में डूबे रहते हैं, वे पागल होते हैं।
दार्शनिक अपने ही विचारों में डूबे रहते हैं।
∴ दार्शनिक पागल होते हैं।

(ङ) कर्म प्रत्येक जीवित प्राणी का स्वभाव है।
∴ मनुष्यों को अपने कर्म के विषय में चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है।

(च) धन, यश और सुसन्तति मनुष्य के सुख हैं और मनुष्य इन्हें चाहता है।
∴ मनुष्य सुख चाहता है।

## वे दोष जो भाषा पर आश्रित नहीं हैं

1. **दयामूलक युक्ति** (Argumentum ad misericordiam—appeal to pity)

जब श्रोता के मन में दया जाग्रत् कर उससे कोई बात मनवाने का प्रयत्न किया जाये, तब यह दोष होता है। मान लो एक छोटे सरकारी कर्मचारी पर रिश्वत लेने का अभियोग हो। यदि वह प्रमाण के आधार पर अपने को निर्दोष सिद्ध करने की अपेक्षा केवल यह कहे कि वह बहुत ग़रीब है, उसके छोटे-छोटे बच्चे हैं और इस प्रकार अपने अफसर के मन को दया से द्रवित करने का प्रयास करे, तब उसके कथनों में दयामूलक दोष होता है। जब सुकरात पर युवा पीढ़ी को गुमराह करने का अभियोग लगाया गया, तो वह भी न्यायधीशों के सामने बिलखती हुई पत्नी और बच्चों को उपस्थित कर उनके हृदय को पिघलाकर बचने का प्रयास कर सकता था। लेकिन उसने ऐसा करने से साफ इनकार कर दिया क्योंकि उसका उद्देश्य सत्य स्थापित करना था और वह तर्क के द्वारा हो सकता था, न्यायाधीशों के मन में करुणा जाग्रत् करके नहीं।

2. **मुष्टि-दोष** (Argumentum ad baculum—appeal to force)

जब एक व्यक्ति को भयभीत करके, उसे मुक्का दिखाकर उससे किसी बात को मनवाने का प्रयास किया जाये, तो मुष्टि-दोष होता है। कभी-कभी तो प्रत्यक्ष रूप से भय दिखाकर बात मनवाने का प्रयास किया जाता है। जब एक गुण्डा अपने विरुद्ध गवाही देने को तैयार लोगों को पिस्तौल दिखाकर उन्हें ऐसा करने का अनौचित्य समझाने का प्रयत्न करे तो वह प्रत्यक्ष रूप से उन्हें भय दिखाता है। लेकिन जब एक अफसर अपने अधीन कर्मचारी के मनोबल को केवल इतना कहकर तोड़ता है कि "याद रखिये तुम्हारी वार्षिक रिपोर्ट मैंने ही लिखनी है" तो वह भी भय दिखाकर ही अपनी बात मनवाना चाहता है। बड़े-बड़े राष्ट्र छोटे-छोटे राष्ट्रों को अपने पक्ष में लाने के लिए कभी-कभी मुष्टि-युक्ति का सहारा लेते हैं। मुष्टि-युक्ति का सामान्य रूप यह है: यदि तुमने हमारी बात न मानी तो तुम्हें बहुत हानि उठानी पड़ेगी।

3. **लोकोत्तेजक युक्ति** (Argumentum ad populum)

जब जनता में व्याप्त प्रेम, घृणा, श्रद्धा, द्वेष, आदि भावों को जाग्रत् कर उनसे असम्बन्धित किसी बात को उनके हृदय में बैठाने का प्रयत्न किया जाये, तब लोकोत्तेजक युक्ति दोष होता है। जन-समूह में जो भाषण दिये जाते हैं, उनमें तर्क-बल कम होता है और भावोत्तेजन अधिक। जब जन-समूह भावावेश में हो तो वह वक्ता के कथन की सत्यता-असत्यता की ओर ध्यान नहीं देता, और उसे स्वीकार करने के लिए तत्पर होता है। भाषणों में प्रायः लोकोत्तेजक दोष होता है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं:

**उदाहरण 1.** प्यारे भाइयो और बहिनो, आप रोज अखबारों में पढ़ते हो कि इस सरकार के शासन में गुण्डागर्दी बढ़ती जा रही है। दिनदहाड़े राहगीरों को लूट लिया जाता

है, स्त्रियों की इज्जत लूट ली जाती है। क्या आप चाहते हैं कि भ्रष्टाचार और गुण्डागर्दी चलती रहे। यदि नहीं, तो आप अपना कीमती वोट मुझे देकर मेरे हाथ मजबूत करें।

**उदाहरण 2.** जो लोग हिन्दी की अपेक्षा अंग्रेजी को अधिक महत्त्व देते हैं, वे इस बात को नहीं समझते कि जिस आसन पर उन्हें अपनी माता को बैठाना चाहिये, उस पर वे 'गोरी फुलझड़ी' को बैठाने का प्रयास करते हैं।

**उदाहरण 3.** जो लोग कहते हैं कि विज्ञान की उत्पत्ति पश्चिम में हुई उन्हें भारतीय ज्ञान-भण्डार का पता नहीं। हमारे वेद-शास्त्रों में कौनसा ज्ञान नहीं है ?

**उदाहरण 4.** विवाह को पवित्र सम्बन्ध मानना पुराणपन्थी लोगों की बात है। प्रगतिवादी तो उसे एक सामाजिक कर्म मानते हैं जिसे तोड़ने में न कोई पाप है और न कोई बुराई।

विज्ञापनों में भी लोकोत्तेजक दोष होता है। साबुन के विज्ञापन में किसी सुन्दरी के चित्र का तार्किक औचित्य हो सकता है। लेकिन रेडियो, साइकिल, कार, के विज्ञापनों में सुन्दरियों के चित्र की कोई तार्किक संगति नहीं होती। ये विज्ञापन जनता में भावों को उत्तेजित कर वस्तु की उपयोगिता का महत्त्व समझाने का प्रयास करते हैं।

### 4. लांछन युक्ति (Argumentum ad hominem)

लांछन युक्ति का प्रयोग किसी व्यक्ति के कथन का खण्डन करने के लिए किया जाता है। जब किसी व्यक्ति के सिद्धान्त या कथन का खण्डन करने के लिए उस व्यक्ति के व्यक्तित्व के दोषों का कथन किया जाये तब लांछन युक्ति दोष होता है। इस युक्ति का सामान्य रूप निम्नलिखित है :

यह कथन अ (कोई व्यक्ति विशेष) का कथन है।
अ ऐसा व्यक्ति (भ्रष्ट, दुराचारी, झूठा, आदि) है।
∴ यह कथन असत्य है।

इस युक्ति-दोष के दो रूप हैं :
(क) निन्दापरक और
(ख) परिस्थितिपरक।

लांछन युक्ति (निन्दापरक) : जब किसी व्यक्ति के मत, विश्वास, सिद्धान्त अथवा कथन का तर्कपूर्ण ढंग से खण्डन न करके उस व्यक्ति के बारे में घृणा उत्पन्न करने वाली बात कहें अथवा सीधे ही उसकी निन्दा करें, तब हम निन्दापरक लांछन युक्ति का सहारा लेते हैं। इस प्रकार की युक्ति मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रभावोत्पादक हो जाती है क्योंकि जब एक व्यक्ति के बारे में घृणा उत्पन्न हो जाये, तो उसके कथनों से भी घृणा हो सकती है। लेकिन हम एक व्यक्ति को पसन्द करते हैं अथवा नापसन्द करते हैं, इस बात का उसके कथनों की सत्यता या असत्यता से कोई तार्किक सम्बन्ध नहीं होता।

**उदाहरण 1.** राम के इस कथन को कि देश का हित समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में ही है हम कैसे ठीक मान सकते हैं, क्योंकि वह तो शराबी और जुआरी है ।

**उदाहरण 2.** बेकन के दर्शन का क्या महत्त्व हो सकता है ? क्योंकि उसे तो बेईमानी के अपराध के कारण कुलपति का पद छोड़ना पड़ा था।

**उदाहरण 3.** चार्वाक् तो ऐयाशी थे । इसलिए उनके दर्शनशास्त्र में क्या गम्भीरता हो सकती है ?

**उदाहरण 4.** खाते हो मांस-मछली और पीते हो मदिरा और व्याख्या करने चले हो शंकर-वेदान्त की ?

**उदाहरण 5.** (क) कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दू-शास्त्रों में गोमांस को भोज्य बताया है ।

(ख) अरे भाई उन लोगों की बात न करो । ये तो वे ही लोग हैं, जिनके मुँह गोमांस से सने रहते हैं और जो हिन्दू-समाज को समाप्त करना चाहते हैं ।

(ख) लांछन युक्ति (परिस्थितिपरक) :— जब हम एक व्यक्ति के कथन का खण्डन उस व्यक्ति की स्थिति की ओर ध्यान आकर्षित करके करना चाहते हैं, तब यह दोष होता है । इस प्रकार के दोष के स्पष्ट उदाहरण तब हमारे सामने आते हैं, जब हम एक व्यक्ति के कथन का खण्डन करने के लिए यह दिखाना चाहें कि उसकी करनी और कथनी में विरोध है अथवा आज वह जो बात कहता है, कल उससे विपरीत बात कहता था ।

**उदाहरण 1.** आप यह बात कैसे कह सकते हो कि शिकार का खेल बुरा है, क्योंकि आप तो खुद मांसाहारी हो ।

**उदाहरण 2.** चार्वाक् अनुमान को प्रमाण नहीं मानते । उनका कहना है कि अनुमान का आधार व्याप्ति है और व्याप्ति में शंका सदा रहेगी । उनके मत का खण्डन करने के लिए नैयायिकों का एक तर्क निम्नलिखित है :

जब चार्वाक् को धुँआ पैदा करना हो, तो वह भी आग की खोज करता है । फिर वह कैसे कह सकता है कि आग और धुएँ की व्याप्ति में उसे सन्देह है ?

**उदाहरण 3.** जवाहरलाल के इस कथन के खण्डन में कि "कुर्सी' दुःखों का स्रोत है केवल इस बात की ओर ध्यान दिलाना पर्याप्त समझता हूँ कि वे मृत्यु पर्यन्त 'कुर्सी' से चिपके रहे ।

**उदाहरण 4.** जब भारत में गौओं की दुर्दशा है तो हिन्दुओं के इस कथन का क्या मूल्य है कि "गौ हमारी माता है" ।

**उदाहरण 5.** आप खुद तो सिगरेट पीते हो, तो आपका यह कहना कैसे सच हो सकता है कि सिगरेट पीना हानिकारक है ।

इन उदाहरणों में आक्षेप व्यक्ति पर ही होता है । लेकिन इनमें व्यक्ति की सीधे रूप से निन्दा नहीं की जाती बल्कि व्यक्ति की कथनी और करनी में विरोध

दिखाकर उसके किसी कथन का खण्डन किया जाता है । ध्यान देने की बात यह है कि एक व्यक्ति की कथनी और करनी में विरोध प्रदर्शित करने से केवल यह तो प्रमाणित होता है कि उसके चरित्र में एक प्रकार का दोष है, लेकिन इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि उसका कथन असत्य है ।

5. **श्रद्धामूलक युक्ति** (Argumentum ad verecundiam or appeal to authority)

यह दोष एक दृष्टि से पूर्व-दोष के समान है । लेकिन इसमें उद्देश्य किसी विश्वास, विचार, सिद्धान्त या कथन की सत्यता प्रमाणित करना होता है और उसके लिए उस सिद्धान्त के मानने वाले व्यक्ति के बारे में श्रद्धा उत्पन्न करने वाली बातें कही जाती हैं । इसका रूप निम्नलिखित है :

यह कथन अ (विशेष व्यक्ति) का कथन है ।
अ ऐसा (योग्य, साधु, महात्मा, तपस्वी, महान्, आदि) व्यक्ति है ।
∴ यह कथन सत्य है ।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि एक व्यक्ति के कथन की प्रामाणिकता तब अधिक मान्य हो जाती है, जब यह स्पष्ट कर दिया जाये कि वह कथन एक विशेषज्ञ का है । लेकिन फिर भी यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि किसी कथन के बारे में यह बताना कि वह एक विशेषज्ञ का कथन है, उस कथन को साधारण जन के लिए ग्राह्य तो बना देता है, लेकिन उसकी सत्यता को तार्किक ढंग से सिद्ध नहीं करता ।

ज्ञान के जिस क्षेत्र के बारे में एक व्यक्ति हमारी श्रद्धा का पात्र है उस क्षेत्र के सम्बन्ध में उसका कोई कथन साधारण व्यक्ति के लिए प्रामाणिक बताया जाये, तो कोई व्यावहारिक दोष नहीं है । लेकिन जिस क्षेत्र में एक व्यक्ति विशेषज्ञ नहीं है, उसके बारे में उसके कथन की प्रामणिकता सिद्ध करने के लिए उसका गुणगान करके उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने का प्रयास किया जाये तो स्पष्ट ही दोष होगा । किसी धार्मिक विवाद के सन्दर्भ में डार्विन का प्रमाण देना और राजनीतिक विवाद के सन्दर्भ में सन्त विनोबा का प्रमाण देना वास्तव में दोषपूर्ण होगा ।

**उदाहरण 1.** "भोजन निस्वादु होना चाहिये" यह कथन सत्य है क्योंकि यह राष्ट्रपिता गांधी का कथन है ।

**उदाहरण 2.** वर्ण-व्यवस्था समाज का आदर्श रूप है क्योंकि हमारे धर्मशास्त्रों में ऐसा बताया है ।

**उदाहरण 3.** मैं इस कथन को ठीक नहीं मानता कि सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है । चर्चिल संसार का एक महान् व्यक्ति था और उसका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था । एक बार उसने कहा था कि उसके स्वास्थ्य का रहस्य निरन्तर सिगरेट पीना है ।

**उदाहरण 4.** अपनी पत्नी को पीटने में कोई बुराई नहीं है क्योंकि सन्त तुलसीदास ने कहा है :

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी ।

**उदाहरण 5.** गंगा में स्नान, करने से पाप नष्ट हो जाते हैं। यह कथन हमारे शास्त्रों का है। इसे हम कैसे ग़लत कर सकते हैं?

**6. पराज्ञानमूलक युक्ति (Argumentum ad ignorantiam)**

किसी बात का असत्य होना और उसको सत्य न सिद्ध कर पाना अलग-अलग बातें हैं। इसी प्रकार किसी बात को असत्य न सिद्ध कर पाना और उसका सत्य होना भी भिन्न-भिन्न बातें हैं। लेकिन जब इस भेद को ध्यान में न रखा जाये और किसी बात के खण्डन में प्रमाण न दे सकने पर उसके सत्य होने का दावा किया जाये या एक बात की सत्यता प्रमाणित न कर पाने पर उसके असत्य होने का दावा किया जाये तो पराज्ञानमूलक युक्ति का दोष होता है। वाद-विवाद में या वकीलों की बहस में इस दोष के उदाहरण सरलता से ढूंढ़े जा सकते हैं।

**उदाहरण 1.** क्या तुमने परमात्मा देखा है? यदि तुमने परमात्मा नहीं देखा तो तुम्हारा यह कथन कि परमात्मा है, असत्य है।

**उदाहरण 2.** मैं तुम्हारे इस कथन को गलत मानता हूँ कि बुद्ध ने वेदों का खण्डन किया क्योंकि तुम इस बात को स्वीकार कर चुके हो कि तुमने बुद्ध के सभी ग्रन्थ नहीं पढ़े और तुम यह नहीं बता सके कि बुद्ध ने किस ग्रन्थ में वेदों का खण्डन किया है।

**उदाहरण 3.** क्या तुमने वेद पढ़े हैं? यदि नहीं पढ़े तो तुम्हें मेरी यह बात माननी पड़ेगी कि हमारे वेदों में अणु-बम बनाना भी बताया है।

**उदाहरण 4.** क्योंकि हम इस बात का खण्डन नहीं कर सकते, कि वस्तुओं का अस्तित्व ज्ञान पर आश्रित है इसलिए विज्ञानवाद (वह दार्शनिक सिद्धान्त जिसके अनुसार वस्तुएँ ज्ञान पर अवलम्बित हैं) सत्य है।

**7. उपाधि दोष (Fallacy of accident)**

एक वस्तु में अनेक गुण और विशेषताएँ होती हैं, जिन्हें ध्यान में रखकर अनेक सत्य कथन हो सकते हैं। यद्यपि एक वस्तु में अनेक गुण होते हैं, लेकिन वे सभी गुण हर अवस्था में उसमें ज्यों के त्यों रहते हों, ऐसा नहीं होता, अर्थात् विशिष्ट परिस्थितियों में एक वस्तु के कुछ गुणों में अन्तर आ जाता है। एक वस्तु के वे गुण जो उसकी विशेष अवस्था या परिस्थिति पर निर्भर हों उपाधि कहलाते हैं। एक वस्तु के बारे में जो कथन उसके सामान्य गुणों के सम्बन्ध में सत्य है, उसे यदि उस वस्तु की विशेष अवस्था के सम्बन्ध में भी सत्य समझा जाये तो उपाधि दोष होता है।

**उदाहरण 1.** जो खाद्य सामग्री आपने कल खरीदी उसे आपने आज खाया।
कल आपने कच्चा मांस खरीदा।
∴ आज आपने कच्चा मांस खाया।

मांस के टुकड़े का कच्चा या पकाया हुआ होना उसकी भिन्न-भिन्न विशेष अवस्थाएँ हैं और इन अवस्थाओं को ध्यान में रख कर पहली आधारिका का कथन नहीं है। दूसरी आधारिका मांस के टुकड़े की विशेष अवस्था, अर्थात् उसके कच्चा होने, के

बारे में है । ये दोनों कथन सत्य हैं, फिर भी निष्कर्ष गलत है क्योंकि निष्कर्ष निकालते समय सामान्य अवस्था सम्बन्धी कथन (जो खरीदा था सो खाया) को एक विशेष अवस्था सम्बन्धी कथन (मांस के कच्चेपन से सम्बन्धित कथन) से जोड़ दिया है, जो गलत है !

उपाधि दोष का दूसरा रूप भी है जिसे 'सैकण्डमक्विड' (secundumquid) अर्थात् विशेष-सामान्य-भ्रम दोष कहते हैं । जब एक सामन्य नियम को विशेष अवस्थाओं में भी लागू करने पर बल दिया जाये, तब सैकण्डमक्विड दोष होता है । हमारी बहुत-सी युक्तियों में यह दोष होता है । इसका कारण यह है कि सामान्य नियम प्रायः अनिश्चित होता है, अर्थात् उसमें यह बात स्पष्ट नहीं की जाती कि वह किन-किन अवस्थाओं में लागू होता है । जब एक सामान्य नियम को हर अवस्था में लागू करने की खींचतान करते हैं, तब प्रायः हमारी युक्तियों में यह दोष होता है ।

**उदाहरण 2.** झूठ बोलना पाप है ।
डाक्टर मरीज़ की गम्भीर अवस्था को ठीक-ठीक न बताकर झूठ बोलता है ।
∴ डाक्टर पापी है ।

**उदाहरण 3.** विचारों को प्रकट करने की स्वतन्त्रता संविधान के अनुसार प्रत्येक भारतीय का मूलभूत अधिकार हैं ।
जो भारतीय किसी राज्य को प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य बनाने का प्रचार करता है, वह अपने अधिकार का प्रयोग करता है ।
∴ ऐसे व्यक्ति को हिरासत में लेना असंवैधानिक है ।

**उदाहरण 4.** शराब पीना बुरा है ।
∴ बच्चों को सर्दी लगने पर ब्रांडी की एक बूंद भी नहीं देनी चाहिये ।

8. **उपाधि व्यत्यय दोष** (converse fallacy of accident)

जो कथन विशेष अवस्थाओं में सत्य हो, उसका सामान्यीकरण करने (अर्थात् हर अवस्था में उसे लागू करने) में उपाधि व्यत्यय दोष होता है ।

**उदाहरण 1.** शराब पीना बुरा नहीं है, क्योंकि डाक्टर भी शराब दवा के रूप में देते हैं ।

**उदाहरण 2.** कुछ लोग शराब पीकर (बहुत अधिक पीकर) नालों में गिरते फिरते हैं ।
∴ शराब की बिक्री बिल्कुल बन्द कर देनी चाहिये ।

**उदाहरण 3.** मैंने अब स्नान करना छोड़ दिया है ।
∴ क्योंकि टाइफाइड की हालत में स्नान करने को मना किया था ।

9. **आत्माश्रय दोष या चक्रक दोष** (Petitio principi or arguing in circle)

एक युक्ति से जिस निष्कर्ष को सिद्ध करना चाहते हैं, यदि उसे आधारिका में ही स्वीकार कर लें तो आत्माश्रय दोष होता है। जिन युक्तियों में यह दोष होता है, उनमें आधारिका और निष्कर्ष में एक ही बात होती है, लेकिन वह भिन्न-भिन्न शब्दों में होती है; इससे हमें यह भ्रान्ति हो जाती है कि एक बात को किसी दूसरी बात से सिद्ध किया गया है। स्पष्ट रूप से विश्लेषण करने पर इस प्रकार की युक्तियों का निम्नलिखित रूप बनता है।

क ख है

क्योंकि क ख है।

यह स्पष्ट है कि जो युक्ति इस रूप में होगी उससे कुछ सिद्ध नहीं होगा। कुछ युक्तियों में तो यह दोष बिल्कुल स्पष्ट होता है, लेकिन कभी-कभी यह लम्बे शब्द-जाल में छिप जाता है। इस दोष के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :

**उदाहरण 1.** उपन्यास पढ़ने से कोई लाभ नहीं है, क्योंकि उनके पढ़ने में समय व्यर्थ ही बर्बाद होता है।

किसी काम का लाभदायक न होना और उसमें समय व्यर्थ खोना एक ही बात है।

**उदाहरण 2.** भिखारियों को भीख देना उचित है, क्योंकि दान देना मनुष्य का कर्तव्य है।

यहाँ हम दान में भीख भी शामिल करते हैं और पहले वाक्य में उसे उचित कहते हैं और दूसरे में कर्तव्य। लेकिन 'कर्तव्य' और 'उचित कार्य' का अर्थ एक ही है।

**उदाहरण 3.** प्रत्येक व्यक्ति को भाषण की असीमित स्वतन्त्रता प्रदान करना, सामान्य रूप से, राज्य के लिए हितकारी है, क्योंकि यह बात समाज के अत्यधिक हित में है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने की असीमित स्वतन्त्रता हो।

**उदाहरण 4.** दूध बलवर्धक है, क्योंकि इसके पीने से शरीर में ताकत आती है।

**उदाहरण 5.** किसी को मारना नहीं चाहिये, क्योंकि अहिंसा परम धर्म है।

चक्रक दोष :— आत्माश्रय दोष का ही कुछ परिवर्तित रूप चक्रक दोष है इसमें युक्तियों की एक लड़ी होती है, जिसमें कम-से-कम दो युक्तियाँ होती हैं, कभी-कभी एक युक्ति स्पष्ट होती है और दूसरी गुप्त। इसका सामान्य रूप निम्नलिखित है :

क सत्य है क्योंकि ख सत्य है।

और

ख सत्य है क्योंकि क सत्य है।

**उदाहरण 6.** मोहम्मद के सभी वचन सत्य हैं।

क्योंकि कुरान के अनुसार मोहम्मद ही ईश्वर का सच्चा पैगम्बर है।

और

कुरान में जो लिखा है, वह बिल्कुल सत्य है।

क्योंकि मोहम्मद के कथनानुसार कुरान ईश्वर की वाणी है।

**उदाहरण 7.** शंकर, रामानुज, निम्बार्क, बल्लभ और मध्व वेदान्त के पाँच आचार्य थे और ये सभी दक्षिण भारत के थे।

∴ वेदान्त के सभी आचार्य दक्षिण भारत के थे।

और

वेदान्त के सभी आचार्य दक्षिण भारत के थे।

शंकर वेदान्त के एक आचार्य थे।

∴ शंकर दक्षिण भारत के थे।

युक्ति का चक्र जितना छोटा होगा, उतना ही उसका पता आसानी से लग जायेगा। लेकिन यदि चक्र लम्बा है और वह बहुत-सी युक्तियों की लड़ी से बना है तो उसका पता चलना कठिन हो जाता है। उदाहरण के तौर पर, भारतीय संस्कृति पर लिखी एक पुस्तक की मूल स्थापना यह हो कि यह भारतीय संस्कृति महान् है और इसके लिए यह हेतु दिया हो कि यह अति प्राचीन है। फिर पुस्तक के भिन्न-भिन्न अध्यायों में भारतीय संस्कृति की महानता का चित्रण हो। और अन्त में इससे फिर यह निष्कर्ष निकाला जाये कि भारतीय संस्कृति अति प्राचीन है। ऐसे उदाहरणों में चक्रक दोष का पता चलना कठिन हो जाता है।

10. **प्रश्न-छल दोष** [Fallacy of many (or complex) questions]

कुछ प्रश्न जिनका उत्तर 'हाँ' या 'ना' में माँगा जाता है, सरल प्रश्न नहीं होते, बल्कि उनमें अन्य प्रश्न छिपे रहते हैं। इसलिए, ऐसे प्रश्नों का उत्तर न 'हाँ' में बनता है और न 'ना' में। जिन प्रश्नों की जटिलता के कारण उनका उत्तर 'हाँ' या 'ना' में न बनता हो, लेकिन उनमें 'हाँ' या 'ना' में उत्तर देने की माँग हो, तो उनमें प्रश्न-छल अर्थात् प्रश्न-बाहुल्य दोष होता है। "क्या तुमने सिगरेट पीना बन्द कर दिया है?"—सरल प्रश्न नहीं है। इसका कोई उत्तर तब तक नहीं दिया जा सकता जब तक इस प्रश्न का उत्तर न मिल जाये कि "क्या तुम सिगरेट पीते थे?" यदि इस प्रश्न का उत्तर 'ना' है तो पहला प्रश्न निरर्थक निकलता है। लेकिन हम बिना पूछे ही इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में मानकर चल देते हैं। प्रश्न-छल दोष के कुछ अन्य उदाहरण निम्नलिखित हैं :

**उदाहरण 1.** क्या तुमने अपनी पत्नी को पीटना बन्द कर दिया है?

**उदाहरण 2.** तुम्हारा ईश्वर और आध्यात्मिक मूल्यों में विश्वास है या नहीं?

इस प्रश्न में स्पष्ट ही दो प्रश्न निहित हैं, जिनमें से एक का उत्तर 'हाँ' में और दूसरे का उत्तर 'ना' में दिया जा सकता है। लेकिन दोनों का ही उत्तर 'हाँ' या केवल 'ना' में देने की माँग कर इस प्रश्न से श्रोता को चक्कर में डाला जा सकता है।

**उदाहरण 3.** क्या आप ग़रीबी मिटाने के लिए कांग्रेस को सत्तारूढ़ देखना चाहते हो या नहीं ?

ध्यानपूर्वक इसका विश्लेषण करने पर इसमें निम्नलिखित प्रश्न स्पष्ट होते हैं ।

(क) क्या तुम ग़रीबी मिटाना चाहते हो ?

(ख) क्या तुम ग़रीबी मिटाने में कांग्रेस को ही सक्षम समझते हो ?

इन दो प्रश्नों का पहले उत्तर जाने बिना श्रोता के सामने यह प्रश्न (नं० 3) रखना, धोखा देकर उससे 'हाँ' में उत्तर माँगने का प्रयास करना है ।

**उदाहरण 4.** क्या राम कंजूस लाला है ?

इस प्रश्न में प्रश्न-छल दोष है क्योंकि इसमें भी दो प्रश्न हैं :

(क) क्या राम लाला है ?

और

(ख) क्या राम कंजूस है ?

11. **कारण दोष** (Fallacy of false cause)

कारण का प्रश्न किसी घटना के सम्बन्ध में लागू होता है । इसके स्वरूप को विस्तृत व्याख्या आगमन-तर्कशास्त्र का विषय है । यहाँ केवल इतना समझना पर्याप्त है कि एक घटना के कारण का अर्थ उससे पूर्व होने वाली वे सब बातें हैं जो उसके लिए आवश्यक हैं अर्थात् जिनके बिना वह घटना न घट सकती हो । यदि हम एक घटना से पूर्व घटने वाली किसी आकस्मिक बात को उसका कारण समझ बैठें तो हमारे तर्क में जो कारण दोष होगा उसे काकतालीय दोष (post hoc propter ergo hoc) कहेंगे ।

**उदाहरण 1.** मेरा पर्चा आज अच्छा नहीं हुआ । इसका कारण यह है कि परीक्षा भवन की ओर जाते समय बिल्ली मेरा रास्ता काट गयी थी ।

**उदाहरण 2.** मुझे आज जुकाम हो गया है । इसका कारण यह है कि आज प्रातः नाश्ते में मैंने सन्तरे खाये थे ।

## अभ्यास

निम्नलिखित युक्तियों के प्रमुख दोषों को स्पष्ट करो :

1. जो लोग उड़न तस्तरियों की बात करते हैं, उनके बारे में वे प्रमाण तो दे नहीं पाते । इसलिए, उड़न तस्तरियों की बात कपोलकल्पित है ।

2. लोग सुकरात को जितना महान् समझते हैं वह उससे भी अधिक महान् था । उस पर एथेन्स के लोगों ने कोई कम अत्याचार किया था ? वह वास्तव में एक शहीद की मौत मरा ।

3. आप मेरी युक्ति को ग़लत कहते हो, तो फिर आप बताइये कि इसमें क्या दोष है ?

4. इस व्यक्ति को पहले चार बार धोखाधड़ी के अपराध में कारावास का दण्ड मिल चुका है । इसलिए, इसकी गवाही का कोई अर्थ नहीं है ।

5. जवाहरलाल नेहरू हमारे पूज्य नेता थे। वे भी कभी-कभी सिगरेट पीते थे और उनका स्वास्थ्य भी कितना अच्छा था। इसलिए, सिगरेट पीने में क्या हानि है ?

6. हमने जैसे ही शामयाना लगाया, वैसे ही आकाश में घटाएँ उमड़ने लगीं। इसलिए, मेरे मित्र ने सुझाया कि हम शामयाना ही उखाड़ दें, जिससे घटाएँ हट जाएँ।

7. क्या आपने इस व्यक्ति को अपनी पत्नी और बच्चों के साथ देखा ? उत्तर केवल 'हाँ' या 'ना'।

8. सिगरेट पीना हानिकारक है क्योंकि इससे कैंसर होने का भय रहता है।

9. उपद्रव की हालत में पुलिस की गोली से कभी-कभी बेकसूर लोग मर जाते हैं। इसलिए, किसी हालत में पुलिस को गोली चलाने का अधिकार नहीं होना चाहिये।

10. आपका जिगर खराब है तो क्या हुआ ? आपको घी तो खाना ही चाहिये क्योंकि घी ताकतवर होता है।

6

# प्रतिज्ञप्ति और प्रतिज्ञप्ति का परम्परागत विश्लेषण

## 1. प्रतिज्ञप्ति का स्वरूप

**परिभाषा**

वाक्य में प्रकट किया हुआ वह विचार जो सत्य हो या असत्य हो प्रतिज्ञप्ति (proposition) कहलाता है। एक प्रतिज्ञप्ति सत्य होगी या असत्य होगी, लेकिन सत्य और असत्य दोनों नहीं हो सकती।

प्रतिज्ञप्ति के स्वरूप को स्पष्ट रूप से समझने के लिए प्रतिज्ञप्ति का वाक्य, तथ्य तथा प्प्तिज्ञप्ति के प्रति मानसिक दृष्टिकोण से अन्तर समझना आवश्यक है।

**प्रतिज्ञप्ति और वाक्य** (Proposition and sentence)

क्योंकि एक प्रतिज्ञप्ति (proposition) वाक्य (sentence) के रूप में प्रकट हो सकती है, इसलिए प्रतिज्ञप्ति और वाक्य में आवश्यक सम्बन्ध है। लेकिन प्रतिज्ञप्ति और वाक्य में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण अन्तर है :

1. भाषा में वाक्यों का प्रयोग सूचना देने के लिए, प्रश्न पूछने के लिए, आज्ञा देने के लिए, प्रार्थना अथवा उपदेश प्रकट करने के लिए या विस्मय प्रकट करने के लिए किया जाता है। इनमें से जो वाक्य कोई सूचना प्रकट करते हैं वे ही प्रतिज्ञप्ति प्रकट करते हैं। सूचना प्रकट करने वाले वाक्य निर्देशात्मक वाक्य (indicative sentences) कहलाते हैं। केवल निर्देशात्मक वाक्य प्रतिज्ञप्ति प्रकट करते हैं। प्रश्न, आज्ञा, प्रार्थना,

उपदेश विस्मय न सत्य कहे जा सकते हैं और न असत्य। इसलिए, प्रश्नवाचक, आज्ञावाचक, प्रार्थनावाचक, उपदेशवाचक तथा विस्मयबोधक वाक्य प्रतिज्ञप्ति को प्रकट नहीं करते। निम्नलिखित में से (क) ही प्रतिज्ञप्ति है :

(क) राम योग्य विद्यार्थी है।
(ख) क्या राम योग्य विद्यार्थी है ?
(ग) कमरे से बाहर निकल जाओ!
(घ) भगवान् हमें सद्बुद्धि दो।
(ङ) अहो! ताजमहल कितना सुन्दर है !

2. प्रतिज्ञप्ति निर्देशात्मक वाक्य में प्रकट होती है। लेकिन निर्देशात्मक वाक्य (indicative sentence) ही प्रतिज्ञप्ति नहीं है। वाक्य के भाषीय रूप और उसके अर्थ में अन्तर है। निर्देशात्मक वाक्य के अर्थ को प्रतिज्ञप्ति कहते हैं। निर्देशात्मक वाक्य प्रतिज्ञप्ति नहीं है, वह केवल प्रतिज्ञप्ति का व्यंजक है। यदि दो निर्देशात्मक वाक्यों का अर्थ एक हो, तो भाषा की दृष्टि से तो वे दो भिन्न-भिन्न वाक्य माने जायेंगे, लेकिन उन दोनों में एक ही प्रतिज्ञप्ति प्रकट की हुई मानी जायेगी। जैसे,

(अ) राम एक अच्छा लड़का है।
(आ) Ram is a good boy.

भाषा की दृष्टि से (अ) और (आ) भिन्न-भिन्न वाक्य हैं, लेकिन इनमें प्रतिज्ञप्ति एक ही है।

वाक्य और प्रतिज्ञप्ति में यह अन्तर, इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि जो बात प्रतिज्ञप्ति के बारे में कह सकते हैं वह वाक्य के बारे में लागू नहीं होती। एक प्रतिज्ञप्ति को तो सत्य या असत्य कह सकते हैं। लेकिन वाक्य को सत्य या असत्य नहीं कहते; उसे व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध (correct) या अशुद्ध (incorrect) कह सकते हैं। कहाँ कोई बात प्रतिज्ञप्ति के बारे में कही जा रही है और कहाँ उसके भाषीय रूप अर्थात् वाक्य के बारे में इसे स्पष्ट करना आवश्यक है। जहाँ एक वाक्य [" "] में बँधा हो वहाँ कथन वाक्य के बारे में होता है और जहाँ वाक्य [' '] में बँधा हो वहाँ कथन वाक्य के बारे में नहीं होता बल्कि उस वाक्य से प्रकटित प्रतिज्ञप्ति के बारे में होता है। निम्नलिखित कथनों के रूप से यह बात स्पष्ट हो जायेगी :

(क) "राम अच्छा लड़का है" वाक्य 'राम अच्छा लड़का है' प्रतिज्ञप्ति को प्रकट करता है।
(ख) 'राम अच्छा लड़का है', सत्य प्रतिज्ञप्ति है।
(ग) "राम अच्छा लड़का है", चार शब्दों का वाक्य है।
(घ) "राम अच्छा लड़का है", शुद्ध वाक्य है।

**प्रतिज्ञप्ति और तथ्य**

किसी वस्तु-स्थिति को तथ्य कहते हैं। वस्तु-स्थिति सरल भी हो सकती है और जटिल भी। एक सरल वस्तु-स्थिति वस्तु, गुण तथा सम्बन्धों से बनती है। जैसे, गुलाब

एक वस्तु है और कोमलता गुण है। गुलाब में कोमलता का गुण होना तथ्य है। इसी प्रकार, दिल्ली और आगरा दो नगर हैं। इनका आपस में छोटे बड़े का सम्बन्ध है। दिल्ली का आगरे से बड़ा होना एक तथ्य है। तथ्य एक वस्तु-स्थिति है। जो जैसा है, वह तथ्य है। तथ्य को सत्य या असत्य नहीं कह सकते। एक सरल प्रतिज्ञप्ति तथ्य-सम्बन्धी विचार का वाक्य में प्रकटित रूप है। प्रतिज्ञप्ति सत्य या असत्य होती है। प्रतिज्ञप्ति के सत्य या असत्य होने का आधार तथ्य है। यदि प्रतिज्ञप्ति तथ्य के अनुरूप है, तो सत्य है अन्यथा असत्य है। 'गुलाब सुन्दर है', 'दिल्ली आगरे से बड़ा नगर है' सत्य प्रतिज्ञप्तियाँ हैं और 'आगरा दिल्ली से बड़ा नगर है' असत्य प्रतिज्ञप्ति है, क्योंकि यह तथ्य के अनुरूप नहीं है।

**प्रतिज्ञप्ति और मानसिक दृष्टिकोण**

प्रतिज्ञप्ति का एक ओर सम्बन्ध तथ्य से है और दूसरी ओर इसका सम्बन्ध व्यक्तियों से है। प्रतिज्ञप्ति का सत्य या असत्य होना प्रतिज्ञप्ति और तथ्य की अनुरूपता या विपरीतता पर निर्भर करता है। यह इस बात पर निर्भर नहीं करता कि कोई व्यक्ति उसके बारे में क्या सोचता है। कोई प्रतिज्ञप्ति सत्य है या असत्य है, इस सम्बन्ध में विभिन्न व्यक्तियों की विभिन्न मानसिक प्रतिक्रियाएँ हो सकती हैं। सामान्य रूप से एक प्रतिज्ञप्ति के बारे में, विश्वास, अविश्वास, शंका और मान्यता के दृष्टिकोण बन सकते हैं। उदाहरण के रूप में 'भारत में प्रजातन्त्र सफल है', इस प्रतिज्ञप्ति को कोई स्वीकार करेगा तो कोई अस्वीकार और कोई यह निश्चय ही न कर सकेगा कि यह सत्य है या असत्य; उसकी मानसिक स्थिति शंका की होगी। किसी प्रतिज्ञप्ति के सत्य या असत्य होने की मान्यता (supposition) भी की जा सकती है। किसी प्रतिज्ञप्ति के सत्य होने की मान्यता करना उस प्रतिज्ञप्ति को सत्य स्वीकार करना नहीं है। कभी-कभी एक प्रतिज्ञप्ति को असत्य सिद्ध करने के लिए युक्ति में उसके सत्य होने की मान्यता करके चलते हैं।

**प्रतिज्ञप्ति और निर्णय** (Proposition and judgment)

किसी प्रतिज्ञप्ति का निश्चयात्मक ज्ञान निर्णय कहलाता है। "निर्णय" शब्द कुछ अस्पष्ट है। कभी इसका अर्थ निश्चयात्मक ज्ञान की मानसिक क्रिया समझा जाता है तो कभी वह बात जिसका निश्चयात्मक ज्ञान होता है। स्पष्टता के लिए निर्णय शब्द का अर्थ निश्चयात्मक ज्ञान की मानसिक क्रिया समझना चाहिये और एक व्यक्ति जिस बात को निश्चयपूर्वक जानता है उसका वाक्य में प्रकटित रूप प्रतिज्ञप्ति समझना चाहिये। इस प्रकार एक प्रतिज्ञप्ति एक व्यक्ति के निर्णय अर्थात् निश्चयात्मक ज्ञान का विषय बन सकती है, निर्णय ही प्रतिज्ञप्ति नहीं है। संक्षेप में, प्रतिज्ञप्ति और निर्णय में निम्नलिखित अन्तर है :

1. निर्णय एक ज्ञानात्मक क्रिया है, प्रतिज्ञप्ति ज्ञानात्मक क्रिया अर्थात् निर्णय का विषय है। मेरा यह निश्चयपूर्वक जानना कि 'भारत का परमाणु परीक्षण शान्ति के

लिए है' मेरा निर्णय है और 'भारत का परमाणु परीक्षण शान्ति के लिए है' एक प्रतिज्ञप्ति है।

2. एक प्रतिज्ञप्ति निर्णय के अलावा शंका या मान्यता का विषय भी हो सकती है। उपर्युक्त प्रतिज्ञप्ति किसी व्यक्ति की शंका का विषय भी हो सकती है। एक ही प्रतिज्ञप्ति के विषय में विरोधी निर्णय भी हो सकते हैं।

**प्रतिज्ञप्ति का अभिकथन और प्रतिज्ञप्ति का निषेध**

एक प्रतिज्ञप्ति के अभिकथन (assertion) करने का अर्थ है प्रतिज्ञप्ति के सत्य होने का दावा प्रकट करना। इसी प्रकार एक प्रतिज्ञप्ति का निषेध करने का अर्थ है, उस प्रतिज्ञप्ति के असत्य होने का दावा प्रकट करना। एक प्रतिज्ञप्ति को केवल वाक्य द्वारा व्यक्त करने और वाक्य द्वारा उसका अभिकथन करने में अन्तर है। जब एक प्रतिज्ञप्ति को वाद-विवाद के विषय के रूप में रखा जाता है, तो न तो उसका अभिकथन होता है और न निषेध। प्रतिज्ञप्ति का अभिकथन या निषेध तो वाद-विवाद में भाग लेने वालों ने करना होता है। निम्नलिखित पर विचार करें :

1. वाद-विवाद प्रतियोगिता का विषय है : भारत में प्रजातन्त्र सफल है।
2. यह सत्य है कि भारत में प्रजातन्त्र सफल है।
3. यह असत्य है कि भारत में प्रजातन्त्र सफल है।

यहाँ (1) में 'भारत में प्रजातन्त्र सफल है' इस प्रतिज्ञप्ति का अभिकथन नहीं हुआ है। (2) में इसका अभिकथन किया है जबकि (3) में इसका निषेध किया है। सामान्यतः एक प्रतिज्ञप्ति का अभिकथन करने के लिए उसके पहले 'यह सत्य है' लगाना आवश्यक नहीं होता। यदि एक व्यक्ति केवल इतना कहे कि 'भारत में प्रजातन्त्र सफल है' तो इसे एक अभिकथन समझा जायेगा।

किसी प्रतिज्ञप्ति के बारे में मानसिक दृष्टिकोण प्रकट करना उस प्रतिज्ञप्ति का अभिकथन या निषेध करना नहीं है। निम्नलिखित पर विचार करें :

1. मुझे विश्वास है कि भारत में प्रजातन्त्र सफल है।
2. मैं मान लेता हूं कि भारत में प्रजातन्त्र सफल है।
3. मुझे संदेह है कि भारत में प्रजातन्त्र सफल है।
4. मैं जानना चाहता हूं कि क्या भारत में प्रजातन्त्र सफल है।
5. भारत में प्रजातन्त्र सफल है।
6. यह सत्य है कि भारत में प्रजातन्त्र सफल है।
7. भारत में प्रजातन्त्र सफल नहीं है।
8. यह असत्य है कि भारत में प्रजातन्त्र सफल है।

उपर्युक्त वाक्यों में केवल (5) और (6) में 'भारत में प्रजातन्त्र सफल है' का अभिकथन हुआ है और (7) और (8) में इसका निषेध हुआ है। अन्य वाक्यों में न इसका अभिकथन हुआ है और न निषेध।

दो प्रतिज्ञप्तियों के सम्बन्धों का अभिकथन करने का अर्थ उन दोनों प्रतिज्ञप्तियों का अभिकथन करना नहीं समझना चाहिये । उदाहरण के रूप में "यदि भारत में निष्पक्ष चुनाव होते हैं तो भारत में प्रजातन्त्र सफल है" में दो प्रतिज्ञप्तियों—"भारत में निष्पक्ष चुनाव होते हैं" और "भारत में प्रजातन्त्र सफल है" के विशेष सम्बन्ध का अभिकथन है। यहाँ इन दोनों प्रतिज्ञप्तियों का न अभिकथन है और न निषेध ।

## अभ्यास

1. बताइये निम्नलिखित में कौन-सा कथन सत्य है और कौन-सा असत्य :

(क) सत्य या असत्य होना प्रतिज्ञप्ति का अनिवार्य गुण है ।

(ख) प्रतिज्ञप्ति को प्रकट करने वाला वाक्य सत्य या असत्य होता है ।

(ग) निर्देशात्मक वाक्य को प्रतिज्ञप्ति कहते हैं ।

(घ) निर्देशात्मक वाक्य के अर्थ को प्रतिज्ञप्ति कहते हैं ।

(ङ) एक प्रतिज्ञप्ति अनेक वाक्यों से प्रकट हो सकती है ।

(च) प्रतिज्ञप्ति मानसिक क्रिया है ।

(छ) एक प्रतिज्ञप्ति के बारे में उसे स्वीकार करने या अस्वीकार करने की दो ही मानसिक प्रतिक्रियाएँ हो सकती हैं ।

(ज) प्रतिज्ञप्ति निर्णय का विषय बन सकती है ।

(झ) एक प्रतिज्ञप्ति के प्रति अनिर्णय का दृष्टिकोण भी हो सकता है ।

(ञ) तथ्य को सत्य या असत्य कह सकते हैं ।

2. 'राम आज बीमार है' इस प्रतिज्ञप्ति का अभिकथन या निषेध नीचे के किन-किन वाक्यों में हुआ है ?

(क) राम आज दफ्तर गया है या राम आज बीमार है ।

(ख) यदि राम दफ्तर गया है तो राम आज बीमार नहीं है ।

(ग) मुझे विश्वास है कि राम आज बीमार है ।

(घ) क्या राम आज बीमार है ?

(ङ) राम आज बीमार है ।

(च) राम आज बीमार नहीं है ।

3. प्रतिज्ञप्ति की परिभाषा दो तथा उसका स्वरूप स्पष्ट करने के लिए प्रतिज्ञप्ति और वाक्य तथा प्रतिज्ञप्ति और निर्णय का अन्तर स्पष्ट करो ।

4. प्रतिज्ञप्ति और तथ्य का सम्बन्ध और अन्तर स्पष्ट करो ।

5. प्रतिज्ञप्ति के प्रति कौन-कौनसे मानसिक दृष्टिकोण बन सकते हैं ? उदाहरण सहित स्पष्ट करो ।

6. प्रतिज्ञप्ति और निर्णय का अन्तर स्पष्ट करो ।

7. प्रतिज्ञप्ति और प्रतिज्ञप्ति के अभिकथन का अन्तर उदाहरणों सहित स्पष्ट करो । क्या यह आवश्यक है कि जो वाक्य एक प्रतिज्ञप्ति प्रकट करता हो वह उसका अभिकथन भी प्रकट करता हो ?

## 2. परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार सरल प्रतिज्ञप्ति का स्वरूप

परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार प्रत्येक सरल प्रतिज्ञप्ति किसी वस्तु में किसी गुण के होने या न होने का कथन करती है। एक प्रतिज्ञप्ति में जिस वस्तु के बारे में किसी गुण के होने या न होने का कथन किया जाता है उसे प्रतिज्ञप्ति का उद्देश्य (subject) कहते हैं तथा उद्देश्य के बारे में जिस गुण के होने या न होने का कथन किया जाता है उसे विधेय (predicate) कहते हैं। उद्देश्य में विधेय के होने का कथन करना विधान करना (affirmation) कहा जाता है तथा उद्देश्य में विधेय के न होने का कथन करना निषेध करना (negation) कहलाता है। इस प्रकार एक सरल प्रतिज्ञप्ति उद्देश्य के बारे में विधेय का विधान करती है या निषेध करती है। प्रतिज्ञप्ति के उद्देश्य और विधेय को पद (term) कहते हैं। एक प्रतिज्ञप्ति एक पद के साथ दूसरे पद के विधान या निषेध के सम्बन्ध से बनती है।

प्रत्येक सरल प्रतिज्ञप्ति के तीन अंग होते हैं। इसलिए, सरल प्रतिज्ञप्ति को प्रकट करने वाले वाक्य का विश्लेषण भी तीन अंगों में किया जाता है: उद्देश्यवाची शब्द, विधेयवाची शब्द और विधान अथवा निषेधवाची शब्द। उद्देश्यवाची शब्द और विधेय-वाची शब्द को पद कहते हैं। विधान अथवा निषेधवाची शब्द को संयोजक (copula) कहते हैं। 'है' को विधानात्मक संयोजक और 'नहीं है' को निषेधात्मक संयोजक के रूप में स्वीकार करते हैं। बहुत से सरल वाक्यों का उद्देश्य विधेय तथा संयोजक स्पष्ट होता है। जैसे :

| उद्देश्य | विधेय | संयोजक |
|---|---|---|
| राम | सुन्दर | है। |
| राम | सुन्दर | नहीं है। |

लेकिन कुछ वाक्यों में उद्देश्य, विधेय तथा संयोजन का रूप स्पष्ट नहीं होता। तार्किक उद्देश्य के लिए ऐसे वाक्यों का उद्देश्य, विधेय तथा संयोजक में विश्लेषण करके नये ढंग से लिखना आवश्यक हो जाता है। जैसे, "राम रामायण पढ़ता है" का तार्किक रूप "राम रामायण का पाठ करने वाला व्यक्ति है" होगा।

## 3. परम्परागत तर्कशास्त्र में प्रतिज्ञप्तियों का वर्गीकण

परम्परागत तर्कशास्त्र में प्रतिज्ञप्तियों का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर विभिन्न ढंग से किया जाता है।

**रचना के आधार पर प्रतिज्ञप्तियों का वर्गीकरण**

रचना के आधार पर प्रतिज्ञप्तियों के दो प्रकार माने जाते हैं :

(1) सरल प्रतिज्ञप्ति और (2) सम्मिश्र प्रतिज्ञप्ति।

सरल प्रतिज्ञप्ति में केवल दो पद होते हैं एक उद्देश्यपद और एक विधेयपद। सम्मिश्र प्रतिज्ञप्ति में उद्देश्यपद, और विधेयपदों, में से कम-से-कम एक की संख्या दो

या दो से अधिक होती है। सम्मिश्र प्रतिज्ञप्ति का सरल प्रतिज्ञप्तियों में विश्लेषण किया जा सकता है। नीचे सम्मिश्र प्रतिज्ञप्तियों के कुछ उदाहरण दिये हैं :

1. राम बुद्धिमान् और साहसी है।
2. राम और मोहन बुद्धिमान् हैं।
3. राम न बुद्धिमान् है और न साहसी।
4. न राम और न मोहन साहसी है।

इनका सरल प्रतिज्ञप्तियों में विश्लेषण करना कठिन नहीं है। जैसे, (1) को 'राम बुद्धिमान् है', और 'राम साहसी है' इन दो सरल प्रतिज्ञप्तियों के रूप में प्रकट कर सकते हैं।

**सम्बन्ध के आधार पर प्रतिज्ञप्तियों का वर्गीकरण**

विधेय का उद्देश्य के प्रति विधान या निषेध किस प्रकार किया जाता है इस आधार पर प्रतिज्ञप्तियों के तीन प्रकार माने जाते हैं :

1. निरुपाधिक प्रतिज्ञप्ति (Categorical proposition)।
2. हेत्वाश्रित प्रतिज्ञप्ति (Hypothetical proposition)।
3. वियोजक प्रतिज्ञप्ति (Disjunctive proposition)।

1. निरुपाधिक प्रतिज्ञप्ति (categorical proposition) : निरुपाधिक प्रतिज्ञप्ति वह प्रतिज्ञप्ति है जिसमें विधान या निषेध सरल ढंग से, अर्थात् बिना किसी शर्त (उपाधि) के किया जाये। जैसे, 'राम अच्छा लड़का है' निरुपाधिक प्रतिज्ञप्ति है क्योंकि इसमें राम को बिना किसी शर्त के अच्छा लड़का कहा है। सभी सरल प्रतिज्ञप्तियाँ निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियाँ होती हैं।

2. हेत्वाश्रित प्रतिज्ञप्ति (Hypothetical proposition) : जिस प्रतिज्ञप्ति में विधान या निषेध शर्त पर आधारित हो उसे हेत्वाश्रित प्रतिज्ञप्ति कहते हैं। जैसे :

1. यदि राम सत्य बोलता है तो वह (राम) अच्छा लड़का है।
2. यदि राम झूठ बोलता है तो वह अच्छा लड़का नहीं है।
3. यदि तुम आज सिनेमा जाओगे तो मैं आज सिनेमा जाऊँगा।
4. यदि तुम आज घर रहोगे तो मैं कालेज जाऊँगा।

3. वियोजक प्रतिज्ञप्ति (Disjunctive proposition) : जिस प्रतिज्ञप्ति में विधान या निषेध विकल्प के रूप में किया गया हो, उसे वियोजक प्रतिज्ञप्ति कहते हैं। जैसे : राम दर्शनशास्त्र पढ़ता है या (राम) गणित पढ़ता है। परम्परागत तर्कशास्त्र में निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों का विशेष अध्ययन हुआ है, हेत्वाश्रित तथा वियोजक प्रतिज्ञप्तियों का विस्तृत विश्लेषण आधुनिक तर्कशास्त्र में हुआ है। इनका अध्ययन आधुनिक तर्कशास्त्र के सन्दर्भ में करेंगे।

## 4. निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों के चार रूप—अ, ए, इ, ओ, (A, E, I, O)

गुण (quality) तथा परिमाण (quantity) के आधार पर निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों के चार प्रकार माने जाते हैं। विधान तथा निषेध प्रतिज्ञप्तियों के दो गुण माने

जाते हैं। एक प्रतिज्ञप्ति में इनमें से एक गुण अवश्य होगा और किसी भी प्रतिज्ञप्ति में दोनों गुण नहीं होंगे। इस प्रकार गुण की दृष्टि से प्रतिज्ञप्तियाँ या तो सकारात्मक (affirmative) होंगी या नकारात्मक (negative)।

एक प्रतिज्ञप्ति उद्देश्यपद के पूर्ण क्षेत्र के बारे में हो सकती है अथवा उसके कुछ अंश के बारे में। प्रतिज्ञप्तियों में इस भेद को परिमाण (quantity) का भेद कहते हैं। परिमाण के आधार पर प्रतिज्ञप्तियों के दो वर्ग बनते हैं : सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्ति (universal proposition) और अंशव्यापी प्रतिज्ञप्ति (particular proposition)। जो प्रतिज्ञप्ति उद्देश्यपद के सम्पूर्ण क्षेत्र के बारे में किसी गुण का विधान या निषेध करती है, वह सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्ति (universal proposition) होती है और जो प्रतिज्ञप्ति उद्देश्यपद के क्षेत्र के कुछ अंश के बारे में होती है, वह अंशव्यापी प्रतिज्ञप्ति (particular proposition) होती है।

प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति गुण की दृष्टि से सकारात्मक या नकारात्मक होती है और परिमाण की दृष्टि से सर्वव्यापी या अंशव्यापी। इस प्रकार गुण और परिमाण के मिले-जुले आधार पर प्रतिज्ञप्तियों के निम्नलिखित चार रूप बनते हैं जिन्हें क्रमशः अ, ए, इ तथा ओ प्रतिज्ञप्तियाँ कहते हैं :

1. सर्वव्यापी सकारात्मक प्रतिज्ञप्ति (अ)
   जैसे : सब मनुष्य मरणशील हैं।
2. सर्वव्यापी नकारात्मक प्रतिज्ञप्ति (ए)
   जैसे : कोई मनुष्य पूर्ण नहीं है।
3. अंशव्यापी सकारात्मक प्रतिज्ञप्ति (इ)
   जैसे : कुछ मनुष्य भारतीय हैं।
4. अंशव्यापी नकारात्मक प्रतिज्ञप्ति (ओ)
   जैसे : कुछ मनुष्य भारतीय नहीं हैं।

**सामान्य प्रतिज्ञप्ति और एकव्यापी प्रतिज्ञप्ति**

सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्ति (universal proposition) के दो रूप हो सकते हैं : (1) सामान्य प्रतिज्ञप्ति (general proposition) और (2) एकव्यापी प्रतिज्ञप्ति (singular proposition)। जो प्रतिज्ञप्ति उद्देश्यपद के सम्पूर्ण क्षेत्र के बारे में हो लेकिन उस क्षेत्र में व्यक्तियों की संख्या अनिश्चित हो तो उस प्रतिज्ञप्ति को सामान्य प्रतिज्ञप्ति कहते हैं। जैसे : "सब मनुष्य मरणशील हैं" एक सामान्य प्रतिज्ञप्ति है।

जो प्रतिज्ञप्ति उद्देश्यपद के सम्पूर्ण क्षेत्र के बारे में हो, लेकिन उस क्षेत्र में केवल एक ही निश्चित व्यक्ति हो, उसे एकव्यापी प्रतिज्ञप्ति (singular proposition) कहते हैं। जैसे : 'जवाहरलाल नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमंत्री थे' इस प्रतिज्ञप्ति में 'जवाहरलाल नेहरू' पद का प्रयोग अपने सम्पूर्ण क्षेत्र के अर्थ में हुआ है, लेकिन इस क्षेत्र में केवल एक व्यक्ति आता है। इसलिए, यह प्रतिज्ञप्ति, एकव्यापी प्रतिज्ञप्ति (singular proposition) है।

टिप्पणी : आधुनिक तर्कशास्त्र में एकव्यापी प्रतिज्ञप्तियों और सामान्य प्रतिज्ञप्तियों में बुनियादी अन्तर किया गया है। यह आगे स्पष्ट करेंगे।

### 5. निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों का तात्पर्य

हम यह देख चुके हैं कि एक पद के अर्थ के गुणार्थ और वस्त्वर्थ दो रूप होते हैं। जब हम पदों के गुणार्थ के आधार पर प्रतिज्ञप्ति का अर्थ करते हैं तो उसे प्रतिज्ञप्ति का गुणार्थक तात्पर्य (connotative import) कहते हैं। जब पदों के वस्त्वर्थ के आधार पर एक प्रतिज्ञप्ति का अर्थ करते हैं तो उसे प्रतिज्ञप्ति का वस्त्वर्थ तात्पर्य (denotative import) कहते हैं।

गुणार्थक तात्पर्य के अनुसार 'सब मनुष्य मरणशील हैं' का अर्थ होगा 'जिस किसी में मनुष्यता का गुण-धर्म है, उसमें मरणशीलता का गुण-धर्म है' गुणार्थक तात्पर्य के अनुसार एक प्रतिज्ञप्ति दो गुण-धर्मों का सम्बन्ध प्रकट करती है।

एक प्रतिज्ञप्ति के वस्त्वर्थक-तात्पर्य में उसके दोनों पदों को वर्ग-वाचक (class term) माना जाता है। इस दृष्टि से निरुपाधिक प्रतिज्ञप्ति वह प्रतिज्ञप्ति है जो एक वर्ग के दूसरे वर्ग में शामिल होने का विधान करती है या निषेध करती है। इस प्रकार "सब मनुष्य मरणशील हैं" का अर्थ होगा "मनुष्य-वर्ग के सब सदस्य मरणशील प्राणी-वर्ग के सदस्य हैं"।

निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों का वर्ग-सम्बन्धी प्रतिज्ञप्तियों के रूप में अर्थ करने की भी दो परम्पराएँ अरस्तवी (Aristotelion) और बूलीय (Boolian) है। बूलीय परम्परा आधुनिक परम्परा है, जो गणितज्ञ बूले के वर्गीय बीजगणित (class algebra) पर आधारित है। इस अध्याय में अरस्तवी परम्परा का अनुसरण किया गया है। बूलीय परम्परा के अनुसार निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों की व्याख्या सातवें अध्याय में की गयी है।

### 6. निरुपाधिक वाक्यों का मानक रूप
### (Standard Form of Categorical Sentences)

निरुपाधिक प्रतिज्ञप्ति को प्रकट करने वाले वाक्य को निरुपाधिक वाक्य (categorical sentence) कहते हैं। निरुपाधिक वाक्य (categorical sentence) की रचना का रूप ऐसा हो कि इसमें प्रतिज्ञप्ति का तार्किक रूप स्पष्ट रूप से झलके। इसलिए, एक निरुपाधिक वाक्य की रचना में चार तत्त्व होने चाहिएँ। ये चार तत्त्व हैं: परिमाणक (quantifier), उद्देश्यपद, विधेयपद और संयोजक। चारों प्रकार के निरुपाधिक वाक्यों के मानक रूप (standard form) इस प्रकार हैं।

| परिमाणक | उद्देश्य | विधेय | संयोजक |
|---|---|---|---|
| (अ) सब | क | ख | हैं। |
| (ए) कोई | क | ख | नहीं हैं। |
| (इ) कुछ | क | ख | हैं। |
| (ओ) कुछ | क | ख | नहीं हैं। |

यहाँ ए वाक्य का स्वरूप विशेष रूप से ध्यान में रखना है। अ तथा ए दोनों वाक्य सर्वव्यापी वाक्य हैं। लेकिन जहाँ अ वाक्य में परिमाणक 'सब' है, वहाँ ए वाक्य में परिमाणक 'कोई' है। ए वाक्य का मानक रूप "सब क ख नहीं है" नहीं है। जो वाक्य "सब क ख नहीं है" के रूप में हो, वह ए वाक्य नहीं है, बल्कि ओ वाक्य है और उसे "कुछ क ख नहीं है" के रूप में बदल देना चाहिये। जैसे, "सब मनुष्य विद्वान् नहीं हैं" का मानक रूप "कुछ मनुष्य विद्वान् नहीं हैं" होगा।

## 7. 'कुछ' का तार्किक अर्थ

अंशव्यापी वाक्यों का परिमाणक 'कुछ' है। साधारण भाषा में 'कुछ' शब्द का अर्थ अनिश्चित है, क्योंकि कभी इसका अर्थ कुछ ही किया जाता है, तो कभी इसका अर्थ कम-से-कम कुछ किया जाता है। तर्कशास्त्र में, इसका दूसरा अर्थ ही लिया जाता है। "कुछ मनुष्य विद्वान् हैं" का तार्किक अर्थ यह नहीं है कि "कुछ ही मनुष्य विद्वान् हैं"। "कुछ ही मनुष्य विद्वान् हैं" तो सम्मिश्र वाक्य है। इसका अर्थ है कि कुछ मनुष्य विद्वान् हैं और कुछ मनुष्य विद्वान् नहीं हैं। इसलिए, तर्कशास्त्र में "कुछ मनुष्य विद्वान् हैं", का अर्थ केवल इतना है कि "कम-से-कम कुछ मनुष्य विद्वान् हैं" और "कम-से-कम कुछ" का अर्थ है "कम-से-कम एक"।

## 8. पदों की व्याप्ति (Distribution of Terms)

एक पद जिन-जिन व्यक्तियों पर लागू हो सकता है, वे सब व्यक्ति उस पद का विस्तार-क्षेत्र या व्याप्ति बनाते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि एक वाक्य में एक पद का प्रयोग उसके सम्पूर्ण विस्तार-क्षेत्र के लिए हो। एक वाक्य में जो पद अपने सम्पूर्ण विस्तार-क्षेत्र का बोधक है, उसे व्याप्त पद (distributed term) कहते हैं। और जो पद अपने सम्पूर्ण विस्तार-क्षेत्र का बोधक नहीं है उसे अव्याप्त पद (undistributed term) कहते हैं।

निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों में पदों के व्याप्त या अव्याप्त होने के सम्बन्ध में निम्नलिखित दो नियम हैं :

1. सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्ति (universal proposition) का उद्देश्यपद व्याप्त होता है और अंशव्यापी प्रतिज्ञप्ति (particular proposition) का उद्देश्यपद अव्याप्त होता है

2. सकारात्मक प्रतिज्ञप्ति का विधेय पद अव्याप्त होता है और नकारात्मक प्रतिज्ञप्ति का विधेय पद व्याप्त होता है। निम्नलिखित तालिका में अ, ए, ई, ओ प्रतिज्ञप्तियों के पदों का व्याप्त या अव्याप्त रूप दर्शाया है :

| प्रतिज्ञप्ति | उद्देश्यपद | विधेयपद |
|---|---|---|
| अ | व्याप्त | अव्याप्त |
| ए | व्याप्त | व्याप्त |
| ई | अव्याप्त | अव्याप्त |
| ओ | अव्याप्त | व्याप्त |

संक्षेप में, ए प्रतिज्ञप्ति के दोनों पद व्याप्त होते हैं और इ प्रतिज्ञप्ति के दोनों पद अव्याप्त होते हैं । अ प्रतिज्ञप्ति का उद्देश्यपद व्याप्त और विधेयपद अव्याप्त होता है । ओ प्रतिज्ञप्ति का उद्देश्यपद अव्याप्त और विधेयपद व्याप्त होता है ।

## 9. यूलर आरेखों में प्रतिज्ञप्तियों को प्रकट करना

हम यह मानकर चलते हैं कि अ, ए, इ, ओ प्रकार की प्रतिज्ञप्तियाँ दो वर्गों के सम्बन्धों को प्रकट करती हैं । यदि हम क को उद्देश्यपद और ख को विधेयपद मानें तो क और ख के सम्बन्धों को प्रकट करने की दृष्टि से इन प्रतिज्ञप्तियों का अर्थ इस प्रकार होगा :

1. सब क ख हैं अर्थात् क वर्ग में जो भी है वह ख वर्ग में भी है ।
2. कोई क ख नहीं है अर्थात् क वर्ग का जो भी सदस्य है उनमें से कोई भी ख वर्ग का सदस्य नहीं है ।
3. कुछ क ख हैं अर्थात् क वर्ग के कुछ सदस्य ख वर्ग के सदस्य हैं ।
4. कुछ क ख नहीं हैं अर्थात् क वर्ग के कुछ सदस्य ख वर्ग के सदस्य नहीं हैं ।

क और ख के इस प्रकार सम्बन्धों को प्रकट करने वाली चार प्रकार की प्रतिज्ञप्तियों को यूलर के आरेखों में प्रकट किया जा सकता है । किन्हीं दो वर्गों क और ख के पाँच सम्भव सम्बन्ध हो सकते हैं जिन्हें यूलर नामक स्विस गणितज्ञ ने पाँच आरेखों में इस प्रकार प्रकट किया है :

**आरेख 1.** सब क, ख हैं और सब ख, क हैं ।

क = ख

**आरेख 2.** सब क, ख हैं । लेकिन कुछ ख, क हैं और कुछ ख, क नहीं हैं ।
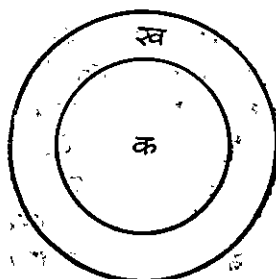
आरेख 3. कुछ क, ख हैं, कुछ क, ख नहीं हैं,
तथा
कुछ ख, क हैं और कुछ ख, क नहीं हैं।
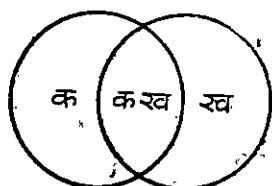
आरेख 4. कुछ क, ख हैं, कुछ क, ख नहीं हैं तथा सब ख, क हैं।
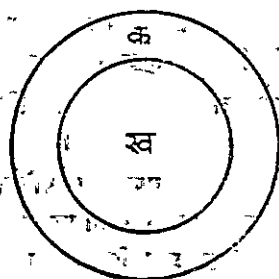
आरेख 5. कोई क, ख नहीं हैं तथा कोई ख, क नहीं हैं।
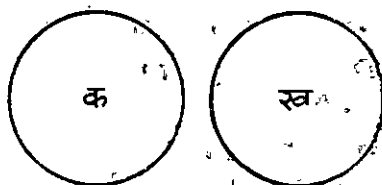
इन आरेखों में निरूपाधिक प्रतिज्ञप्तियों की अभिव्यक्ति निश्चित करते समय हम दो बातें मान कर चलेंगे :

1. हम 'क' को उद्देश्यपद मानेंगे और 'ख' को विधेयपद।

2. दूसरे, यह मान कर चलेंगे कि व्याप्तपद में अव्याप्तपद शामिल होता है अर्थात् "सब क" में "कुछ क" का अर्थ शामिल है*। इसका भाव यह है कि अ प्रतिज्ञप्ति में इ प्रतिज्ञप्ति और ए में ओ प्रतिज्ञप्ति का अर्थ शामिल समझा जायेगा।

इस प्रकार यूलर के उपर्युक्त आरेखों में अ, ए, इ, ओ प्रतिज्ञप्तियों की अभिव्यक्ति इस प्रकार है :

* बूलीय परम्परा में यह नहीं माना जाता।

आरेख (1) में अ तथा इ

आरेख (2) में अ तथा इ

आरेख (3) में इ तथा ओ

आरेख (4) में इ तथा ओ,

आरेख (5) में ए तथा ओ

दूसरी दृष्टि से, अ की अभिव्यक्ति आरेख (1) और (2) में, ए की अभिव्यक्ति केवल आरेख (5) में, इ की अभिव्यक्ति आरेख (1), (2), (3) और (4) में तथा ओ की अभिव्यक्ति आरेख (3), (4) और (5) में मिलती है।

## अभ्यास

1. परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार निरूपाधिक प्रतिज्ञप्ति, हेत्वाश्रित प्रतिज्ञप्ति और वियोजक प्रतिज्ञप्ति का अन्तर उदाहरणों सहित स्पष्ट करो।

2. परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार निरूपाधिक प्रतिज्ञप्ति, (अथवा सरल प्रतिज्ञप्ति) की रचना का तार्किक विश्लेषण करो।

3. निरूपाधिक प्रतिज्ञप्तियों के गुण तथा परिमाण से क्या समझते हो? गुण तथा परिमाण के आधार पर बनने वाले निरूपाधिक प्रतिज्ञप्तियों के रूपों का उदाहरण सहित विवेचन करो। निम्नलिखित प्रतिज्ञप्तियों का गुण तथा परिमाण निश्चित करो और इन्हें निरूपाधिक वाक्यों के मानक रूप में प्रकट करो :

(क) वोट देने वाला हर कोई व्यक्ति उम्मीदवार बन सकता है।

(ख) प्रत्येक सिपाही बहादुर नहीं होता।

(ग) कुछ गुणी लोग धनी नहीं होते।

(घ) राम सुन्दर है।

(ङ) सीता राम की पत्नी है।

4. पदों की व्याप्ति से क्या समझते हो? अ, ए, इ तथा ओ वाक्यों में व्याप्त तथा अव्याप्त पदों का रूप स्पष्ट करो।

5. सर्वव्यापी और अंशव्यापी प्रतिज्ञप्ति का अन्तर उदाहरण सहित स्पष्ट करो। सामान्य प्रतिज्ञप्ति और एकव्यापी प्रतिज्ञप्ति का अन्तर भी स्पष्ट करो। क्या ये दोनों प्रकार की प्रतिज्ञप्तियाँ सर्वव्यापी हैं? स्पष्ट करो।

6. "कुछ ही" और "कम-से-कम कुछ" का अन्तर स्पष्ट करो। तर्कशास्त्र में 'कुछ' का क्या अर्थ है? उदाहरण सहित स्पष्ट करो।

7. वर्ग-सम्बन्धों के रूप में अ, ए, इ तथा ओ प्रकार की प्रतिज्ञप्तियों का क्या अर्थ है? इन्हें यूलर आरेखों में कैसे प्रकट करेंगे?

## 10. साधारण वाक्यों को निरूपाधिक वाक्यों के मानक रूप में प्रकट करना

साधारण व्यवहार की भाषा में वाक्यों की रचना विविध प्रकार की होती है जो भाषा की सुन्दरता और व्यवहार की दृष्टि से महत्वपूर्ण होती है। लेकिन साधारण वाक्यों में प्रतिज्ञप्तियों का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता। इसलिए, तार्किक उद्देश्यों के लिए साधारण वाक्यों को निरूपाधिक वाक्यों के मानक रूप में रखना आवश्यक है। निरूपाधिक वाक्य के चार अंग होते हैं : परिमाणक, उद्देश्य, विधेय और संयोजक। निरूपाधिक वाक्य के मानक रूप में ये चारों अंग स्पष्ट होने चाहियें। साधारण वाक्यों को मानक निरूपाधिक रूप में बदलने की क्रिया का क्रम इस प्रकार है :

**चरण 1.** उद्देश्य विधेय पहचानना और उन्हें संज्ञा शब्दों में प्रकट करना।

**चरण 2.** संयोजक अलग करना और उसका गुण निश्चित करना। संयोजक वर्तमान काल में ही होना चाहिये।

**चरण 3.** वाक्य का परिमाण निश्चित करके उचित परिमाणक (सब, कोई या कुछ) लगाना।

**उद्देश्य विधेय तथा संयोजक अलग करना**

कुछ उदाहरण ;

| | वाक्यों के प्रचलित रूप | | वाक्यों का तार्किक रूप |
|---|---|---|---|
| 1. | राम सुन्दर है। | **राम** | सुन्दर पुरुष है। |
| 2. | राम दर्शनशास्त्र पढ़ता है। | **राम** | दर्शनशास्त्र पढ़ने वाला विद्यार्थी है। |
| 3. | राम ने रावण मारा। | **राम** | वह व्यक्ति है जिसने रावण मारा है। |
| 4. | रावण धनुष न तोड़ सका। | **रावण** | वह व्यक्ति जो धनुष तोड़ सका नहीं है। |
| 5. | मैं सत्य का पालन करूँगा। | **मैं** | वह व्यक्ति जो सत्य का पालन करेगा हूँ। |

यह स्पष्ट है कि वाक्यों को इस प्रकार तार्किक रूप में रखने में उनकी रचना में कृत्रिमता आ जाती है। लेकिन एक वाक्य द्वारा प्रकटित प्रतिज्ञप्ति के उद्देश्य, विधेय तथा उनके सम्बन्धों को स्पष्ट करने के लिए वाक्य की यह कृत्रिमता उपयोगी है।

**संयोजक का गुण निर्धारित करना और उसे स्पष्ट रूप में व्यक्त करना**

संयोजक के बारे में साधारणतः यह स्पष्ट होता है कि वह विधानात्मक है या निषेधात्मक। लेकिन कुछ वाक्यों का गुण स्पष्ट नहीं होता। कुछ वाक्य देखने में विधानात्मक होते हैं, लेकिन वास्तव में वे निषेधात्मक होते हैं। "मुश्किल से" "विरले"

"विरले ही" "शायद ही" "शायद ही कोई" "शायद ही कभी" के प्रयोग वाले वाक्य निषेधात्मक होते हैं और उनका उद्देश्य पद अव्याप्त होता है। इस प्रकार ऐसे वाक्यों को ओ वाक्य के रूप में प्रकट करना चाहिये।

कुछ उदाहरण :

| | वाक्यों के प्रचलित रूप | वाक्यों के तार्किक रूप |
|---|---|---|
| 6. | कुछ शरारती विद्यार्थी अध्यापक की नजर से मुश्किल से बच सकते हैं। | कुछ शरारती विद्यार्थी अध्यापक की नजर से बच सकने वाले विद्यार्थी नहीं हैं। (ओ) |
| 7. | प्रथम श्रेणी में पास होने वाला विद्यार्थी शायद ही आलसी होता है। | कुछ प्रथम श्रेणी में पास होने वाले विद्यार्थी आलसी विद्यार्थी नहीं हैं। (ओ) |
| 8. | विरले पर्वतारोही एवरेस्ट चोटी पर पहुँचते हैं। | कुछ पर्वतारोही एवरेस्ट चोटी पर पहुंचने वाले पर्वतारोही नहीं हैं। (ओ) |

**परिमाण निश्चित करना**

(क) विधानात्मक वाक्यों में 'सब', 'प्रत्येक', 'कोई', 'कोई भी', 'जो', 'जो भी', 'जो कुछ', 'सदा' शब्द सर्वपरिमाणक (universal quantifier) होते हैं। लेकिन निषेधात्मक वक्यों में ये अंशव्यापी परिमाणक (particular quantifier) का काम करते हैं और इसलिए इनके स्थान पर "कुछ" परिमाणक रख देना चाहिये।

कुछ उदाहरण :

| | | |
|---|---|---|
| 9. | सब मनुष्यों ने मरना है। | सब मनुष्य मरणशील प्राणी हैं। (अ) |
| 10. | प्रत्येक प्राणी दुःखी है। | सब प्राणी दुःखी प्राणी हैं। (अ) |
| 11. | कोई भी मूर्ख यह कार्य कर सकता है। | सब मूर्ख मनुष्य इस कार्य को कर सकने वाले मनुष्य हैं। (अ) |
| 12. | सदा सत्य की विजय होती है | सब सत्य के संघर्ष विजयी संघर्ष होते हैं। (अ) |
| 13. | उसे कोई पसन्द नहीं करता है। | कोई व्यक्ति उसे पसन्द करने वाला व्यक्ति नहीं है। (ए) |

(ख) "कुछ", "एक", "अनेक", "बहुत", "अत्यधिक", "अधिकांश", "थोड़े से", "प्रायः", "बहुधा", "अधिकतर", "कभी-कभी" शब्द अंशव्यापी परिमाणक (particular quantifier) होते हैं।

कुछ उदाहरण :

14. कुछ विद्यार्थी गणित पढ़ते हैं।
15. एक विद्यार्थी गणित पढ़ता है।
16. अनेक विद्यार्थी गणित पढ़ते हैं।

| | |
|---|---|
| 17 अधिकतर विद्यार्थी गणित पढ़ते हैं। | |
| इन सब वाक्यों का तार्किक रूप होगा : | कुछ विद्यार्थी गणित पढ़ने वाले विद्यार्थी हैं। (इ) |
| 18. बच्चे अधिकतर शरारती होते हैं। | कुछ बच्चे शरारती बच्चे होते हैं। (इ) |
| 19. थोड़े बच्चे प्रतिभाशाली होते हैं। | कुछ बच्चे प्रतिभाशाली बच्चे होते हैं। (इ) |
| 20. परिश्रमी और दूरदर्शी प्रायः सम्पन्न होते हैं। | कुछ परिश्रमी और दूरदर्शी लोग सम्पन्न व्यक्ति होते हैं। (इ) |
| 21. कभी-कभी बुद्धू विद्यार्थी पास हो जाते हैं। | कुछ बुद्धू विद्यार्थी पास होने वाले विद्यार्थी होते हैं। (इ) |
| 22. प्रायः हर शहर में गन्दी बस्तियाँ होती हैं। | कुछ शहर गन्दीबस्ती वाले शहर हैं। |

(ग) यदि एक वाक्य में कभी, प्रायः, बहुधा, आदि क्रिया-विशेषण शब्द हों तो समय-सूचक शब्दों को या क्रिया-सूचक शब्दों को ही संज्ञा का रूप देकर उन्हें उद्देश्यपद के रूप में रखना चाहिये। जैसे :

| | |
|---|---|
| 23. मैं ग्रीष्मावकाश में प्रायः पहाड़ी स्थानों पर चला जाता हूँ। | कुछ ग्रीष्मावकाश मेरे पहाड़ी स्थानों पर चले जाने के ग्रीष्मावकाश होते हैं। (इ) |
| 24. मैं कभी-कभी स्वप्न में बोलता हूँ। | कुछ मेरे स्वप्न के उदाहरण स्वप्न में बोलने के उदाहरण हैं। (इ) |
| 25. मैं कभी-कभी उपन्यास पढ़ता हूँ। | कुछ मेरा समय उपन्यास पढ़ने का समय है। (इ) |
| 26. मैं बहुधा प्रातःकाल सैर करने जाता हूँ। | कुछ दिन मेरे प्रातःकाल सैर को जाने के दिन होते हैं। (इ) |

(घ) सब, प्रत्येक तथा इनके समानार्थक परिमाणक वाले निषेधात्मक वाक्य ओ वाक्य होते हैं। जैसे :

| | |
|---|---|
| 27. सब भारतीय ग़रीब नहीं हैं। | कुछ भारतीय ग़रीब भारतीय नहीं हैं। (ओ) |
| 28. प्रत्येक व्यापारी चोरबाज़ारू नहीं है। | कुछ व्यापारी चोरबाज़ारू नहीं हैं। (ओ) |

(ङ) कुछ वाक्यों में परिमाणक शब्द नहीं होता। इनके सम्बन्ध में यह निश्चित करना कि ये वाक्य सर्वव्यापी हैं अथवा अंशव्यापी हैं, कुछ कठिन होता है। लेकिन सन्दर्भ से इनका परिमाणक निश्चित करने में सहायता मिल सकती है। जो वाक्य कोई नियम प्रकट करते हैं अथवा जिनमें विधेय का उद्देश्य से स्वाभाविक सम्बन्ध या विरोध मालूम पड़ता

है वे सर्वव्यापी वाक्य होते हैं और उनका परिमाणक "सब" या "कोई" होता है। लेकिन जो वाक्य एक साधारण अनुभव प्रकट करते हैं, वे अंशव्यापी वाक्य होते हैं। जैसे :

29. शेर मांसाहारी पशु है। सब शेर मांसाहारी पशु हैं (अ)
30. मनुष्य विचारशील प्राणी है। सब मनुष्य विचारशील प्राणी हैं (अ)
31. पक्षी उड़ते हैं। सब पक्षी उड़ने वाले प्राणी हैं। (अ)
32. विद्यार्थी शरारती होते हैं। कुछ विद्यार्थी शरारती विद्यार्थी होते हैं (इ)
33. भारतीय ग़रीब हैं। कुछ भारतीय ग़रीब भारतीय हैं। (इ)
34. आम फल हैं। सब आम फल हैं। (अ)

(च) एकव्यापी वाक्य (singular proposition), जैसा कि हम देख चुके हैं, सर्वव्यापी वाक्य होते हैं। लेकिन उनके पहले "सब" या "कोई" परिमाणक शब्द लगाना आवश्यक नहीं है।

35. राम धनवान् है। राम धनवान् मनुष्य है। (अ)
36. मोहन धनवान् नहीं है। मोहन धनवान् मनुष्य नहीं है। (ए)

**अवधारणमूलक वाक्य या व्यावर्तक वाक्य** (Exclusive sentences)

'केवल', 'सिर्फ', 'और', 'ही' अवधारणात्मक शब्द हैं। ये शब्द जिस पद के साथ जुड़े होते हैं, वह पद अव्याप्त होता है और वाक्य में उससे अन्य पद व्याप्त होता है। जैसे :

37. केवल सच्चरित्र व्यक्ति सुखी है।

इस वाक्य के दो पद हैं : सच्चरित्र व्यक्ति और सुखी व्यक्ति।

इस वाक्य का अर्थ 'सब सच्चरित्र व्यक्ति सुखी व्यक्ति हैं' समझना ग़लत है। "केवल सब सच्चरित्र व्यक्ति" का अर्थ "सब सच्चरित्र व्यक्ति" नहीं है। इसका वास्तव में अर्थ "सच्चरित्र व्यक्तियों से अन्य कोई नहीं" है। इस प्रकार इस वाक्य का तार्किक अर्थ निम्नलिखित ढंग से स्पष्ट होगा :

(अ) कोई सच्चरित्र व्यक्तियों से अन्य व्यक्ति सुखी व्यक्ति नहीं है। (ए)

इस वाक्य का तार्किक रूप निम्नलिखित भी हो सकता है :

(आ) सब सुखी व्यक्ति सच्चरित्र व्यक्ति हैं। (अ)

कुछ और उदाहरण :

38. मैं केवल इतवार को सिनेमा देखने जाता हूं।

इसके दो पद हैं : इतवार, मेरे सिनेमा जाने का दिन। इस वाक्य के दो तार्किक रूप होंगे :

(अ) कोई इतवार से अन्य दिन मेरे सिनेमा जाने का दिन नहीं है। (ए)
(आ) सब सिनेमा जाने के मेरे दिन इतवार हैं। (अ)

39. केवल देवदत्त यज्ञदत्त का पुत्र है ।

तार्किक रूप :

(अ) कोई देवदत्त से अन्य व्यक्ति यज्ञदत्त का पुत्र नहीं है (ए) ।

(आ) सब यज्ञदत्त के पुत्र देवदत्त हैं (अ) ।

उदाहरण (38) और (39) में (अ) रूप अधिक उपयुक्त है, यद्यपि (आ) रूप गलत नहीं है । यह ध्यान रखिये कि यहाँ "सब" का अर्थ अनेक नहीं है, बल्कि इसका अर्थ 'जो भी है, वह सब' है ।

**अपवादात्मक वाक्य**

जिन वाक्यों में एक वर्ग के एक या कुछ व्यक्तियों को छोड़कर शेष के बारे में कोई बात कही हो वे अपवादात्मक वाक्य होते हैं । अपवादात्मक वाक्य वास्तव में सम्मिश्र वाक्य होते हैं और इनका तार्किक विश्लेषण दो वाक्यों के मिश्र रूप में होता है । जैसे :

40. रावण के सिवाय सब राक्षस मारे गये ।

तार्किक रूप :

सब रावण से अन्य राक्षस मारे गये राक्षस हैं (अ) और रावण मारा गया राक्षस नहीं है (ए) ।

41. एक विद्यार्थी को छोड़कर सब विद्यार्थी प्रथम श्रेणी में पास हुए हैं ।

**टिप्पणी**

"एक विद्यार्थी" का अर्थ यहाँ "कुछ विद्यार्थी" होगा । इस प्रकार यह वाक्य इ तथा ओ वाक्यों के मिश्र वाक्य में प्रकट होगा :

कुछ विद्यार्थी प्रथम श्रेणी में पास विद्यार्थी नहीं हैं (ओ) और कुछ विद्यार्थी प्रथम श्रेणी में पास विद्यार्थी हैं (इ) ।

## अभ्यास

निम्नलिखित वाक्यों को तार्किक रूप में प्रकट करो :

1. जो गरजते हैं सो बरसते नहीं हैं ।
2. चमकने वाली सब वस्तुएँ सोना नहीं होतीं ।
3. सभी सत्य वाक्य स्वयं सिद्ध नहीं होते ।
4. विरले व्यक्तियों के मुँह से मरते समय राम नाम निकलता है ।
5. जिन बातों को लोग ठीक नहीं समझते वे सब गलत नहीं होतीं ।
6. मनुष्य को सबसे अधिक प्रसन्नता सत्य की नयी खोजों से मिलती है ।
7. अपना कमाया हुआ पुण्य ही अन्त में व्यक्ति का साथ देता है ।
8. जो भी व्यक्ति अपने ज्ञान को नहीं बढ़ाता वह उसे घटाता है ।
9. क्षणिक वस्तु भी सत् होती है ।
10. क्षणिक वस्तु ही सत् होती है ।

11. दर्शनशास्त्र की सब विधियाँ विज्ञान की विधियों से भिन्न नहीं हैं।
12. जिन लोगों ने तर्कशास्त्र नहीं पढ़ा वे भी ठीक विचार कर सकते हैं।
13. सत्य निष्कर्ष वाली प्रत्येक युक्ति वैध नहीं होती।
14. सत्य आधारिकावाली वैध युक्ति का निष्कर्ष सत्य होता है।
15. प्रत्येक वैध तर्क का निष्कर्ष सत्य नहीं होता।
16. अनुशासनहीन कोई व्यक्ति जीवन में सफल नहीं हो सकता।
17. धर्म के बिना मनुष्य पशु के समान है।
18. जो कुछ वेदों में लिखा है वह सत्य है।
19. जो कुछ वेदों में लिखा है वह सब सत्य नहीं है।
20. वेदों में लिखा कुछ भी सत्य नहीं है।

# 7

# वर्ग-सम्बन्ध और निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियाँ

पिछले अध्याय में हमने निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों के चार रूपों, अ, ए, इ, ओ की परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार व्याख्या प्रस्तुत की। इस अध्याय में हम इन प्रतिज्ञप्तियों की बूलीय व्याख्या प्रस्तुत करेंगे।

बूलीय वर्ग-न्याय आधुनिक तर्कशास्त्र की एक प्रमुख शाखा है। इसमें वर्गों के परिगणन (class calculus) का अध्ययन किया जाता है। यहाँ हम वर्ग-न्याय के कुछ मूल प्रत्ययों की व्याख्या करेंगे जिससे निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों की आधुनिक व्याख्या को और उन्हें प्रकट करने के लिए प्रयुक्त की जाने वाली प्रतीकात्मक भाषा को समझ सकें।

## 1. व्यक्ति, गुण-धर्म और वर्ग

किसी मूर्त या अमूर्त विशिष्ट वस्तु को व्यक्ति कहते हैं। जैसे : राम, एवरेस्ट, वर्ण 'अ' और शब्द 'अक्षर' व्यक्ति हैं। राम और एवरेस्ट मूर्त व्यक्ति हैं, जबकि वर्ण 'अ' और शब्द 'अक्षर' अमूर्त हैं।

व्यक्तियों में गुण-धर्म रहते हैं। इसलिए, व्यक्ति को धर्मी भी कहते हैं। तर्कशास्त्र में 'व्यक्ति', 'धर्मी', तथा 'वस्तु' समानार्थक शब्द हैं।

ऐसा माना जाता है कि व्यक्तियों अर्थात् वस्तुओं का अस्तित्व है। यद्यपि गुण-धर्म वस्तुओं में रहते हैं, लेकिन हम वस्तुओं से गुणों को पृथक् करके गुणों के बारे में विचार कर सकते हैं। इसलिए, भाषा में जहाँ विशिष्ट वस्तुओं के बोधक नाम होते हैं वहाँ गुण-बोधक नाम भी होते हैं। 'राम' व्यक्ति-बोधक नाम है। लेकिन 'ईमानदारी' गुण-बोधक नाम है।

वस्तुओं से पृथक् करके गुणों के बारे में विचार कर सकने का एक परिणाम यह निकलता है कि मानव भिन्न-भिन्न गुण-धर्मों के मिश्रित रूप सोच सकता है। इस प्रकार वह गुण-धर्मों का ऐसा मिश्रित रूप भी सोच सकता है जिस रूप में वे किसी भी वस्तु में न हों।

वस्तुओं से गुणों को पृथक् करके केवल गुणों के बारे में विचार कर सकने की क्रिया का दूसरा परिणाम यह निकलता है कि मनुष्य विचार की क्रिया में वर्गों की

रचना कर सकता है । जिस प्रकार वस्तुओं का अस्तित्व है, उस प्रकार वर्गों (classes) का अस्तित्व नहीं है । जिस प्रकार व्यक्तियों का जन्म-मरण होता है, उस प्रकार एक वर्ग का जन्म मरण नहीं होता । जिस प्रकार हम श्रीमती इन्दिरागांधी के जन्म-मरण के बारे में सोच सकते हैं, वैसे हम महिला प्रधान मंत्रियों के वर्ग के जन्म-मरण के बारे में नहीं सोचते । सारांश यह है कि वर्ग कोई वस्तु नहीं है अपितु यह विचार की रचना है । मानव विचार की क्रिया द्वारा वर्ग का निर्माण करता है और विचार की क्रिया में इसका प्रयोग भी करता है। इस प्रकार वर्ग, एक तार्किक रचना और तार्किक उपकरण है ।

## 2. वर्ग-धर्म, वर्ग और वर्ग-सदस्य

समान गुण-धर्म वाले व्यक्तियों का समुच्चय वर्ग होता है और जिन व्यक्तियों में समान गुण-धर्म होते हैं वे एक ही वर्ग के सदस्य माने जाते हैं । जैसे, मान लो देवदत्त के चार पुत्र हैं : सोमदत्त, यज्ञदत्त, रविदत्त और ब्रह्मदत्त । देवदत्त के पुत्र होने का गुण इन चारों व्यक्तियों में है । इस प्रकार, सोमदत्त, यज्ञदत्त, रविदत्त और ब्रह्मदत्त का समुच्चय देवदत्त के पुत्रों का वर्ग बनता है और सोमदत्त, यज्ञदत्त, रविदत्त तथा ब्रह्मदत्त में से प्रत्येक देवदत्त के पुत्रों के वर्ग का सदस्य बनता है । वर्ग के सदस्य होनेके सम्बन्ध को '$\in$' से प्रकट किया जाता है । इस प्रकार :

सोमदत्त $\in$ देवदत्त के पुत्रों का वर्ग

का अर्थ है कि सोमदत्त देवदत्त के पुत्रों के वर्ग का एक सदस्य है । इसे हम इस प्रकार भी पढ़ सकते हैं कि

सोमदत्त देवदत्त का पुत्र है ।

## 3. वर्गों की प्रतीकावली

**वर्ग-चर :** वर्ग-सम्बन्धी सामान्य चर्चा में वर्ग-चरों (term variables) का प्रयोग किया जाता है । एक वर्ग-चर वह प्रतीक है जो किसी एक निश्चित वर्ग का बोधक न हो अपितु किसी भी वर्ग के स्थान का बोधक हो । हम क, ख, ग आदि अक्षरों का प्रयोग वर्ग-चरों के रूप में करेंगे ।

**व्यक्ति-चर :** व्यक्ति-चर वह प्रतीक है जो किसी भी एक व्यक्ति के स्थान का बोधक हो । हम अंग्रेजी के छोटे अक्षरों, a, b, c का प्रयोग व्यक्ति-चरों के रूप में करेंगे ।

इस प्रकार

(i) $a \in$ क

किसी भी एक व्यक्ति के किसी भी एक वर्ग के सदस्य होने के सम्बन्ध को प्रकट करने वाले वाक्य का सामान्य रूप है ।

**वर्ग-संक्षेप :** वर्ग-संक्षेप विशेष वर्ग के वाचक शब्द का संक्षिप्त चिह्न होता है । जैसे हम 'म' अक्षर का प्रयोग "मनुष्य" के संक्षिप्त चिह्न के रूप में कर सकते हैं ।

सामान्यतः वर्ग-वाची शब्द के किसी अक्षर का प्रयोग वर्ग-संक्षेप के रूप में किया जाता है। हम किसी सन्दर्भ में किस अक्षर का प्रयोग किस वर्ग को प्रकट करने के लिए कर रहे हैं, इसे वहाँ पहले स्पष्ट करना आवश्यक होता है।

**व्यक्ति-संक्षेप :** जिस प्रकार वर्ग-वाची शब्द की जगह संक्षिप्त चिह्न का प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार व्यक्ति-वाची शब्द की जगह भी संक्षिप्त चिह्न का प्रयोग करते हैं।

जैसे :

र=रमेश

द=दर्शनशास्त्र के विद्यार्थियों का वर्ग

यहाँ 'र' व्यक्तिवाची पद का संक्षेप है और 'द' वर्गवाची पद का। इस कुँजी के आधार पर

(2) र $\in$ द।

का अर्थ होगा।

(3) रमेश दर्शन-शास्त्र का विद्यार्थी है।

वाक्य (2) वाक्य (3) का प्रतीकात्मक रूप है जबकि (1) वाक्य नहीं है अपितु वर्ग-सदस्यता बोधक वाक्यों की सामान्य रचना की बोधक एक प्रतीकात्मक रचना है। वाक्यों के रूप को प्रकट करने वाली प्रतीकात्मक रचना को व्यंजक (expression) कहते हैं। इस प्रकार (1) वाक्य नहीं है अपितु व्यंजक है।

जिस प्रकार प्रतीक $\in$ का अर्थ वर्ग का सदस्य होना है, उसी प्रकार $\notin$ का अर्थ वर्ग का सदस्य न होना है। इस प्रकार

(4) र $\notin$ द।

का अर्थ होगा

(5) रमेश दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी नहीं है।

## 4. धर्मी-धर्मसम्बन्धबोधक प्रतिज्ञप्ति और वर्गसदस्यताबोधक प्रतिज्ञप्ति का सम्बन्ध और अन्तर

निम्नलिखित दो वाक्यों पर विचार करें :

(1) राम बलवान् है।

(2) राम बलवान् पुरुष है।

(1) का अर्थ है कि राम में बलवान् होने का गुण है। (2) का अर्थ है कि राम बलवान् पुरुषों में से एक है अर्थात् राम बलवान् पुरुषों के वर्ग का एक सदस्य है। यह स्पष्ट है कि यदि (2) सत्य है तो (1) भी सत्य होगा क्योंकि जब तक राम में बलवान् होने का गुण नहीं है, तब तक वह बलवान् पुरुषों के वर्ग का सदस्य नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार यदि (1) सत्य है तो (2)

दोनों कथनों में सम्बन्ध है और साधारण व्यवहार में हम एक कथन का दूसरे में रूपान्तर कर सकते हैं। लेकिन तार्किक दृष्टि से ये दो प्रकार की प्रतिज्ञप्तियाँ हैं क्योंकि ये दो प्रकार के सम्बन्धों को प्रकट करती हैं। प्रतिज्ञप्ति (1) व्यक्ति में गुण-धर्म के होने को प्रकट करती है जबकि प्रतिज्ञप्ति (2) व्यक्ति के वर्ग का सदस्य होने के सम्बन्ध को प्रकट करती है। प्रतिज्ञप्ति (1) को उद्देश्य-विधेय प्रतिज्ञप्ति भी कहते हैं। एकव्यापी प्रतिज्ञप्तियों का विश्लेषण, दोनों प्रकार से किया जा सकता है। इस अध्याय में हम इनका विश्लेषण वर्ग-सदस्यता वाचक प्रतिज्ञप्ति के रूप में कर रहे हैं। धर्मी-धर्म सम्बन्ध बोधक प्रतिज्ञप्तियों के रूप में इनकी व्याख्या अध्याय 19 में करेंगे।

## 5. एकल वर्ग और शून्य वर्ग

मान लो, अकेला सोमदत्त ही देवदत्त का एक पुत्र है। तब, देवदत्त के पुत्रों के वर्ग में केवल एक सदस्य होगा। जिस वर्ग में केवल एक सदस्य हो उसे एकल-वर्ग (unit class) कहते हैं।

मान लो देवदत्त का एक भी पुत्र नहीं है। तब भी हम देवदत्त के पुत्रों के वर्ग की चर्चा कर सकते हैं, यद्यपि देवदत्त के किसी पुत्र की चर्चा नहीं कर सकते क्योंकि देवदत्त का कोई पुत्र है ही नहीं। इस प्रकार देवदत्त का एक भी पुत्र न होने पर देवदत्त के पुत्रों का वर्ग तो सोचा जा सकता, लेकिन यह वर्ग सदस्यहीन होगा। सदस्यहीन वर्ग को शून्य-वर्ग (null class) कहते हैं और इसे प्रतीक 0 से प्रकट करते है। इस प्रकार यदि द=देवदत्त के पुत्रों का वर्ग, तो

(1) द=0।

का अर्थ होगा

(2) देवदत्त के पुत्रों का वर्ग शून्य-वर्ग है।

प्रचलित भाषा में इसका रूप होगा :

(3) देवदत्त का कोई पुत्र नहीं है।

पाठक को एकल-वर्ग और शून्य-वर्ग का विचार कुछ विचित्र सा लगे क्योंकि साधारण व्यवहार में हम ऐसा सोचते हैं कि एक वर्ग में अनेक सदस्य होते हैं। इसका कारण यह है कि साधारणतः हम पहले व्यक्तियों के बारे में सोचते हैं और फिर उनके सामान्य गुण-धर्मों के बारे में। वर्ग के तार्किक स्वरूप को समझने के लिए हमारा ध्यान पहले व्यक्तियों की ओर नहीं जाना चाहिये अपितु सामान्य गुण-धर्म की ओर जाना चाहिये और फिर सोचना चाहिये कि वह गुण-धर्म किसी व्यक्ति में है भी या नहीं और यदि है तो किन-किन व्यक्तियों में है। यदि वह गुण-धर्म एक भी व्यक्ति में नहीं है अर्थात् उस गुण-धर्म वाले एक भी व्यक्ति का अस्तित्व नहीं है तो उस गुण-धर्म के विस्तार में एक भी व्यक्ति नहीं आता अर्थात् उस गुण-धर्म से निर्धारित वर्ग शून्य-वर्ग है। क्योंकि पुत्रवती वन्ध्या होने का गुण किसी में नहीं हो सकता इसलिए पुत्रवती वन्ध्या का वर्ग शून्य-वर्ग है। यदि एक गुणधर्म केवल एक व्यक्ति में

है तो उस गुण-धर्म से निर्धारित वर्ग एकसदस्यीय वर्ग होगा। एकसदस्यीय वर्ग की चर्चा तो कभी-कभी व्यवहार में भी करते हैं। "एकसदस्यीय आयोग" तो प्रचलित शब्द है।

एकसदस्यीय वर्ग और उस वर्ग का सदस्य बिल्कुल भिन्न हैं। इनके अन्तर के सम्बन्ध में भ्रान्ति नहीं होनी चाहिये। जवाहर लाल की पुत्री और जवाहर लाल की पुत्री के वर्ग में अन्तर है।

निम्नलिखित वाक्यों के अर्थ पर विचार करें :

(1) जवाहर लाल की पुत्री भारत की प्रधान मन्त्री रह चुकी है।
(2) जवाहर लाल की पुत्री का वर्ग एकसदस्यीय वर्ग है।
(3) जवाहर लाल की पुत्री एकसदस्यीय वर्ग है।
(4) जवाहर लाल की पुत्री का वर्ग भारत का प्रधान मन्त्री रह चुका है।

स्पष्ट है कि (1) और (2) का तो अर्थ है लेकिन (3) और (4) का कोई अर्थ नहीं है।

इस प्रकार एकसदस्यीय वर्ग और उसके सदस्य में अन्तर है। एकसदस्यीय वर्ग के बारे में कोई कथन और उस वर्ग के सदस्य के बारे में कथन बिल्कुल भिन्न-भिन्न कथन होंगे।

## 6. वाद-विश्व

### (Universe of discourse)

किसी वर्ग के बारे में चर्चा उससे अधिक व्यापक वर्ग के सन्दर्भ में ही सार्थक होती है। वर्गों की चर्चा के सन्दर्भ में अधिक से अधिक व्यापक वर्ग वाद-विश्व कहलाता है। "भारतीय परिश्रमी होते हैं" यह कथन मनुष्यों के सन्दर्भ में है, पक्षियों या पेड़-पौधों के सन्दर्भ में नहीं। यहाँ वाद-विश्व मनुष्य-वर्ग है। मनुष्यों के किसी भी उपवर्ग की चर्चा का वाद-विश्व मनुष्य-वर्ग होगा।

पक्षियों के किसी उपवर्ग की चर्चा में पक्षियों का वर्ग वाद-विश्व होगा। मकानों के किसी उपवर्ग के सन्दर्भ में मकानों का वर्ग वाद-विश्व होगा।

## 7. सार्विक वर्ग

### (Universe class)

क्या आप किसी ऐसे गुण-धर्म के बारे में सोच सकते हैं, जो संसार की प्रत्येक वस्तु में हो ? ऐसे गुण-धर्म से निर्धारित वर्ग सार्विक वर्ग होगा। उदाहरण के रूप में अपने स्वरूप के साथ तादात्म्य रखना ऐसा गुण है जो संसार की प्रत्येक वस्तु में होगा। इस प्रकार अपने साथ तादात्म्य रखने वाली वस्तुओं का वर्ग सार्विक-वर्ग है।

किसी चर्चा में, विशेषकर दार्शनिक चर्चा में सार्विक-वर्ग भी वाद-विश्व हो सकता है। लेकिन सार्विक-वर्ग और वाद-विश्व में अन्तर है।

साधारण चर्चा में हमारा सम्बन्ध वाद-विश्व से ही होता है। वाद-विश्व को u से प्रकट करते हैं। स्पष्ट है कि भिन्न-भिन्न सन्दर्भों में u का अर्थ भिन्न-भिन्न होगा। कहीं u का अर्थ मनुष्य-वर्ग होगा तो कहीं u का अर्थ पक्षियों का वर्ग होगा। लेकिन एक चर्चा में u का एक ही निश्चित अर्थ होगा।

## 8. वर्गों पर संक्रियाएँ

हम गणित में, —, ×, + आदि संक्रियाओं से परिचित हैं। इसी प्रकार वर्गों पर भी संक्रियाएँ की जा सकती हैं। वर्गों पर संक्रियाएँ करके नये वर्ग बनाये जा सकते हैं। वर्ग संक्रियाओं में तीन संक्रियाएँ प्रमुख हैं। ये निषेध, गुणन और योग की संक्रियाएँ हैं जो गणित की —, × और + की संक्रियाओं से मिलती हैं।

**वर्ग-निषेध और पूरक वर्ग**

यदि एक सन्दर्भ में क एक वर्ग हो तो क का निषेध करने से क से इतर वर्ग बनेगा जिसे हम प्रतीकात्मक भाषा में $\overline{\text{क}}$ लिखेंगे। '$\overline{\text{क}}$' को न—क, या क से इतर पढ़ेंगे। मनुष्यों के सन्दर्भ में भारतीय वर्ग का निषेध करने पर अभारतीय वर्ग बनेगा।

वर्ग-निषेध से जो वर्ग बनेगा वह मूल वर्ग का पूरक वर्ग होगा। इस प्रकार $\overline{\text{क}}$ क का पूरक होगा।

यदि एक वर्ग का दो बार निषेध करें तो हम मूल वर्ग को ही प्राप्त करते हैं। इसे द्विधा निषेध का नियम कहते हैं। $\overline{\text{क}}$ का निषेध करने से हम क को ही प्राप्त करेंगे। द्विधा निषेध का नियम प्रतीकात्मक भाषा में इस प्रकार है :

$$\overline{\overline{\text{क}}}=\text{क}$$

इस प्रकार

$$\overline{\overline{\text{भारतीय}}}=\text{भारतीय}$$

इससे यह बात स्पष्ट होती है कि जहाँ $\overline{\text{क}}$, क का पूरक है, वहाँ क, भी $\overline{\text{क}}$ का पूरक है।

क और $\overline{\text{क}}$ के पूरक होने के सम्बन्ध से निम्नलिखित बातें निकलती हैं :

1. जो क का सदस्य है, वह $\overline{\text{क}}$ का सदस्य नहीं होगा और जो $\overline{\text{क}}$ का सदस्य है, वह क का सदस्य नहीं होगा।

| इस प्रकार | कुंजी : |
|---|---|
| र ∈ द | र=रमेश |
| और | द=दर्शनशास्त्र के विद्यार्थियों का वर्ग |
| र ∈ $\overline{\text{द}}$ | $\overline{\text{द}}$=दर्शनशास्त्र के विद्यार्थियों के वर्ग से इतर वर्ग |

दोनों एक साथ सत्य नहीं होंगे। उनमें से एक अवश्य असत्य होगा।

2. जो क का सदस्य नहीं है, वह $\bar{\text{क}}$ का सदस्य होगा और जो $\bar{\text{क}}$ का सदस्य नहीं है, वह क का सदस्य होगा।

इस प्रकार

र $\in$ द

और

र $\in$ $\bar{\text{द}}$

दोनों एक साथ असत्य नहीं हो सकते। इनमें से एक अवश्य सत्य होगा। इनमें से एक के निषेध करने का अर्थ दूसरे कथन को स्वीकार करना होगा।

इस प्रकार

र $\notin$ द

और

र $\in$ $\bar{\text{द}}$

तुल्य कथन होंगे।

इसी प्रकार

र $\notin$ $\bar{\text{द}}$

और

र $\in$ द

तुल्य कथन होंगे।

सारांश यह है कि क और $\bar{\text{क}}$ एक-दूसरे के व्यावर्तक होते हैं, लेकिन इन दोनों के सम्मिलित क्षेत्र में वाद-विश्व (u) का क्षेत्र आ जाता है। निम्नलिखित आरेख क और $\bar{\text{क}}$ के सम्बन्ध को दर्शाता है :

**आरेख 6.**
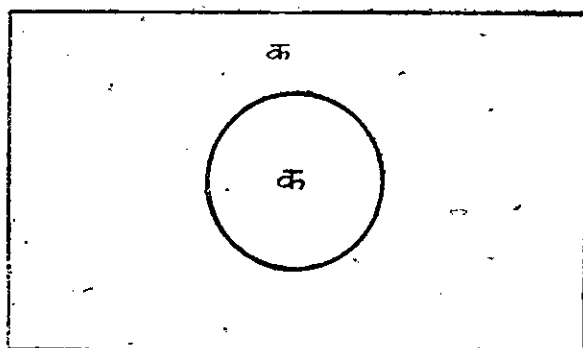
$\bar{\text{क}}$ + क = u

**वर्गों का योग**

दो वर्गों का योग करने का अर्थ उन दोनों वर्गों के सदस्यों को मिलाकर नया वर्ग बनाना है। इस प्रकार क और ख का योग वह वर्ग होगा जिसमें क के सब सदस्य हैं और जिसमें ख के भी सब सदस्य हैं। क और ख के योग से बनने वाला वर्ग क और ख का संघ या क और ख का योग कहलायेगा। इसे क ∪ ख लिखेंगे। 'क ∪ ख' को 'क संघ ख' अथवा 'क ख का संघ' पढ़ेंगे। इसे क और ख का योगफल भी कहते हैं।

मानलो क, ख, ग, घ, ङ, अक्षरों का वर्ग क वर्ग है और च, छ, ज, झ, ञ अक्षरों का वर्ग च वर्ग है तो क ∪ च वह वर्ग होगा जिसमें क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ हों। दूसरी दृष्टि से हम यह भी कह सकते हैं कि क ∪ च वह वर्ग होगा जिसका एक सदस्य या तो क का सदस्य होगा या च का।

विशेष टिप्पणी :

क और $\bar{\text{क}}$ का योगफल, अर्थात् संघ वाद-विश्व के बराबर होगा। इस प्रकार क ∪ $\bar{\text{क}}$ = u. आरेख (6) से भी यह बात स्पष्ट होती है।

**वर्गों का गुणन**

क और ख के गुणन से जो वर्ग बनेगा उसे क ∩ ख अथवा क×ख लिखेंगे। 'क ∩ ख' को 'क और ख का गुणनफल' अथवा 'क और ख का उभयनिष्ठ वर्ग' अथवा 'क उभयनिष्ठ ख' पढ़ेंगे। क ∩ ख वह वर्ग होगा जिसका प्रत्येक सदस्य क और ख दोनों का सदस्य हो। जैसे, बहादुर व्यक्ति ∩ सैनिक (पढ़ने में; बहादुर व्यक्ति सैनिक उभयनिष्ठ) वह वर्ग होगा जिसका प्रत्येक सदस्य बहादुर व्यक्तियों के वर्ग का और सैनिक व्यक्तियों के वर्ग का सदस्य है। साधारण भाषा में बहादुर व्यक्ति ∩ सैनिक व्यक्ति को 'बहादुर सैनिकों का वर्ग' लिखेंगे।

विशेष टिप्पणी :

क और $\bar{\text{क}}$ के गुणन का फल शून्य वर्ग होगा। इस प्रकार

क ∩ $\bar{\text{क}}$ = 0.

## 9. वर्ग-सम्बन्ध

वर्ग सम्बन्धों में दो सम्बन्ध प्रमुख हैं। ये, वर्गान्तर्वेशन (class-inclusion) और वर्ग-तादात्म्य (class-identity) के सम्बन्ध हैं।

**वर्गान्तर्वेशन**

जब क वर्ग के सब सदस्य ख वर्ग में हों तो क वर्ग का ख वर्ग मे अन्तर्वेशन मानेंगे। इसे हम क ⊂ ख के द्वारा प्रकट करते हैं। 'क ⊂ ख' को पढ़ने के निम्नलिखित रूप हैं :

1. क वर्ग ख वर्ग में अन्तर्निष्ट है।

2. ख वर्ग में क वर्ग का अन्तर्वेश है।

जब क वर्ग ख वर्ग में अन्तर्विष्ट हो तो क वर्ग को ख वर्ग का उपवर्ग कहेंगे।

इस प्रकार

क ⊂ ख

को पढ़ने का तीसरा रूप यह भी है :

3. क वर्ग ख वर्ग का उपवर्ग है।

प्रचलित भाषा में इसका रूपान्तर निम्नलिखित होगा :

4. सब क, ख हैं।

**वर्ग-तादात्म्य**

जो क वर्ग के सदस्य हैं वही सदस्य ख वर्ग के हों और जो ख वर्ग के सदस्य हैं वही सदस्य क वर्ग के हों तो क वर्ग और ख वर्ग में तादात्म्य माना जाता है। तादात्म्य को '=' से प्रकट करते हैं। इस प्रकार

क = ख

का अर्थ है कि क के सब सदस्य ख के सदस्य हैं, और ख के सब सदस्य क के सदस्य हैं।

प्रतीकात्मक भाषा में क = ख का अर्थ है :

क ⊂ ख और ख ⊂ क।

वर्ग-तादात्म्य के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं।

1. कारणजन्य = क्षणिक (बौद्धदर्शन से)।
2. समबाहु त्रिभुज = समान कोणिक त्रिभुज।

ध्यान देने की बात यह है कि वर्ग-तादात्म्य का अर्थ वर्गों के निर्धारक गुणों का तादात्म्य नहीं है अपितु वर्गों के सदस्यों का तादात्म्य है।

**वर्ग संक्रियाओं और वर्ग सम्बन्धों में अन्तर**

वर्ग संक्रियाओं (class operations) और वर्ग सम्बन्धों का स्वरूप भिन्न है। वर्ग-सक्रियाओं का फल वर्ग होता है, लेकिन वर्गों को सम्बन्धित करने का फल वर्ग नहीं होता अपितु प्रतिज्ञप्ति होता है।

$\bar{क}$, क ∪ ख तथा क ∩ ख तो वर्ग हैं, लेकिन

a ∈ ख

क ⊂ ख

और

क = ख

प्रतिज्ञप्तियों के तीन रूप हैं :

**वर्ग सदस्यता, वर्गान्तर्वेशन और वर्ग तादात्म्य में अन्तर**

वर्ग सदस्यता और वर्गान्तर्वेशन बिल्कुल भिन्न-भिन्न सम्बन्ध हैं। वर्गान्तर्वेशन तो दो वर्गों का सम्बन्ध है। वर्ग-सदस्यता प्रधानरूप में व्यक्ति और वर्ग का सम्बन्ध है।

एक वर्ग भी दूसरे वर्ग का सदस्य कहा जा सकता है। जैसे, भारत राष्ट्र एक वर्ग है और स्वतन्त्र राष्ट्रों का वर्ग भी एक वर्ग है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारत राष्ट्र स्वतन्त्र राष्ट्रों के वर्ग का एक सदस्य है। प्रतीकात्मक भाषा में इस कथन का रूप होगा :

भारत राष्ट्र ∈ स्वतन्त्र राष्ट्रों का वर्ग,

'भारत राष्ट्र ∈ स्वतन्त्र राष्ट्रों का वर्ग' तो एक सार्थक कथन है लेकिन हम

'भारत राष्ट्र ⊂ स्वतन्त्र राष्ट्रों के वर्ग'

अर्थात्

'भारत राष्ट्र स्वतन्त्र राष्ट्रों के वर्ग में अन्तर्विष्ट है' ऐसा नहीं कह सकते।

क्योंकि 'भारत राष्ट्र ⊂ स्वतन्त्र राष्ट्रों का वर्ग' का अर्थ होगा कि 'जो भारत राष्ट्र का सदस्य है, वह स्वतन्त्र राष्ट्रों के वर्ग का सदस्य है अर्थात् वह स्वतन्त्र राष्ट्र है'। यह कोई कथन नहीं बनता।

क ⊂ ख और क=ख का अन्तर तो स्पष्ट है। जहाँ क ⊂ ख के अर्थ में ख ⊂ क, का अर्थ शामिल नहीं है वहाँ क=ख में क ⊂ ख और ख ⊂ क दोनों का सम्मिलित अर्थ शामिल है।

इन सम्बन्धों में एक महत्त्वपूर्ण अन्तर यह भी है कि जहाँ '⊂' और '=' संक्रामक हैं, वहाँ '∈' संक्रामक नहीं हैं।

इस प्रकार जहाँ

क ⊂ ख<br>
ख ⊂ ग<br>
∴ क ⊂ ग

और

क=ख<br>
ख=ग<br>
∴ क ग

वैध युक्तियों के रूप हैं, वहाँ

क ∈ ख<br>
ख ∈ ग<br>
∴ क ∈ ग

युक्ति का वैध रूप नहीं है।

## 10. संयोजक "है" की अनेकार्थता

यह बात ध्यान देने योग्य है कि जिन वाक्यों में हम "है" को संयोजक के रूप में प्रयुक्त करते हैं, उन सबमें इससे एक ही सम्बन्ध का बोध नहीं होता। "है" का प्रयोग वर्ग-सदस्यता, वर्गान्तर्वेशन तथा वर्ग-तादात्म्य तीनों सम्बन्धों के लिए किया जाता है। जैसे :

(1) राम भारतीय है ।

(2) पंजाबी भारतीय हैं ।

(3) दो खुरों वाले पशु सींग वाले पशु हैं ।

इनमें से (1) में "है" वर्ग-सदस्यता का, (2) में वर्गान्तर्वेशन का और (3) में वर्ग-तादात्म्य का बोधक है । ये प्रतिज्ञप्तियाँ भिन्न-भिन्न सम्बन्धों को प्रकट करने के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं । परम्परागत तर्कशास्त्र में "है" के अनेकार्थक प्रयोग को न समझ सकने के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार की इन प्रतिज्ञप्तियों को एक ही प्रकार की माना गया है । यह परम्परागत तर्कशास्त्र में एक दोष है । "है" की बह्वर्थता से बचने के लिए आधुनिक तर्कशास्त्र में एक सम्बन्ध को एक ही प्रतीक से प्रकट करते हैं । प्रतीकों के प्रयोग से इन प्रतिज्ञप्तियों के रूप का अन्तर निम्नलिखित ढंग से स्पष्ट हो जायेगा :

1. राम $\in$ भारतीय ।
2. पंजाबी $\subset$ भारतीय ।
3. दो खुरों वाले पशु $=$ सींग वाले पशु ।

## 11. वर्ग-मूल्य
## (Values of Classes)

तार्किक दृष्टि से रिक्त होना या अरिक्त होना वर्गों के दो मूल्य माने जाते हैं । प्रत्येक वर्ग का इनमें से एक मूल्य होगा और किसी भी वर्ग में ये दोनों मूल्य नहीं हो सकते । एक वर्ग रिक्त होगा या अरिक्त होगा और कोई भी वर्ग रिक्त और अरिक्त दोनों नहीं हो सकता । मान लो क एक वर्ग है । "क रिक्त वर्ग है" इसे संक्षेप में "क$=$0" लिखेंगे । इसी प्रकार "क रिक्त नहीं है" को "क $\neq$ 0" लिखेंगे ।

वेन आरेखों में छायांकन द्वारा वर्ग का रिक्त होना दर्शाया जाता है और वृत्त के अन्दर '×' लिखकर वर्ग का अरिक्त होना दर्शाया जाता है । नीचे आरेख 7 रिक्त वर्ग को और आरेख 8 अरिक्त वर्ग को दर्शाता है ।

आरेख 7.
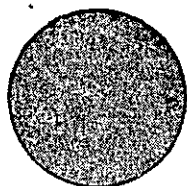
वन्ध्यापुत्र$=$0

कोई वन्ध्यापुत्र नहीं है ।

आरेख 8.

मनुष्य

×
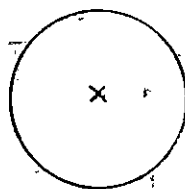
मनुष्य$\neq$0

कम-से-कम एक मनुष्य है ।

## 12. निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों के रूपों की बीजगणित की भाषा में अभिव्यक्ति

वर्गीय तर्कशास्त्र की मूल बातों को स्पष्ट करने के बाद अब निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों की आधुनिक व्याख्या जिसे बूलीय व्याख्या कहते हैं समझी जा सकती है।

निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों की आधुनिक व्याख्या इस प्रकार है :

**अ प्रतिज्ञप्ति**

आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार अ प्रतिज्ञप्ति के रूप को विभिन्न प्रकार से प्रकट कर सकते हैं :

1. सब क, ख हैं।
2. यदि कोई क है तो वह ख है।
3. ऐसा कोई नहीं है जो क हो लेकिन ख न हो।
4. क ख̄ रिक्त वर्ग है।
5. क ख̄=0।

**ए प्रतिज्ञप्ति**

ए प्रतिज्ञप्ति का आकार विभिन्न प्रकार से इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :

1. कोई क, ख नहीं है।
2. यदि कोई क है तो वह ख नहीं है।
3. ऐसा कोई नहीं है जो क और ख दोनों हों।
4. क ख रिक्त वर्ग है।
5. क ख=0।

**इ प्रतिज्ञप्ति**

इ प्रतिज्ञप्ति के विभिन्न रूपान्तर इस प्रकार हैं :

1. कुछ क, ख हैं।
2. कम-से-कम एक क है और वह ख है।
3. कम-से-कम एक ऐसी वस्तु का अस्तित्व है जो क और ख दोनों हैं।
4. क ख रिक्त वर्ग नहीं हैं।
5. क ख≠0।

**ओ प्रतिज्ञप्ति**

ओ प्रतिज्ञप्ति के विभिन्न रूपान्तर इस प्रकार हैं :

1. कुछ क, ख नहीं हैं।
2. कम-से-कम एक क है और वह ख नहीं है।

3. कम-से-कम एक ऐसी वस्तु का अस्तित्व है जो क है लेकिन ख नहीं है।

4. $\text{क}\,\overline{\text{ख}}$ रिक्त वर्ग नहीं है।

5. $\text{क}\,\overline{\text{ख}}\neq 0$।

## 13. वेन आरेखों में अ, ए, इ, ओ प्रतिप्तियों को प्रकट करना

हम देख चुके हैं चार प्रकार की निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों का बीजगणित की भाषा में रूपान्तरण इस प्रकार है :

(अ) $\text{क}\,\overline{\text{ख}}=0$

(ए) $\text{क}\,\text{ख}=0$

(इ) $\text{क}\,\text{ख}\neq 0$

(ओ) $\text{क}\,\overline{\text{ख}}\neq 0$

इन चारों प्रतिज्ञप्तियों के आकारों को वेन आरेखों में बड़ी स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त किया जा सकता है। निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों में वर्ग-सम्बन्धों की अभिव्यक्ति का क्या रूप होता है इसे यहाँ कुछ स्पष्ट करना आवश्यक है। एक निरुपाधिक प्रतिज्ञप्ति दो वर्गों क और ख, के सम्बन्ध को प्रकट करती है। हम यह जानते हैं कि प्रत्येक वर्ग का एक पूरक वर्ग होता है। इस प्रकार जहाँ दो वर्गों, क और ख, के सम्बन्धों की चर्चा होगी वहाँ उनके पूरक वर्गों, $\overline{\text{क}}$ और $\overline{\text{ख}}$ की भी चर्चा आ जायेगी। क, ख तथा इनके पूरक वर्ग, $\overline{\text{क}}$, $\overline{\text{ख}}$ के निम्नलिखित चार संयुक्त वर्ग बनेंगे :

$\text{क}\,\text{ख}$ $\quad$ $\text{क}\,\overline{\text{ख}}$ $\quad$ $\overline{\text{क}}\,\overline{\text{ख}}$ $\quad$ $\overline{\text{क}}\,\text{ख}$

एक वर्ग को वेन आरेखों में प्रकट करने के लिए एक वृत्त का प्रयोग किया जाता है। क्योंकि निरुपाधिक प्रतिज्ञप्ति में उद्देश्य तथा विधेय के रूप में दो वर्गों का सम्बन्ध बताया जाता है, इसलिए इसे अभिव्यक्त करने के लिए दो वृत्तों की आवश्यकता होती है। निरुपाधिक प्रतिज्ञप्ति को वेन आरेखों में प्रकट करने के लिए दो वृत्तों को शृंखलाबद्ध किया जाता है जिससे सम्पूर्ण क्षेत्र चार भागों में विभक्त हो जाता है। निरुपाधिक प्रतिज्ञप्ति को प्रकट करने वाले वेन आरेख का सामान्य रूप आगे आरेख 9 में दिया है।

आरेख 9.
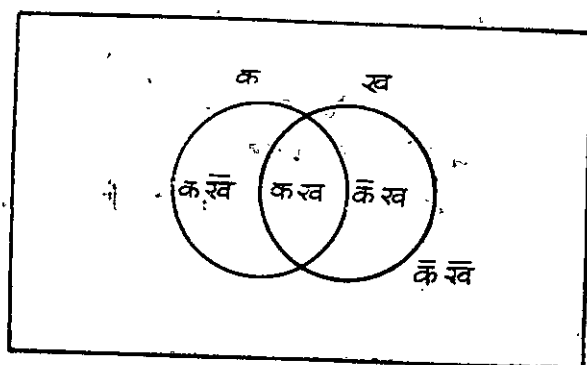
इस आरेख के उपयुक्त कोष्ठ में छायांकन करके अथवा '×' अंकित करके अ, ए, इ, ओ प्रतिज्ञप्तियों को निम्नलिखित ढंग से प्रकट किया जा सकता है :

आरेख 10.

अ सब क, ख हैं

क ख̄ = O

आरेख 11.

ए कोई क, ख नहीं है ।

क ख = O

आरेख 12.

इ कुछ क, ख हैं ।

क ख ≠ O

आरेख 13.

ओ कुछ क, ख नहीं हैं ।

क ख̄ ≠ O
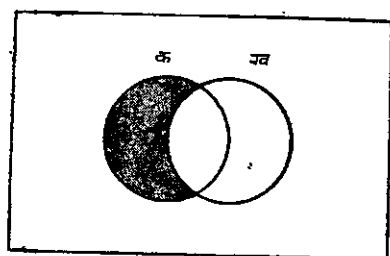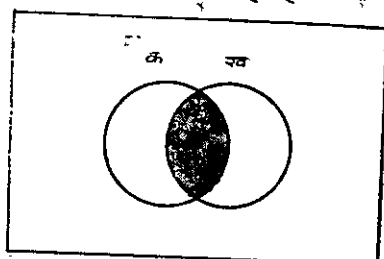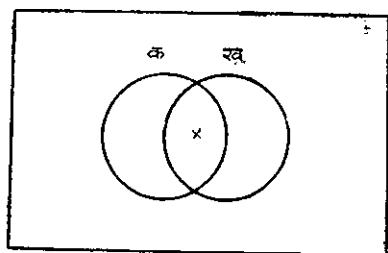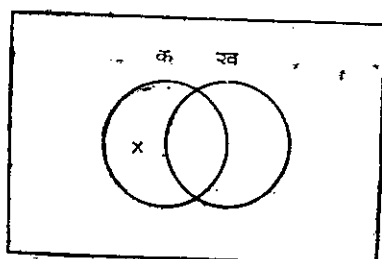
## 14. निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों के सत्तावाचक अर्थ का प्रश्न : निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों की अरस्तवी व्याख्या और बूलीय व्याख्या में अन्तर

निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों की अरस्तवी अर्थात् परम्परागत व्याख्या, जिसका विवेचन हम अध्याय 6 में कर चुके हैं, तथा इनकी बूलीय अर्थात् आधुनिक व्याख्या, जिसका परिचय इस अध्याय में दिया है, प्रमुख अन्तर सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्तियों अर्थात् अ और ए, के सम्बन्ध में है।

प्रश्न यह है कि क्या सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्तियों के सार्थक होने के लिए उनका सत्तावाचक होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, क्या यह मानना आवश्यक है कि सर्व-व्यापी प्रतिज्ञप्तियों में पदों की वाच्य-वस्तुओं के अस्तित्व का दावा किया जाता है? परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार ऐसा मानना आवश्यक है। परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार कोई निरुपाधिक प्रतिज्ञप्ति, अ, ए, इ, तथा ओ, तब तक सार्थक नहीं मानी जायेगी, जब तक यह न माना जाये कि उसके पद किसी न किसी वस्तु का निर्देशन करते हैं अर्थात् किसी अस्तित्ववान् वस्तु की ओर संकेत करते हैं। परम्परागत तर्क-शास्त्री यह दावा इस आधार पर करते हैं कि व्यवहार में भी निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों का अर्थ सत्तावाचक लिया जाता है। उदाहरण के रूप में 'देवदत्त के सब पुत्र विद्वान् हैं' का अर्थ हम यही समझेंगे कि देवदत्त के कुछ पुत्र हैं और वे विद्वान् हैं। यदि देवदत्त का एक पुत्र भी न हो, तो यह कथन अर्थहीन समझा जायेगा। तब, वास्तव में यह कथन ही नहीं होगा।

परम्परागत तर्कशास्त्र निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों के सत्तावाचक अर्थ को लेकर विकसित हुआ है। आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार इस सम्बन्ध में सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्ति (universal proposition) तथा अंशव्यापी प्रतिज्ञप्ति (particular proposition) में बुनियादी अन्तर है। अंशव्यापी प्रतिज्ञप्तियों को तो आधुनिक तर्कशास्त्री परम्परागत तर्क-शास्त्रियों की तरह सत्तावाचक मानते हैं। लेकिन वे सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्तियों (universal propositions, A, E) को सत्तावाचक नहीं मानते। इनका अर्थ वे हेत्वाश्रित (hypothetical) रूप में करते हैं। इस प्रकार 'सब क, ख हैं' का केवल इतना अर्थ है कि 'यदि कोई क है तो वह ख है'। इसमें किसी क अथवा ख के अस्तित्व का दावा नहीं है। आधुनिक तर्कशास्त्री भी अपने पक्ष में यह दावा करते हैं कि व्यवहार में कम-से-कम कुछ सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्तियों का अर्थ हेत्वाश्रित (hypothetical) लिया जाता है। जैसे, 'आज कक्षा में अनुपस्थित सब (प्रत्येक) छात्रों पर एक रुपया जुर्माना होगा' सार्थक कथन माना जायेगा, भले ही आज एक भी विद्यार्थी अनुपस्थित न हो। इसलिए, इसका तार्किक अर्थ केवल यह होगा : यदि आज कक्षा में कोई अनुपस्थित विद्यार्थी होगा तो उस पर एक रुपया जुर्माना होगा।

व्यवहार में जिन सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्तियों का अर्थ सत्तावाचक लिया जाता है, आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार, उनका भी तार्किक अर्थ तो हेत्वाश्रित ही मानना चाहिये, लेकिन उनके अर्थ में सत्तावाचक अर्थ अलग से जुड़ा हुआ समझना चाहिये। इस प्रकार, जिन सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्तियों का अर्थ सत्तावाचक मानकर चलते हैं वे वास्तव में सम्मिश्र प्रतिज्ञप्तियाँ हैं। उदाहरण के रूप में,

सब देवदत्त के पुत्र विद्वान् हैं।

का सत्तावाचक अर्थ लेने पर इसका स्पष्ट रूप इस प्रकार होगा :

यदि देवदत्त का कोई पुत्र है तो वह विद्वान् है और देवदत्त का कम-से-कम एक पुत्र है।

सत्तावाचक मान्यता को जोड़ने पर अ तथा ए की वेन आरेखों में अभिव्यक्ति इस प्रकार होगी :

**आरेख 13.**

सब क, ख हैं और कम-से-कम एक क है।
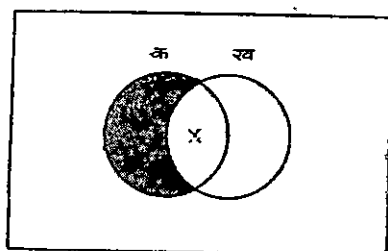
**आरेख 14.**

कोई क, ख नहीं है और कम-से-कम एक क है।
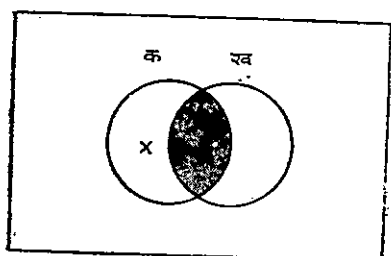
तार्किक दृष्टि से निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों की आधुनिक व्याख्या अधिक उपयुक्त है। निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों की परम्परागत व्याख्या मानने पर प्रतिज्ञप्तियों के विरोध तथा व्यवहित अनुमान की व्याख्या करते समय विरोध आता है। विस्तारभय से यहाँ इसकी व्याख्या नहीं करते। इसका स्पष्टीकरण आगे अध्याय 8 के अनुच्छेद 4 में किया गया है।

**पारिभाषिक शब्द तथा प्रतीक**

1. वर्ग
2. एकल वर्ग
3. पूरक वर्ग
4. रिक्त वर्ग
5. सार्विक वर्ग
6. वर्ग धर्म
7. वर्ग सदस्य
8. वर्गों पर संक्रियाएँ
9. वर्ग निषेध
10. वर्गों का गुणन
11. वर्गों का योग
12. वर्गों का सम्मिलन
13. वर्ग सम्बन्ध
14. वर्ग तादात्म्य
15. वर्गान्तर्वेशन
16. वर्ग मूल्य

**प्रतीक**

क $\cup$ ख अथवा क + ख

क $\cap$ ख अथवा क $\times$ ख

क $\subset$ ख

a $\in$ क

a $\notin$ क

क = ख

## अभ्यास

1. वर्ग-संक्षेप का प्रयोग करके निम्नलिखित प्रतिज्ञप्तियों को बीजगणतीय प्रतीकों तथा वेन आरेखों में प्रकट करें।

1. आत्माओं का अस्तित्व नहीं है।
2. आत्माएँ अमर हैं।
3. आत्मा भौतिक पदार्थ नहीं है।
4. आत्माओं का अस्तित्व है।
5. सब पुरुष विवाहित हैं।
6. कोई अपुरुष विवाहित नहीं है।
7. कुछ पुरुष विवाहित हैं।
8. कुछ पुरुष अविवाहित हैं।
9. कोई पुरुष विवाहित नहीं है।
10. सब वस्तुएँ क्षणिक हैं।
11. कोई वस्तु अक्षणिक नहीं है।
12. कुछ वस्तुएँ क्षणिक हैं।
13. कुछ वस्तुएँ अक्षणिक हैं।
14. सब विद्यार्थी खिलाड़ी हैं।
15. कोई विद्यार्थी खिलाड़ी नहीं है।
16. कम-से-कम एक विद्यार्थी खिलाड़ी है।
17. कुछ विद्यार्थी खिलाड़ी नहीं हैं।
18. राम खिलाड़ी है।

2. वाद-विश्व से क्या समझते हो ? स्पष्ट करो।

3. शून्य वर्ग के स्वरूप को स्पष्ट करो।

4. एकल वर्ग के स्वरूप पर टिप्पणी लिखो और एकल वर्ग में वर्ग और वर्ग-सदस्य का अन्तर स्पष्ट करो।

5. वर्ग-धर्म, वर्ग और वर्ग के सदस्य का अन्तर स्पष्ट करो।

6. वर्गों पर की जाने वाली प्रमुख संक्रियाओं की उदाहरण सहित व्याख्या करो।

7. वर्गों के गुणनफल तथा वर्गों के योगफल का अन्तर उदाहरणों तथा वेन आरेखों द्वारा स्पष्ट करो।

8. "है" के अनेकार्थक प्रयोग पर टिप्पणी लिखो।

9. निम्नलिखित को शब्दों में प्रकट करो :

(क) u

(ख) 0

(ग) $\overline{\text{क}}$

(घ) क $\overline{\text{ख}}$ = 0

(ङ) $\overline{\text{क}}$ ख = 0

(च) क ख ≠ 0

10. वर्गों के दो मूल्य कौन से हैं ? वेन आरेखों में उन्हें किस प्रकार प्रकट करते हैं ?

11. निम्नलिखित को भाषा के वाक्यों तथा वेन आरेखों में प्रकट करो :

(अ) क = 0

(आ) क ≠ 0

(इ) $\overline{\text{क}}$ ≠ 0

(ई) क ख = 0

(उ) क ख ≠ 0

12. निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों का अर्थ लगाने के सम्बन्ध में परम्परागत तर्कशास्त्र और आधुनिक तर्कशास्त्र में क्या अन्तर है ? दोनों पक्षों को स्पष्ट करो।

13. निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों के सत्तावाचक अर्थ के सम्बन्ध में परम्परागत तथा आधुनिक मतों का अन्तर स्पष्ट करो।

# 8

# निरुपाधिक वाक्यों के तार्किक सम्बन्ध और विरोध-चतुरस्र

हम निरुपाधिक वाक्यों के चार प्रकारों और उन्हें प्रकट करने के तीन रूपों, भाषात्मक, प्रतीकात्मक तथा चित्रात्मक, का अध्ययन कर चुके हैं। इस अध्याय में निरुपाधिक वाक्यों के आकारिक सम्बन्धों तथा अव्यवहित अनुमान (immediate inference) के कुछ प्रकारों का अध्ययन करेंगे।

## 1. अव्यवहित और व्यवहित अनुमान

"अनुमान" शब्द के अर्थ में निगमनात्मक अनुमान तथा आगमनात्मक अनुमान, दोनों प्रकार के अनुमान आते हैं। इस भाग में "अनुमान" शब्द का प्रयोग निगमनात्मक अनुमान के अर्थ में ही किया जायेगा।

यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि दिये हुए कथनों से एक अन्य कथन निकालने की क्रिया अनुमान कहलाती है। जो कथन निकाला जाता है उसे निष्कर्ष कहते हैं और वह जिन कथनों से निकाला जाता है, उन्हें आधारिकाएँ कहते हैं।

निगमनात्मक अनुमान का वह रूप जिसमें एक ही आधारिका से निष्कर्ष निकाला गया हो अव्यवहित अनुमान (immediate inference) कहलाता है। जिस अनुमान में निष्कर्ष एक से अधिक आधारिकाओं के मेल से निकाला हो, उसे व्यवहित अनुमान (mediate inference) कहते हैं। परम्परागत तर्कशास्त्र में "सिलाजिज़्म" व्यवहित अनुमान का प्रसिद्ध रूप है। इसका अध्ययन अगले अध्याय में करेंगे। इस अध्याय में हमारा अध्ययन अव्यवहित अनुमान के कुछ रूपों तक ही सीमित रहेगा।

## 2. कथनों के सात प्रकार के तार्किक सम्बन्ध

अव्यवहित अनुमान में एक दिये हुए कथन से एक अन्य कथन निकाला जाता है अथवा दिये हुए कथन के सत्य या असत्य से दूसरे कथन के सत्य या असत्य का निश्चय किया जाता है। किसी एक कथन के सत्य या असत्य के ज्ञान के आधार पर हम एक अन्य कथन के सत्य या असत्य का अनुमान कर सकते हैं या नहीं यह उन दोनों कथनों के तार्किक सम्बन्ध पर निर्भर करता है। दो कथनों में सात प्रकार के सम्बन्ध सम्भव हो सकते हैं। इनका परिचय यहाँ दिया जाता है।

**स्वतन्त्र कथन** (Independent statements)

दो ऐसे कथन जिनमें से किसी एक के सत्य या असत्य से दूसरे के सत्य या असत्य का अनुमान न लगा सकें स्वतन्त्र कथन कहलाते हैं। जैसे,

(1) मानव दिव्य-स्तर तक ऊँचा उठ सकता है।

(2) मानव पशु-स्तर से भी नीचा गिर सकता है।

ये दोनों कथन स्वतन्त्र कथन हैं। ये दोनों एक साथ सत्य हो सकते हैं, अथवा एक साथ असत्य अथवा इनमें से एक सत्य और दूसरा असत्य हो सकता है। इस प्रकार, इनमें किसी एक के सत्य या असत्य से दूसरे के सत्य या असत्य का कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

**तुल्य कथन** (Equivalent statements)

जिन दो कथनों में से किसी एक के सत्य से दूसरे के सत्य का अनुमान लगा सकें और किसी एक के असत्य से दूसरे के असत्य का अनुमान लगा सकें, वे दोनों कथन एक-दूसरे का आपादन करते हैं। ऐसे कथनों को तुल्य-कथन अर्थात् समान सत्यता-मूल्य वाले कथन कहते हैं। दो तुल्य कथन या तो एक साथ सत्य होंगे या एक साथ असत्य। ऐसा नहीं हो सकता कि इनमें से एक सत्य हो और दूसरा असत्य।

(3) सब भारतीय किसान परिश्रमी हैं।

(4) कोई भारतीय किसान अपरिश्रमी नहीं है।

ये दोनों तुल्य कथन हैं। यदि (3) सत्य है तो (4) भी सत्य है। यदि (4) सत्य है, तो (3) सत्य है। यदि (3) असत्य है, तो (4) असत्य है। यदि (4) असत्य है, तो (3) असत्य है। तुल्यता सम्बन्ध को प्रकट करने के लिए प्रतीक '≡' का प्रयोग किया जाता है।

**आपादन** (Implication) **अथवा अध्यापादन** (super-implication)

जब दो कथन, प और फ, इस प्रकार सम्बन्धित हों कि प के सत्य होने पर फ का सत्य होना निश्चित हो, लेकिन प के असत्य होने पर फ का असत्य होना निश्चित न हो तो प को फ का आपादक (implicant) अथवा अध्यापादक (super-implicant) कहते हैं और प का फ से सम्बन्ध आपादन (implication) कहलाता है। इसे हम यह कह कर भी प्रकट कर सकते हैं कि 'प फ का आपादन करता है' (p implies q) अथवा फ प से आपाद्य है (q is implied by p)। 'प से फ का आपादन होता है' इसे 'प→फ' के रूप में प्रकट करते हैं।

**उपापादन** (Sub-implication)

जब दो कथन प और फ इस प्रकार सम्बन्धित हों कि प के सत्य से फ का सत्य निश्चित न हो, लेकिन प के असत्य से फ का असत्य निश्चित हो तो प को फ का उपापादक (sub-implicant) कहते हैं और प का फ से सम्बन्ध उपापादन (sub-implication) कहलाता है।

उपापादन आपादन का परिवर्तित रूप है। यदि कथन प, कथन फ, का आपादक है, तो फ, प का उपापादक है। इस प्रकार, 'प→फ' का दूसरा रूप 'फ←प' होगा। 'फ←प' का अर्थ है कि फ, प का उपापादक है।

आपादन और उपापादन का अन्तर निम्नलिखित सारणी से स्पष्ट हो जायेगा :

| आपादक | आपादन | आपादित |
|---|---|---|
| (5) सब दर्शन के विद्यार्थी परिश्रमी हैं | → | कुछ दर्शन के विद्यार्थी परिश्रमी हैं (6) |
| सत्य | | सत्य |
| असत्य | | ? |

| उपापादक | उपापादन | उपापादित |
|---|---|---|
| (6) कुछ दर्शन के विद्यार्थी परिश्रमी हैं | ← | सब दर्शन के विद्यार्थी परिश्रमी हैं। (5) |
| सत्य | | ? |
| असत्य | | असत्य |

(5), (6) का आपादन करता है क्योंकि (5) के सत्य होने पर (6) सत्य बनता है, लेकिन (5) के असत्य होने पर (6) अनिश्चित (?) है।

जब (5), (6) का आपादन करता है तो (6) से (5) का उपापादन होता है क्योंकि (6) के सत्य होने पर (5) अनिश्चित (?) है जबकि (6) के असत्य होने पर (5) असत्य है।

**वैपरीत्य (Contrariety)**

जब दो कथनों में से एक के सत्य होने पर दूसरे का असत्य होना निश्चित हो, लेकिन एक के असत्य होने पर दूसरे का सत्य होना निश्चित न हो तब उन दोनों कथनों में वैपरीत्य (contrariety) माना जाता है और उन दोनों को विपरीत (contrary) कहते हैं। दो विपरीत कथन एक साथ सत्य नहीं हो सकते लेकिन एक साथ असत्य हो सकते हैं। जैसे :

(7) सब अध्यापक गरीब हैं।

(8) कोई अध्यापक गरीब नहीं है।

विपरीत कथन हैं।

**उपवैपरीत्य (sub-contrariety)**

वे दो कथन एक-दूसरे के उप-विपरीत (sub-contrary) माने जाते हैं, जिनमें एक के सत्य से दूसरे के सत्य/असत्य का निश्चय न होता हो बल्कि एक के असत्य से दूसरे के सत्य का निश्चय हो सकता हो। जैसे,

(9) कुछ अध्यापक गरीब हैं।

और

(10) कुछ अध्यापक गरीब नहीं हैं।

एक-दूसरे के उपविपरीत हैं।

दो उपविपरीत कथन एक साथ असत्य नहीं हो सकते, लेकिन वे एक साथ सत्य हो सकते हैं।

**व्याघात (Contradiction)**

ऐसे दो कथन जो न तो एक साथ सत्य हो सकते हों और न एक साथ असत्य हो सकते हों एक-दूसरे के व्याघाती (contradictory) होते हैं। एक कथन में जो बात कही है उसका निषेध करने से व्याघाती कथन बनता है।

(11) राम दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी है।

इसका निषेध करें तो निम्नलिखित कथन बनेगा :

(12) राम दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी नहीं है।

कथन (12) कथन (11) का निषेध है और कथन (11) कथन (12) का। ये एक-दूसरे के व्याघाती हैं क्योंकि ये न एक साथ सत्य हो सकते हैं और न एक साथ असत्य। व्याघात का यह रूप निम्नलिखित सारणी में प्रदर्शित है :

| | | |
|---|---|---|
| (क) | राम दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी है | राम दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी नहीं है। |
| | सत्य | असत्य |
| | असत्य | सत्य |
| (ख) | रामदर्शनशास्त्र का विद्यार्थी नहीं है | राम दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी है। |
| | सत्य | असत्य |
| | असत्य | सत्य |

इस प्रकार एक कथन और उसका निषेध व्याघाती होंगे, ये न तो एक साथ सत्य होंगे न एक साथ असत्य।

## अभ्यास

निम्नलिखित कथनों के जोड़ों का तार्किक सम्बन्ध बताओ :

1. (क) सब सफल व्यक्ति परिश्रमी होते हैं।
   (ख) कुछ सफल व्यक्ति परिश्रमी होते हैं।
2. (च) सब सच्चरित्र व्यक्ति संयमी होते हैं।
   (छ) कुछ सच्चरित्र व्यक्ति संयमी नहीं होते।
3. (ज) राम धनवान् है।
   (झ) राम परिश्रमी है।
4. (त) सब मनुष्य मरणशील हैं।
   (थ) कोई मनुष्य अमर नहीं है।

5. (द) सब वस्तुएँ नाशवान् हैं।
   (ध) कोई वस्तु नाशवान् नहीं है।
6. (प) कुछ वस्तुएँ नाशवान् हैं।
   (फ) कुछ वस्तुएँ नाशवान् नहीं हैं।

## 3. विरोध-चतुरस्र
### (Square of opposition)

परम्परागत तर्कशास्त्र में निरुपाधिक कथनों के कुछ तार्किक सम्बन्ध कथनों के विरोध के नाम से प्रसिद्ध हैं।

जिन दो निरुपाधिक कथनों की वस्तु-सामग्री (उद्देश्य और विधेय) एक ही तथा जिनमें आकार का अन्तर हो, उन्हें एक-दूसरे का विरोधी (opposite), और उनके सम्बन्ध को कथनों का विरोध (opposition of statements) कहते हैं। दो कथनों के आकार में अन्तर गुण के भेद के कारण, अथवा परिमाण के भेद के कारण अथवा गुण और परिमाण दोनों के भेद के कारण हो सकता है। अ, ए, इ, ओ वाक्यों में से प्रत्येक वाक्य अन्य तीन वाक्यों से गुण में या परिमाण में या गुण और परिमाण दोनों में भिन्न है। इस प्रकार प्रत्येक वाक्य का अन्य तीन प्रकार के वाक्यों से किसी न किसी प्रकार

आरेख 15.
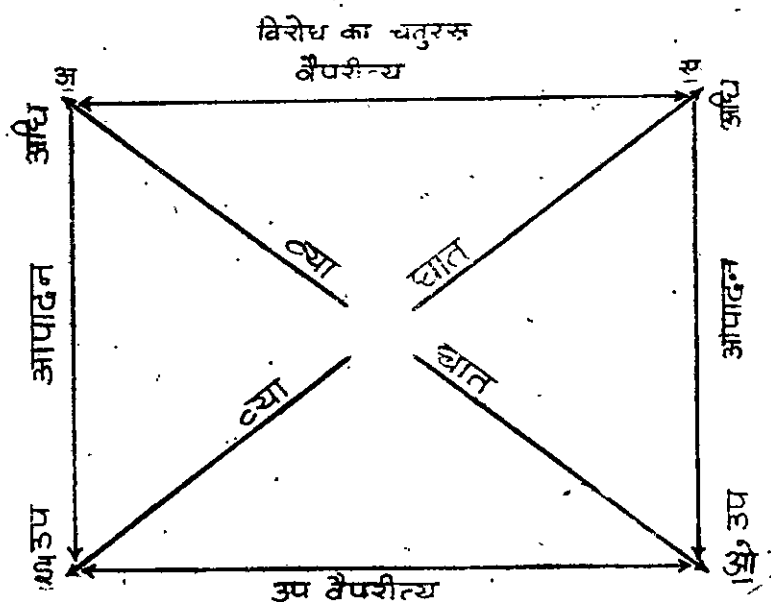
का विरोध है। अ, ए, इ, ओ वाक्यों के विरोध को चार कोनों की एक आकृति से दर्शाया जाता है। इस आकृति को विरोध-चतुरस्र (square of opposition) कहते हैं। यह आकृति पिछले पृष्ठ पर आरेख 15 में दी है।

इस आरेख से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं :

1. अ इ का आपादक है और ए ओ का आपादक है। यदि अ सत्य है तो इ सत्य है। यदि ए सत्य है तो ओ सत्य है। यदि अ असत्य है तो इ अनिश्चित है। इसी प्रकार यदि ए असत्य है तो ओ अनिश्चित है।

2. इ, अ का तथा ओ, ए का उपापादक है। यदि इ सत्य है तो अ अनिश्चित है। लेकिन यदि इ असत्य है तो अ असत्य है। इसी प्रकार, ओ के असत्य होने पर ए असत्य होगा, लेकिन ओ के सत्य होने पर ए अनिश्चित होगा।

आपादन तथा उपापादन समान गुण वाले लेकिन भिन्न परिमाण वाले वाक्यों में होता है। सर्वव्यापी वाक्य समान गुण वाले अंशव्यापी वाक्य का आपादक होता है और अंशव्यापी वाक्य सर्वव्यापी वाक्य का उपापादक होता है।

3. अ तथा ए एक-दूसरे के विपरीत हैं। ये दोनों एक साथ सत्य नहीं हो सकते, लेकिन दोनों एक साथ असत्य हो सकते हैं।

4. इ और ओ एक-दूसरे के उपविपरीत हैं। ये दोनों एक साथ असत्य नहीं हो सकते, लेकिन एक साथ सत्य हो सकते हैं।

5. अ तथा ओ, और ए तथा इ एक-दूसरे के व्याघाती हैं। ये दोनों न तो एक साथ सत्य हो सकते हैं और न असत्य।

वाक्यों के विरोध के सम्बन्ध में यह बात फिर ध्यान में रखना आवश्यक है कि उन्हीं दो वाक्यों में विरोध होता है जिनके पद अर्थात् उद्देश्य तथा विधेय समान हों तथा जिनमें केवल आकार का अन्तर हो।

### अभ्यास

1. निम्नलिखित तालिका के रिक्त स्थानों में स (सत्य), अ (असत्य) या ? (संदिग्ध) भरिये।

| | अ | ए | इ | ओ |
|---|---|---|---|---|
| यदि अ सत्य है | स | अ | स | अ |
| यदि ए सत्य है | — | — | — | — |
| यदि इ सत्य है | — | — | — | — |
| यदि ओ सत्य है | — | — | — | — |
| यदि अ असत्य है | — | — | — | — |
| यदि ए असत्य है | — | — | — | — |
| यदि इ असत्य है | — | — | — | — |
| यदि ओ असत्य है | — | — | — | — |

2. निम्नलिखित कथनों को सत्य मानकर इनके विरोधी कथनों के सत्य/असत्य का अनुमान लगाइये।

1. सब मनुष्य सुख चाहते हैं।
2. कुछ व्यापारी ईमानदार होते हैं।
3. कोई सन्त निर्दयी नहीं होता।
4. कुछ बच्चे प्रतिभाशाली नहीं होते।
5. कुछ स्त्रियाँ कुशल प्रशासक होती हैं।
6. कुछ गुणी लोग निर्धन होते हैं।
7. सब वस्तुएँ क्षणिक हैं।
8. कोई देशद्रोही आदर से नहीं देखा जाता।
9. सब विद्वान् कुशल प्रशासक नहीं होते।
10. कुछ उपयोगी वस्तुएँ बहुत सस्ती होती हैं।

3. प्रश्न (2) के कथनों को असत्य मानकर इनके विरोधी कथनों के सत्य/असत्य का अनुमान लगाइये।

## 4. विरोध-चतुरस्र पर आधुनिक टिप्पणी

आधुनिक तर्कशास्त्री वाक्यों के विरोध के चतुरस्र को दोषपूर्ण मानते हैं। हम यह देख चुके हैं कि परम्परागत तर्कशास्त्री अ और ए वाक्यों का अर्थ भी इ तथा ओ वाक्यों की तरह सत्तावाचक मानते थे। उनके अनुसार सब क, ख हैं (अ) का अर्थ है कि क का अस्तित्व है और प्रत्येक क, ख है। कोई क, ख नहीं है (ए) का अर्थ है कि क का अस्तित्व है और कोई क, ख नहीं है। लेकिन आधुनिक तर्कशास्त्रियों के अनुसार अ तथा ए वाक्यों का इस प्रकार अर्थ करना दोषपूर्ण है।

परम्परागत तर्कशास्त्र में अ तथा ओ वाक्यों को व्याघाती मानते हैं। दो व्याघाती वाक्य न तो एक साथ सत्य हो सकते हैं और न एक साथ असत्य। लेकिन यदि अ और ए वाक्यों का सत्तावाचक अर्थ लगाया जाये, जैसा कि परम्परागत तर्कशास्त्री लगाते हैं, तो अ और ओ, तथा ए और इ व्याघाती नहीं रहते क्योंकि उस अर्थ में अ तथा ओ दोनों असत्य हो सकते हैं। जैसे : "चन्द्रमा पर रहने वाले सब मनुष्य संस्कृत बोलते हैं (अ)" का हमने अर्थ किया कि चन्द्रमा पर वास्तव में मनुष्य रहते हैं और उनमें से प्रत्येक (सब) संस्कृत बोलता है। इसी प्रकार "चन्द्रमा पर रहने वाले कुछ मनुष्य संस्कृत नहीं बोलते (ओ)" का अर्थ किया कि चन्द्रमा पर कम-से-कम एक मनुष्य है और वह संस्कृत नहीं बोलता। क्योंकि चन्द्रमा पर एक भी मनुष्य नहीं है इसलिए उपर्युक्त दोनों कथन, अ तथा ओ एक साथ असत्य हैं। इसी प्रकार सत्तावाचक अर्थ में ए तथा इ वाक्य एक साथ असत्य हो सकते हैं।

निष्कर्ष यह है कि अ तथा ओ, और ए तथा इ को व्याघाती मानना तथा अ और ए का सत्तावाचक अर्थ लगाना ये दोनों बातें आत्म-विरोधी हैं। इसलिए, इन दोनों को एक साथ स्वीकार नहीं किया जा सकता। आधुनिक तर्कशास्त्रियों का इस सम्बन्ध में यह कथन है कि अ तथा ए वाक्यों का अर्थ सत्तावाचक न लिया जाये, बल्कि उन्हें हेत्वाश्रित वाक्य समझा जाये।

इस प्रकार

सब क, ख हैं (अ)।

का अर्थ यह किया जाये कि

यदि कोई क है तो वह ख है ($क \bar{ख} = 0$)।

और

कोई क, ख नहीं है (ए)

का अर्थ किया जाये कि

यदि कोई क है तो वह ख नहीं है ($क ख = 0$)।

यदि अ और ए वाक्यों को उपर्युक्त ढंग से हेत्वाश्रित वाक्य समझें और इ तथा ओ वाक्यों को सत्तावाचक समझें तब और केवल तब अ तथा ओ और ए तथा इ व्याघाती हो सकते हैं। आधुनिक तर्कशास्त्रियों का यही मत है।

लेकिन अ तथा ए को सत्तावाचक न मानने पर व्याघात को छोड़कर वाक्यों का अन्य कोई विरोध नहीं बनता।

मान लो एक भी क का अस्तित्व नहीं है। ऐसी स्थिति में "सब क, ख हैं" ($क \bar{ख} = 0$) और "कोई क, ख नहीं है" ($क ख = 0$) दोनों एक साथ सत्य होंगे। "कुछ क, ख हैं" और "कुछ क, ख नहीं हैं" दोनों एक साथ असत्य होंगे। इस प्रकार न तो अ और ए विपरीत होंगे और न इ और ओ उपविपरीत। ऐसी स्थिति में अ तो सत्य होगा लेकिन इ असत्य। इसी प्रकार ए तो सत्य होगा और ओ असत्य। इस प्रकार न तो अ से इ का और न ए से ओ का आपादन होगा।

एक उदाहरण से इस मत का अधिक स्पष्टीकरण होगा। हम इस बात को सत्य मान लेते हैं कि चन्द्रमा पर कोई मनुष्य नहीं है। ऐसी स्थिति में निम्नलिखित चार कथनों के सत्य/असत्य के बारे में विचार कीजिये :

(1) सब चन्द्रमा पर रहने वाले मनुष्य (च) मरणशील हैं (म) हैं। (अ)

$च \bar{म} = 0$

(ऐसा नहीं है कि चन्द्रमा पर कोई मनुष्य हो और वह मरणशील न हो)

(2) कोई चन्द्रमा पर रहने वाला मनुष्य (च) मरणशील (म) नहीं है। (ए)

$च म = 0$

(ऐसा नहीं है कि चन्द्रमा पर कोई मनुष्य हो और वह मरणशील हो)।

(3) कुछ चन्द्रमा पर रहने वाले मनुष्य मरणशील हैं। (इ)

च म$\neq$0

(चन्द्रमा पर कम-से-कम एक मनुष्य है और वह मरणशील है)।

(4) कुछ चन्द्रमा पर रहने वाले मनुष्य मरणशील नहीं हैं। (ओ)

च $\overline{\text{म}}\neq$0

(चन्द्रमा पर कम-से-कम एक मनुष्य है और वह मरणशील नहीं है)।

निम्नलिखित वेन आरेख इस विचार में सहायक होगा :

आरेख 16.
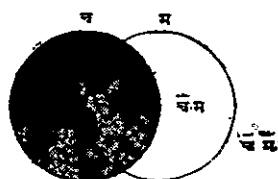
च=चन्द्रमा पर रहने वाले मनुष्य म=मरणशील प्राणी

इस आरेख में पूरे च वृत्त को छायांकित करके यह प्रदर्शित किया है कि च वृत्त रिक्त है अर्थात् चन्द्रमा पर रहने वाला कोई मनुष्य नहीं है। इस आरेख से उपर्युक्त कथनों के बारे में निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं :

(अ) कथन (1) अर्थात् च $\overline{\text{म}}$=0 (अ) सत्य है।

(आ) कथन (2) अर्थात् च म=0 (ए) सत्य है।

(इ) कथन (3) अर्थात् च म$\neq$0 (इ) असत्य है।

(ई) कथन (4) अर्थात् च $\overline{\text{म}}\neq$0 (ओ) असत्य है।

इस प्रकार अ (च $\overline{\text{म}}$=0) तथा ए (च म=0) दोनों सत्य हो सकते हैं। ये विपरीत (contrary) नहीं हैं।

इ (च म$\neq$0) तथा ओ (च $\overline{\text{म}}\neq$0) दोनों असत्य हो सकते हैं। ये उपविपरीत (sub-contrary) नहीं हैं।

अ (च $\overline{\text{म}}$=0) सत्य तथा इ (चम$\neq$0) असत्य हो सकते हैं। इसी प्रकार ए (च म=0) सत्य और ओ (च $\overline{\text{म}}\neq$0) असत्य हो सकते हैं। इसलिए अ से इ का और ए से ओ का आपादन नहीं बन सकता।

अ (च $\overline{\text{म}}$=0) और ओ (च $\overline{\text{म}}\neq$0) दोनों एक साथ न तो सत्य हो सकते हैं और न असत्य। इसी प्रकार ए (च म=0) तथा इ (च म$\neq$0) एक साथ न सत्य हो सकते है और न असत्य। इस प्रकार आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार अ और ओ का तथा ए और इ का व्याघात (contradiction) ही वाक्यों के विरोध का एक रूप है।

निम्नलिखित चित्र में इसे प्रदर्शित किया है :

आरेख 17
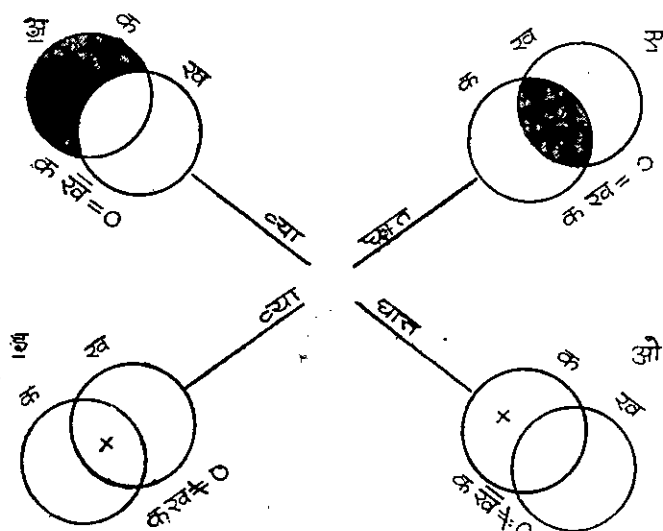
आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार वाक्यों का विरोध

इस चित्र से यह बात भी स्पष्ट होती है कि आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार वाक्यों में गुण का अन्तर उनके विरोधी होने का बुनियादी आधार नहीं है बल्कि वाक्यों में परिमाण का अन्तर उनके विरोधी होने का बुनियादी आधार है। दोनों प्रकार के सर्वव्यापी वाक्य रिक्त वर्ग के बारे में होते हैं। जबकि अंशव्यापी वाक्य अरिक्त वर्ग के बारे में।

## 5. सत्ता की मान्यता और परम्परागत विरोध-चतुरस्र की संगति

हमने पिछले अनुच्छेद में यह स्पष्ट किया है कि परम्परागत तर्कशास्त्र के विरोध-चतुरस्र (square of opposition) में असंगति है। इसका कारण यह है कि परम्परागत तर्कशास्त्र में अ तथा ए का सत्तावाचक अर्थ लिया जाता है।

लेकिन परम्परागत विरोध-चतुरस्र का सीमित प्रयोग संगत बन सकता है : यदि हम किसी विशेष उदाहरण में यह मान लें कि अ तथा ए वाक्यों के पदों की वाच्य वस्तुओं का वास्तव में अस्तित्व है तो उस उदाहरण में विरोध-चतुरस्र संगत बनता है। ध्यान देने की बात यह है कि अ तथा ए वाक्यों के स्वाभाविक अर्थ में अस्तित्व बोधक अर्थ शामिल नहीं है, लेकिन किन्हीं उदाहरणों में अस्तित्व-बोधक-मान्यता अ तथा ए के साथ जोड़ी जा सकती है। उदाहरण के रूप में "सब मनुष्य विचारशील हैं" का तार्किक अर्थ

तो केवल यह है कि "यदि कोई मनुष्य है तो वह विचारशील है"। लेकिन हम इसके साथ यह मान्यता कि मनुष्यों का वास्तव में अस्तित्व है भी जोड़ सकते हैं। वेन आरेखों में इस मान्यता को उपयुक्त कोष्ठक में '×' लिखकर प्रदर्शित किया जा सकता है। सत्ताबोधक मान्यता के आधार पर विरोध चतुरस्र की संगति निम्नलिखित वेन आरेख से प्रदर्शित की है :

आरेख 18:
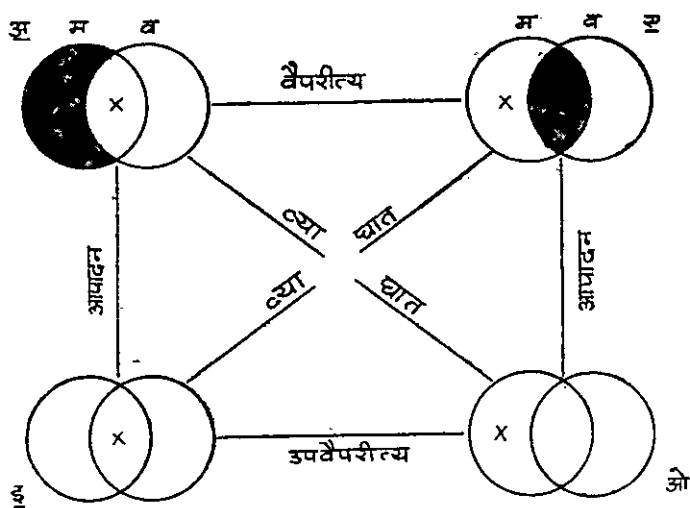
म=मनुष्य।

व=विचारशील प्राणी।

मान्यता : मनुष्यों का वास्तव में अस्तित्व है।

इस चतुरस्र से यह स्पष्ट है कि यदि अ तथा ए के साथ सत्ताबोधक मान्यता जोड़ दी जाती है तो अ और ए विपरीत बन जाते हैं, इ और ओ उपविपरीत बन जाते हैं तथा अ से इ का और ए से ओ का आपादन बन जाता है।

## अभ्यास

1. परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार विरोध-चतुरस्र का क्या स्वरूप है ? इसमें जो असंगति है, उसे स्पष्ट कीजिये।

2. यदि अ और ए का सत्ताबोधक अर्थ किया जाये, तो अ और ओ, तथा ए और इ व्याघातक नहीं रहते, उदाहरण द्वारा स्पष्ट करें।

3. यदि अ और ए का हेत्वाश्रित स्वरूप लिया जाये, तो अ और ओ, तथा ए और इ के व्याघात के अलावा अन्य कोई विरोध नहीं बनता, उदाहरण द्वारा तथा वेन आरेखों की सहायता से स्पष्ट करें।

4. अ तथा ए वाक्यों का हेत्वाश्रित स्वरूप मानने पर वाक्यों के विरोध का स्वरूप वेन आरेख द्वारा प्रदर्शित करें।

5. अ तथा ए के अर्थ के साथ सत्ताबोधक मान्यता जोड़ने पर वाक्यों के विरोध का परम्परागत मत किस प्रकार संगत बन जाता है ? वेन आरेखों द्वारा स्पष्ट करें।

6. अ तथा ए वाक्यों के साथ सत्ताबोधक मान्यता जोड़कर निम्नलिखित वाक्यों के विरोध का स्वरूप वेन आरेखों के चतुरस्र से प्रकट करें :

(क) सब संस्कृत विद्वान् (स) देशभक्त (द) हैं।

(ख) कोई संस्कृत विद्वान् देशभक्त नहीं है।

(ग) कुछ संस्कृत विद्वान् देशभक्त हैं।

(घ) कुछ संस्कृत विद्वान् देशभक्त नहीं हैं।

7. (घ) को असत्य मानकर अन्य तीन कथनों का सत्य/असत्य निश्चित करें।

8. अ तथा ए के साथ सत्ताबोधक मान्यता न जोड़ने पर उपर्युक्त कथनों के सम्बन्ध क्या बनेंगे ?

# 9

# सद्योऽनुमान
## (Eduction)

### 1. अव्यवहित अनुमान के अन्य रूप

हम यह देख चुके हैं कि समान पदों वाले, लेकिन भिन्न आकार वाले कथनों में क्या सम्बन्ध हो सकता है और एक कथन के सत्य/असत्य से दूसरे कथन के सत्य/असत्य के बारे में क्या अनुमान कर सकते हैं। इस अध्याय में हम इस समस्या पर विचार करेंगे कि जो बात दो पदों के एक सम्बन्ध के रूप में प्रकट की गयी है उसी बात को कितने प्रकार के तुल्य कथनों में प्रकट किया जा सकता है।

इस सम्बन्ध में पूरक पदों का सम्बन्ध और अन्तर ध्यान में रखना आवश्यक है। ऐसे दो पदों को एक-दूसरे का पूरक पद (complementary term) कहते हैं जिन दोनों के प्रयोग का क्षेत्र सम्पूर्ण संदर्भ क्षेत्र के बराबर हो, लेकिन जिनमें से प्रत्येक के प्रयोग का अपना-अपना क्षेत्र नितान्त भिन्न हो। जैसे : "भारतीय" और "अभारतीय" पूरक पद हैं।

हम यह जानते हैं कि अ ए इ ओ वाक्यों में दो पदों का सम्बन्ध प्रकट किया जाता है। इन वाक्यों में प्रयुक्त दो पदों के दो पूरक पद भी होंगे। अ ए इ ओ वाक्यों में प्रयुक्त पदों तथा उनके पूरक पदों की उद्देश्य-विधेय की स्थिति की आठ सम्भावनाएँ हो सकतीं हैं :

| | उद्देश्य | विधेय | |
|---|---|---|---|
| 1. | क | ख | |
| 2. | क | ख̄ | ख̄ = ख का पूरक पद |
| 3. | क̄ | ख̄ | क̄ = क का पूरक पद |
| 4. | क̄ | ख | |

उद्देश्य और विधेय का स्थान भी बदला जा सकता है। उद्देश्य और विधेय के स्थान के परिवर्तन से चार सम्भावनाएँ और बन जायेंगी :

| | | |
|---|---|---|
| 5. | ख | क |

6. $\overline{\text{ख}}$ क
7. ख $\overline{\text{क}}$
8. $\overline{\text{ख}}$ $\overline{\text{क}}$

उद्देश्य विधेय के उपर्युक्त 8 सम्भव रूपों में से प्रत्येक को अ, ए, इ, ओ के आकार में सम्बन्धित किया जा सकता है। इस प्रकार दो पदों और उनके पूरक पदों के 32 प्रकार के कथन सम्भव हो सकते हैं। इन 32 कथनों का एक-दूसरे से क्या सम्बन्ध होगा और इनमें से एक कथन को सत्य मानकर किन-किन कथनों का अनुमान किया जा सकता है ? इस प्रश्न पर यहाँ विचार करेंगे।

**निष्कर्षण**

एक कथन के आकार के आधार पर, उससे दूसरा कथन निकालना सद्योऽनुमान (eduction) कहलाता है। सद्योऽनुमान अव्यवहित अनुमान का एक प्रकार है। सद्योऽनुमान के निम्नलिखित चार प्रकार माने जाते हैं :

1. परिवर्तन (conversion)
2. प्रतिवर्तन (obversion)
3. प्रतिपरिवर्तन (contraposition)
4. विपरिवर्तन (inversion)

## 2. परिवर्तन

## (Conversion)

दिये हुए कथन के उद्देश्य विधेय पदों का स्थान परिवर्तित करके अन्य कथन निकालने की क्रिया परिवर्तन (conversion) कहलाती है। पहले से दिये हुए कथन को परिवर्त्य कथन (convertend) और परिवर्तन द्वारा निकाले गये कथन को परिवर्तित कथन (converse) कहते हैं। परिवर्तन वैध हो सकता है और अवैध भी। परिवर्तन की वैधता का नियम निम्नलिखित है :

जो पद परिवर्त्य कथन में अव्याप्त हो वह परिवर्तित कथन में व्याप्त नहीं होना चाहिये।

**ए तथा इ का सरल परिवर्तन**

हम यह जानते हैं कि ए वाक्य में दोनों पद व्याप्त होते हैं और इ वाक्य में दोनों पद अव्याप्त होते हैं। इस प्रकार ए तथा इ दोनों में पदों का परिवर्तन वैध होता है। ए और इ का परिवर्तन सरल परिवर्तन कहलाता है क्योंकि इनमें केवल पदों का परिवर्तन करने से परिवर्तन की क्रिया वैध बन जाती है। ए और इ के परिवर्तन का रूप नीचे दिया है :

| | परिवर्त्य | | परिवर्तित |
|---|---|---|---|
| 1. | कोई क ख नहीं है (ए) | ≡ | कोई क ख नहीं है (ए) । |
| | कोई मनुष्य पूर्ण व्यक्ति नहीं है (ए) | ≡ | कोई पूर्ण व्यक्ति मनुष्य नहीं है (ए) । |
| 2. | कुछ क ख हैं (इ) | ≡ | कुछ ख क हैं (इ) । |
| | कुछ पुस्तकें बहुमूल्य वस्तुएँ होती हैं (इ) | ≡ | कुछ बहुमूल्य वस्तुएँ पुस्तकें होती हैं । |

ए तथा इ के सरल परिवर्तन का वैध रूप वेन आरेखों से भी प्रदर्शित होता है । ए तथा इ के वेन आरेखों का रूप सममितीय (symmetrical) अर्थात् दोनों ओर से एक-सा होता है । इसलिए इनके चित्रों को परिवर्तित करने से इनके रूप में कोई अन्तर नहीं पड़ता, जैसा कि आगे दिये वेन चित्रों से स्पष्ट है :
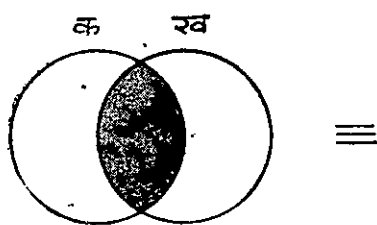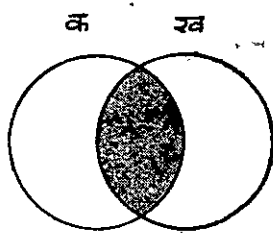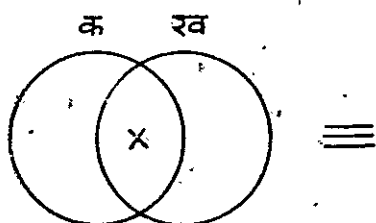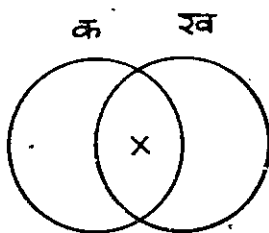
इस प्रकार ए वाक्य का ए वाक्य में परिवर्तन और इ वाक्य का इ वाक्य में परिवर्तन वैध है। ए और इ के परिवर्त्य तथा परिवर्तित रूपों के कथन तुल्य कथन बनते हैं।

**अ वाक्य का सरल परिवर्तन वैध नहीं है**

अ वाक्य के उद्देश्य तथा विधेय का स्थान परिवर्तन करके अ वाक्य निकालना वैध नहीं होगा। "सब क, ख हैं" से "सब ख, क हैं" निकालना अवैध होगा। "सब क, ख हैं" में ख अव्याप्त है, लेकिन "सब ख, क हैं" में यह व्याप्त हो जाता है। इस प्रकार अ का अ के रूप में सरल परिवर्तन अवैध बनता है। वेन आरेख से भी अ का अ के रूप में सरल परिवर्तन अवैध सिद्ध हो जाता है :
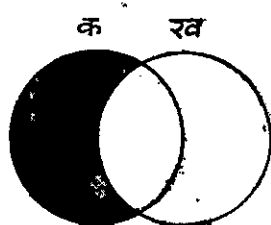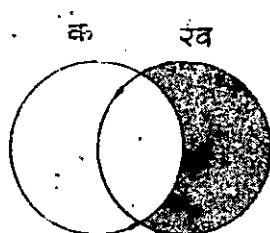
क $\bar{ख}$=0 ख $\bar{क}$=0

यह स्पष्ट है कि आरेख (23) और (24) न तो एक से हैं और न (23) में (24) शामिल है। इसलिए (23) से (24) का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

**अ वाक्य का इ वाक्य के रूप में सीमित परिवर्तन वैध है**

परम्परावादी तर्कशास्त्री यह मानते हैं कि अ का परिवर्तन अ के रूप में तो वैध नहीं है, लेकिन अ का इ के रूप सीमित परिवर्तन वैध है। "सब क, ख हैं" का परिवर्तन करने में क और ख का स्थान बदलना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि "सब" की जगह "कुछ" लिखकर कथन के परिमाण को सीमित करना भी आवश्यक है। "सब क, ख हैं" का "कुछ ख, क हैं" के रूप में परिवर्तन वैध है क्योंकि इस परिवर्तन में ख पद, जो परिवर्त्य में अव्याप्त है वह परिवर्तित में भी अव्याप्त रहता है। "सब मनुष्य मरणशील प्राणी हैं" को "सब मरणशील प्राणी मनुष्य हैं" में परिवर्तित करना अवैध है, लेकिन इसे "कुछ मरणशील प्राणी मनुष्य हैं" में परिवर्तित करना वैध है।

**अ का इ के रूप में परिवर्तन सत्ताबोधक मान्यता के साथ ही वैध है**

वाक्यों के विरोध के सम्बन्ध में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि अ वाक्य के अर्थ के साथ सत्ताबोधक मान्यता जोड़े बिना अ वाक्य की सत्यता से इ वाक्य की सत्यता का

अनुमान लगाना अवैध है। इसी प्रकार अ वाक्य के साथ सत्ताबोधक मान्यता जोड़े बिना उसका इ वाक्य के रूप में परिवर्तन अवैध है, जैसा कि वेन आरेखों से स्पष्ट है :
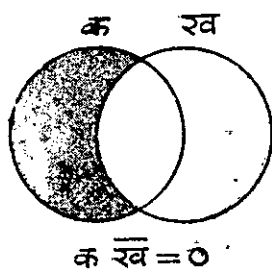
आरेख 25. आरेख 26.
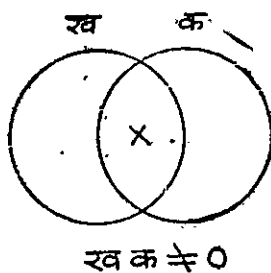
यदि कोई क है तो वह ख है (अ) कम-से-कम एक ख है और वह क है।(इ)

आरेख (25) से आरेख (26) नहीं निकलता क्योंकि आरेख (26) में जो बात व्यक्त की गयी है वह आरेख (25) में व्यक्त नहीं की गयी। लेकिन यदि अ के अर्थ के साथ सत्ताबोधक मान्यता जोड़ी हुई हो तो अ का इ के रूप में परिवर्तन वैध बनता है जैसा कि निम्नलिखित वेन आरेखों से स्पष्ट होता है :

आरेख 27. आरेख 28. आरेख 29.
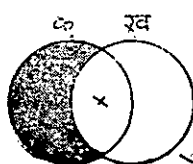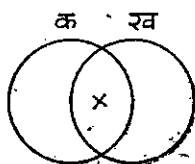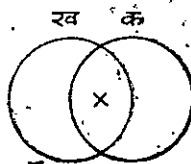
सब क, ख हैं और कम-से-कम एक ख है।

कुछ क, ख हैं अर्थात् कम-से-कम एक क है और वह ख है।

कुछ ख, क हैं अर्थात् कम-से-कम एक ख है और वह क है।

आरेख (27) में आरेख (28) शामिल है और आरेख (28) का परिवर्तन आरेख (29) के रूप में वैध है। इस प्रकार, आरेख (27) से आरेख (29) का अनुमान वैध है।

यहाँ यह बात भी ध्यान देने की है कि आरेख (27) और (29) तुल्य (equivalent) नहीं हैं। (27) से (29) निकलता है लेकिन (29) से (27) नहीं निकलता।

**ओ वाक्य का परिवर्तन नहीं हो सकता**

ओ वाक्य का परिवर्तन नहीं हो सकता। ओ वाक्य का उद्देश्य अव्याप्त और विधेय व्याप्त होता है। यदि ओ का परिवर्तन करेंगे तो जो पद परिवर्त्य में अव्याप्त है वह परिवर्तित में व्याप्त हो जायेगा। "कुछ क, ख नहीं हैं" का परिवर्तन "कुछ ख, क नहीं हैं" के रूप में अवैध होगा क्योंकि क पद परिवर्त्य में अव्याप्त है लेकिन वह परिवर्तित वाक्य में व्याप्त है। वेन आरेख से भी ओ के परिवर्तन का अवैध रूप स्पष्ट हो जाता है :
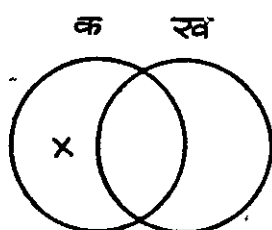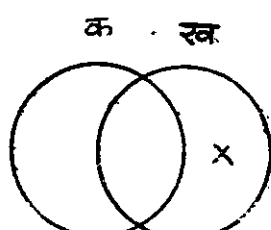
क $\bar{ख} \neq 0$ यह किसी वाक्य का रूप नहीं है।

यह स्पष्ट है कि आरेख (30) से आरेख (31) नहीं निकलता क्योंकि आरेख (30) में आरेख (31) शामिल नहीं है।

**सारांश**

1. ए तथा इ का सरल परिवर्तन वैध होता है।
2. अ का सरल परिवर्तन वैध नहीं होता।
3. अ का इ के रूप में सीमित परिवर्तन सत्ताबोधक मान्यता के साथ ही वैध होता है।
4. ओ का परिवर्तन नहीं होता।

## 3. प्रतिवर्तन
## (Obversion)

दिये हुए कथन के विधेय पद के स्थान पर उसका पूरक पद रखने तथा कथन का गुण बदलने की क्रिया प्रतिवर्तन (obversion) कहलाती है। प्रतिवर्तन की क्रिया द्वारा निकाले गये कथन को प्रतिवर्तित कथन (obverse) और जिस कथन से उसे निकाला जाता है उसे प्रतिवर्त्य कथन (obvertend) कहते हैं। कथनों के प्रतिवर्तन का सामान्य रूप निम्नलिखित है :

| | प्रतिवर्त्य | प्रतिवर्तित |
|---|---|---|
| अ. | सब क, ख है (अ) | = कोई क $\bar{ख}$ नहीं है (ए)। |
| | सब विद्यार्थी पढ़े लिखे व्यक्ति हैं | = कोई विद्यार्थी अनपढ़ व्यक्ति नहीं है। |
| ए. | कोई क, ख नहीं है (ए) | = सब क, $\bar{ख}$ हैं (अ)। |
| | कोई भौतिक वस्तु चेतन नहीं है (ए) | = सब भौतिक वस्तु अचेतन हैं (अ)। |
| इ. | कुछ क, ख हैं (इ) | = कुछ क, $\bar{ख}$ नहीं हैं (ओ)। |
| | कुछ विद्यार्थी परिश्रमी होती हैं | = कुछ विद्यार्थी अपरिश्रमी नहीं होते हैं। |
| ओ. | कुछ क, ख नहीं हैं (ओ) | = कुछ क, $\bar{ख}$ हैं (इ)। |
| | कुछ विद्यार्थी परिश्रमी नहीं हैं | = कुछ विद्यार्थी अपरिश्रमी हैं। |

वाक्यों के प्रतिवर्तन के रूपों से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं।

1. प्रतिवर्त्य और प्रतिवर्तित का गुण तो भिन्न होता है, लेकिन परिमाण भिन्न नहीं होता। अ का प्रतिवर्तन ए में, ए का अ में, इ का ओ में तथा ओ का प्रतिवर्तन इ में होता है।

2. प्रतिवर्त्य और प्रतिवर्तित तुल्य कथन होते हैं। इसलिए, इनमें से एक से दूसरे का अनुमान किया जा सकता है।

**पूरक पद बनाने की समस्या**

किसी कथन का प्रतिवर्तन करने के लिए पहले उसके विधेय पद का पूरक पद बनाया जाता है और फिर कथन का गुण बदल दिया जाता है। अन्य भाषाओं की तरह हिन्दी में भी विरोधी शब्दों के जोड़े प्रचलित हैं। साधारण भाषा में जिन दो शब्दों को विरोधी (opposite) कहते हैं, यह आवश्यक नहीं है कि वे पूरक पद (complementary terms) हों। पूरक पद व्याघाती पद (contradictory terms) होते हैं। ये दोनों एक साथ लागू नहीं हो सकते, लेकिन इनमें से एक अवश्य लागू होता है। जैसे, "काला" और "श्वेत" विरोधी शब्द तो हैं, लेकिन इन्हें पूरक पद नहीं कह सकते क्योंकि रंगों का सम्पूर्ण क्षेत्र इन दोनों पदों के प्रयोग क्षेत्र में नहीं आता। किसी वस्तु का रंग काला और श्वेत दोनों से भिन्न हो सकता है। श्वेत का पूरक पद तो अ उपसर्ग लगा कर बन सकता है। "श्वेत" का पूरक पद "अश्वेत" होगा। इस प्रकार, "कोई तोता श्वेत नहीं है", का प्रतिवर्तन "सब तोते अश्वेत हैं" होगा। लेकिन "काला" का पूरक पद "अकाला" बनाने का रिवाज भाषा में नहीं है। ऐसे अन्य असंख्य शब्द हैं, जिनके पूरक पद भाषा में प्रचलित ही नहीं होते। जिन पदों का पूरक पद भाषा में प्रचलित न हो अथवा अ उपसर्ग लगाने से न बनता हो, उनका पूरक पद "भिन्न" अथवा "इतर"

शब्द की सहायता से बन सकता है। जैसे "काला पक्षी" का पूरक "अकाला पक्षी" तो नहीं होगा बल्कि "काले पक्षी से भिन्न पक्षी" हो सकता है। इस प्रकार "सब कौए काले पक्षी हैं" का प्रतिवर्तन "कोई कौआ काले पक्षी से भिन्न पक्षी नहीं है" ठीक है।

### अभ्यास

निम्नलिखित वाक्यों के परिवर्तित और प्रतिवर्तित रूप दो :

1. सब विदेशी भाषाएँ कठिन भाषाएँ होती हैं।
2. सच्चे मित्र वही होते हैं जो मुसीबत में साथ दें।
3. मनुष्य विचारशील प्राणी है।
4. बहादुर कभी संकट में नहीं घबराते।
5. सब चमकने वाली वस्तु सोना नहीं होतीं।
6. धनहीन का कोई मित्र नहीं होता।
7. क्रोध के क्षणों में विवेक समाप्त हो जाता है।
8. कुछ सच्चरित्र व्यक्ति निर्धन होते हैं।
9. कोई आलसी सुखी नहीं होता।
10. वेदान्त के सब आचार्य दक्षिणी ब्राह्मण थे।

संकेत : परिवर्तन या प्रतिवर्तन की क्रिया करने से पहले वाक्यों को मानक तार्किक रूप में रखना आवश्यक है।

## 4. प्रतिपरिवर्तन तथा विपरिवर्तन
## (Contraposition and Invension)

परिवर्तन और प्रतिवर्तन सद्योऽनुमान की मूल क्रियाएँ हैं। इन क्रियाओं को शृंखलाबद्ध करके सद्योऽनुमान के अन्य रूप भी बन सकते हैं। इनमें से दो रूप प्रमुख हैं। एक को प्रतिपरिवर्तन (contraposition) और दूसरे को विपरिवर्तन (inversion) कहते हैं।

### प्रतिपरिवर्तन

प्रतिपरिवर्तन की क्रिया से जो कथन निकाला जाता है उसे दिये हुए कथन का प्रतिपरिवर्तित (contrapositive) कहते हैं।

प्रतिपरिवर्तित कथन (contrapositive) में मूल कथन के विधेय पद का पूरक पद उद्देश्य पद होता है। इस प्रकार, यदि मूल कथन में पदों की स्थिति 'क—ख' के रूप में हो तो प्रतिपरिवर्तित में पदों की स्थिति 'ख̄—क' होगी। प्रतिपरिवर्तित को भी प्रतिवर्तित किया जा सकता है। प्रतिपरिवर्तित कथन के प्रतिवर्तित (obverted contrapositive) को प्रतिवर्तित-प्रतिपरिवर्तित कथन कहते हैं। प्रतिवर्तित-प्रतिपरिवर्तित कथन में पदों की स्थिति ख̄—क̄ होगी।

**विपरिव०**

विपरिवर्तन की क्रिया में आधारिका को विपरिवर्त्य कथन (invertend) और निष्कर्ष को विपरिवर्तित कथन (converse) कहते हैं। विपरिवर्तित कथन (inverse) में विपरिवर्त्य के उद्देश्य पद का पूरक पद उद्देश्य पद होता है। अपूर्ण विपरिव० में केवल उद्देश्य पद दिये हुए कथन का पूरक पद होता है। पूर्ण विपरिव० में उद्देश्य और विधेय दोनों पद दिये हुए कथन के पदों के पूरक पद होते हैं। इस प्रकार, यदि मूल कथन में पदों की स्थिति 'क—ख' हो, तो उसके अपूर्ण विपरिवर्तित कथन में पदों की स्थिति 'क̄—ख' होगी और पूर्ण विपरिव० में 'क̄—ख̄' होगी।

**प्रतिपरिव० तथा विपरिव० की विधि**

एक दिये हुए कथन का प्रतिपरिवर्तित (contrapositive) या विपरिवर्तित कथन (inverse) निकालने के लिए प्रतिवर्तन—परिवर्तन या परिवर्तन—प्रतिवर्तन की शृंखलाबद्ध क्रिया करनी होती है। कहीं यह शृंखला प्रतिवर्तन की क्रिया से प्रारम्भ होती है, तो कहीं परिवर्तन की क्रिया से। सद्योऽनुमान की निम्नलिखित शृंखलाओं को देखकर हम यह निश्चित कर सकते हैं कि किसी कथन का प्रतिपरिव० या विपरिव० निकालने के लिए परिव० से प्रारम्भ करना चाहिये अथवा प्रतिव० से।

अ

**अ के सद्योऽनुमान की प्रतिव० से प्रारम्भ होने वाली शृंखला**

| | |
|---|---|
| 1. सब क, ख हैं (अ) | |
| 2. कोई क̄, ख नहीं है। | 1. प्रतिव० |
| 3. कोई ख̄, क̄ नहीं है। | 2. परिव० |
| | 1. प्रतिपरिव० |
| 4. सब ख̄, क̄ हैं। | 3. प्रतिव० |
| | 1. प्रतिव० प्रतिपरिव० |
| 5. कुछ क, ख̄ हैं। | 4. परिव० |
| | 1. पूर्ण विपरिव० |
| 6. कुछ क̄, ख नहीं हैं। | 5. प्रतिव० |
| | 1. अपूर्ण विपरिव० |

आ

**परिवर्तन से प्रारम्भ होने वाली अ के सद्योऽनुमान की शृंखला**

| | |
|---|---|
| 1. सब क, ख हैं (अ)। | |
| 2. कुछ ख, क हैं (इ)। | 1. परिव० |
| 3. कुछ ख, क̄ नहीं हैं (ओ)। | 2. प्रतिव० |
| | 1. × × × × |

**टिप्पणी :** यहाँ सद्योऽनुमान को प्रकट करने का जो ढंग दिया है उसमें प्रत्येक निष्कर्षित कथन के दायीं ओर सद्योऽनुमान का रूप और उसके आधारिका की संख्या दी है। जैसे, ऊपर अ शृंखला में कथन (3) के दायीं ओर "(2) परिव०" का अर्थ है कि यह कथन, कथन (2) का परिवर्तित रूप है। इसी के साथ "(1) प्रतिपरिव०" का अर्थ है कि यही कथन, कथन (1) का प्रतिपरिवर्तित रूप है।

यहाँ यह बात भी देखने की है कि सद्योऽनुमान की शृंखला ओ कथन पर रुक जाती है क्योंकि ओ का परिवर्तन नहीं हो सकता और ओ का प्रतिवर्तन करने से उसका पहला कथन इ ही आता है। यदि अ कथन के सद्योऽनुमान परिवर्तन से प्रारम्भ करते हैं तो यह क्रिया दूसरे चरण पर ही रुक जाती है। इसलिए अ का प्रतिपरिव० (contrapositive) और विपरिव० (inverse) निकालने के लिए प्रतिव० की क्रिया से प्रारम्भ करना चाहिये।

### ए के सद्योऽनुमान

#### अ

#### प्रतिव० से प्रारम्भ करके

| | |
|---|---|
| 1. कोई क, ख नहीं है (ए)। | |
| 2. सब क, ख̄ हैं (अ)। | 1. प्रतिव० |
| 3. कुछ ख̄, क हैं (इ)। | 2. परिव० |
| | 1. प्रतिपरिव० |
| 4. कुछ ख̄, क̄ नहीं हैं (ओ)। | 3. प्रतिव० |
| | 1. प्रति० प्रतिपरिव० |

#### आ

#### परिव० से प्रारम्भ करके

| | |
|---|---|
| 1. कोई क, ख नहीं है (ए)। | |
| 2. कोई ख, क नहीं है (ए)। | 1. परिव० |
| 3. सब ख, क̄ हैं। | 2. प्रतिव० |
| | 1. × × × × ×* |
| 4. कुछ क̄ ख हैं। | 3. परिव० |
| | 1. अपूर्ण विपरिव० |

*कुछ तर्कशास्त्री प्रतिपरिव० की परिभाषा इस प्रकार करते हैं : प्रतिपरिव० सद्योऽनुमान का वह रूप है जिसमें मूल कथन के पदों की स्थिति परिवर्तित होती है और जिसका कम-से-कम एक पद मूल कथन के पद का पूरक होता है। इस परिभाषा के अनुसार कथन (3) कथन (1) का प्रतिपरिव० बनता है।

5. कुछ क̄ ख̄ नहीं हैं ।    4. प्रतिव०
                                  1. पूर्ण विपरिव०

### इ वाक्य के सद्योऽनुमान

अ

#### प्रतिव० से प्रारम्भ करके

1. कुछ क ख हैं (इ) ।
2. कुछ क ख̄ नहीं हैं (ओ) ।    1. प्रतिव०

आ

#### परिव० से प्रारम्भ करके

1. कुछ क ख हैं (इ) ।
2. कुछ ख क हैं (इ) ।    1. परिव०
3. कुछ ख क̄ नहीं हैं (ओ) ।    2. प्रतिव०

### ओ वाक्य के सद्योऽनुमान

1. कुछ क ख नहीं हैं (ओ) ।
2. कुछ क ख̄ हैं (इ) ।    1. प्रतिव०
3. कुछ ख̄ क हैं (इ) ।    2. परिव०
                                  1. प्रतिपरिव०
4. कुछ ख̄ क̄ नहीं हैं (ओ) ।    3. प्रतिव०
                                  1. प्रति० प्रतिपरिव०

सद्योऽनुमान के उपर्युक्त रूपों का अध्ययन करने से निम्नलिखित बातें निश्चित होती हैं :

1. अ कथन का प्रतिपरिवर्तित (contrapositive) और विपतिवर्तित (inverse) कथन निकालने के लिए सद्योऽनुमान की क्रियाओं की शृंखला प्रतिवर्तन (obversion) से प्रारम्भ करनी चाहिये ।

2. ए कथन का प्रतिपरिवर्तित कथन निकालने के लिए सद्योऽनुमान की शृंखला प्रतिवर्तन से प्रारम्भ करनी चाहिये ।

3. ए कथन का विपरिवर्तित कथन निकालने के लिए सद्योऽनुमान की शृंखला परिवर्तन से प्रारम्भ करनी चाहिये ।

4. इ कथन का न तो प्रतिपरिवर्तित कथन होता है और न विपरिवर्तित कथन ।

5. ओ कथन का विपरिवर्तित कथन नहीं होता ।

कथनों के प्रतिपरिवर्तित तथा विपरिवर्तित रूप निम्नलिखित तालिकाओं में दिखाये हैं :

**प्रतिपरिवर्तित रूपों की तालिका**

| प्रतिपरिवर्त्य | | प्रतिपरिवर्तित | | प्रतिवर्तित-प्रतिपरिवर्तित |
|---|---|---|---|---|
| (अ) सब क, ख हैं | ≡ | कोई ख̄, क नहीं है (ए) | ≡ | सब ख̄, क̄ हैं (अ)। |
| (ए) कोई क, ख नहीं है | → | कुछ ख̄, क हैं (इ) | ≡ | कुछ ख̄, क̄ नहीं हैं (ओ)। |
| (इ) कुछ क, ख हैं। | | × × × | | × × × |
| (ओ) कुछ क, ख नहीं हैं | ≡ | कुछ ख̄, क हैं (इ) | ≡ | कुछ ख̄, क̄ नहीं हैं (ओ)। |

**विपरिवर्तित रूपों की तालिका :**

| विपरिवर्त्य | अपूर्ण विपरिव॰ | पूर्ण विपरिव॰ |
|---|---|---|
| (अ) सब क, ख हैं | कुछ क̄, ख नहीं हैं (ओ) | कुछ क̄, ख̄ हैं (इ)। |
| (ए) कोई क, ख नहीं है, | कुछ क̄, ख हैं (इ) | कुछ क̄, ख̄ नहीं हैं (ओ)। |
| (इ) कुछ क ख हैं। | × × × | × × × |
| (ओ) कुछ क ख नहीं हैं। | × × × | × × × |

## 5. विशेष समस्या : विपरिवर्तन की वैधता का प्रश्न

**समस्या**

यदि हम कथन अ के अपूर्ण विपरिवर्तित को ध्यान से देखें तो पता चलेगा कि इसमें ख पद व्याप्त है, जबकि यही पद मूल कथन अर्थात् आधारिका में अव्याप्त है। अनुमान की वैधता के सम्बन्ध में हम यह सामान्य नियम बता चुके हैं कि जो पद आधारिका में अव्याप्त है, वह निष्कर्ष में व्याप्त नहीं होना चाहिये। इस नियम के अनुसार अ का अपूर्ण विपरिवर्तन अवैध बनता है। लेकिन पृष्ठ 137 पर अ के सद्योऽनुमान की शृंखला प्रतिवर्तन और परिवर्तन की वैध क्रियाओं से बनी है। इन वैध क्रियाओं का अन्तिम निष्कर्ष अवैध कैसे निकलता है? तो क्या परिवर्तन और प्रतिवर्तन की क्रियाएँ ही अवैध हैं? एक वास्तविक उदाहरण से यह समस्या और अधिक स्पष्ट हो जायेगी। हम यह जानते हैं कि 'सब ईमानदार व्यापारी मरणशील हैं', एक सत्य कथन है। इसका विपरिवर्तित रूप होगा : 'कुछ बेईमानदार व्यापारी मरणशील नहीं हैं', और पूर्ण विपरिवर्तित रूप होगा 'कुछ बेईमानदार व्यापारी अमर हैं'।

ये दोनों ही कथन असत्य हैं। यदि सत्य कथन से असत्य कथन निकाला जाये, तो वह क्रिया अवैध होगी। यह अवैधता निम्नलिखित दो वेन आरेखों की तुलना से और भी स्पष्ट हो जाती है :

आरेख 32.

ई = ईमानदार व्यापारी म = मरणशील मनुष्य
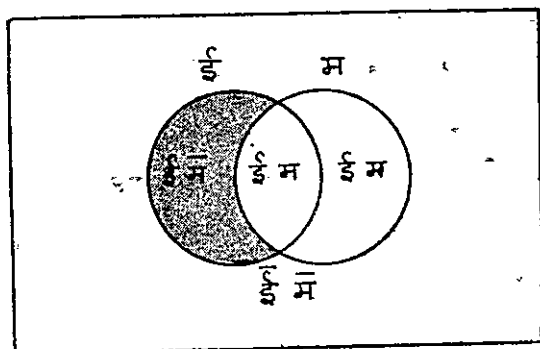
ई $\overline{\text{म}}$ = 0 ≡ सब ईमानदार व्यापारी मरणशील हैं।

आरेख 33.

ई
म
ई $\overline{\text{म}}$
ई म
$\overline{\text{ई}}$ म
×
$\overline{\text{ई}}$ $\overline{\text{म}}$
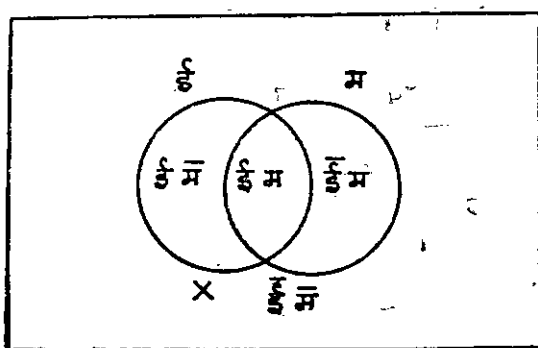
$\overline{\text{ई}}$ $\overline{\text{म}}$ ≠ 0 ≡ कुछ बेईमानदार व्यापारी अमरणशील मनुष्य हैं।

क्योंकि आरेख (33) में × अंकित हैं जो आरेख (32) में नहीं हैं, इसलिए आरेख (32) से आरेख (33) नहीं निकलता।

इस प्रकार विपरिवर्तन (inversion) की क्रिया अवैध बैठती है और तदनुसार प्रतिवर्तन और परिवर्तन की क्रियाएँ भी अवैध होंगी।

**समस्या का समाधान**

सद्योऽनुमान के इन चारों रूपों के पीछे सत्तावाचक मान्यता छुपी है। परम्परागत तर्कशास्त्र का सम्बन्ध ऐसे ही कथनों से है जिनके पद तथा पूरक पद सत्तावाचक हैं। पद तथा उनके पूरक पदों के बारे में सत्तावाचक मान्यता मानकर ही विपरिव० वैध बनता है। जब हम 'सब क, ख हैं" के अर्थ में 'कुछ क वास्तव में हैं' तथा 'कुछ ख वास्तव में हैं' और 'कुछ क̄ वास्तव में हैं तथा कुछ ख वास्तव में हैं' जोड़ देंगे तभी 'सब क, ख हैं' से 'कुछ क̄, ख नहीं हैं' या 'कुछ क̄ ख̄ हैं' निकालना वैध बन सकता है। अगर हम यह मान लें कि 'कुछ मरणशील मनुष्य वास्तव में हैं', 'कुछ अमर मनुष्य वास्तव में हैं', 'कुछ ईमानदार व्यापारी वास्तव में हैं' तथा 'कुछ बेईमानदार व्यापारी वास्तव में हैं' तब और केवल तब 'सब ईमानदार व्यापारी मरणशील मनुष्य हैं' से 'कुछ बेईमानदार व्यापारी मरणशील मनुष्य नहीं हैं', निकालना वैध हो सकता है। यदि आरेख (32) के ई̄ म̄ भाग में × अंकित हो, तब उससे आरेख (33) निकालना वैध होगा।

परम्परागत तकशास्त्र वर्ग-सम्बन्धी उन्हीं कथनों से सम्बन्ध रखता है जो यह मानकर चलते हैं कि एक वर्ग तथा उसका पूरक वर्ग रिक्त वर्ग नहीं है। इसी मान्यता के आधार पर परम्परागत विरोध का चतुरस्र और सद्योऽनुमान के परम्परागत रूप वैध बनते हैं।

**अभ्यास**

1. "सब पंजाबी भारतीय हैं" को सत्य मानकर निम्नलिखित कथनों में किन-किन का सत्य/असत्य निश्चित होगा और इनका उपर्युक्त कथन से क्या सम्बन्ध होगा :

1. कोई पंजाबी भारतीय नहीं है।
2. सब पंजाबी अभारतीय हैं।
3. सब अपंजाबी अभारतीय हैं।
4. सब अभारतीय पंजाबी हैं।
5. सब अभारतीय अपंजाबी हैं।
6. कुछ पंजाबी भारतीय हैं।
7. कुछ पंजाबी भारतीय नहीं हैं।
8. कुछ पंजाबी अभारतीय नहीं हैं।
9. कुछ भारतीय पंजाबी नहीं हैं।
10. कुछ भारतीय अपंजाबी हैं।
11. कुछ अभारतीय पंजाबी हैं।
12. कुछ अभारतीय अपंजाबी हैं।
13. कुछ अभारतीय पंजाबी नहीं हैं।
14. कोई पंजाबी भारतीय नहीं है।
15. कोई अपंजाबी भारतीय नहीं हैं।

16. कोई पंजाबी अभारतीय नहीं है।

टिप्पणी : सुविधा के लिए वेन आरेख का प्रयोग कर सकते हैं।

2. (क) निम्नलिखित कथनों के सद्योऽनुमान का शृंखलाबद्ध रूप बताओ तथा प्रत्येक निष्कर्ष का निकट पूर्ववर्ती आधारिका तथा मूल आधारिका से सम्बन्ध बताओ :

1. सब विद्वान् धनवान् नहीं होते।
2. सब धर्मगुरु आदरणीय होते हैं।
3. कुछ अच्छे खिलाड़ी विद्यार्थी होते हैं।
4. कुछ विद्वान् बी० ए० पास नहीं होते।

(ख) निम्नलिखित को सिद्ध करो :

1. इ तथा ओ कथनों का विपरिव० नहीं होता।
2. इ कथन का प्रतिपरिव० नहीं होता।
3. विपरिवर्तन की वैधता का आधार सत्तावाचक मान्यता है।

# 10

# निरुपाधिक न्याय–वाक्य

## 1. निरुपाधिक न्याय-वाक्य का स्वरूप

**परिभाषा**

निरुपाधिक न्याय-वाक्य तीन निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों की ऐसी युक्ति है जिसमें दो आधारिकाओं के मेल से निष्कर्ष निकाला जाता हो। आगे इसे हम केवल "न्याय-वाक्य" कहेंगे। क्योंकि न्याय-वाक्य में निष्कर्ष दो आधारिकाओं के मेल से निकाला जाता है, इसलिए इसे व्यवहित अनुमान (mediate inference) कहते हैं। न्याय-वाक्य निगमनात्मक अनुमान का रूप है। इसलिए एक न्याय-वाक्य तभी वैध माना जायेगा, जब निष्कर्ष आधारिकाओं में निहित हो। यदि एक न्याय-वक्य के निष्कर्ष में ऐसी बात कही है जो आधारिकाओं में निहित नहीं है तो वह अवैध माना जायेगा। नीचे न्याय-वाक्य का एक उदाहरण दिया है।

उदाहरण 1. सभी मनुष्य मरणशील प्राणी हैं।
सभी अध्यापक मनुष्य हैं।
∴ सभी अध्यापक मरणशील प्राणी हैं।

**न्याय-वाक्य की रचना**

न्याय-वाक्य की रचना में तीन प्रतिज्ञप्ति और तीन ही पद होते हैं: दो प्रतिज्ञप्तियाँ आधारिकाएँ होती हैं और एक निष्कर्ष होता है। पहले, दो आधारिकाओं में दो भिन्न पदों के सम्बन्ध का कथन एक ही अन्य पद के साथ किया जाता है और फिर निष्कर्ष में इन दो भिन्न पदों के सम्बन्ध का कथन कियो जाता है। इस प्रकार न्याय-वाक्य में केवल तीन ही पद होते हैं और प्रत्येक पद का प्रयोग दो बार होता है। जो पद दोनों आधारिकाओं में आता है, लेकिन निष्कर्ष में नहीं आता वह मध्य पद कहलाता है। उदाहरण (1), में "मनुष्य" मध्य पद है। मध्य पद के अलावा जिन दो पदों का प्रयोग आधारिकाओं में होता है वे ही निष्कर्ष में आते हैं। इनमें से जो पद निष्कर्ष का विधेय हो वह साध्य-पद संक्षेप में, साध्य कहलाता है तथा जो पद निष्कर्ष का उद्देश्य हो, वह पक्ष-पद संक्षेप में, पक्ष कहलाता है। उदाहरण (1) में "मरणशील प्राणी" साध्य पद है और "अध्यापक" पक्ष पद है। जिस आधारिका में साध्य आता है

वह साध्य-आधारिका (major premise) और जिस आधारिका में पक्ष आता है वह पक्ष-आधारिका कहलाती है। उदाहरण (1) में "सब मनुष्य मरणशील प्राणी हैं" साध्य-आधारिका है और "सब अध्यापक मनुष्य हैं" पक्ष-आधारिका है।

### सारांश

न्याय-वाक्य में केवल तीन पद होते हैं। जिन्हें मध्य पद, साध्य पद और पक्ष पद कहते हैं। न्याय-वाक्य में तीन ही प्रतिज्ञप्ति होती हैं जिन्हें साध्य-आधारिका, पक्ष आधारिका और निष्कर्ष कहते हैं।

### न्याय-वाक्य और चार पदों की युक्तियाँ

कुछ युक्तियों में चार या चार से भी अधिक पद होते हैं। चार या चार से अधिक पदों की युक्तियाँ वैध हो सकती हैं और अवैध भी लेकिन ये युक्तियाँ न्याय-वाक्य से भिन्न होती हैं और इनकी वैधता के नियम भी भिन्न होते हैं। नीचे उदाहरण (2) और उदाहरण (3) दोनों में चार पद हैं, लेकिन इनमें से (2) वैध है और (3) अवैध :

**उदाहरण 2.** राम मोहन से बड़ा है।
मोहन सोहन से बड़ा है।
∴ राम सोहन से बड़ा है।

**उदाहरण 3.** राम मोहन का स्पर्श करता है।
मोहन सोहन का स्पर्श करता है।
∴ राम सोहन का स्पर्श करता है।

उदाहरण (3) अवैध है और उदाहरण (2) वैध। लेकिन उदाहरण (3) के अवैध होने का कारण यह नहीं है कि इसमें चार पद हैं क्योंकि उदाहरण (2) में भी चार पद हैं लेकिन यह वैध है। इस प्रकार की युक्तियों को सम्बन्धमूलक युक्तियाँ कहते हैं और इनकी वैधता अथवा अवैधता सम्बन्धों के स्वरूप पर निर्भर होती हैं। इन सम्बन्धों का परिचय अध्याय (14) में कराया जायेगा।

### न्याय-वाक्य का मानक रूप

साधारण व्यवहार में जो युक्तियाँ दी जाती हैं उनमें आधारिकाओं और निष्कर्ष का कोई निश्चित क्रम नहीं होता और न ही उनमें प्रयुक्त वाक्य मानक रूप में होते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से यह ठीक है। लेकिन यदि किसी न्याय-वाक्य की वैधता की परीक्षा करनी हो तो उसे मानक रूप में रखना आवश्यक है। न्याय-वाक्य के मानक रूप की दो विशेषताएँ हैं।

1. मानक रूप वाले न्याय-वाक्य में प्रयुक्त वाक्य मानक रूप में होते हैं।

2. न्याय-वाक्य के मानक रूप में प्रयुक्त वाक्यों की एक निश्चित व्यवस्था होती है। इसमें सबसे पहले साध्य-आधारिका, उसके बाद पक्ष-आधारिका और अन्त में निष्कर्ष का कथन होता है।

नीचे उदाहरण (4) में जो युक्ति है वह न्याय-वाक्य है। लेकिन वह मानक रूप में नहीं है। इसे उदाहरण (5) में प्रस्तुत किया है :

**उदाहरण 4.** पूंजीवादी समाज-व्यवस्था बुरी समाज-व्यवस्था है क्योंकि यह एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के शोषण पर आधारित है और जो भी समाज-व्यवस्था एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के शोषण पर आधारित हो वह बुरी समाज-व्यवस्था है।

**उदारण 5.** सभी समाज-व्यवस्थाएँ जो एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के शोषण पर आधारित हैं बुरी समाज व्यवस्थाएँ हैं।
पूंजीवादी समाज-व्यवस्था एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के शोषण पर आधारित समाज-व्यवस्था है।
∴ पूंजीवादी समाज-व्यवस्था बुरी समाज-व्यवस्था है।

**न्याय-वाक्य के विन्यास और आकृतियाँ** (Moods and figures of syllogism)

विन्यास और आकृति निरुपाधिक न्याय-वाक्य के आकार की दो विशेषताएँ हैं। मानक रूप वाले न्याय-वाक्य में अ, ए, इ, ओ वाक्यों में से जिन तीन वाक्यों का प्रयोग होता है, उनकी व्यवस्था को न्याय-वाक्य का विन्यास (mood of syllogism) कहते हैं। इसे तीन अक्षरों द्वारा दर्शाया जाता है। यदि एक न्याय-वाक्य में साध्य-आधारिका अ वाक्य है, पक्ष-आधारिका अ वाक्य है और निष्कर्ष भी अ वाक्य है तो उसका विन्यास अ अ अ माना जायेगा। उदाहरण (1) का विन्यास अ अ अ है। यदि साध्य आधारिका ए वाक्य है, पक्ष-आधारिका अ वाक्य है और निष्कर्ष ए वाक्य है तो न्याय-वाक्य का विन्यास ए अ ए माना जायेगा।

एक ही विन्यास वाले दो न्याय-वाक्यों के आकार में अन्तर हो सकता है। उनमें से एक वैध और दूसरा अवैध हो सकता है। एक ही विन्यास वाले दो न्याय-वाक्यों के आकार में अन्तर होने का कारण उनकी आकृति (figure) में अन्तर है। न्याय-वाक्य की आकृति उसकी रचना की वह विशेषता है जो उसमें मध्य पद की स्थिति से बनती है। न्याय-वाक्य में मध्य पद की चार ही स्थिति सम्भव हो सकती हैं जिन्हें तर्कशास्त्र की परम्परा में नीचे तालिका में प्रदर्शित ढंग के अनुरूप प्रथमाकृति, द्वितीयाकृति, तृतीयाकृति तथा चतुर्थाकृति कहते हैं। यहाँ हम मध्य पद के लिए "म" साध्य पद के लिए "स" तथा पक्ष पद के लिए "प" का प्रयोग करेंगे।

तालिका 1.

| प्रथमाकृति | | द्वितीयाकृति | | तृतीयाकृति | | चतुर्थाकृति | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| म | स | स | म | म | स | स | म |
| प | म | प | म | म | प | म | प |
| प | स | प | स | प | स | प | स |

पूर्वोक्त तालिका में न्याय-वाक्य की चारों आकृतियों का जो रूप प्रदर्शित किया गया है उसका स्पष्टीकरण नीचे दिया है :

प्रथमाकृति : मध्य पद साध्य-आधारिका में उद्देश्य होता है और पक्ष-आधारिका में विधेय ।

द्वितीयाकृति : मध्य पद साध्य-आधारिका तथा पक्ष-आधारिका दोनों में विधेय होता है ।

तृतीयाकृति : मध्य पद साध्य-आधारिका तथा पक्ष-आधारिका दोनों में उद्देश्य होता है ।

चतुर्थाकृति : मध्य पद साध्य-आधारिका में विधेय और पक्ष-आधारिका में उद्देश्य होता है ।

## अभ्यास

1. बताइये निम्नलिखित कथन सत्य हैं या असत्य :
   1. न्याय-वाक्य अव्यवहित अनुमान है ।
   2. वैध न्याय-वाक्य का निष्कर्ष आधारिकाओं में ही निहित होता है ।
   3. चार पदों की युक्ति भी न्याय-वाक्य होती है ।
   4. साध्य पद निष्कर्ष का उद्देश्य होता है ।
   5. पक्ष पद निष्कर्ष का विधेय होता है ।
   6. साध्य पद निष्कर्ष का विधेय होता है ।
   7. पक्ष पद निष्कर्ष का उद्देश्य होता है ।
   8. न्याय-वाक्य की द्वितीयाकृति में मध्य पद दोनों आधारिकाओं में उद्देश्य होता है ।
   9. न्याय-वाक्य के मानक रूप का अर्थ न्याय-वाक्य का वैध आकार है ।
   10. एक ही विन्यास के दो न्याय-वाक्यों में से एक वैध और दूसरा अवैध हो सकता है ।

2. निम्नलिखित न्याय-वाक्यों के साध्य पद, पक्ष पद, तथा मध्य पद बताओ तथा इन्हें मानक रूप में प्रकट करो । इनकी आकृति तथा विन्यास भी बताओ ।
   1. खेलों के प्रेमी सब लोग प्रसन्नचित्त होते हैं क्योंकि वे मिलनसार होते हैं और सब मिलनसार व्यक्ति प्रसन्नचित्त होते हैं ।
   2. बुद्धि के सहारे किये गये मानव के सब काम अपूर्ण होते हैं, क्योंकि अपूर्ण उपकरण के सहारे कियें गये काम अपूर्ण होते हैं और बुद्धि अपूर्ण उपकरण है ।
   3. ज्ञानी लोग दुःखदायी बातों से बचते हैं ।
      इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाले भोग दुःखदायी होते हैं ।
      ∴ ज्ञानी लोग इनसे बचते हैं ।

4. जो व्यक्ति काम क्रोध के वेग पर काबू पा सकता है वह सुखी है क्योंकि काम क्रोध के वेग पर काबू पाने वाला व्यक्ति योगी होता है और योगी व्यक्ति सुखी होता है।

5. कोई पशु सदाचारी या दुराचारी नहीं होता क्योंकि किसी पशु में विवेक-बुद्धि नहीं होती और जिनमें विवेक-बुद्धि नहीं होती वे सदाचारी या दुराचारी नहीं होते।

3. निरुपाधिक न्याय-वाक्य की परिभाषा दो तथा उसकी रचना उदाहरण सहित स्पष्ट करो।

4. न्याय-वाक्य के विन्यास तथा आकृति से क्या समझते हो ? न्याय-वाक्य की कितनी आकृतियाँ होती हैं ? उदाहरण सहित सबका स्वरूप स्पष्ट करो।

5. निम्नलिखित पदों की परिभाषाएँ दो। मध्य पद, साध्य पद, पक्ष पद, साध्य-आधारिका, पक्ष-आधारिका।

6. "मनुष्य", दीर्घजीवी" तथा "विद्यार्थी" पदों का क्रमशः मध्य पद, साध्य पद तथा पक्ष पद के रूप में प्रयोग करके चारों आकृतियों में अ अ अ विन्यास वाली युक्तियों की रचना करें।

## 2. न्याय-वाक्य की वैधता के नियम

न्याय-वाक्य की वैधता की परीक्षा करने की दो विधियाँ हैं :

1. नियमों की विधि।
2. वेन आरेखों की विधि।

इन विधियों की व्याख्या करने से पहले यह बात स्पष्ट करना आवश्यक है कि किसी न्याय-वाक्य की वैधता या अवैधता उसके आकार की विशेषता है और उसकी कथित सामग्री पर निर्भर नहीं है। तर्कशास्त्रियों ने न्याय-वाक्य के सम्भव वैध आकार निश्चित किये हैं और इन वैध आकारों का निश्चय करने के लिए एक नियमावली दी है। जो न्याय-वाक्य इन नियमों के अनुसार है, वह वैध है, जो इनमें से किसी नियम को तोड़ता है वह दोषपूर्ण है। न्याय-वाक्य की वैधता के नियम तथा उनके तोड़ने से पैदा होने वाले दोषों का उदाहरण सहित संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

**नियम 1.** न्याय-वाक्य में तीन ही पद होने चाहिएँ। यदि न्याय-वाक्य में चार पद हों, तो उसमें चार पदों का दोष माना जायेगा। यह नियम न्याय-वाक्य की रचना का ही नियम है। यदि किसी युक्ति में तीन से कम या तीन से अधिक पद हों तो वह न्याय-वाक्य ही नहीं बनता। लेकिन इसे न्याय-वाक्य की वैधता का नियम भी माना जाता है। चार पदों का दोष प्रायः तब होता है, जब एक पद का प्रयोग दो भिन्न-भिन्न अर्थों में किया गया हो।

**उदाहरण 6.** सब द्विज पंख वाले प्राणी हैं।
सब ब्राह्मण द्विज हैं।
∴ सब ब्राह्मण पंख वाले प्राणी हैं।

**उदाहरण 7.** सभी पंजाबी पंजाब सरकार की नौकरियों में प्राथमिकता के अधिकारी हैं।
हरियाणा में बसे हुए सिख पंजाबी हैं।
∴ हरियाणा में बसे हुए सिख पंजाब सरकार की नौकरियों में प्राथमिकता के अधिकारी हैं।

उदाहरण (6) में "द्विज" शब्द द्वयर्थक है। साध्य आधारिका में "द्विज" का अर्थ पक्षी है और पक्ष-आधारिका में "द्विज" का अर्थ वैदिक रीति से संस्कार करने वाले लोग हैं। क्योंकि साध्य-आधारिका में प्रयुक्त "द्विज" पक्ष-आधारिका में प्रयुक्त "द्विज" से भिन्न है, इसलिए इस युक्ति में चार पदों का दोष बनता है। उदाहरण (7) में "पंजाबी" शब्द की द्वयर्थकता के कारण चार पदों का दोष है। साध्य-आधारिका में "पंजाबी" का अर्थ पंजाब राज्य में रहने वाला है जबकि पक्ष-आधारिका में "पंजाबी" का अर्थ पंजाबी वंश परम्परा वाला व्यक्ति है।

**नियम 2.** मध्य पद कम-से-कम एक आधारिका में अवश्य व्याप्त होना चाहिये। इस नियम की अवहेलना से अव्याप्त मध्य पद का दोष होता है।

मध्य पद का कार्य पक्ष और साध्य का सम्बन्ध स्थापित करना है और यह कार्य वह तभी कर सकता है, जब वह पक्ष या साध्य अथवा दोनों से अपने पूर्ण रूप में सम्बन्धित हो। यदि मध्य पद का एक अंश साध्य से और दूसरा अंश पक्ष से सम्बन्धित हो तो साध्य और पक्ष के सम्बन्ध का आधार मध्य पद नहीं बनता।

**उदाहरण 8.** सब बन्दर मरणशील प्राणी हैं।
सब मनुष्य मरणशील प्राणी हैं।
∴ सब मनुष्य बन्दर हैं।

इस उदाहरण में "मरणशील प्राणी" मध्य पद है और यह दोनों आधारिकाओं में अव्याप्त है। इसका अर्थ यह है कि मरणशील प्राणियों में से कुछ बन्दर हैं और कुछ मनुष्य हैं, लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि जो मरणशील प्राणी बन्दर हैं वही मनुष्य हैं। वास्तव में मरणशील प्राणी वर्ग का जो भाग मनुष्य से सम्बन्धित है वह उस भाग से भिन्न है जो बन्दर से सम्बन्धित है। आरेख (34) में इस युक्ति की आधारिकाओं को प्रकट करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें जो निष्कर्ष निकाला है, वह उनसे निकलता ही नहीं है। यह अवैध युक्ति है। इसमें अव्याप्त मध्य पद का दोष है।

आरेख 34.
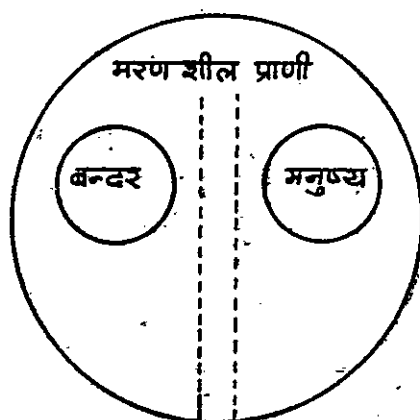
**नियम 3.** जो पद किसी आधारिका में अव्याप्त है, वह निष्कर्ष में व्याप्त नहीं होना चाहिये। आधारिका में एक पद के अव्याप्त होने पर निष्कर्ष में उसके व्याप्त होने का अर्थ यह है कि वह पद आधारिका में कुछ का बोधक है लेकिन निष्कर्ष में सब का बोधक है। निगमन के सामान्य स्वरूप के अनुसार निष्कर्ष का किसी भी आधारिका से अधिक व्यापक होना अवैध है। इस प्रकार यह नियम निगमन के सामान्य स्वरूप के नियम से ही निकलता है।

यह नियम साध्य पद तथा पक्ष पद के सम्बन्ध में है। यदि साध्य पद साध्य-आधारिका में अव्याप्त होने पर निष्कर्ष में व्याप्त हो तो अवैध साध्य (illicit major) का दोष होता है। इसी प्रकार, पक्ष पद के पक्ष-आधारिका में अव्याप्त तथा निष्कर्ष में व्याप्त होने पर अवैध पक्ष (illicit minor) का दोष होता है।

**अवैध साध्य का उदाहरण**

**उदाहरण 9.** सब सन्त दयालु होते हैं।
कोई राजनीतिज्ञ सन्त नहीं होता।
∴ कोई राजनीतिज्ञ दयालु नहीं होता।

इस उदाहरण में "दयालु" साध्य पद है, जो साध्य-आधारिका में विधानात्मक वाक्य का विधेय होने के कारण अव्याप्त है तथा निषेधात्मक निष्कर्ष का विधेय होने के कारण निष्कर्ष में व्याप्त है। इसलिए, इसमें अवैध साध्य का दोष है।

**अवैध पक्ष का उदाहरण**

**उदाहरण 10.** सब पंजाबी भारतीय हैं।
सब भारतीय एशियाई हैं।
∴ सब एशियाई पंजाबी हैं।

इस न्याय-वाक्य में "एशियाई" पद पक्ष है जो पक्ष-आधारिका में अव्याप्त और निष्कर्ष में व्याप्त है। इसलिए, इसमें अवैध पक्ष का दोष है।

**नियम 4.** न्याय-वाक्य में दोनों आधारिकाएँ निषेधात्मक नहीं होनी चाहियें, अर्थात् कम-से-कम एक आधारिका विधानात्मक होनी चाहिये। यदि किसी न्याय-वाक्य में दोनों आधारिकाएँ निषेधात्मक हों तो वह न्याय-वाक्य अवैध होगा, उसमें निषेधात्मक आधारिकाओं का दोष होगा। जैसे :

**उदाहरण 11.** कोई हिन्दू मुसलमान नहीं है।
कोई मुसलमान मूर्तिपूजक नहीं है।
∴ कोई मूर्तिपूजक हिन्दू नहीं है।

इस उदाहरण में आधारिकाओं के सत्य होने पर भी निष्कर्ष असत्य है। इसलिए, यह अवैध है। इसमें निषेधात्मक आधारिकाओं का दोष है।

जब दोनों आधारिकाएँ निषेधात्मक हों, तो मध्य पद साध्य तथा पक्ष दोनों से पृथक् होगा और इसलिए वह साध्य तथा पक्ष में विधानात्मक या निषेधात्मक सम्बन्ध स्थापित करने का आधार नहीं बन सकता। नीचे आरेख के रूप में ऊपर दी हुई युक्ति को प्रकट करने पर इसका दोष स्पष्ट हो जायेगा :

**आरेख 35.**
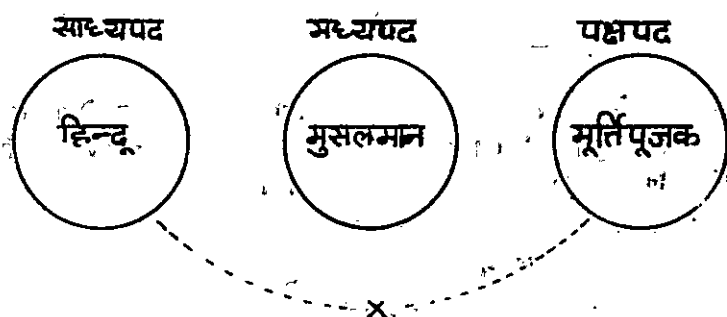
क्योंकि "मुसलमान" पद एक ओर "हिन्दू" पद से पृथक् है और दूसरी ओर मूर्तिपूजक पद से पृथक् है, इसलिए यह "हिन्दू" और "मूर्तिपूजक" के सम्बन्ध का आधार नहीं बन सकता। वास्तव में जिस न्याय-वाक्य में दोनों आधारिकाएँ निषेधात्मक हों, उसमें मध्य पद ही नहीं बनता, जैसा कि आरेख (35) से स्पष्ट है।

**नियम 5.** यदि न्याय-वाक्य में एक आधारिका निषेधात्मक हो तो निष्कर्ष भी निषेधात्मक ही होना चाहिये और यदि निष्कर्ष निषेधात्मक हो तो एक आधारिका अवश्य निषेधात्मक होनी चाहिये।

न्याय-वाक्य में एक आधारिका के निषेधात्मक तथा दूसरी आधारिका के विधानात्मक होने का अर्थ यह है कि उसमें मध्य पद साध्य तथा पक्ष में से एक से बिल्कुल पृथक् है तथा दूसरा उसमें शामिल है। ऐसी स्थिति में निष्कर्ष भी पक्ष तथा साध्य को पृथक् करने के रूप में अर्थात् निषेधात्मक रूप में ही हो सकता है। इस नियम का स्वरूप समझने के लिए नीचे के आरेख (36) पर ध्यान दें :

आरेख 36.

आधारिकाएँ

म स

प

कोई म स नहीं है।
और
सब प म हैं।

निष्कर्ष

प स

कोई प स नहीं है।
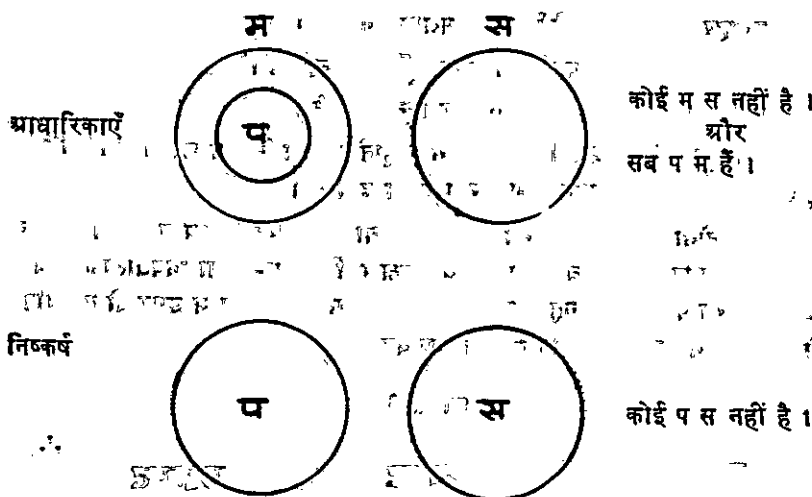
इस आरेख से यह स्पष्ट है कि यदि एक आधारिका निषेधात्मक हो तो निष्कर्ष भी निषेधात्मक ही होना चाहिये। इस नियम की अवहेलना करने पर निषेधात्मक आधार से विधानात्मक निष्कर्ष निकालने का दोष होगा। जैसे :

**उदाहरण 12.** कोई साम्यवादी ईश्वरभक्त नहीं होता।

सब साम्यवादी न्यायप्रिय होते हैं।

∴ सब ईश्वरभक्त न्यायप्रिय होते हैं।

यह युक्ति दोषपूर्ण है क्योंकि इसमें एक निषेधात्मक आधारिका के होने पर भी विधानात्मक निष्कर्ष निकाला गया है।

**नियम 6.** यदि दोनों आधारिकाएँ विधानात्मक हों, तो निष्कर्ष भी विधानात्मक होना चाहिये। इसी प्रकार विधानात्मक निष्कर्ष निकालने के लिए दोनों आधारिकाएँ विधानात्मक होनी चाहियें। यह नियम भी स्पष्ट है। यदि म स में शामिल है और प म में शामिल है तो स्पष्ट है कि प, स में शामिल ही होगा, जैसा कि निम्नलिखित आरेख से प्रदर्शित किया है।

आरेख 37.
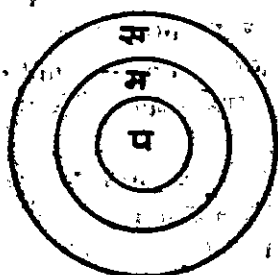
न्याय-वाक्य के इन छः नियमों से तीन नियम और निकलते हैं। इन्हें न्याय-वाक्य के उपनियम कहते हैं।

**उपनियम 1.** न्याय-वाक्य की दोनों आधारिकाएँ अंशव्यापी नहीं होनी चाहियें अर्थात् कम-से-कम एक आधारिका अवश्य सर्वव्यापी होनी चाहिये। उपर्युक्त नियमों के आधार पर इस नियम को निम्नलिखित ढंग से सिद्ध किया जा सकता है :

यदि दोनों आधारिकाएँ अंशव्यापी हों तो,

वे इ इ ओ ओ

इ ओ अथवा ओ इ के रूप में होंगी।

यदि दोनों आधारिकाएँ इ इ हों, तो, उनमें कोई भी पद व्याप्त नहीं होगा। इस प्रकार उनमें मध्य पद एक बार भी व्याप्त नहीं होगा। इससे निष्कर्ष निकालने में अव्याप्त मध्य पद का दोष होगा। ओ ओ आधारिकाएँ दोनों निषेधात्मक हैं। इसलिए नियम (4) के अनुसार उनसे कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता।

इ ओ अथवा ओ इ आधारिकाओं के होने पर निष्कर्ष निषेधात्मक होगा (नियम 5)। इसका अर्थ यह है कि निष्कर्ष में साध्य पद व्याप्त होगा और वह साध्य-आधारिका में भी व्याप्त होना चाहिये अन्यथा अवैध साध्य का दोष होगा। लेकिन इ ओ अथवा ओ इ आधारिकाओं के होने पर उनमें केवल एक पद व्याप्त होगा, जो मध्य पद हो सकता है या साध्य पद। यदि साध्य पद व्याप्त है तो अव्याप्त मध्य पद का दोष होगा और यदि मध्य पद व्याप्त है तो अवैध साध्य का दोष होगा।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि दोनों आधारिकाओं के अव्याप्त होने पर न्याय-वाक्य वैध नहीं हो सकता।

**उपनियम 2.** यदि एक आधारिका अंशव्यापी हो तो निष्कर्ष भी अंशव्यापी होना चाहिये। इस उपनियम को निम्नलिखित प्रकार से सिद्ध कर सकते हैं :

यदि निष्कर्ष सर्वव्यापी वाक्य है तो वह अ वाक्य होगा या ए वाक्य। यदि निष्कर्ष ए वाक्य है तो निष्कर्ष में प और स दोनों पद व्याप्त होंगे। इसलिए, ये दोनों पद आधारिकाओं में भी व्याप्त होने चाहियें (नियम 3) और इनके साथ-साथ मध्य पद

भी व्याप्त होना चाहिये (नियम 2) । इस प्रकार ए निष्कर्ष तभी वैध हो सकता है, जब आधारिकाओं में तीनों पद व्याप्त हों और एक आधारिका के अंशव्यापी होने पर यह शर्त तभी पूरी हो सकती है, जब दोनों आधारिकाएँ निषेधात्मक हों । लेकिन दोनों आधारिकाओं के निषेधात्मक होने पर, कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता (नियम 4) ।

यदि निष्कर्ष अ वाक्य है तो दोनों आधारिकाएँ भी विधानात्मक होंगे । (नियम 6) ।

यदि उनमें से एक आधारिका अंशव्यापी है, तो आधारिकाओं में केवल एक पद व्याप्त होगा, जो मध्य पद होना चाहिये अन्यथा अव्याप्त मध्य पद का दोष होगा । लेकिन निष्कर्ष अ वाक्य में होने पर पक्ष पद निष्कर्ष में व्याप्त होगा और वह पक्ष-आधारिका में भी व्याप्त होना चाहिये अन्यथा अवैध पक्ष का दोष होगा । लेकिन यहाँ आधारिकाओं में केवल एक ही पद व्याप्त है । इस प्रकार एक आधारिका के अंशव्यापी होने पर अ निष्कर्ष निकालने में या तो अव्याप्त मध्य पद का दोष होगा या अवैध पक्ष का ।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि एक आधारिका के अंशव्यापी होने पर निष्कर्ष सर्वव्यापी नहीं हो सकता ।

**उपनियम 3.** यदि साध्य-आधारिका इ और पक्ष-आधारिका ए हो, तो कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता ।

क्योंकि एक आधारिका (पक्ष-आधारिका) निषेधात्मक है, इसलिए, नियम (5) के अनुसार निष्कर्ष निषेधात्मक होगा । निष्कर्ष के निषेधात्मक होने पर साध्य पद निष्कर्ष में व्याप्त होगा लेकिन साध्य-आधारिका इ वाक्य है और उसमें साध्य अव्याप्त है । इस प्रकार नियम (3) के अनुसार अवैध साध्य का दोष होगा । इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि साध्य-आधारिका इ हो और पक्ष-आधारिका ए हो तो कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता ।

## 3. निर्बलीकृत न्याय-वाक्य तथा सबलीकृत न्याय-वाक्य

निर्बलीकृत न्याय-वाक्य तथा सबलीकृत न्याय-वाक्य, न्याय-वाक्य के ऐसे दो रूप हैं जिनमें दोनों आधारिकाओं के सर्वव्यापी होने पर निष्कर्ष अंशव्यापी होता है ।

जिस न्याय-वाक्य में सर्वव्यापी निष्कर्ष निकालना वैध होते हुए भी अंशव्यापी निष्कर्ष निकाला गया हो वह निर्बलीकृत न्याय-वाक्य कहलाता है । जिस न्याय-वाक्य में दोनों आधारिकाओं के सर्वव्यापी होने पर अंशव्यापी निष्कर्ष ही वैध होता हो अर्थात्, सर्वव्यापी निष्कर्ष निकल ही न सकता हो वह सबलीकृत न्याय-वाक्य कहलाता है । नीचे के उदाहरणों से इनका भेद स्पष्ट हो जायेगा ।

**उदाहरण 13.**

निर्बलीकृत न्याय-वाक्य सब मनुष्य मरणशील हैं ।

सब अध्यापक मनुष्य हैं ।

∴ कुछ अध्यापक मरणशील हैं ।

**उदाहरण 14.**

सबलीकृत न्याय-वाक्य—सब सरकारी विद्यालयों के अध्यापक अध्यापक होते हैं।
सब सरकारी विद्यालयों के अध्यापक सरकारी कर्मचारी होते हैं।
∴ कुछ सरकारी कर्मचारी अध्यापक होते हैं।

उदाहरण (13) में "सब अध्यापक मरणशील हैं" निष्कर्ष निकालना वैध है, लेकिन यहाँ इससे निर्बल निष्कर्ष अर्थात् "कुछ अध्यापक मरणशील हैं" निकाला गया है। उदाहरण (14) में "सब सरकारी कर्मचारी अध्यापक होते हैं" निष्कर्ष निकालना अवैध होगा। इस महत्त्वपूर्ण भेद के साथ-साथ इन दोनों में एक समानता यह है कि इन दोनों में पक्ष-आधारिका आवश्यकता से अधिक सबल है। यदि इनमें पक्ष-आधारिका अंशव्यापी होती, तो भी ये वैध होते।

**सारांश**

निर्बलीकृत न्याय-वाक्य तथा सबलीकृत न्याय-वाक्य, न्याय-वाक्य के ऐसे रूप हैं, जिनमें दोनों आधारिकाएँ सर्वव्यापी होती हैं और निष्कर्ष अंशव्यापी होता है तथा दोनों में एक आधारिका आवश्यकता से अधिक सबल होती है। लेकिन जहाँ निर्बलीकृत न्याय-वाक्य में सर्वव्यापी निष्कर्ष के वैध होने पर भी अंशव्यापी निष्कर्ष निकाला जाता है, वहाँ सबलीकृत न्याय-वाक्य में अंशव्यापी निष्कर्ष ही वैध होता है।

## 4. निर्बलीकृत न्याय-वाक्य तथा सबलीकृत न्याय-वाक्य की वैधता का प्रश्न

परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार निर्बलीकृत न्याय-वाक्य तथा सबलीकृत न्याय-वाक्य वैध हैं परन्तु आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार ये अवैध हैं। परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार "सब" के अर्थ में "कुछ" का अर्थ शामिल है। इसलिए, इसमें दोनों आधारिकाओं के सर्वव्यापी होने पर भी अंशव्यापी निष्कर्ष निकालने में कोई दोष नहीं है।

आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार सर्वव्यापी वाक्य और अंशव्यापी वाक्य के अर्थ में मौलिक भेद हैं जिसे हम अध्याय 7. में स्पष्ट कर चुके हैं। जहाँ अंशव्यापी वाक्य के अर्थ में इसके पदों के अस्तित्व का निश्चय निहित होता है, वहाँ सर्वव्यापी वाक्य में पदों के अस्तित्व का निश्चय शामिल नहीं होता। यदि हम एक न्याय-वाक्य में दोनों आधारिकाओं के सर्वव्यापी होने पर अंशव्यापी निष्कर्ष निकालते हैं, तो आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार पदों के अस्तित्व के अनिश्चय के आधार पर पदों के अस्तित्व का निश्चय निकालते हैं, जो गलत है।

यद्यपि आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार सर्वव्यापी वाक्य के स्वरूप से उसके पदों के अस्तित्व का निश्चय नहीं होता, लेकिन किसी सर्वव्यापी वाक्य के सम्बन्ध में उसके पदों के अस्तित्व की मान्यता जोड़ी जा सकती है। ऐसी हालत में सर्वव्यापी वाक्य

संयुक्त वाक्य बन जाता है। वाक्य की रचना की दृष्टि से "सब मनुष्य मरणशील हैं" का अर्थ केवल यह है कि "यदि कोई मनुष्य है तो वह मरणशील है"। इसके अर्थ में किसी मनुष्य के अस्तित्व का अर्थ शामिल नहीं है। लेकिन व्यवहार में जब हम यह कहते हैं कि "सब मनुष्य मरणशील हैं" तो हम यह भी मानते हैं कि मनुष्यों का अस्तित्व है। यदि हम "सब मनुष्य मरणशील हैं" के अर्थ में मनुष्यों के अस्तित्व की मान्यता जोड़ते हैं, जैसा कि व्यवहार में करते हैं तो इसे प्रकट करने के लिए वाक्य का शुद्ध तार्किक रूप यह होना चाहिये : सब मनुष्य मरणशील हैं और कुछ मनुष्यों का अस्तित्व है।

जिन निर्बलीकृत अथवा सबलीकृत न्याय-वाक्यों में आधारिकाओं के साथ पदों के अस्तित्व की मान्यता जुड़ी हो वे तो वैध हैं और जिनमें यह मान्यता न जुड़ी हो वे अवैध हैं। सामान्य नियम के रूप में इसे इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं :

आधारिकाओं में पदों के अस्तित्व की मान्यता के निश्चय के बिना निष्कर्ष में पदों के अस्तित्व का निश्चय करना अवैध है।

नीचे उदाहरण (15) वैध है तथा उदाहरण (16) अवैध है।

**उदाहरण 15.** सब मनुष्य मरणशील हैं।
सब विद्यार्थी मनुष्य हैं।
∴ कुछ विद्यार्थी मरणशील हैं।

इस युक्ति के पीछे अस्तित्व-मान्यता छुपी है। इसलिए इसका स्पष्ट तार्किक रूप है :
यदि कोई मनुष्य है तो वह मरणशील है और कुछ मनुष्यों का अस्तित्व है।
यदि कोई विद्यार्थी है तो वह मनुष्य है और कुछ विद्यार्थियों का अस्तित्व है।
∴ कुछ विद्यार्थी मरणशील हैं (कम-से-कम एक विद्यार्थी का अस्तित्व है और वह मरणशील है)।

**उदाहरण 16.** सब पुष्प सुन्दर होते हैं।
सब आकाशपुष्प पुष्प हैं।
∴ कुछ आकाशपुष्प सुन्दर होते हैं।

इस युक्ति की साध्य-आधारिका के पीछे अस्तित्व मान्यता है, लेकिन पक्ष-आधारिका के पीछे नहीं। इसलिए, इसका स्पष्ट तार्किक रूप है :

यदि कोई पुष्प है तो वह सुन्दर है और कुछ पुष्प हैं। यदि कोई आकाशपुष्प है तो वह पुष्प है।

∴ कुछ आकाशपुष्प सुन्दर हैं।

"कुछ आकाशपुष्प सुन्दर हैं" का अर्थ है कि कम-से-कम एक आकाशपुष्प का अस्तित्व है और वह सुन्दर है। लेकिन पक्ष-आधारिका में आकाशपुष्प के अस्तित्व की मान्यता नहीं है। यहाँ हम आधारिका में आकाशपुष्प के अस्तित्व की मान्यता न होते हुए भी निष्कर्ष में यह मान्यता कर बैठे हैं। इसलिए इसमें अस्तित्वाभिग्रह दोष (fallacy of existential assumption) है।

## अभ्यास

### हल किये हुए प्रश्न

निम्नलिखित न्याय-वाक्यों को मानक रूप में प्रकट करो। उनकी आकृति और विन्यास बताओ तथा नियमों के आधार पर उनकी वैधता/अवैधता निश्चित करो, अवैध न्याय-वाक्यों के दोष का नाम भी बताओ :

1. बहुत से प्रोफेसर विद्वान् होते हैं।
   बहुत से विद्वान् राजनीतिज्ञ होते हैं।
   ∴ बहुत से राजनीतिज्ञ प्रोफेसर होते हैं।

तीन पद : राजनीतिज्ञ — पक्ष पद
विद्वान् — मध्य पद
प्रोफेसर — साध्य पद

न्याय-वाक्य का मानक रूप :
कुछ प्रोफेसर विद्वान् होते हैं (इ)।
कुछ विद्वान् राजनीतिज्ञ होते हैं (इ)।
∴ कुछ राजनीतिज्ञ प्रोफेसर होते हैं (इ)।

न्याय-वाक्य की आकृति प्रथम

विन्यास : इ इ इ

न्याय-वाक्यों में दोष : अव्याप्त मध्य पद

2. सब उपयोगी वस्तुएँ सस्ती होती हैं।
   सब सस्ती वस्तुएँ सुलभ होती हैं।
   ∴ सब सुलभ वस्तुएँ उपयोगी होती हैं।

पक्ष — सुलभ वस्तुएँ
साध्य — उपयोगी वस्तुएँ
मध्य पद — सस्ती वतुएँ

| | | विन्यास | आकृति : चतुर्थ |
|---|---|---|---|
| युक्ति का आकार : | सब स म हैं। | अ | |
| | सब म प हैं। | अ | |
| | सब प स हैं। | अ | |

दोष : अवैध पक्ष

3. कोई गरीब सुखी नहीं है।
   कोई सन्तोषी गरीब नहीं है।
   ∴ कोई सन्तोषी सुखी नहीं है।

प (पक्ष) =संतोषी
स (साध्य) =सुखी
म (मध्यपद)=गरीब

| | | विन्यास | आकृति : प्रथम |
|---|---|---|---|
| युक्ति का आकार : | कोई म स नहीं है । | ए | |
| | कोई प म नहीं है । | ए | |
| | कोई प स नहीं है । | ए | |

दोष : निषेधात्मक आधारिकाओं का दोष

4. सब जीवन-मुक्त लोककल्याण के लिए काम करते हैं ।
सब लोककल्याण के लिए काम करने वाले कर्मयोगी होते हैं ।
∴ सब कर्मयोगी जीवन-मुक्त होते हैं ।

प = कर्मयोगी
स = जीवन-मुक्त
म = लोककल्याण के लिए काम करने वाले व्यक्ति

| | | विन्यास | आकृति : चतुर्थ |
|---|---|---|---|
| युक्ति का आकार : | सब प म हैं । | अ | |
| | सब म प हैं । | अ | |
| ∴ | सब प स हैं । | अ | |
| | दोष अवैध पक्ष । | | |

5. सब भारतीय एशियाई हैं, इसलिए कोई अमरीकन एशियाई नहीं है क्योंकि कोई अमरीकन भारतीय नहीं है ।

पक्ष =अमरीकन
साध्य =एशियाई
मध्यपद=भारतीय

| मानक रूप : | आकार |
|---|---|
| सब भारतीय एशियाई हैं । | सब म स (अ) । |
| कोई अमरीकन भारतीय नहीं है । | कोई प म नहीं है (ए) । |
| ∴ कोई अमरीकन एशियाई नहीं है । | कोई प स नहीं है (ए) |

आकृति प्रथम विन्यास : अ ए
दोष : अवैध साध्य

## अभ्यास

1. निम्नलिखित न्याय-वाक्यों के पदों की पहचान करो, उन्हें मानक रूप में प्रकट करो, उनकी आकृति और विन्यास बताओ तथा नियमों के आधार पर उनके दोष बताओ :

1. बहुत-सी धार्मिक क्रियाएँ हिंसा मूलक होती हैं।
   सब हिंसामूलक क्रियाएँ बुरी हैं।
   ∴ सब धार्मिक क्रियाएँ बुरी हैं।
2. 21 वर्ष से कम आयु का कोई व्यक्ति राष्ट्रपति नहीं बन सकता है, क्योंकि 21 वर्ष से कम आयु वाले को मत देने का अधिकार नहीं है और जिसे मत देने का अधिकार नहीं है, उसे राष्ट्रपति बनने का अधिकार नहीं है।
3. सब ब्राह्मण द्विज हैं। सब द्विज वेदों के अध्ययन के अधिकारी हैं। इसलिए, सब वेदों के अध्ययन के अधिकारी ब्राह्मण हैं।
4. सब बौद्ध अहिंसा का व्रत लेते हैं।
   कोई ईसाई बौद्ध नहीं है।
   ∴ कोई ईसाई अहिंसा का व्रत नहीं लेता।
5. जोखिम से बचने वाला व्यक्ति, शिखर पर नहीं पहुँच सकता।
   एवरेस्ट पर अभियान करने वाला कोई व्यक्ति जोखिम से नहीं बचता।
   ∴ एवरेस्ट पर अभियान करने वाले सब व्यक्ति शिखर पर पहुँच जाते हैं।

2. निम्नलिखित न्याय-वाक्यों को मानक रूप में प्रकट करो। उनके विन्यास और आकृति बताओ तथा नियमों के आधार पर उनकी वैधता/अवैधता निश्चित करो :

1. सब कांग्रेसी समाजवाद चाहते हैं।
   सब संगठन-कांग्रेसी समाजवाद चाहते हैं।
   ∴ सब संगठन-कांग्रेसी कांग्रेसी हैं।
2. सब फासिस्ट युद्ध प्रेमी होते हैं।
   सब युद्ध प्रेमी निर्दयी होते हैं।
   ∴ सब फासिस्ट निर्दयी होते हैं।
3. एम० ए० में उन्हीं विद्यार्थियों को दाखिला मिलेगा, जिनके बी० ए० में अंक 50% से अधिक हों।
   राजकीय महाविद्यालय कुरुक्षेत्र के बी० ए० में उत्तीर्ण सब छात्रों के बी० ए० में अंक 50% से अधिक हैं। इसलिए उन सबको एम० ए० में दाखिला मिल जायेगा।
4. सब युद्ध घृणा पर आधारित होते हैं।
   सत्याग्रह सत्य के लिए युद्ध है।
   ∴ सत्याग्रह घृणा पर आधारित है।
5. जो नेता व्यक्ति की स्वतन्त्रता का विरोध करते हैं, वे व्यक्तियों का अहित चाहते हैं। जो पूँजीवाद का विरोध करते हैं, वे व्यक्ति की स्वतन्त्रता का विरोध करते हैं। इसलिए, जो पूँजीवाद का विरोध करते हैं, वे व्यक्तियों का अहित चाहते हैं।

6. सब दुःखी व्यक्ति निराशावादी होते हैं क्योंकि सब निराशावादी असफल व्यक्ति होते हैं और सब असफल व्यक्ति दुःखी होते हैं।
7. सब असन्तोषी गरीब होते हैं। सब धनी असन्तोषी होते हैं। इसलिए, सब धनी गरीब होते हैं।
8. कुछ दार्शनिक धार्मिक होते हैं, क्योंकि सब दार्शनिक चिन्तनशील होते हैं और कुछ चिन्तनशील व्यक्ति धार्मिक होते हैं।
7. सब सच्चरित्र व्यक्ति निर्भय होते हैं और सब निर्भय व्यक्ति सुखी होते हैं। इसलिए, सब सुखी व्यक्ति सच्चरित्र होते हैं।
10. हमारे अधिकतर विद्यार्थी अध्यापक बनेंगे और हमारे कुछ विद्यार्थी बहुत योग्य हैं। इसलिए, कुछ योग्य व्यक्ति अध्यापक बनेंगे।
11. आलसी व्यक्ति प्रायः जीवन में सफल नहीं होते और जो व्यक्ति जीवन में असफल होते हैं वे सुखी नहीं होते। इसलिए, कोई आलसी व्यक्ति सुखी नहीं होता।
12. अच्छी प्रकृति वाले व्यक्तियों पर कुसंग का प्रभाव नहीं पड़ता। कुशाग्र बुद्धि वाले विद्यार्थी प्रायः अच्छी प्रकृति के होते हैं। इसलिए, कुशाग्र बुद्धि वाले विद्यार्थियों पर कुसंग का प्रायः प्रभाव नहीं पड़ता।
13. जो नाशवान् वस्तु पर घमण्ड करता है, वह मूर्ख है। धन नाशवान् वस्तु है। इसलिए, धन पर घमण्ड करने वाला मूर्ख है।
14. बुराई के सामने झुकना कायरता है। कायरता अपमानजनक है। इसलिए, बुराई के सामने झुकना अपमानजनक है।
15. आत्मिक प्रेम ही सच्चा प्रेम है।
    दैहिक प्रेम आत्मिक प्रेम नहीं है।
    इसलिए, दैहिक प्रेम सच्चा प्रेम नहीं है।
16. कोई ह्वेल मछली नहीं है क्योंकि किसी मछली के फेफड़े नहीं होते और ह्वेल के फेफड़े होते हैं।
17. जो भी कुछ उत्पन्न होता है, वह सब अनित्य है।
    आकाश उत्पन्न नहीं होता।
    ∴ आकाश अनित्य नहीं है।
18. कुछ कवि दार्शनिक होते हैं। कुछ दार्शनिक राजा होते हैं। इसलिए, कुछ राजा कवि होते हैं।
19. सब गृहस्थी धन और पुत्र की इच्छा करते हैं।
    कोई संन्यासी गृहस्थी नहीं होता।
    ∴ कोई संन्यासी धन और पुत्र की इच्छा नहीं करता।
20. कोई मानसिक रोगी उत्तरदायित्वपूर्ण आचरण नहीं करता
    सब उत्तरदायित्वपूर्ण आचरण करने वाले विश्वसनीय होते हैं।
    ∴ कोई विश्वसनीय व्यक्ति मानसिक रोगी नहीं होता।

**वैध विन्यास**

यदि हम एक आकृति के सभी सम्भव विन्यासों का हिसाब लगायें तो वे 64 विन्यास बनेंगे। हिसाब इस प्रकार है : एक न्याय-वाक्य में तीन वाक्य होते हैं जिनमें से प्रत्येक की अ, ए, इ, ओ वाक्यों के रूप में चार सम्भावनाएँ हैं। इस प्रकार 4×4×4 विन्यास बनते हैं। क्योंकि प्रत्येक आकृति में 64 विन्यास सम्भव हैं और न्याय-वाक्य की केवल चार आकृतियाँ हैं, इसलिए न्याय-वाक्य के कुल सम्भव विन्यास 64×4=256 बनते हैं। लेकिन ये सभी विन्यास वैध नहीं हैं। न्याय-वाक्य की वैधता के जो नियम पहले बताये जा चुके हैं, उनके आधार पर वैध विन्यासों का निश्चय किया जा सकता है। यदि हम साध्य-आधारिका और पक्ष-आधारिका के नीचे दिये हुये 16 विन्यासों पर ध्यान दें तो उनमें बहुतों की अवैधता स्पष्ट हो जायेगी। नीचे के जोड़ों में पहला अक्षर साध्य-आधारिका का और दूसरा अक्षर पक्ष-आधारिका का द्योतक है :

| | | | |
|---|---|---|---|
| अ अ | ए अ | इ अ | ओ अ |
| अ ए | ए ए | इ ए | ओ ए |
| अ इ | ए इ | इ इ | ओ इ |
| अ ओ | ए ओ | इ ओ | ओ ओ |

इन विन्यासों में से ए ए, ए ओ, ओ ए तथा ओ ओ से नियम 4 के अनुसार कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता। उपनियम (1) के अनुसार इ इ, इ ओ तथा ओ इ से कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता। उपनियम (3) के अनुसार इ ए से भी निष्कर्ष नहीं निकल सकता। आधारिकाओं के जो विन्यास शेष बचे वे निम्नलिखित आठ विन्यास हैं :

अ अ, अ ए, अ इ, अ ओ, ए अ, ए इ, इ अ, ओ अ

आधारिकाओं के इन आठ जोड़ों से किसी न किसी आकृति में वैध निष्कर्ष निकल सकता है। लेकिन प्रत्येक आकृति में इन सबसे वैध निष्कर्ष निकल सकता हो ऐसा नहीं है। इसलिए प्रत्येक आकृति के वैध विन्यासों का अलग-अलग निश्चय करना आवश्यक है।

**प्रथमाकृति के वैध विन्यास**

प्रथमाकृति का आकार इस प्रकार है :
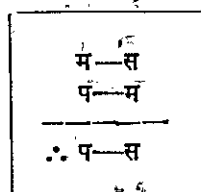
प्रथमाकृति की वैधता के दो उपनियम हैं :

**उपनियम 1.1.** पक्ष-आधारिका विधानात्मक होनी चाहिये।

**उपपत्ति** (proof) : यदि पक्ष-आधारिका निषेधात्मक हो, तो निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा (नियम 5)। निष्कर्ष निषेधात्मक होने पर साध्य पद (स) व्याप्त होगा और वह नियम (3) के अनुसार साध्य-आधारिका में भी व्याप्त होना चाहिये अन्यथा अवैध साध्य का दोष होगा। साध्य-आधारिका में साध्य पद व्याप्त तभी होगा, जब वह निषेधात्मक हो। लेकिन साध्य-आधारिका के निषेधात्मक होने पर दोनों आधारिकाएँ निषेधात्मक हो जायेंगी और नियम (4) के अनुसार उनसे कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि प्रथमाकृति में पक्ष-आधारिका निषेधात्मक नहीं हो सकती अर्थात् वह विधानात्मक होनी चाहिये।

**उपनियम** 1.2. साध्य-आधारिका सर्वव्यापी होनी चाहिये।

**उपपत्ति** : क्योंकि प्रथमाकृति में पक्ष-आधारिका विधानात्मक होगी, इसलिए मध्यपद पक्ष-आधारिका में व्याप्त नहीं हो सकता और वह साध्य-आधारिका में तभी व्याप्त हो सकता है, जब साध्य-आधारिका सर्वव्यापी हो। इसलिए, अव्याप्त मध्यपद के दोष से बचने के लिए साध्य-आधारिका का सर्वव्यापी होना आवश्यक है।

उपनियम (1.1) के आधार पर अ ए, अ ओ, अवैध हो जाते हैं। उपनियम (1.2) के अनुसार इ अ तथा ओ अ अवैध सिद्ध हो जाते हैं। केवल अ अ, अ इ, ए अ तथा ए इ से ही वैध निष्कर्ष निकल सकता है। इस प्रकार प्रथमाकृति में निम्नलिखित छः वैध विन्यास बनते हैं :—

**विन्यास 1.1**

| अ अ अ | "बारबरा" (Barbara)

सब म स हैं (अ)।
सब प म हैं (अ)।
∴ सब प स हैं (अ)।

**विन्यास 1.2**

| अ अ इ |

सब म स हैं (अ)।
सब प म हैं (अ)।
कुछ प स हैं (इ)।

**विन्यास 1.3**

| अ इ इ | डराई (Darii)

सब म स हैं (अ)।
कुछ प म हैं (इ)।
∴ कुछ प स हैं (इ)।

**विन्यास 1.4**

| ए अ ए | कैलरेण्ट (Celarent)

कोई म स नहीं है (अ)।
सब प म हैं (अ)।
∴ कोई प स नहीं है (ए)।

**विन्यास 1.5**

| ए अ ओ |

कोई म स नहीं है।
सब प म हैं।
∴ कुछ प स नहीं हैं।

**विन्यास 1.6**

| ए इ ओ | फेरियो (Feriod)

कोई म स नहीं है (ए)।
कुछ प म हैं (इ)।
∴ कुछ प स नहीं हैं (ओ)।

विशेष टिप्पणी :

प्रथमाकृति के अ अ इ तथा ए अ ओ विन्यास निर्बलीकृत न्याय-वाक्य का रूप हैं। ये परम्परागत तर्कशास्त्र के नियमों के अनुसार वैध हैं। लेकिन आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार अवैध हैं। सत्तावाचक मान्यता के साथ ही ये विन्यास वैध बनते हैं।

**द्वितीयाकृति के वैध विन्यास**

द्वितीयाकृति का आकार :

| |
|---|
| स—म |
| प—म |
| ∴ प—स |

**द्वितीयाकृति के उपनियम**

**उपनियम 2.1.** एक आधारिका निषेधात्मक और दूसरी विधानात्मक होनी चाहिये।

**उपपत्ति :** दोनों निषेधात्मक-आधारिकाओं से कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता (नियम 4)। यदि द्वितीयाकृति में दोनों आधारिकाएँ विधानात्मक हों तो मध्यपद अव्याप्त होगा। मध्यपद को व्याप्त बनाने के लिए एक आधारिका निषेधात्मक होनी चाहिये।

**उपनियम 2.2.** साध्य-आधारिका सर्वव्यापी होनी चाहिये।

**उपपत्ति :** क्योंकि द्वितीयाकृति में एक आधारिका का निषेधात्मक होना आवश्यक है, इसलिए नियम (5) के अनुसार निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा। इस प्रकार निष्कर्ष में साध्य पद व्याप्त होगा और वह साध्य-आधारिका में तभी व्याप्त हो सकता है जब साध्य आधारिका सर्वव्यापी हो।

उपनियम (2.1) के अनुसार अ अ तथा अ इ आधारिकाओं से कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता। उपनियम (2.2) के अनुसार इ अ तथा ओ अ आधारिकाओं से कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता। इस आकृति में अ ए, अ ओ, ए अ तथा ए इ आधारिकाओं से ही वैध निष्कर्ष निकल सकते हैं। इस प्रकार, द्वितीयाकृति में निम्नलिखित छः विन्यास वैध बनते हैं :

**विन्यास 2.1**

| अ ए ए | कमेस्ट्रेस (Camestres)

सब स म हैं (अ)।
कोई प म नहीं है (ए)।
∴ कोई प स नहीं है (ए)।

**विन्यास 2.2**

| अ ए ओ |

सब स म हैं (अ)।
कोई प म नहीं है (ए)।
∴ कुछ प स नहीं हैं (ओ)।

विन्यास 2.3

| अ ओ ओ | बरोको (Baroco)

सब स म हैं (अ)।
कुछ प म नहीं हैं (ओ)।
∴ कुछ प स नहीं हैं (ओ)।

विन्यास 2.4

| ए अ ए | केसरे (Cesare)

कोई स म नहीं हैं (ए)।
सब प म हैं (अ)।
∴ कोई प स नहीं हैं (ए)।

विन्यास 2.5

| ए अ ओ |

कोई स म नहीं है (ए)।
सब प म हैं (अ)।
∴ कुछ प स नहीं हैं (ओ)।

विन्यास 2.6

| ए इ ओ | फेस्टिनों (Festino)

कोई स म नहीं है (ए)।
कुछ प म हैं (इ)।
∴ कुछ प म नहीं हैं (ओ)।

टिप्पणी : विन्यास (2.2) अ ए ओ तथा विन्यास (2.5) ए अ ओ निर्बलीकृत न्याय-वाक्य के रूप हैं क्योंकि इनमें सर्वव्यापी निष्कर्ष (ए) वैध होने पर भी अंशव्यापी निष्कर्ष (ओ) निकाला गया है।

**तृतीयाकृति के विशेष उपनियम और वैध विन्यास**

तृतीयाकृति का आकार :
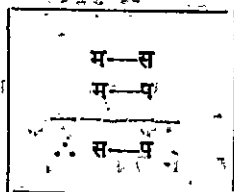
**उपनियम 3.1.** पक्ष-आधारिका विधानात्मक होनी चाहिये।

**उपपत्ति :** यदि पक्ष-आधारिका निषेधात्मक हो तो निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा (नियम 5), और साध्यपद निष्कर्ष में व्याप्त होगा। यदि साध्यपद निष्कर्ष में व्याप्त है, तो वह साध्य आधारिका में भी व्याप्त होना चाहिये (नियम 3)। साध्यपद साध्य-आधारिका में तभी व्याप्त हो सकता है, जब वह निषेधात्मक हो। यदि पक्ष-आधारिका के निषेधात्मक होने के साथ-साथ साध्य-आधारिका भी निषेधात्मक हो तो कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता। इस प्रकार तृतीयाकृति में पक्ष-आधारिका विधानात्मक होनी चाहिये।

**उपनियम 3.2.** निष्कर्ष अंशव्यापी होना चाहिये।

**उपपत्ति :** क्योंकि तृतीयाकृति में पक्ष-आधारिका के विधानात्मक होने के कारण पक्ष पद पक्ष-आधारिका में अव्याप्त होता है, इसलिए पक्ष पद निष्कर्ष में भी अव्याप्त होना चाहिये, और वह तभी हो सकता है जब निष्कर्ष अंशव्यापी हो।

उपनियम (3.1) के अनुसार अ ए तथा अ ओ से तो कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता। शेष अ अ, अ इ, ए अ, ए ए, इ अ तथा ओ अ से उपनियम (3·2) के अनुसार निम्नलिखित छः वैध विन्यास बनते हैं :

**विन्यास 3.1**

| अ अ इ | दारप्ती (Darapti)

सब म स हैं (अ)।
सब म प हैं (अ)।
∴ कुछ प स हैं (इ)।

**विन्यास 3.2**

| अ इ इ | डाटिसि (Datisi)

सब म स हैं (अ)।
कुछ म प हैं (इ)।
∴ कुछ प स हैं (इ)।

**विन्यास 3.3**

| ए अ ओ | फैलप्टन (Felapton)

कोई म स नहीं है (ए)।
सब म प हैं (अ)।
∴ कुछ प स नहीं हैं (ओ)।

**विन्यास 3.4**

| ए इ ओ | फैरिसन (Ferison)

कोई म स नहीं है (ए)।
कुछ म प है (इ)।
∴ कुछ प स नहीं हैं (ओ)।

**विन्यास 3.5**

| इ अ इ | डिसामिसा (Disamis)

कुछ म स हैं (इ)।
सब म प हैं (अ)।
∴ कुछ प स हैं (इ)।

**विन्यास 3.6**

| ओ अ ओ | बोकार्डो (Bocardo)

कुछ म स नहीं हैं (ओ)।
सब म प हैं (अ)।
∴ कुछ प स नहीं हैं (ओ)।

**टिप्पणी :** विन्यास (3.1) अ अ इ (दारप्ती) तथा विन्यास (3.3) ए अ ओ (फैलप्टन) सबलीकृत न्याय-वाक्य के रूप हैं क्योंकि इनमें एक आधारिका आवश्यकता से अधिक सबल होती है। यदि विन्यास (3.1) में किसी एक आधारिका को इ रूप में रखा जाये, तब भी उससे इ निष्कर्ष वैध होगा। इसी प्रकार विन्यास (3.3) में साध्य-आधारिका ए के स्थान पर ओ या पक्ष-आधारिका अ के स्थान पर इ होता तब भी उससे ओ निष्कर्ष वैध होता। ये विन्यास सत्तावाचक मान्यता के साथ ही वैध बनते हैं।

सबलीकृत न्याय-वाक्य और निर्बलीकृत न्याय-वाक्य दोनों में आधारिकाएँ सर्वव्यापी होती हैं और निष्कर्ष दोनों में अंशव्यापी होता है। लेकिन इनमें अन्तर यह है कि जहाँ निर्बलीकृत न्याय-वाक्य में सर्वव्यापी निष्कर्ष वैध होते हुए भी अंशव्यापी निष्कर्ष निकाला गया होता है वहाँ सबलीकृत न्याय-वाक्य में सर्वव्यापी निष्कर्ष वैध हो ही नहीं सकता। प्रथमाकृति में अ अ इ निर्बलीकृत न्याय-वाक्य का रूप है तो तृतीयाकृति में अ अ इ सबलीकृत न्याय-वाक्य का रूप है।

**चतुर्थाकृति के विशेष उपनियम तथा वैध विन्यास**

चतुर्थाकृति का आकार निम्नलिखित है :

स—म
म—प
———
∴ प—स

**चतुर्थाकृति के उपनियम**

**उपनियम 4.1.** यदि साध्य-आधारिका विधानात्मक हो तो पक्ष-आधारिका सर्वव्यापी होनी चाहिये।

**उपपत्ति :** यदि साध्य-आधारिका विधानात्मक है, तो इसका विधेय पद, अर्थात् मध्य पद अव्याप्त होगा। इसलिए, मध्य पद को पक्ष-आधारिका में व्याप्त करने के लिए पक्ष-आधारिका सर्वव्यापी होनी चाहिये।

**उपनियम 4.2.** यदि दोनों आधारिकाओं में से कोई भी निषेधात्मक हो तो साध्य-आधारिका सर्वव्यापी होनी चाहिये।

**उपपत्ति :** यदि एक भी आधारिका निषेधात्मक है तो निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा और साध्य पद निष्कर्ष में व्याप्त होगा। क्योंकि साध्य पद निष्कर्ष में व्याप्त होगा, इसलिए वह साध्य-आधारिका में भी व्याप्त होना चाहिये और वह साध्य-आधारिका में व्याप्त तभी हो सकता है, जब साध्य-आधारिका सर्वव्यापी हो।

**उपनियम 4.3.** यदि पक्ष-आधारिका विधानात्मक हो तो निष्कर्ष अंशव्यापी होना चाहिये।

**उपपत्ति :** यदि पक्ष-आधारिका विधानात्मक है, तो उसका विधेय पद अर्थात् पक्ष पद अव्याप्त होगा और वह निष्कर्ष में भी अव्याप्त होना चाहिये (नियम 4), अन्यथा अवैध पक्ष का दोष होगा। पक्ष पद निष्कर्ष में अव्याप्त तभी हो सकता है, जब वह अंशव्यापी हो। इसलिए पक्ष आधारिका के विधानात्मक होने पर अवैध पक्ष के दोष से बचने के लिए निष्कर्ष का अंशव्यापी होना आवश्यक है।

**चतुर्थाकृति के वैध विन्यास**

उपनियम (4.1) के अनुसार आ इ तथा अ ओ से कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता उपनियम (4.2) के अनुसार ओ अ से भी निष्कर्ष निकालना वैध नहीं होगा। अब हमारे पास अ अ, अ ए, इ अ, ए अ, तथा ए इ से वैध निष्कर्ष निकालने की सम्भावना शेष है। उपनियम (4.3) को ध्यान में रखते हुए इनसे निम्नलिखित छः वैध विन्यास बनते हैं

**विन्यास 4.1**

| अ अ इ | ब्रामनटिप (Bramantip)

सब स म हैं (अ)।
सब म प हैं (अ)।
∴ कुछ प स हैं (इ)।

**विन्यास 4.2**

| अ ए ए | कैमेनेस (Camenes)

सब स म हैं (अ)।
कोई म प नहीं है (ए)।
∴ कोई प स नहीं है (ए)।

**विन्यास 4.3**

| अ ए ओ |

सब स म हैं (अ)।
कोई म प नहीं है (ए)।
∴ कुछ प स नहीं हैं (ओ)।

**विन्यास 4.4**

| ए अ ओ | फेसपो (Fesapo)

कोई स म नहीं है (ए)।
सब म प हैं (अ)।
∴ कुछ प स नहीं हैं (ओ)।

**विन्यास 4.5**

| इ अ इ | डिमारिस (Dimaris)

कुछ स म हैं (इ)।
सब म प हैं (अ)।
∴ कुछ प स हैं (इ)।

**विन्यास 4.6**

| ए इ ओ | फैरिसन (Ferison)

कोई स म नहीं है (ए)।
कुछ म प हैं (इ)।
∴ कुछ प स नहीं हैं (ओ)।

इन विन्यासों में से विन्यास (4.3) अर्थात् अ ए ओ निर्बलीकृत न्याय-वाक्य का आकार है तथा विन्यास (4.1) अर्थात् अ अ इ तथा विन्यास (4.4), ए अ ओ सबलीकृत न्याय-वाक्य के आकार हैं। ये विन्यास सत्तावाचक मान्यता के साथ ही वैध हैं।

### अभ्यास

1. प्रथमाकृति के उपनियमों का कथन करो और उन्हें सिद्ध करो।
2. सिद्ध करो कि अ अ अ विन्यास प्रथमाकृति में ही वैध हो सकता है।
3. प्रथमाकृति में अ अ इ विन्यास को निर्बलीकृत विन्यास कहेंगे, अथवा सबलीकृत। क्या यह वैध है ? परम्परागत तथा आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार इस प्रश्न का विवेचन करें।
4. द्वितीयाकृति के उपनियमों का कथन करें तथा उन्हें सिद्ध करें।
5. सिद्ध करो कि द्वितीयाकृति में निष्कर्ष निषेधात्मक ही होगा।
6. तृतीयाकृति के उपनियमों का कथन करें तथा उन्हें सिद्ध करें।
7. तृतीयाकृति में अ अ इ विन्यास को निर्बलीकृत विन्यास कहेंगे अथवा सबलीकृत। इसकी वैधता पर टिप्पणी करो।
8. चतुर्थाकृति के उपनियमों का कथन करो तथा उन्हें सिद्ध करो।
9. चतुर्थाकृति में अ ए ओ, अ अ इ तथा ए अ ओ विन्यासों में से किसे निर्बलीकृत तथा किसे सबलीकृत कहेंगे। इनकी वैधता पर टिप्पणी लिखो।

10. क्या इ अ इ विन्यास किसी आकृति में वैध हो सकता है ? जिस आकृति में तुम इसे वैध समझते हो, उस आकृति में इसकी वैधता का तार्किक आधार स्पष्ट करो।

11. निम्नलिखित विन्यास किन-किन आकृतियों में वैध हैं तथा किन-किन आकृतियों में अवैध हैं ? प्रमाण सहित व्याख्या करो।

ए अ ए, अ ए ए, ओ अ ओ, ए इ ओ।

12. निर्बलीकृत न्याय-वाक्य तथा सबलीकृत न्याय-वाक्य से तुम क्या समझते हो ? इनके उदाहरण दो तथा इनकी वैधता पर टिप्पणी करो।

# 11

# वेन आकृतियों से न्याय-वाक्य का परीक्षण

## 1. न्याय-वाक्य को प्रकट करने वाले वेन आरेख का मानक रूप

हम यह देख चुके हैं कि वेन आरेखों द्वारा वर्ग सम्बन्धी वाक्यों को सरलता से चित्रित किया जा सकता है। निरुपाधिक न्याय-वाक्य में प्रयुक्त वाक्य भी वर्ग सम्बन्धी होते हैं। इसलिए न्याय-वाक्य को भी वेन आरेखों से चित्रित किया जा सकता है। न्याय-वाक्य तीन पदों का सम्बन्ध प्रकट करता है और ये पद वर्गवाची होते हैं। इसलिए, न्याय-वाक्य को वेन आरेखों में चित्रित करने के लिए तीन वृत्तों को इस प्रकार शृंखलाबद्ध किया जाता है कि प्रत्येक वृत्त अन्य दो को काटता हो। न्याय-वाक्य को चित्रित करने वाले वेन आरेख का मानक रूप नीचे दिया है :

आरेख 38
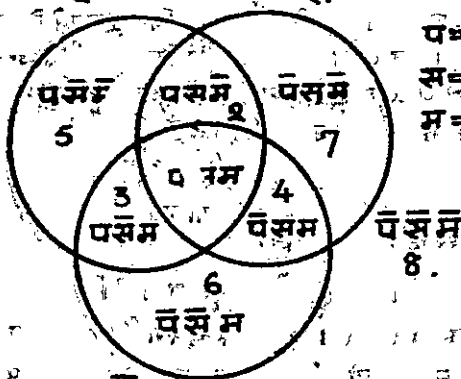
प = पक्षपद
स = साध्यपद
म = मध्यपद

जब हम तीन वर्गों प, स, म के सम्बन्ध की चर्चा करते हैं, तो इस चर्चा में उनके पूरक वर्ग $\bar{प}$, $\bar{स}$, $\bar{म}$ के सम्बन्ध की चर्चा भी शामिल होती है। प, स, म और उनके पूरक वर्ग $\bar{प}$, $\bar{स}$, $\bar{म}$ के मेल से आठ संयुक्त वर्ग बनेंगे जो इस प्रकार हैं :

| | | | |
|---|---|---|---|
| प स म | प स $\bar{म}$ | प $\bar{स}$ म | $\bar{प}$ स म |
| प $\bar{स}$ $\bar{म}$ | $\bar{प}$ $\bar{स}$ म | $\bar{प}$ स $\bar{म}$ | $\bar{प}$ $\bar{स}$ $\bar{म}$ |

उपर्युक्त वेन आरेख के भिन्न-भिन्न कोष्ठों में ये आठों संयुक्त वर्ग दिखाये गये हैं।

## 2. वेन आरेख द्वारा न्याय-वाक्य की परीक्षा का नियम

न्याय- वाक्य की वैधता के सम्बन्ध में यह सामान्य नियम है कि वह न्याय-वाक्य वैध है जिसका निष्कर्ष आधारिकाओं में निहित हो। इस सामान्य नियम के अनुरूप वेन आरेख द्वारा न्याय-वाक्य की वैधता का नियम इस प्रकार है : यदि न्याय-वाक्य की दोनों आधारिकाओं को वेन आरेख में चित्रित करने से निष्कर्ष का चित्रण हो जाता हो तो वह वैध है अन्यथा अवैध है।

इस प्रकार वेन आरेख द्वारा न्याय-वाक्य की परीक्षा करने के लिए वेन आरेख के मानक रूप में पहले एक-एक करके दोनों आधारिकाओं को चित्रित किया जाता है। जिस प्रकार एक स्वतन्त्र निरुपाधिक वाक्य का वेन आरेख में चित्रण किया जाता है, उसी प्रकार एक आधारिका का भी चित्रण किया जाता है। अन्तर केवल इतना है कि एक स्वतन्त्र निरुपाधिक वाक्य को दो वृत्तों के वेन आरेख में चित्रित करते हैं और न्याय-वाक्य की एक आधारिका को तीन वृत्तों वाले आरेख में चित्रित करते हैं। लेकिन तीन वृत्तों वाले आरेख में भी एक आधारिका को चित्रित करते समय उन्हीं दो वृत्तों पर ध्यान देते हैं, जिनसे आधारिका का सम्बन्ध है।

## 3. सर्वव्यापी आधारिकाओं का वेन आरेख में चित्रण

हम यह जानते हैं कि सर्वव्यापी वाक्य को वेन आरेख में चित्रित करने के लिए छायांकन का प्रयोग किया जाता है और अंशव्यापी वाक्य को चित्रित करने के लिए × लिखने का प्रयोग किया जाता है। जब दोनों आधारिकाएँ सर्वव्यापी हों तो उनमें से किसी को भी पहले छायांकित किया जा सकता है। आगे हम प्रथमाकृति के अ अ अ विन्यास के एक न्याय-वाक्य की वेन आरेख द्वारा परीक्षा दिखाते हैं :

**उदाहरण 1.**

| | आकार | बीजगणित की भाषा में |
|---|---|---|
| सब संयमी सन्तोषी होते हैं। | सब म स हैं। | म $\bar{स}$ = 0 |
| सब तपस्वी संयमी होते हैं। | सब प म हैं। | प $\bar{म}$ = 0 |
| ∴ सब तपस्वी सन्तोषी होते हैं। | ∴ सब प स हैं। | प $\bar{स}$ = 0 |

इस युक्ति को वेन-आरेख में चित्रित करने के लिए पहले 'तपस्वी' 'सन्तोषी' तथा 'संयमी' वर्गों के लिए अलग-अलग वृत्त का प्रयोग करके तीन वृत्तों का शृंखलाबद्ध आरेख बनाते हैं। यह नीचे आरेख (39) में दर्शाया है :

आरेख 39.
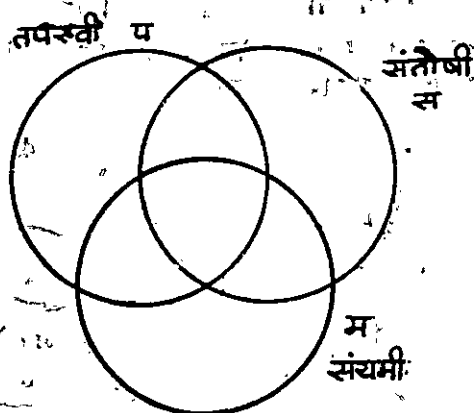
आरेख (39) में दोनों आधारिकाओं को चित्रित करना है। पहले साध्य-आधारिका को, उसके बाद पक्ष-आधारिका को चित्रित करते हैं।* यदि साध्य-आधारिका को दो वृत्तों वाले वेन आरेख में चित्रित करते तो उसके म स̄ भाग को छायांकित करते। लेकिन यहाँ इसे तीन वृत्तों वाले आरेख में प्रकट करना है। तीन वृत्तों वाले आरेख में इसका चित्रण करने के लिए इसके प स म और प̄ स̄ म भागों को छायांकित करना होगा। आरेख (40) और आरेख (41) की तुलना से यह स्पष्ट हो जायेगा।

आरेख 40. आरेख 41
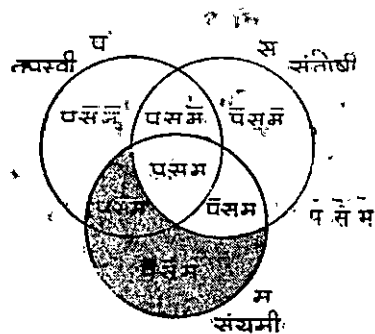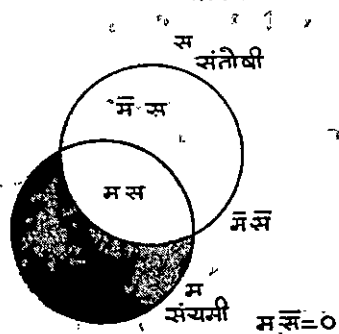
सब संयमी सन्तोषी हैं।

*यह कोई आवश्यक नियम नहीं है। पहले पक्ष-आधारिका को भी चित्रित किया जा सकता है।

तीन वृत्तों वाले आरेख में साध्य-आधारिका का चित्रण करने के बाद पक्ष-आधारिका का चित्रण करना है। पक्ष-आधारिका का आकार है : प म̄=0।

यदि इसे दो वृत्तों के आरेख में चित्रित करते तो उसके प म̄ भाग को छायांकित करते (देखिये आरेख 42)। तीन वृत्तों वाले आरेख में इसे चित्रित करने के लिए, उसके प स̄ म̄ तथा प स म̄ भागों को छायांकित करना होगा। आरेख (43) में दोनों आधारिकाओं का चित्रण छायांकन द्वारा दिखाया गया है :
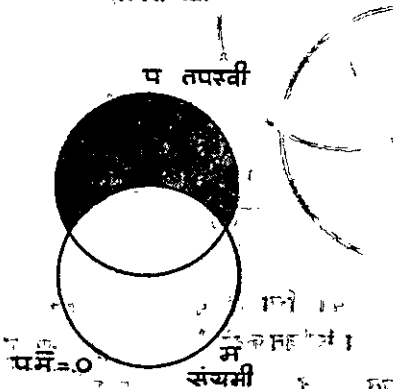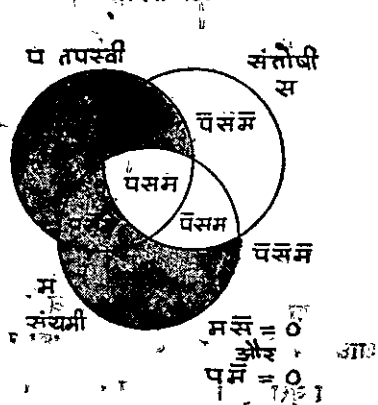
इस प्रकार दोनों आधारिकाओं को वेन आरेख में चित्रित करने के बाद यह देखना है कि क्या उस आरेख में निष्कर्ष भी चित्रित हो चुका है या नहीं। 'सब तपस्वी सन्तोषी होते हैं' निष्कर्ष है। सांकेतिक भाषा में इसका रूप है : प स̄=0। इसे यदि प और स दो वृत्तों के श्रृंखलाबद्ध आरेख में चित्रित करें तो प स̄ भाग को छायांकित करना होगा। और यदि इसे तीन वृत्तों के आरेख में चित्रित करें तो प स̄ म और प स̄ म̄ भागों को छायांकित करना होगा। क्योंकि ये भाग आरेख (43) में आधारिकाओं को छायांकित करने से ही छायांकित हो चुके हैं, इसलिए यह वैध न्याय-वाक्य है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि केवल यही न्याय-वाक्य वैध नहीं है, अपितु इस आकार का अर्थात् प्रथमाकृति के अ अ अ विन्यास का प्रत्येक न्याय-वाक्य वैध होगा।

## 4. एक अवैध न्याय-वाक्य का वेन आरेख द्वारा परीक्षण

अब हम एक ऐसे न्याय-वाक्य का वेन आरेख द्वारा परीक्षण करते हैं जिसके बारे में हम पिछले अध्याय में बताये हुए नियमों के आधार पर यह जानते हैं कि वह अवैध है।

**उदाहरण 2.** सब घोड़े चौपाये हैं।
सब हाथी चौपाये हैं।
∴ सब हाथी घोड़े हैं।

हाथी=प, घोड़े=स, चौपाये=म

साध्य-आधारिका का आकार : स $\overline{म}$=0

पक्ष-आधारिका का आकार : प $\overline{म}$=0

इन दोनों आधारिकाओं के चित्रण का क्रम आरेख (44) तथा (45) में दिखाया है।
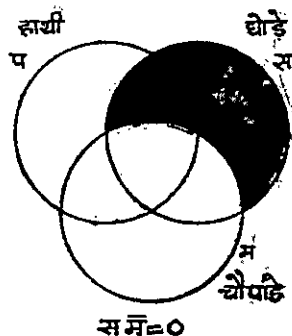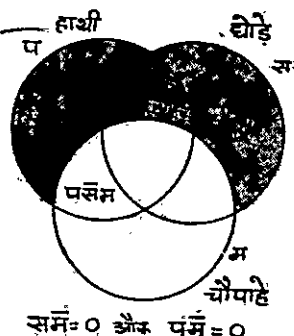
आरेख (45) को देखने से पता चलता है कि इसके प स $\overline{म}$ भाग को दो बार छायांकित किया है, एक बार साध्य-आधारिका को छायांकित करते समय और दूसरी बार पक्ष-आधारिका को छायांकित करते समय। इस प्रकार एक भाग को दो बार छायांकित करना उपयोगी है, यद्यपि सैद्धान्तिक दृष्टि से आवश्यक नहीं है। क्या आरेख (45) में निष्कर्ष अर्थात् "सब हाथी घोड़े हैं" भी चित्रित हुआ है? इसका सांकेतिक भाषा में रूप है : प $\overline{स}$=0। इसे यदि प स और म वृत्तों की शृंखला में चित्रित करते तो उसके प $\overline{स}$ $\overline{म}$ और प $\overline{स}$ म भागों को छायांकित करना होता। क्योंकि आरेख (45) में प $\overline{स}$ म भाग छायांकित नहीं है, इसलिए स्पष्ट है कि इसमें निष्कर्ष का चित्रण नहीं हुआ है और इसलिए यह न्याय-वाक्य अवैध है।

## 5. अंशव्यापी आधारिका का वेन आरेख में चित्रण

हम यह जानते हैं कि अंशव्यापी वाक्य का वेन आरेख में चित्रण '×' लिखकर किया जाता है। यदि न्याय-वाक्य की एक आधारिका सर्वव्यापी वाक्य हो और दूसरी अंशव्यापी वाक्य हो तो उनके सम्बन्ध में यह नियम है कि सर्वव्यापी वाक्य का चित्रण करने के बाद अंशव्यापी वाक्य का चित्रण किया जाये।

उदाहरण 3. सब वकील बी० ए० पास होते हैं ।
कुछ धनी लोग वकील होते हैं
∴ कुछ धनी लोग बी० ए० पास होते हैं ।

इस न्याय-वक्य की साध्य आधारिका का चित्रण पहले आरेख (46) में दिखाया है और फिर आरेख (47) में दोनों आधारिकाओं का चित्रण दिखाया है ।

आरेख 46.
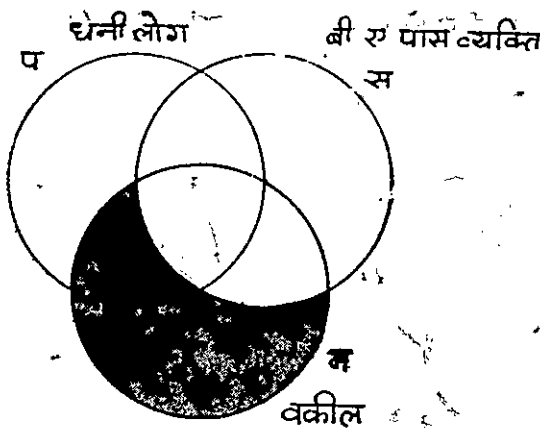
सब वकील बी० ए० पास होते हैं ।
साध्य वाक्य का सांकेतिक रूप : म $\bar{स}$ = 0

आरेख 47.
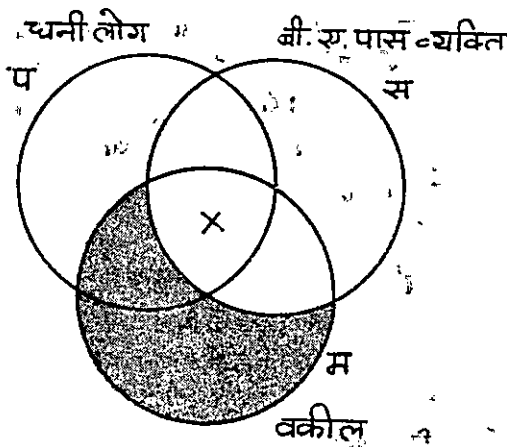
सब वकील-बी० ए० पास होते हैं ।
और
कुछ धनी लोग वकील होते हैं ।
सांकेतिक रूप में : म $\bar{स}$ = 0
प म ≠ 0

यदि हम प म≠0 को पहले चित्रित करें, तो यह निश्चित नहीं कर सकते कि हमने '×' प स̄ म में लगाना है या प स म में। लेकिन पहले "म स̄=0" को छायांकन द्वारा चित्रित करने के बाद प म≠0 को चित्रित करने में कोई कठिनाई नहीं होती क्योंकि प स̄ म भाग तो पहले से छायांकित हो चुका होता है, उसमें तो '×' लिखा ही नहीं जा सकता। केवल प स म भाग ही शेष रहता है जिसमें '×' लिखकर प म≠0 को चित्रित किया जा सकता है।

क्या आरेख (47) में निष्कर्ष अर्थात् "कुछ धनी लोग बी० ए० पास होते हैं" का चित्रण हुआ है ? निष्कर्ष का सांकेतिक रूप है : 'प स≠0'। इसका चित्रण आरेख (47) में हो चुका है। इसलिए यह वैध न्याय-वाक्य है।

## 6. अंशव्यापी आधारिका को चित्रित करते समय '×' लिखने के बारे में नियम

यदि यह दिखायी दे कि जिस क्षेत्र में '×' लिखना है, उसके दो विभाग हैं तो उनमें से किसी भी एक विभाग में '×' न लिखकर उनकी विभाजक रेखा पर '×' लिखना चाहिये। निम्नलिखित न्याय-वाक्य की आधारिकाओं को चित्रित करने से इस नियम का स्वरूप स्पष्ट हो जायेगा।

**उदाहरण 4.** सब दार्शनिक अच्छे विचारक होते हैं।
कुछ कवि अच्छे विचारक होते हैं।
∴ कुछ कवि अच्छे दार्शनिक होते हैं।

साध्यपद=दार्शनिक

पक्षपद=कवि

मध्यपद=अच्छे विचारक

आधारिकाओं का सांकेतिक भाषा में रूप :

स म̄=0=साध्य आधारिका

प म≠0=पक्ष-आधारिका

आरेख 48.
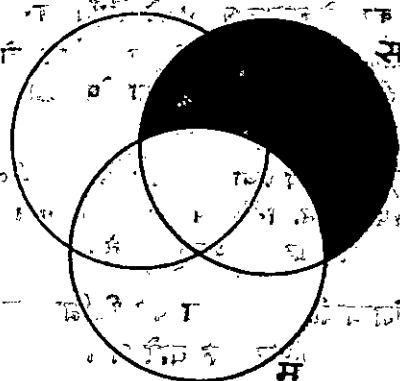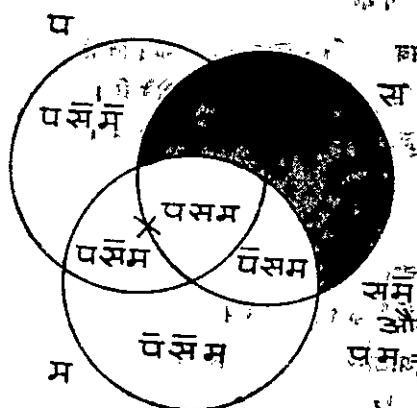
आरेख 49.

आरेख (49) में उपर्युक्त न्याय-वाक्य की दोनों आधारिकाओं का चित्रण दिखाया है। इसमें पक्ष आधारिका का चित्रण विशेष ध्यान से देखना है। पक्ष आधारिका का रूप 'प म≠0' है। इसका चित्रण करने के लिए हमें प और म के वृत्तों पर ही ध्यान देना है और उनके मिले-जुले भाग में कहीं × लगाना है। लेकिन तीन वृत्तों के आरेख (आरेख 49) में इस भाग को स का वृत्त दो भागों अर्थात् प स̄ म और प स म में विभाजित करता है। प म≠0 का निश्चित अर्थ तो केवल इतना ही है कि प म भाग में कम-से-कम एक व्यक्ति है। अब यह व्यक्ति तीन वृत्तों के आरेख में या तो प स̄ म

भाग में होगा या प स म भाग में होगा । लेकिन यह निश्चित नहीं है कि वह व्यक्ति इनमें से किस भाग में है । इसलिए "प म=0" को चित्रित करने के लिए प $\bar{स}$ म या प स म में से किसी एक भाग में या दोनों में × लगाना गलत है । इसे चित्रित करने के लिए प $\bar{स}$ म और प स म की विभाजक रेखा पर × लिखना ही ठीक है । इससे यह संकेत दिया जाता है कि प $\bar{स}$ म या प स म में से कम-से-कम किसी एक में कम-से-कम एक व्यक्ति है ।

## 7. निर्बल तथा सबल न्याय-वाक्यों का चित्रण

निर्बल तथा सबल न्याय-वाक्यों में दोनों आधारिकाएँ सर्वव्यापी होती हैं, लेकिन इनके निष्कर्ष अंशव्यापी होते हैं । निर्बल न्याय-वाक्य में सर्वव्यापी निष्कर्ष वैध होते हुए भी अंशव्यापी निष्कर्ष निकाला जाता है । सबल न्याय-वाक्य में सर्वव्यापी निष्कर्ष वैध हो ही नहीं सकता । लेकिन इसमें एक आधारिका आवश्यकता से अधिक सबल होती है ।

हम यह पहले देख चुके हैं कि ऐसे न्याय-वाक्यों की वैधता तभी सम्भव है, जब उनकी आधारिकाओं का सत्ताबोधक अर्थ लगाया जाये । इसलिए, वेन आरेख में इनका चित्रण करते समय इनका सत्ताबोधक अर्थ लिया जायेगा ।

**निर्बल न्याय-वाक्य की वेन आरेख द्वारा परीक्षा**

उदाहरण 5. सब वामपन्थी पूंजीवाद के विरोधी होते हैं ।
सब साम्यवादी वामपन्थी होते हैं ।
∴ कुछ साम्यवादी पूंजीवाद के विरोधी होते हैं ।

संक्षिप्त चिह्न :

वामपन्थी = व
पूंजीवाद के विरोधी = प
साम्यवादी = स

सांकेतिक भाषा में उपर्युक्त युक्ति की अभिव्यक्ति इस प्रकार होगी :

$व \bar{प} = 0$

और

$स \bar{व} = 0$

$\therefore स प \neq 0$

क्योंकि उपर्युक्त न्याय-वाक्य की वैधता तभी सम्भव है जब इसकी आधारिकाओं को सत्ताबोधक समझा जाये, इसलिए, इसको सांकेतिक भाषा में प्रकट करने के लिए सत्ताबोधक वाक्य भी प्रकट करना होगा, जैसा कि नीचे दिया है :

$व \bar{प} = 0$ और $व \neq 0$

और

$स \bar{व} = 0$ और $स \neq 0$

$\therefore$ $स प \neq 0$

इस युक्ति की दोनों आधारिकाओं को वेन आरेख (50) में चित्रित किया है :

आरेख 50.

$व \bar{प} = 0$ और $व \neq 0$ ।

और

$स \bar{व} = 0$ और $स \neq 0$ ।
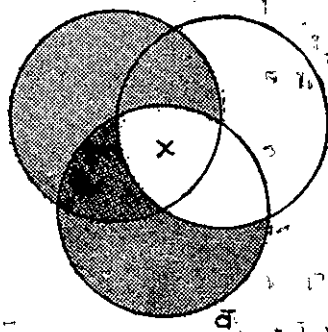
क्योंकि इस आरेख में $स प \neq 0$ अर्थात् निष्कर्ष भी चित्रित है, इसलिए यह वैध है।

**सबल न्याय-वाक्य का वेन आरेख द्वारा चित्रण**

उदाहरण 6. सब सरकारी विद्यालयों के अध्यापक अध्यापक होते हैं।
सब सरकारी विद्यालयों के अध्यापक सरकारी कर्मचारी होते हैं।

$\therefore$ कुछ सरकारी कर्मचारी अध्यापक होते हैं।

न्याय-वाक्य के तीन पद :

सरकारी कर्मचारी = पक्ष पद (प)

अध्यापक = साध्य पद (स)

सरकारी विद्यालयों के अध्यापक = मध्यपद (म)

न्याय-वाक्य का सांकेतिक भाषा में आकार :

म $\overline{स}$=0

और

म $\overline{प}$=0

∴ प स≠0

इस मान्यता के आधार पर कि म पद सत्ताबोधक है उपर्युक्त न्याय-वाक्य की आधारिकाओं का वेन आरेख में चित्रण निम्नलिखित प्रकार से होगा :

आरेख 51.
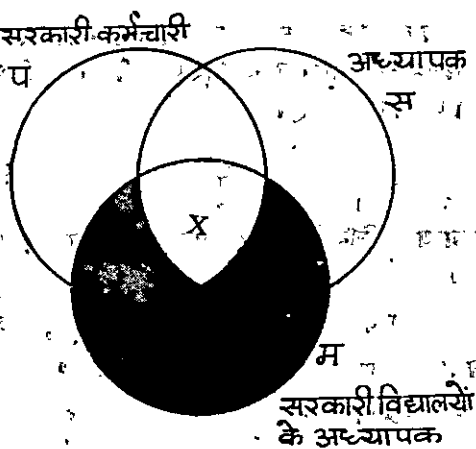
म $\overline{स}$=0 और म $\overline{प}$=0 और म≠0

क्योंकि आरेख (51) में निष्कर्ष अर्थात् प स≠0 भी चित्रित हो गया है, इसलिए यह न्याय-वाक्य वैध है।

संक्षेप :

वेन आरेख द्वारा न्याय-वाक्य का चित्रण किया जा सकता है और उसकी वैधता की परीक्षा की जा सकती है। वेन आरेख द्वारा न्याय-वाक्य की परीक्षा करने के बारे में याद रखने की बातें निम्नलिखित हैं :

1. वर्ग-वाची तीन पदों के लिए तीन वृत्तों को शृंखलाबद्ध करना है।

2. तीन वृत्तों के इस शृंखलाबद्ध आरेख में ऊपर के बायीं ओर के वृत्त को प (पक्ष) दायीं ओर के वृत्त को स (साध्य) और नीचे के वृत्त को म (मध्य) निर्धारित करना है।

3. तीन वृत्तों के इस आरेख में छायांकन अथवा × द्वारा दोनों आधारिकाओं को एक-एक करके चित्रित करना है। यदि आधारिकाओं के चित्रण से ही निष्कर्ष का

चित्रण हो जाता है तो न्याय-वाक्य वैध है और यदि निष्कर्ष का चित्रण आधारिकाओं के चित्रण से नहीं होता तो न्याय-वाक्य अवैध है।

4. यदि दोनों आधारिकाएँ सर्वव्यापी हों, तो किसी भी आधारिका का चित्रण पहले किया जा सकता है लेकिन यदि एक आधारिका अंशव्यापी हो तो सर्वव्यापी आधारिका के चित्रण के बाद ही अंशव्यापी आधारिका का चित्रण करना है।

5. अंशव्यापी आधारिका को तथा सत्ताबोधक मान्यता के साथ सर्वव्यापी आधारिका को चित्रित करते समय यदि आरेख के दो भाग ऐसे हों जो × के सम्भावित क्षेत्र हों तो उन दोनों में से किसी एक में × न लिखकर उनकी विभाजक रेखा पर × लिखना चाहिये।

6. निर्बलीकृत न्याय-वाक्य तथा सबलीकृत न्याय-वाक्य का चित्रण करते समय आधारिकाओं की सत्ताबोधक मान्यता स्वीकार कर ली जाती है क्योंकि ये सत्ताबोधक मान्यता के साथ ही वैध हो सकते हैं।

## अभ्यास

1. न्याय-वाक्य के निम्नलिखित विन्यासों की वैधता की परीक्षा वेन आरेखों द्वारा प्रदर्शित करें।

प्रथमाकृति : अ प प, ए अ अ, ए अ ए, ए ए ए, ए अ ओ

द्वितीयाकृति : अ अ अ, अ ए ए, ए अ ए, ए इ ओ, ओ अ ओ

तृतीयाकृति : अ अ अ, अ ए ए, अ अ इ, ए अ ओ, ए अ ए

चतुर्थाकृति : अ अ अ, अ ए ए, इ अ इ, ओ अ ओ, ए ओ ओ

2. निम्नलिखित न्याय-वाक्यों को बीजगणित की प्रतीकात्मक भाषा में प्रकट करें और वेन आरेखों द्वारा उनकी वैधता की परीक्षा करें :

1. अनुसूचित जातियों के सब विद्यार्थियों का शुल्क माफ होता है।
   हरीचन्द अनुसूचित जाति का विद्यार्थी है।
   ∴ हरीचन्द का शुल्क माफ होगा।

2. क्योंकि अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों का शुल्क माफ होता है और हरीचन्द का शुल्क माफ है, इसलिए हरीचन्द अनुसूचित जाति का विद्यार्थी है।

3. सब वैष्णव हिन्दू हैं।
   कोई ईसाई वैष्णव नहीं है।
   ∴ कोई ईसाई हिन्दू नहीं है।

4. कोई दार्शनिक पूर्ण नहीं होता क्योंकि सब दार्शनिक मनुष्य होते हैं और कोई मनुष्य पूर्ण नहीं होता ।
5. सब स्वार्थी दुखी होते हैं क्योंकि सब स्वार्थी अज्ञानी होते हैं और सब अज्ञानी दुखी होते हैं ।
6. सब राजनीतिज्ञ स्वार्थी होते हैं क्योंकि सब स्वार्थी पदलोलुप होते हैं और सब राजनीतिज्ञ पदलोलुप होते हैं ।
7. सब साम्यवादी देश वियतनाम में अमरीकी बम्बारी की निन्दा करते हैं । भारत भी वियतनाम में अमरीकी बम्बारी की निन्दा करता है । इसलिए, भारत साम्यवादी देश है ।
8. आजकल अधिकांश विद्यार्थी शारीरिक श्रम से बचते हैं, इसलिए वे सच्चे अर्थ में शिक्षित नहीं कहे जा सकते क्योंकि जो शारीरिक श्रम से बचते हैं वे सच्चे अर्थ में शिक्षित नहीं कहे जा सकते ।
9. कोई संन्यासी गृहस्थी नहीं होता । कुछ संन्यासी कर्मयोगी होते हैं । इसलिए, कुछ कर्मयोगी संन्यासी नहीं होते ।
10. कोई महान् व्यक्ति समय व्यर्थ नहीं गँवाता ।
सब महान् व्यक्ति धैर्यवान् होते हैं ।
∴ कोई धैर्यवान् अपना समय व्यर्थ नहीं गँवाता ।

3. अध्याय 10 के दूसरे अभ्यास की युक्तियों की वैधता की परीक्षा वेन आरेख द्वारा करो ।

12

# लुप्तावयव न्याय-वाक्य

(Enthememe)

## 1. लुप्तावयव न्याय-वाक्य का स्वरूप और उसके प्रकार

एक न्याय-वाक्य की तार्किक रचना में तीन पद और तीन ही वाक्य होते हैं। लेकिन साधारण व्यवहार में जो युक्तियां दी जाती हैं, उनमें प्रायः किसी न किसी वाक्य का स्पष्ट कथन करना छोड़ दिया जाता है। वह युक्ति जिसके किसी अंग को लुप्त रखा गया हो लुप्तावयव युक्ति कहलाती है। "राम किसी न किसी दिन अवश्य मरेगा क्योंकि वह पैदा हुआ है" एक लुप्तावयव युक्ति है। इसमें केवल दो वाक्य हैं, लेकिन पद तीन हैं। दोनों वाक्यों को मानक रूप में रखने से तीनों पदों का रूप स्पष्ट हो जाता है।

र प

राम पैदा हुआ व्यक्ति है।

---

र म

∴ राम मरणशील व्यक्ति है।

इस युक्ति में र (राम), प (पैदा हुआ व्यक्ति) और म (मरणशील व्यक्ति) तीन पद हैं। लेकिन इसमें वाक्य केवल दो हैं। यह युक्ति अपने इसी रूप में वैध नहीं मानी जा सकती क्योंकि इसमें पदों की संख्या वाक्यों की संख्या से अधिक है। इस युक्ति की वैधता सिद्ध करने के लिए इसमें तीसरा वाक्य और जोड़ना पड़ेगा। सन्दर्भ से यह स्पष्ट है कि यह तीसरा वाक्य "सब पैदा हुए व्यक्ति मरणशील हैं" होगा।

इस प्रकार लुप्तावयव युक्ति की वैधता सिद्ध करने के लिए उसके लुप्तावयव का निश्चय करके उस युक्ति के सभी अवयवों का स्पष्ट कथन करना आवश्यक है। लुप्तावयव युक्ति का रूप चार प्रकार से बन सकता है :

(1) साध्य-आधारिका के लोप से।

(2) पक्ष-आधारिका के लोप से।

(3) निष्कर्ष के लोप से ।

(4) किन्हीं दो अवयवों के लोप से ।

**लुप्तसाध्य युक्ति**

वह युक्ति जिसमें साध्य-आधारिका का लोप हो लुप्तसाध्य युक्ति कहलाती है ।

उदाहरण 1. (सब हिन्दू पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं।)
सब ब्राह्मण हिन्दू हैं ।
∴ सब ब्राह्मण पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं ।

उदाहरण 2. (कोई शराबी व्यक्ति मन्दिर का पुजारी बनने योग्य नहीं है) ।
राम शराबी है ।
∴ राम मन्दिर का पुजारी बनने योग्य नहीं है ।

**लुप्तपक्ष युक्ति**

जिस युक्ति में पक्ष-आधारिका का लोप हो, वह लुप्तपक्ष युक्ति कहलाती है ।

उदाहरण 3. सत्य के लिए लड़ने वाले सदा विजयी होते हैं ।
अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने वाले भारतीय सत्य के लिए लड़ रहे हैं ।
∴ अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने वाले भारतीय विजयी होंगे ।

उदाहरण 4. मानव मूल्यों में आस्था रखने वाला देश आक्रामक नीति नहीं अपनाता ।
(भारत मानव मूल्यों में आस्था रखने वाला देश है)
∴ भारत आक्रामक नीति नहीं अपना सकता ।

**लुप्तनिष्कर्ष युक्ति**

जिस युक्ति में निष्कर्ष का स्पष्ट कथन किये बिना ही दोनों आधारिकाओं का कथन किया गया हो, वह लुप्तनिष्कर्ष युक्ति कहलाती है ।

उदाहरण 5. धर्मपरायण लोग हिंसा का मार्ग नहीं अपना सकते ।
भारतीय धर्मपरायण लोग हैं ।
(∴ भारतीय हिंसा का मार्ग नहीं अपना सकते ।)

उदाहरण 6. सब जुआरियों का जीवन दुःखमय होता है ।
युधिष्ठर जुआरी थे ।
(∴ युधिष्ठर का जीवन दुःखी था ।)

**एकावयव युक्ति**

जिस युक्ति में केवल एक ही वाक्य का स्पष्ट कथन हो और शेष दो अवयव लुप्त हों उसे एकावयव युक्ति कहते हैं । एकावयव युक्ति का प्रयोग प्रायः संवादों में होता है । वक्ता श्रोता से यह आशा करता है कि सन्दर्भ के अनुसार वह अपने आप

युक्ति के शेष दो अवयवों को समझ गया होगा। एकावयव युक्ति में प्रायः साध्य-आधारिका का कथन होता है और पक्ष-आधारिका और निष्कर्ष को लुप्त रखा जाता है। किसी व्यक्ति की मृत्यु पर उसके निकट सम्बन्धी को सान्त्वना देते समय इतना ही कह दिया जाता है कि मनुष्य तो मरणशील ही है। पक्ष-आधारिका और निष्कर्ष सन्दर्भ से स्पष्ट हो जाते हैं।

## 2. लुप्तावयव युक्ति की परीक्षा

क्योंकि लुप्तावयव युक्ति न्याय-वाक्य का ही रूप है, इसलिए इसकी वैधता की परीक्षा उसी प्रकार से की जा सकती है, जिस प्रकार न्याय-वाक्य की वैधता की परीक्षा होती है। न्याय-वाक्य के नियमों के आधार पर अथवा वेन आरेखों द्वारा लुप्तावयव युक्ति की वैधता की परीक्षा हो सकती है।

लुप्तावयव युक्ति की वैधता की परीक्षा करने के लिए लुप्तावयव का स्पष्ट कथन करना आवश्यक है। लुप्तावयव का रूप प्रायः सन्दर्भ से स्पष्ट हो जाता है और प्रायः उन्हीं अवयवों को लुप्त रखा जाता है जिनके बारे में यह मान लिया जाता है कि श्रोता या पाठक उन से परिचित होगा। लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि एक युक्ति के जिस अवयव को लुप्त रखा गया है वह सर्वविदित हो।

युक्ति देने वाले के साथ न्याय करने के लिए यह आवश्यक है कि लुप्तावयव की पूर्ति ऐसे वाक्य से हो जिससे उस युक्ति का रूप वैध बन सकता हो। जहाँ किसी प्रकार से लुप्तावयव युक्ति को वैध रूप प्रदान नहीं किया जा सकता वहाँ की बात भिन्न है। लुप्तावयव को निर्धारित करने के लिए कोई नियम नहीं है। लेकिन कुछ संकेत दिये जा सकते हैं।

सबसे पहले युक्ति के दिये हुए अवयवों को मानक निरुपाधिक वाक्यों में रखकर उनमें प्रयुक्त पदों का स्वरूप निश्चित करें। हम यह जानते हैं कि एक न्याय-वाक्य में तीन पद होते हैं और प्रत्येक पद दो बार आता है। इसलिए हम यह देखें कि दी हुई युक्ति में कौनसे दो पद ऐसे हैं जिनका केवल एक बार ही प्रयोग हुआ है। जिन दो पदों का प्रयोग एक बार ही हुआ है उन्हीं के मेल से लुप्तावयव का निर्माण करना है। इन दो पदों को उद्देश्य विधेय के रूप में किस प्रकार रखना है और उनके मेल से अ ए इ ओ वाक्य-रूपों में से किस रूप का वाक्य बनाना है इसका निश्चय न्याय-वाक्य की वैधता के नियमों को ध्यान में रखकर किया जा सकता है।

**उदाहरण 7.** आधुनिक शिक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है क्योंकि छात्रों में निराशा बढ़ती जा रही है।

मानक रूप :

( )

आधुनिक शिक्षा प्रणाली (आ) छात्रों में निराशा बढ़ाने वाली शिक्षा प्रणाली (छ) है।

∴ आधुनिक शिक्षा प्रणाली (आ) दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली (द) है।

सांकेतिक रूप में :

( )
आ छ है।
∴ आ द है।

यहाँ यह स्पष्ट है कि जिस वाक्य का निर्माण करना है वह छ और द के मेल से ही होगा। 'द' साध्यपद है। इसलिए लुप्त वाक्य साध्य-आधारिका ही है। क्योंकि निष्कर्ष विधानात्मक है, इसलिए लुप्त-वाक्य भी विधानात्मक मानना आवश्यक है। इस लुप्त-वाक्य में 'छ' (मध्यपद) का व्याप्त होना आवश्यक है और यह तभी हो सकता है, जब लुप्त वाक्य में 'छ' उद्देश्य पद हो और वह अ वाक्य हो। इस प्रकार लुप्त-वाक्य का रूप "सब छ द हैं" बना। युक्ति का पूर्ण-रूप इस प्रकार बना :

(सब छ द हैं।)
आ छ हैं।
∴ आ द हैं।

यह वैध युक्ति है जिसे हम नियमों के आधार पर अथवा वेन आरेख द्वारा दिखा सकते हैं।

**उदाहरण 8.** ज्ञानी सत्य के मार्ग में कभी धैर्य नहीं खोता क्योंकि सत्य का मूल्य जानने वाला सत्य के मार्ग में धैर्य नहीं खो सकता।

मानक रूप :

म स
सत्य का मूल्य जानने वाला कोई व्यक्ति सत्य के मार्ग में धैर्य खोने वाला व्यक्ति नहीं होता।

(सब ज्ञानी सत्य का मूल्य जानने वाले व्यक्ति होते हैं।)
ग स
∴ कोई ज्ञानी सत्य के मार्ग में धैर्य खोने वाला व्यक्ति नहीं होता।

सांकेतिक रूप में :

कोई म स नहीं है।
( )
∴ कोई ग स नहीं है।

इस युक्ति में 'ग' पक्ष तथा 'स' साध्य है। इसलिए, 'म' पद ही मध्यपद होना चाहिये। क्योंकि 'म' और 'ग' का प्रयोग एक बार ही हुआ है, इसलिए इन्हीं के मेल से

लुप्तावयव बनना चाहिये और क्योंकि 'ग' पक्ष है इसलिए लुप्तावयव पक्ष-आधारिका ही होगा। क्योंकि साध्य-आधारिका निषेधात्मक है, इसलिए पक्ष-आधारिका विधानात्मक होगी। क्योंकि निष्कर्ष सर्वव्यापी वाक्य है, इसलिए पक्ष-आधारिका सर्वव्यापी होगी। इस प्रकार लुप्त पक्ष-आधारिका 'सब ज्ञानी सत्य का मूल्य जानने वाले व्यक्ति होते हैं' होगी।

**उदाहरण 9.**

घ ख स
कोई घोड़ा दो खुर वाला नहीं होता क्योंकि कोई घोड़ा सींग वाला नहीं होता।

सांकेतिक रूप में :

कोई घ स नहीं है।
∴ कोई घ ख नहीं है।

इस युक्ति के लुप्तावयव का निश्चय करते समय निम्नलिखित बातें स्पष्ट हैं :

(अ) लुप्त-वाक्य साध्य-वाक्य है और वह स और ख के मेल से बनना चाहिये।
(आ) लुप्त-वाक्य निषेधात्मक नहीं हो सकता।
(इ) लुप्त-वाक्य अंशव्यापी वाक्य नहीं हो सकता।

संक्षेप में हमने लुप्त-वाक्य का निर्माण स और ख के मेल से अ वाक्य के रूप में बनाना है। लेकिन, इस प्रकार दो वाक्य बन सकते हैं : 'सब स ख हैं', और 'सब ख स हैं'। इनमें से पहले वाक्य से युक्ति का अवैध रूप बनता है, लेकिन दूसरे वाक्य से वैध रूप बनता है। यह अन्तर नीचे की दो युक्तियों की तुलना से स्पष्ट हो जायेगा :

| (क) अवैध | (ख) वैध |
|---|---|
| (सब स ख हैं।) | (सब ख स हैं।) |
| कोई घ स नहीं है। | कोई घ स नहीं है। |
| ∴ कोई घ ख नहीं है। | ∴ कोई घ ख नहीं है। |

(क) में अवैध साध्य का दोष है।

इस प्रकार, इस युक्ति की पूर्ति "सब दो खुर वाले पशु सींग वाले पशु होते हैं", (सब ख स हैं) से माननी चाहिये।

**उदाहरण 10.**

ब व ब ह
सब बौद्ध पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं। इसलिए सब बौद्ध हिन्दू हैं।

इस युक्ति के तीन पद हैं :

ब=बौद्ध
व=पुनर्जन्म में विश्वास रखने वाले व्यक्ति
ह=हिन्दू

केवल 'ब' पद अर्थात् पक्ष पद का प्रयोग दो बार हुआ है। इसलिए लुप्त-वाक्य साध्य-आधारिका है, जिसकी पूर्ति 'व' और 'ह' के मेल से होनी है। क्योंकि निष्कर्ष 'अ' वाक्य है, इसलिए साध्य-आधारिका भी अ वाक्य होनी चाहिये। 'व' और 'ह' के मेल से दो अ वाक्य बन सकते हैं।

(क) सब व ह हैं।

(ख) सब ह व हैं।

इनमें से किस से लुप्तावयव की पूर्ति हो ? इन वाक्यों से लुप्तावयव की पूर्ति करने पर युक्ति के दो रूप निम्नलिखित होंगे :

| (क) | | (ख) | |
|---|---|---|---|
| | सब व ह हैं। | | सब ह व हैं। |
| | सब ब व हैं। | | सब ब व हैं। |
| | ∴ सब ब ह हैं। | | ∴ सब ब ह हैं। |

इनमें से (ख) अवैध है और (क) वैध है। (ख) में अव्याप्त मध्य-पद का दोष है लेकिन (क) में प्रयुक्त साध्य-आधारिका (सब पुनर्जन्म में विश्वास करने वाले लोग हिन्दू हैं) स्पष्टतः असत्य है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि या तो यह लुप्तावयव युक्ति अवैध है (ख युक्ति) या इसकी साध्य-आधारिका असत्य है। वही युक्ति मान्य होती है जो वैध हो और जिसकी आधारिकाएँ सत्य हों। इसलिए, उपर्युक्त युक्ति अमान्य है।

क्योंकि लुप्तावयव युक्ति से किसी सत्य बात को स्थापित करने का दावा किया जाता है, इसलिए वह तभी मान्य होगी जब उसकी पूर्ति वैध रूप से सत्य ही लुप्तावयव द्वारा हो सकती हो। यदि उसकी पूर्ति स्पष्टतः असत्य वाक्य से ही होती हो, तो वह अमान्य होगी।

यदि किसी लुप्तावयव युक्ति में चार पद हों, तो अनन्तरानुमान की क्रिया द्वारा उसे तीन पद की युक्ति का रूप प्रदान करके उसकी परीक्षा करनी चाहिये।

उदाहरण 11.

ध व
सदा धर्म की विजय होती है।

स प
इसलिए सत्याग्रह पराजयी नहीं हो सकता।

इस युक्ति में चार पद हैं। लेकिन निष्कर्ष का प्रतिवर्तन करके इसे तीन पदों की युक्ति में बदला जा सकता है। 'सत्याग्रह पराजयी नहीं हो सकता' को प्रतिवर्तन द्वारा 'सब सत्याग्रह विजयी होते हैं' में रूपान्तरित किया जा सकता है। इस युक्ति का पूर्ण रूप इस प्रकार प्रदर्शित हो सकता है :

सब धर्म पर चलने वाले लोग विजयी होते हैं।

सब सत्याग्रह करने वाले धर्म पर चलने वाले होते हैं ।

∴ सब सत्याग्रह करने वाले विजयी होते हैं ।

कुछ लुप्तावयव युक्तियों को किसी प्रकार से वैध रूप प्रदान करना सम्भव नहीं होता । जैसे :

**उदाहरण 12.** सब चोर-बाजारी भ्रष्टाचारी होते हैं ।
सब वोट खरीदने वाले भ्रष्टाचारी होते हैं ।
(∴ )

**उदाहरण 13.** क्योंकि सब मन्त्री वोट खरीदने वाले नहीं होते इसलिए सब मन्त्री भ्रष्टाचारी नहीं होते ।

**मानक रूप में :**

( )

म व

कुछ मन्त्री वोट खरीदने वाले नहीं होते ।

म भ

∴ कुछ मन्त्री भ्रष्टाचारी नहीं होते ।

इन दोनों युक्तियों को किसी प्रकार वैध रूप प्रदान नहीं हो सकता है ।

**संक्षेप :** लुप्तावयव युक्ति वह युक्ति है, जिसका कम-से-कम एक अवयव लुप्त हो । यदि युक्ति की केवल साध्य-आधारिका लुप्त हो, तो वह लुप्तसाध्य युक्ति कहलाती है । जिस युक्ति में पक्ष-आधारिका लुप्त हो, वह लुप्तपक्षयुक्ति कहलाती है । जिस युक्ति का निष्कर्ष लुप्त हो, वह लुप्तनिष्कर्ष युक्ति कहलाती है । जिस युक्ति में केवल एक ही अवयव का कथन हो वह एकावयव युक्ति कहलाती है ।

लुप्तावयव युक्ति की वैधता की परीक्षा पूर्ण न्याय-वाक्य की तरह वेन आरेखों द्वारा अथवा न्याय-वाक्य के नियमों द्वारा की जा सकती है । लुप्तावयव युक्ति की वैधता की परीक्षा करने से पहले उसके लुप्तावयव की पूर्ति करना आवश्यक है । लुप्तावयव की पूर्ति उन दो पदों के मेल से होनी है, जिनका प्रयोग युक्ति में केवल एक बार हुआ है । जहाँ तक हो सके लुप्तावयव की पूर्ति ऐसे वाक्य से करनी चाहिये जिससे युक्ति का वैध रूप बन सके । यदि असत्य वाक्य से ही लुप्तावयव युक्ति की वैधता बनती हो, तो यह उस युक्ति को अमान्य सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हेतु है । यदि लुप्तावयव युक्ति का रूप चार पदों का हो, तो जहाँ सम्भव हो वहाँ उसे अनन्तरानुमान की क्रिया द्वारा तीन पदों वाली युक्ति का रूप प्रदान कर देना चाहिये । कुछ लुप्तावयव युक्तियाँ किसी प्रकार वैध नहीं बनायी जा सकतीं ।

## अभ्यास

1. युक्ति के निम्नलिखित रूपों को पूर्ण तथा वैध रूप प्रदान करें। यदि कहीं ऐसा करना सम्भव न हो, तो उसका कारण स्पष्ट करें :

(क) (                    )
सब म प हैं।
——————————
∴ कुछ प स हैं।

(ख) कुछ म स नहीं हैं।
(                    )
——————————
∴ कुछ प स नहीं हैं।

(ग) सब म स हैं।
(                    )
——————————
∴ कोई प स नहीं है।

(घ) कुछ स म हैं।
(                    )
——————————
∴ कुछ प स हैं।

(ङ) सब स म हैं।
कुछ म प हैं।
——————————
(∴                    )

2. निम्नलिखित लुप्तावयव युक्तियों को पूर्णरूप प्रदान करें और उनकी वैधता की परीक्षा करें :

(क) भाग्य का सहारा लेकर हाथ पर हाथ रखकर बैठने वाला कोई जीवन में सफल नहीं हो सकता क्योंकि उद्योगी ही जीवन में सफल होते हैं।

(ख) सब नेता मरणशील हैं क्योंकि कोई मनुष्य अमर नहीं है।

(ग) मनुष्य के दिन सदा बुरे नहीं होते। इसलिए, उसे निराश नहीं होना चाहिये।

(घ) शहीद भगतसिंह महान् व्यक्ति थे क्योंकि उन्होंने मातृ-भूमि की बलिवेदी पर अपने प्राण न्यौछावर किये।

(ङ) मोहन मुस्तकिल सरकारी कर्मचारी है। इसलिए, उचित कारण के बिना उसे नौकरी से नहीं हटाया जा सकता।

(च) गुरुदेव सिंह बीड़ी-सिगरेट नहीं पीता क्योंकि वह सिख है।

(छ) सुख ही मनुष्य का आदर्श हो सकता है क्योंकि मनुष्य सुख ही चाहता है।

(ज) यह युक्ति वैध नहीं है क्योंकि वही युक्ति वैध युक्ति हो सकती है जिसके निष्कर्ष के सत्य हुए बिना आधारिकाएँ सत्य न हो सकें।

(झ) वैष्णव जन तो वही लोग होते हैं जो दूसरों की पीर जानते हों। लेकिन सब हिन्दू दूसरों की पीर नहीं जानते।

(ञ) समाजवाद के नारे से देश का भला नहीं हो सकता क्योंकि कोरे नारों से क्या भला हो सकता है ?

(ट) बच्चों के मन में परमात्मा निवास करता है, क्योंकि बच्चे मासूम होते हैं।

(ठ) क्रान्ति से ही भारतीय समाज का भला हो सकता है।

# 13

# संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला
(Sorites)

## 1. संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला का स्वरूप

संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला एक ऐसी युक्ति है जो अनेक युक्तियों से मिलकर बनती है और जिसमें केवल अन्तिम युक्ति के निष्कर्ष को छोड़कर अन्य सब युक्तियों के निष्कर्ष लुप्त होते हैं और जिसमें केवल-प्रथम युक्ति को छोड़कर शेष सब युक्तियों की एक आधारिका लुप्त होती है।

**उदाहरण 1.** सब हिन्दू पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं। (1)
सब ब्राह्मण हिन्दू हैं। (2)
सब गौड़ ब्राह्मण ब्राह्मण हैं। (3)

---

∴ सब गौड़ ब्राह्मण पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं।

संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला में दो से अधिक आधारिकाएँ होती हैं। ऊपर का उदाहरण तीन आधारिकाओं वाली युक्ति का रूप है। यह युक्ति दो युक्तियों का संक्षिप्त रूप है। आधारिका (1) और (2) से जो निष्कर्ष निकलता है वह लुप्त रखा गया है। 'सब ब्राह्मण पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं' यह निष्कर्ष पहली दो आधारिकाओं से निकलेगा। अब यह निष्कर्ष दूसरी युक्ति की साध्य-आधारिका बनता है। इस प्रकार उदाहरण (1) का स्पष्ट रूप निम्नलिखित होगा :

प्रथम युक्ति : सब हिन्दू पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं।
सब ब्राह्मण हिन्दू हैं।

---

(∴ सब ब्राह्मण पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं।)

द्वितीय युक्ति : (सब ब्राह्मण पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं।)
सब गौड़ ब्राह्मण ब्राह्मण हैं।

---

∴ सब गौड़ ब्राह्मण पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं।

## 2. संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला के दो रूप गोक्लीनी और अरस्तवी

संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला के दो रूप हैं—गोक्लीनी और अरस्तवी।

**2.1. गोक्लीनी संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला का आकार**

1. सब घ ङ हैं।
2. सब ग घ हैं।
3. सब ख ग हैं।
4. सब क ख हैं।

∴ सब क ङ हैं।

**गोक्लीनी संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला का विस्तृत रूप**

प्रथम युक्ति :
सब घ ङ हैं।
सब ग घ हैं।

(∴ सब ग ङ हैं।)

द्वितीय युक्ति :
(सब ग ङ हैं।)
सब ख ग हैं।

(∴ सब ख ङ हैं।)

तृतीय युक्ति :
(सब ख ङ हैं।)
सब क ख हैं।

∴ सब क ङ हैं।

**2.2. अरस्तवी संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला का आकार**

1. सब क ख हैं।
2. सब ख ग हैं।
3. सब ग घ हैं।
4. सब घ ङ हैं।

∴ सब क ङ हैं।

**अरस्तवी संक्षिप्त प्रगामी तर्कमामाला का विस्तृत रूप**

प्रथम युक्ति :
सब ख ग हैं।
सब क ख हैं।

(∴ सब क ग हैं।)

द्वितीय युक्ति :
सब ग घ हैं।
(सब क ग हैं।)

(∴ सब क घ हैं।)

तृतीय युक्ति :
सब घ ङ हैं।
(सब क घ हैं।)

∴ सब क ङ हैं।

## 3. संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला के गोक्लीनो तथा अरस्तवी रूपों की तुलना

संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला के दोनों रूपों की तुलना करने पर उनमें निम्नलिखित अन्तर स्पष्ट दिखायी देता हैं :

(1) अरस्तवी संक्षिप्त तर्कमाला में निष्कर्ष का उद्देश्य पद प्रथम आधारिका का उद्देश्य होता है और निष्कर्ष का विधेय पद अन्तिम आधारिका का विधेय पद होता है। गोक्लीनी संक्षिप्त तर्कमाला में निष्कर्ष का विधेय पद प्रथम आधारिका का विधेय पद होता है और निष्कर्ष का उद्देश्य पद अन्तिम आधारिका का उद्देश्य पद होता है।

(2) अरस्तवी संक्षिप्त तर्कमाला में प्रत्येक पूर्वगामी आधारिका का विधेय पद उसकी अनुगामी आधारिका का उद्देश्य पद होता है। गोक्लीनी तर्कमाला में पूर्वगामी आधारिका का उद्देश्य पद अनुगामी आधारिका का विधेय पद बनता है।

(3) संक्षिप्त तर्कमाला के दोनों रूपों में केवल प्रथम युक्ति को छोड़कर अन्य सब युक्तियों में एक आधारिका लुप्त होती है और इस लुप्त-आधारिका की पूर्ति पूर्वगामी युक्ति के निष्कर्ष से की जाती है। अरस्तवी तर्कमाला की पक्ष-आधारिका लुप्त होती है और गोक्लीनी तर्कमाला की साध्य-आधारिका लुप्त होती है।

(4) गोक्लीनी संक्षिप्त तर्कमाला में युक्तियाँ न्याय-वाक्य की प्रथमाकृति के मानक रूप में होती हैं लेकिन अरस्तवी तर्कमाला में आधारिकाओं का स्थान बदल कर उन्हें न्याय-वाक्य की प्रथमाकृति के मानक रूप में लाना होता है। उदाहरण (1) गोक्लीनी संक्षिप्त तर्कमाला का उदाहरण है। अरस्तवी संक्षिप्त तर्कमाला का एक उदाहरण नीचे दिया है।

**उदाहरण 2.** 1. सब भौतिक वस्तुएँ स्थान घेरती हैं।
2. सब स्थान घेरने वाली वस्तुएँ विभाज्य होती हैं।
3. सब विभाज्य वस्तुएँ अवयवी होती हैं।
4. सब अवयवी वस्तुएँ विनाशशील होती हैं।

∴ सब भौतिक वस्तुएँ विनाशशील होती हैं।

संक्षिप्त चिह्नों के रूप में :

भौतिक वस्तु = भ
स्थान घेरने वाली वस्तु = घ
विभाज्य वस्तु = व
अवयवी वस्तु = अ
विनाशशील वस्तु = न

युक्ति का संक्षिप्त रूप :

1. सब भ घ हैं।
2. सब घ व हैं।
3. सब व श्र हैं।
4. सब श्र न हैं।

---

∴ सब भ न हैं।

## 4. संक्षिप्त तर्कमाला की वैधता के नियम

हम यह देख चुके हैं कि संक्षिप्त तर्कमाला में प्रथमाकृति वाले अनेक न्याय-वाक्य संक्षिप्त रूप में शामिल होते हैं। इसलिए संक्षिप्त तर्कमाला की वैधता के मूल नियम भी न्याय-वाक्य की प्रथमाकृति के मूल नियम ही हैं।

संक्षिप्त तर्कमाला के दो सामान्य नियम हैं :

**नियम 1.** संक्षिप्त तर्कमाला में केवल एक आधारिका ही निषेधात्मक होनी चाहिये।

**व्याख्या :** जिस युक्ति में एक आधारिका निषेधात्मक हो उसका निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा। क्योंकि संक्षिप्त तर्कमाला में पूर्वगामी युक्ति का निष्कर्ष अनुगामी युक्ति की एक आधारिका बनता है, इसलिए एक से अधिक आधारिकाओं के निषेधात्मक होने पर किसी न किसी युक्ति में दोनों आधारिकाएँ निषेधात्मक हो जायेंगी।

**नियम 2.** संक्षिप्त तर्कमाला में अधिक-से-अधिक एक आधारिका अंशव्यापी हो सकती है।

**व्याख्या :** क्योंकि एक आधारिका के अंशव्यापी होने पर निष्कर्ष भी अंशव्यापी होता है और पूर्वगामी युक्ति का निष्कर्ष अनुगामी युक्ति की एक आधारिका बनता है, इसलिए यदि एक से अधिक आधारिकाएँ अंशव्यापी होंगी तो किसी न किसी युक्ति में दोनों आधारिकाएँ अंशव्यापी हो जायेंगी।

ये दोनों नियम संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला के अरस्तवी और गोक्लीनी रूपों पर भिन्न-भिन्न ढंग से लागू होते हैं।

यदि संक्षिप्त तर्कमाला में एक आधारिका निषेधात्मक हो तो वह अरस्तवी में अन्तिम आधारिका होगी और गोक्लीनी में प्रथम। यह हम जानते हैं कि यदि एक आधारिका निषेधात्मक हो तो निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा और निष्कर्ष में साध्य पद व्याप्त होगा; जो साध्य-आधारिका में अव्याप्त नहीं होना चाहिये। अरस्तवी तर्कमाला में निष्कर्ष का विधेय अन्तिम आधारिका में विधेय होता है, इसलिए अन्तिम आधारिका में विधेय पद व्याप्त होना चाहिये और वह व्याप्त तभी हो सकता है जब वह आधारिका निषेधात्मक हो। इसी प्रकार, गोक्लीनी तर्कमाला में केवल प्रथम आधारिका ही निषेधात्मक हो सकती है क्योंकि इसमें निष्कर्ष का विधेय प्रथम आधारिका का विधेय होता है।

यदि एक आधारिका अंशव्यापी हो तो वह अरस्तवी में प्रथम और गोक्लीनी में अन्तिम ही हो सकती है। यह नियम इस बात से निकलता है कि संक्षिप्त तर्कमाला में जो युक्तियाँ शामिल होंगी वे प्रथमाकृति में होंगी। प्रथमाकृति में केवल पक्ष-आधारिका ही अंशव्यापी हो सकती है। अरस्तवी संक्षिप्त तर्कमाला में केवल प्रथम आधारिका को छोड़कर सब आधारिकाएँ साध्य-आधारिका होती हैं। इसलिए इसमें प्रथम आधारिका के अलावा और कोई आधारिका अंशव्यापी नहीं हो सकती। गोक्लीनी तर्कमाला में केवल प्रथम आधारिका के अलावा शेष आधारिकाएँ पक्ष-आधारिकाएँ हैं। गोक्लीनी तर्कमाला में पूर्वगामी युक्ति का निष्कर्ष अनुगामी निष्कर्ष की साध्य-आधारिका बनता है। यदि अन्तिम आधारिका के अलावा अन्य कोई आधारिका इसमें अंशव्यापी हुई तो उसकी अनुगामी युक्ति की साध्य-आधारिका अंशव्यापी होगी, जो प्रथमाकृति में नहीं हो सकती।

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि यदि कोई आधारिका अंशव्यापी हो सकती है तो वह अरस्तवी में प्रथम और गोक्लीनी में अन्तिम आधारिका ही हो सकती है।

**विशेष टिप्पणी** : आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार संक्षिप्त तर्कमाला की वैधता की परीक्षा करने के लिए उसे अनेक युक्तियों में प्रकट करना आवश्यक नहीं है। इसकी वैधता पदों के सम्बन्ध की संक्रामिता (Transitivity) से ही बन जाती है। एक वर्ग के दूसरे वर्ग में शामिल होने के सम्बन्ध में संक्रामिता की विशेषता है। यदि क ख में शामिल है, ख ग में शामिल है और ग घ में शामिल है तो क घ में शामिल ही होगा। अरस्तवी संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला में पदों का इसी प्रकार सम्बन्ध होता है। तार्किक सम्बन्धों के विभिन्न भेदों का परिचय आगे देंगे।

## अभ्यास

1. संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला किसे कहते हैं ? उसकी रचना की क्या विशेषताएँ हैं ? उदाहरण द्वारा स्पष्ट करें।

2. संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला के अरस्तवी तथा गोक्लीनी रूपों का अन्तर स्पष्ट करें। दोनों का एक-एक उदाहरण दें।

3. संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला की वैधता के सामान्य नियमों की व्याख्या करें।

4. सिद्ध करें कि संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला में केवल एक आधारिका ही निषेधात्मक हो सकती है।

5. सिद्ध करें कि संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला में केवल एक आधारिका ही अंशव्यापी हो सकती है।

6. सिद्ध करें कि संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला के गोक्लीनी रूप में केवल अन्तिम आधारिका ही अंशव्यापी हो सकती है।

7. सिद्ध करें कि संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला के अरस्तवी रूप में केवल प्रथम आधारिका ही अंशव्यापी हो सकती है।

8. निम्नलिखित तर्कमालाओं के पदों को संक्षिप्त चिह्नों में रखकर उनके रूप को स्पष्ट करें तथा उनकी वैधता की परीक्षा करें।

(क) प्रत्येक व्यक्ति कर्म करने में स्वतन्त्र है।
जो कर्म करने में स्वतन्त्र है, वह संकल्प बनाने में स्वतन्त्र है।
जो संकल्प बनाने में स्वतन्त्र है वह अच्छा संकल्प बनाने में स्वतन्त्र है।
जो अच्छा संकल्प बनाने में स्वतन्त्र है वह अच्छा कर्म करने में स्वतन्त्र है।

---

∴ प्रत्येक व्यक्ति अच्छा कर्म करने में स्वतन्त्र है।

(ख) जो अस्तित्ववान् है वह पैदा हुआ है।
जो पैदा हुआ है वह क्षणिक है।
जो क्षणिक है वह अनित्य है।

---

∴ सब अस्तित्ववान् अनित्य हैं।

(ग) जो लोग कर्मफल में आसक्ति के बिना कर्म करते हैं, वे योगी हैं।
जो योगी हैं वे कर्म में ही ध्यान लगाते हैं।
जो कर्म में ही ध्यान लगाते हैं वे कर्म कुशलतापूर्वक करते हैं।
जो कर्म कुशलतापूर्वक करते हैं वे सफल होते हैं।

---

∴ जो कर्मफल में आसक्ति के बिना कर्म करते हैं, वे सफल होते हैं।

(घ) क्रोध में व्यक्ति विवेकहीन होता है।
विवेकहीन व्यक्ति की स्मृति में दोष आ जाता है।
दूषित स्मृति वाले व्यक्ति की बुद्धि का विनाश हो जाता है।
नष्ट बुद्धि वाले का नाश हो जाता है।

---

∴ क्रोध करने वाले का नाश हो जाता है।

(ङ) जो वांछनीय है वह कर्तव्य है।
जो उपयोगी है वह वांछनीय है।
जो सुखदायी है वह उपयोगी है।

---

∴ जो सुखदायी है वह कर्तव्य है।

14

# सम्बन्ध, सम्बन्धों के तार्किक धर्म और सम्बन्धी युक्तियाँ

## 1. सम्बन्धात्मक युक्तियों की वैधता के परीक्षण की समस्या

निम्नलिखित दो युक्तियों के आकार पर विचार करें :

(क) राम श्याम से बड़ा है ।
श्याम हरी से बड़ा है ।
∴ राम हरी से बड़ा है ।

(ख) राम श्याम का मित्र है ।
श्याम हरी का मित्र है ।
∴ राम हरी का मित्र है ।

क्या ये दोनों युक्तियाँ वैध हैं ?

सामान्य बुद्धि के आधार पर (क) वैध और (ख) अवैध प्रतीत होती है । लेकिन न्याय-वाक्य के नियमों के आधार पर हम यह सिद्ध नहीं कर सकते कि (क) वैध और (ख) अवैध है । वास्तव में परम्परागत तर्क-शास्त्रियों को इस प्रकार की युक्तियों की वैधता/अवैधता के नियम निश्चित करना समस्या बनी हुई थी । आधुनिक तर्कशास्त्रियों ने इस समस्या का हल सम्बन्धों तथा उनके तार्किक धर्मों (logical properties of relations) का विश्लेषण करके किया है ।

परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार निम्नलिखित प्रतिज्ञप्तियाँ एक ही प्रकार की हैं :

1. राम श्याम से बड़ा है ।
2. राम श्याम का सबसे बड़ा बेटा है ।
3. $2+2=4$
4. राधा कृष्ण से प्रेम करती है ।

5. राम ने रावण मारा।

6. राम ने रावण के पेट में बाण मारा।

आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार ये सब प्रतिज्ञप्तियाँ भिन्न हैं क्योंकि ये भिन्न-सम्बन्धों को प्रकट करती हैं। संसार में वस्तुओं के बीच अनन्त प्रकार के सम्बन्ध हैं। सब सम्बन्धों को गिनाना न सम्भव है और न इसकी आवश्यकता है। तर्क-शास्त्रियों की रुचि सम्बन्धों के सामान्य स्वरूप तथा सम्बन्धों के सामान्य तार्किक धर्मों के अध्ययन में है। यहाँ सम्बन्धों के सामान्य स्वरूप और उनके तार्किक धर्मों का संक्षिप्त विवेचन दिया है।

## 2. सम्बन्ध और पद

एक सम्बन्ध कुछ वस्तुओं को सम्बन्धित करता है। एक सम्बन्ध से जो वस्तुएँ सम्बन्धित होती हैं उन्हें उस सम्बन्ध के पद कहते हैं। सम्बन्धों में इस दृष्टि से अन्तर होता है कि उनके कितने पद हैं। सम्बन्ध दो पद वाले हो सकते हैं। कुछ सम्बन्ध तीन पद वाले, कुछ चार पद वाले और कुछ उनसे भी अधिक पदों वाले हो सकते हैं। दो पद वाले सम्बन्ध को द्विपदी, तीन पद वाले को त्रिपदी और चार पद वाले को चतुष्पदी सम्बन्ध कहते हैं। जो प्रतिज्ञप्तियाँ सम्बन्ध प्रकट करती हैं उन्हें सम्बन्धात्मक प्रतिज्ञप्तियाँ relational propositions) कहते हैं। यहाँ यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि परम्परागत तर्कशास्त्र में सभी सरल प्रतिज्ञप्तियों को द्विपदी मानना और उन सब में एक ही प्रकार का सम्बन्ध देखना कितना ग़लत था।

'राम मोहन से बड़ा है' इससे प्रकट किया गया सम्बन्ध द्विपदी है। इसमें 'राम' और 'मोहन' पद हैं तथा 'से बड़ा' सम्बन्ध है। 'हरी की तुलना में राम मोहन से बड़ा है' यह प्रतिज्ञप्ति त्रिपदी सम्बन्ध प्रकट करती है। इसमें 'राम', 'मोहन' और 'हरी' पद हैं और "की तुलना में अधिक बड़ा होना" सम्बन्ध है। सम्बन्धों के तार्किक धर्मों का अध्ययन करते समय हम यहाँ केवल द्विपदी सम्बन्धों को ध्यान में रखेंगे।

## 3. सम्बन्ध की दिशा, प्रसंगार्थ और सम्बन्धी
### (Referent and Relation)

जो प्रतिज्ञप्तियाँ दो पदों में एक सम्बन्ध प्रकट करती हैं वे इस बात को भी प्रकट करती हैं कि वह सम्बन्ध किस पद से किस पद की ओर है।

(1) राम ने रावण मारा।

(2) रावण ने राम मारा।

इन दोनों प्रतिज्ञप्तियों के पद और सम्बन्ध तो समान हैं, लेकिन इनमें सम्बन्ध की दिशा भिन्न है। (1) में सम्बन्ध की दिशा 'राम' से 'रावण' की ओर है और (2) में सम्बन्ध की दिशा 'रावण' से 'राम' की ओर है। सम्बन्ध जिस पद से शुरू होता है उसे प्रसंगार्थ

(referent) कहते हैं और वह जिस पद की ओर जाता है उसे सम्बन्धी (relatum) कहते हैं। (1) में 'राम' प्रसंगार्थ और 'रावण' सम्बन्धी है तथा (2) में 'रावण' प्रसंगार्थ और 'राम' सम्बन्धी है।

## 4. परिवर्तित सम्बन्ध और सम्बन्धात्मक प्रतिज्ञप्तियों का परिवर्तन

यदि एक सम्बन्ध अ पद का आ पद से है तो आ का अ से भी कोई सम्बन्ध होगा। अ से आ के सम्बन्ध का परिवर्तित सम्बन्ध आ से अ का सम्बन्ध होगा। एक सम्बन्धात्मक प्रतिज्ञप्ति का परिवर्तन करने के लिए उसके प्रसंगार्थ और सम्बन्धी का स्थान बदलना होता है और कहीं तो सम्बन्ध वही रहता है, कहीं सम्बन्ध बदलना होता है। 'क=ख' का परिवर्तित रूप 'ख=क' ही होगा। लेकिन 'राम मोहन का पिता है' का परिवर्तित रूप 'मोहन राम का पुत्र है' होगा। इस प्रकार 'का पिता' के सम्बन्ध का परिवर्तित सम्बन्ध 'का पुत्र' है जबकि 'के बराबर' के सम्बन्ध का परिवर्तित सम्बन्ध 'के बराबर' ही है। सम्बन्धात्मक प्रतिज्ञप्तियों के परिवर्तन के कुछ उदाहरण नीचे दिये गये हैं।

| | मूल प्रतिज्ञप्ति | परिवर्तित प्रतिज्ञप्ति |
|---|---|---|
| (क) | देहली मद्रास के उत्तर में है। | मद्रास देहली के दक्षिण में है। |
| (ख) | सीता राम के पीछे चलती है। | राम सीता के आगे चलते हैं। |
| (ग) | राम सीता से आयु में बड़ा है। | सीता राम से आयु में छोटी है। |
| (घ) | राम ने रावण मारा। | रावण राम से मारा गया। |
| (ङ) | राम सुग्रीव का मित्र है। | सुग्रीव राम का मित्र है। |

## 5. सम्बन्धों के तार्किक गुण-धर्म

सम्बन्धों का वर्गीकरण सम्बन्धों के दो तार्किक गुण-धर्मों, (logical properties), सममिति और संक्रामिता, के आधार पर किया जाता है :

### 5.1 सममिति (Symmetry)

सम्बन्धों के वर्गीकरण का एक आधार सममिति (symmetry) है। सममिति के आधार पर सम्बन्धों के तीन प्रकार बनते हैं :

(क) सममित सम्बन्ध (Symmetrical relation)

(ख) असममित सम्बन्ध (Asymmetrical relation)

(ग) न-सममित सम्बन्ध (Non-symmetrical relation)

(क) **सममित सम्बन्ध :** अ का आ से सम्बन्ध का जो रूप है वही रूप आ का अ से सम्बन्ध का हो तो वह सम्बन्ध सममित (symmetrical) कहलाता है और

ऐसे सम्बन्ध का तार्किक गुण-धर्म सममिति कहलाता है। दो पदों के बीच सममित सम्बन्ध दोनों पदों की दिशाओं में समान रहता है। जैसे : 'बराबर होना' सममित सम्बन्ध है। '4=2+2' और '2+2=4' में कोई अन्तर नहीं है। मित्र होना, से भिन्न होना, के साथ विवाहित होना, भी सममित सम्बन्ध हैं।

(ख) **असममित सम्बन्ध :** जो सम्बन्ध दोनों पदों की ओर समान रूप से न लागू हो सकता हो वह असममित सम्बन्ध कहलाता है। जैसे : 'पिता होना' असममित सम्बन्ध है। यदि राम मोहन का पिता है, तो मोहन को राम का पिता नहीं कह सकते। पुत्र होना, पूर्व की ओर होना, पूर्वगामी होना, पति होना भी असममित सम्बन्ध हैं।

(ग) **न-सममित सम्बन्ध :** जो सबन्ध कुछ उदाहरणों में सममित हो तथा कुछ में सममित न हो वह न-सममित सम्बन्ध कहलाता है। जैसे : प्रेम करना, न-सममित सम्बन्ध है। यदि राम मोहन को प्रेम करता है, तो यह आवश्यक नहीं है कि मोहन राम को प्रेम करता हो। बहिन होना, भाई होना भी न-सममित सबन्ध हैं। इसी प्रकार आपादन (implication) न-सममित सम्बन्ध है।

### 5.2. संक्रामिता (Transitivity)

संक्रामिता के आधार पर भी सम्बन्धों के तीन प्रकार बनते हैं :

(क) संक्रामी सम्बन्ध (Transitive relation)

(ख) असंक्रामी सम्बन्ध (Intransitive relation)

(ग) न-संक्रामी सम्बन्ध (Non-transitive relation)

(क) **संक्रामी सम्बन्ध** (Transitive relation) : दो पदों के बीच ऐसा सम्बन्ध जो उनमें से किसी एक पद तथा तीसरे पद के साथ होने के कारण उनमें से दूसरे पद और उस तीसरे पद के बीच भी बनता हो, संक्रामी सम्बन्ध कहलाता है। मान लीजिये, एक सम्बन्ध क का ख से है। यदि वही सम्बन्ध ख का ग से होने पर क और ग के बीच भी बनता हो तो वह संक्रामी सम्बन्ध कहलाता है। जैसे : 'बड़ा होना' संक्रामी सम्बन्ध है। यदि राम मोहन से बड़ा है और सोहन राम से बड़ा है तो यह निश्चित है कि सोहन मोहन से बड़ा है। से पूर्व होना, के समकालीन होना भी संक्रामी सम्बन्ध हैं। तार्किक सम्बन्धों में वर्गान्तर्भाव तथा आपादन संक्रामी सम्बन्ध हैं।

**असंक्रामी सम्बन्ध** (Intransitive relation) : जो सम्बन्ध क और ख के बीच तथा ख और ग के बीच होने पर क और ग के बीच बन ही नहीं सकता हो, वह असंक्रामी सम्बन्ध कहलाता है। जैसे : 'पिता होना' असंक्रामी सम्बन्ध है। यदि राम मोहन का पिता है और मोहन सोहन का पिता है तो राम सोहन का पिता हो ही नहीं सकता। इसी प्रकार 'सदस्य होना' भी असंक्रामी सम्बन्ध है। यदि राम भारतीय राष्ट्र

का सदस्य है और भारतीय राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य है, तो राम संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं बनता ।

**न-संक्रामी सम्बन्ध** (Non-transitive relation) : जो सम्बन्ध क और ख के बीच तथा ख और ग के बीच होने पर क और ग के बीच कुछ उदाहरणों में बन सकता हो और कुछ में न भी बन सकता हो वह न-संक्रामी सम्बन्ध (non-transitive relation) कहलाता है। जैसे, 'मित्र होना' न-संक्रामी सम्बन्ध है । यदि राम मोहन का मित्र है और मोहन सोहन का मित्र है, तो राम सोहन का मित्र हो सकता है, लेकिन ऐसा होना अनिवार्य नहीं है । इसी प्रकार, प्रेम करना, घृणा करना, स्पर्श करना न-संक्रामी सम्बन्ध हैं ।

5.3. सममिति और संक्रामिता सम्बन्धों के विभाजन के बिल्कुल दो भिन्न आधार हैं। इसलिए, प्रत्येक सम्बन्ध में सममिति और संक्रामिता की दृष्टि से विशेषताएँ होंगी। सममित और संक्रामिता की दोनों विशेषताओं के आधार पर सम्बन्धों के निम्नलिखित नौ रूप बनते हैं :

1. संक्रामी सममित सम्बन्ध : जैसे, के बराबर ।
2. संक्रामी असममित सम्बन्ध : जैसे, का पूर्वज, के पूर्व में ।
3. संक्रामी न-सममित सम्बन्ध : जैसे, भाई होना ।
4. असंक्रामी सममित सम्बन्ध : जैसे, के साथ विवाहित ।
5. असंक्रामी असममित सम्बन्ध : जैसे, का पिता होना ।
6. असंक्रामी न-सममित सम्बन्ध : जैसे, सर्वाधिक प्रेम करना ।
7. न-संक्रामी सममित सम्बन्ध : जैसे, स्पर्श करना ।
8. न-संक्रामी असममित सम्बन्ध जैसे, आराधक होना ।
9. न-संक्रामी न-सममित सम्बन्ध : जैसे, प्रेम करना ।

## 6. संक्रामिता निगमन का आधार

संक्रामी सम्बन्ध वैध निगमन का पर्याप्त आधार है। मान लो, क और ख के बीच एक सम्बन्ध है, यही सम्बन्ध ख और ग के बीच है। यदि यह सम्बन्ध संक्रामी है तो यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यही सम्बन्ध क और ग के बीच भी होगा। संक्रामी सम्बन्ध की माला में चाहे कितने ही पद हों उसके आधार पर प्रथम पद और अन्तिम पद का सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। एक वर्ग का दूसरे वर्ग में शामिल होना संक्रामी सम्बन्ध है। इसलिए, जिन युक्तियों को परम्परागत तर्कशास्त्र में संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला (sorites) कहा है और जिनकी वैधता की परीक्षा करने के लिए उन्हें अनेक युक्तियों के क्रम में रखने की बहुत लम्बी प्रक्रिया बतानी पड़ती थी, उनकी

वैधता सम्बन्ध की संक्रामिता के आधार पर ही सिद्ध हो जाती है। वर्ग में शामिल होने के सम्बन्ध को 'C' प्रतीक द्वारा प्रकट किया जाता है। इस प्रकार,

क C ख C ग C घ C ङ

∴ क C ङ

वैध युक्ति है क्योंकि 'C' संक्रामी सम्बन्ध है।

सम्बन्ध की संक्रामिता के आधार पर ही निम्नलिखित युक्तियाँ वैध बनती हैं :

(क) $2+2=4$

$4=2\times2$

$\therefore 2+2=2\times2$

(ख) राम मोहन से लम्बा है।

मोहन सोहन से लम्बा है।

∴ राम सोहन से लम्बा है।

(ग) आगरा मथुरा के पूर्व में है।

मथुरा देहली के पूर्व में है।

∴ आगरा देहली के पूर्व में है।

निम्नलिखित युक्तियाँ अवैध हैं क्योंकि इनका आधारभूत सम्बन्ध संक्रामी नहीं है।

(घ) राम मोहन को स्पर्श करता है।

मोहन सोहन को स्पर्श करता है।

∴ राम सोहन को स्पर्श करता है।

(ङ) राम मोहन का कर्जदार है।

मोहन सोहन का कर्जदार है।

∴ राम सोहन का कर्जदार है।

## 7. वर्ग-अन्तर्भाव और वर्ग-सदस्यता सम्बन्ध

अब हम वर्ग-अन्तर्भाव और वर्ग-सदस्यता सम्बन्धों का अन्तर अधिक स्पष्टता से समझ सकते हैं। एक वर्ग के अन्य वर्ग में अन्तर्हित होने के सम्बन्ध को वर्ग-अन्तर्भाव (class-inclusion) कहते हैं और एक व्यक्ति के वर्ग में शामिल होने को वर्ग-सदस्यता (class-membership) सम्बन्ध कहते हैं। परम्परागत तर्कशास्त्र में इन दोनों सम्बन्धों में स्पष्ट भेद न कर सकने की त्रुटि रही है। जहाँ वर्ग-अन्तर्भाव संक्रामी है वहाँ वर्ग-सदस्यता सम्बन्ध संक्रामी नहीं है। निम्नलिखित तीन युक्तियों पर विचार कीजिये।

(च) सब कांग्रेसी राजनीतिक कार्यकर्ता हैं।
सब राजनीतिक कार्यकर्ता महत्त्वाकांक्षी हैं।
∴ सब कांग्रेसी महत्त्वाकांक्षी हैं।

(छ) राम भारतीय है।
भारत संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य है।
∴ राम संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य है।

(ज) सब कांग्रेसी महत्त्वाकांक्षी हैं।
राम कांग्रेसी है।
∴ राम महत्त्वाकांक्षी है।

स्पष्टत: (च) वैध है क्योंकि इसका आधार वर्ग-अन्तर्भाव का सम्बन्ध है और यह संक्रामी सम्बन्ध है। (छ) स्पष्टत: अवैध है। इस युक्ति की अवैधता का कारण यह है कि इसका आधार वर्ग-सदस्यता सम्बन्ध है और यह सम्बन्ध असंक्रामी है। (ज) वैध है लेकिन (च) और (ज) का रूप और उनकी वैधता के नियम भिन्न हैं। प्रोफेसर जान्सन ने (च) के रूप को अन्तर्भावी युक्ति (subsumptive argument) का रूप कहा है और (ज) के रूप को आनुप्रयोगिक युक्ति (applicative argument) का रूप कहा है। ये दोनों रूप भिन्न-भिन्न हैं, यद्यपि दोनों वैध हैं। इन दोनों की वैधता के आधारभूत नियम और मान्यताएँ भिन्न-भिन्न हैं। वर्ग-अन्तर्भावी युक्ति का नियम (principle of subsumptive argument) इस प्रकार है :

यदि एक वर्ग दूसरे वर्ग में शामिल है और दूसरा वर्ग तीसरे वर्ग में शामिल है तो पहला वर्ग भी तीसरे वर्ग में शामिल होगा।

आनुप्रयोगिक युक्ति का आधार अनुप्रयोग नियम है, जो इस प्रकार है : यदि एक बात एक वर्ग के प्रत्येक सदस्य पर लागू होती है तो वह बात उस वर्ग के एक विशिष्ट सदस्य पर भी लागू होगी। यदि मरणशील होना प्रत्येक मनुष्य पर लागू होता है और राम एक विशिष्ट मनुष्य है तो मरणशील होना राम पर भी लागू होगा।

इस प्रकार :

(1) सब मनुष्य मरणशील हैं।
सब विद्यार्थी मनुष्य हैं।
∴ सब विद्यार्थी मरणशील हैं।

और

(2) सब मनुष्य मरणशील हैं।
राम मनुष्य है।
∴ राम मरणशील है।

ये दोनों युक्तियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं। (1) वर्ग-अन्तर्भावी युक्ति है और इसकी वैधता का कारण वर्ग-अन्तर्भाव का संक्रामी होता है। (2) भी वैध है। इसकी वैधता का आधार अनुप्रयोग नियम है। अनुप्रयोग नियम को सर्वव्यापी दृष्टान्तीकरण नियम भी कहते हैं। इसकी विशेष व्याख्या अध्याय 20 में परिमाणक सिद्धान्त के सन्दर्भ में करेंगे।

**संक्षेप :** सम्बन्ध और उनकी तार्किक विशेषताओं का अध्ययन आधुनिक तर्कशास्त्र की देन है। सम्बन्धों की तार्किक विशेषताओं और उनके विविध रूपों के ज्ञान ने युक्तियों के विविध रूपों और उनकी वैधता के आधारभूत नियमों को समझने में मदद दी है।

सम्बन्ध जिनके बीच होता है उन्हें उस सम्बन्ध के पद कहते हैं। सम्बन्ध दो पद के, तीन पद के, चार पद के तथा और भी अधिक पदों के हो सकते हैं।

जो प्रतिज्ञप्ति सम्बन्धवाची हैं उन्हें सम्बन्धात्मक प्रतिज्ञप्ति कहते हैं। सम्बन्धात्मक प्रतिज्ञप्ति में दो से अधिक पद भी हो सकते हैं। इस प्रकार परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार यह मानना कि प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति के दो ही पद होते हैं त्रुटिपूर्ण है।

एक प्रतिज्ञप्ति जो सम्बन्ध प्रकट करती है उसके स्वरूप को समझने के लिए सम्बन्ध और पदों के साथ-साथ सम्बन्ध की दिशा को ध्यान में रखना भी आवश्यक है। जिस पद से सम्बन्ध चलता है उसे उस सम्बन्ध का प्रसंगार्थ और जिस पद की ओर वह सम्बन्ध जाता है उसे उस सम्बन्ध का सम्बन्धी कहते हैं। सम्बन्धी से प्रसंगार्थ की ओर सम्बन्ध का जो रूप बनता है उसे मूल सम्बन्ध का परिवर्तित सम्बन्ध (converse) कहते हैं।

सम्बन्ध की दो तार्किक विशेषताएँ हैं : (1) सममिति और (2) संक्रामिता। सममिति के आधार पर सम्बन्ध के तीन रूप बनते हैं : सममित सम्बन्ध, असममित सम्बन्ध और न-सममित सम्बन्ध। संक्रामिता के आधार पर संक्रामी, असंक्रामी और न-संक्रामी सम्बन्धों में भेद होता है। प्रत्येक सम्बन्ध में सममिति की दृष्टि से तथा संक्रामिता की दृष्टि से एक विशेषता होती है। संक्रामिता की विशेषता निगमन का तार्किक आधार है। संक्रामिता के आधार पर परम्परागत न्याय-वाक्य की ही वैधता प्रमाणित नहीं होती बल्कि जिन अनेक प्रकार की युक्तियों की वैधता प्रमाणित करने में परम्परागत तर्कशास्त्र असफल रहा उनकी वैधता भी इसके आधार पर प्रामाणित की जा सकती है।

## अभ्यास

1. निम्नलिखित सम्बन्धात्मक प्रतिज्ञप्तियों का पद और सम्बन्धों में विश्लेषण करो। प्रत्येक के प्रसंगार्थ और सम्बन्धी बताओ। प्रत्येक की परिवर्तित प्रतिज्ञप्ति बनाओ।

(क) भारत रूस का मित्र है।
(ख) राम लक्ष्मण का भाई है।
(ग) राम लक्ष्मण का बड़ा भाई है।
(घ) राम ने सीता को त्यागा।
(ङ) राम सीता का पति है।

2. आगे लिखे सम्बन्धों के सार्थक उदाहरण दो और प्रत्येक के तार्किक गुण-धर्म निश्चित करो।

(क) का पूर्वज, (ख) के साथ विवाहित, (ग) का ऋणी, (घ) की बहिन, (ङ) का प्रेमी।

3. सममिति के आधार पर सम्बन्धों के कौन-कौनसे रूप बनते हैं। निम्नलिखित वाक्य सममिति की दृष्टि से कौनसा सम्बन्ध प्रकट करते हैं।

(क) कोई क ख नहीं है।
(ख) सब क ख हैं।
(ग) कुछ क ख हैं।
(घ) कुछ क ख नहीं हैं।

4. संक्रामिता के आधार पर सम्बन्धों के कौनसे रूप बनते हैं? प्रत्येक के दो-दो उदाहरण दो।

5. "सभी निगमनात्मक अनुमान सम्बन्धों के तार्किक गुण-धर्मों पर आधारित हैं" इस कथन का विवेचन करो।

6. निम्नलिखित युक्तियों की वैधता की परीक्षा सम्बन्ध की संक्रामिता के आधार पर करो।

(क) अ आ का मित्र है।
आ इ का मित्र है।
∴ अ इ का मित्र है।

(ख) अ आ का निकटतम रिश्तेदार है।
आ इ का निकटतम रिश्तेदार है।
∴ अ इ का निकटतम रिश्तेदार है।

(ग) अ आ का भाई है।
आ इ का भाई है।
∴ अ इ का भाई है।

(घ) अ आ का भाई नहीं है।
आ इ का भाई नहीं है।
∴ आ इ का भाई नहीं है।

(ङ) भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य है।
राम भारतीय गणराज्य का सदस्य है।
∴ राम संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य है।

(च) सब भारतीय मनुष्य हैं।
सब मनुष्य प्राणी हैं।
सब प्राणी जन्म लेते हैं।
सब जन्म लेने वाले मरणशील हैं।
∴ सब भारतीय मरणशील हैं।

7. क्या निम्नलिखित दोनों युक्तियों का तार्किक रूप समान है? क्या इन दोनों की वैधता का आधार एक ही नियम है? स्पष्ट विवेचन करो।

(क) सब बच्चे मासूम होते हैं।
सब मासूम व्यक्ति सरल स्वभाव वाले होते हैं।
∴ सब बच्चे सरल स्वभाव वाले होते हैं।

(ख) सब बच्चे मासूम होते हैं।
राम बच्चा है।
∴ राम मासूम है।

8. वर्ग-अन्तर्भावी युक्ति और आनुप्रयोगिक युक्ति का भेद उदाहरण सहित स्पष्ट करो।

# 15

# विचार–नियम

## 1. विचार के तीन नियम

परम्परागत तर्क-शास्त्रियों के अनुसार तर्कशास्त्र का काम विचार के नियमों अथवा मूल विचार नियमों (fundamental laws of thought) का अध्ययन करना है। अरस्तु के अनुसार विचार-नियम तीन हैं :

(1) तादात्म्य नियम (Law of identity)
(2) व्याघात नियम (Law of contradiction)
(3) मध्याभाव नियम (Law of excluded middle)

आधुनिक तर्कशास्त्र में भी इन नियमों को स्वीकार करते हैं, लेकिन इनकी व्याख्या कुछ भिन्न प्रकार से करते हैं। तर्कशास्त्र में इन नियमों के महत्त्व के सम्बन्ध में भी प्राचीन तथा आधुनिक तर्क-शास्त्रियों के मतों में अन्तर है।

## 2. विचार नियमों की प्राचीन व्याख्या

अरस्तु तथा उसके अनुयायियों ने विचार नियमों की जो व्याख्या दी है, उसे हम प्राचीन या परम्परागत व्याख्या कहेंगे। अरस्तु की यह मान्यता है कि वास्तविक जगत् बुद्धिगम्य है और यह बुद्धिगम्य तभी हो सकता है, जब इसकी रचना इन विचार नियमों के अनुसार हो। इस बात को माने बिना कि जगत् की रचना इन तीन विचार नियमों के अनुसार है, जगत्-सम्बन्धी कोई ज्ञान नहीं हो सकता। इस प्रकार, ये नियम मूल रूप में विचार की विषयभूत वस्तु की रचना के नियम हैं और ज्ञान के मूल आधार हैं। इन नियमों की प्राचीन व्याख्या इस प्रकार है।

### 2.1. तादात्म्य नियम

तादात्म्य नियम को भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकट किया जाता है। जैसे,

(क) अ अ है।
(ख) एक वस्तु जो है वह वही है।
(ग) एक वस्तु का अपने साथ तादात्म्य है।
(घ) एक वस्तु में जो गुण हैं सो गुण हैं।

**तादात्म्य नियम और जगत् की परिवर्तनशीलता** : कभी-कभी यह कहा जाता है कि तादात्म्य नियम का जगत् की परिवर्तनशीलता के नियम के साथ विरोध है, इसलिए तादात्म्य नियम ठीक नहीं हो सकता। लेकिन यह भ्रान्ति जगत् की परिवर्तनशीलता का ठीक-ठीक स्वरूप न समझने के कारण होती है। जब हम यह कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु निरन्तर परिवर्तनशील है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक क्षण एक वस्तु की जगह बिल्कुल भिन्न एक अन्य वस्तु आ जाती है। यदि ऐसा होता तो किसी वस्तु के विषय में न तो कुछ जाना जा सकता था और न कुछ कहा जा सकता था। जितनी देर में कि हम किसी वस्तु के बारे में कुछ कहें, उतनी देर में उसका रूप ही बिल्कुल बदल जाये तो इसका निर्णय कभी नहीं हो सकता कि जो कहा जा रहा है वह किस के बारे में है, और जब तक यही निश्चित नहीं है कि हम जो कुछ जानने का दावा करते हैं वह किस वस्तु के सम्बन्ध में है, तब तक कोई ज्ञान नहीं हो सकता। लेकिन यह भी नहीं माना जा सकता कि एक वस्तु जैसी है वैसी ही सदा रहती है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। यदि ऐसा होता, अर्थात् एक वस्तु में परिवर्तन न होता तब भी हमारे कथनों में एक ही बात को दोहराने के अलावा नयी बात न मिलती। इस प्रकार, यह मानना पड़ता है कि विविध परिस्थितियों में, तथा कुछ गुणों में परिवर्तन होने पर एक वस्तु का मूल रूप अपरिवर्तनशील रहता है। इस प्रकार, तादात्म्य का अर्थ भेद में अभेद, तथा परिवर्तनशीलता के बीच अपरिवर्तनशीलता है। 'अ अ है' का अर्थ यह है कि विभिन्न परिस्थितियों में तथा अनेक गुणों में परिवर्तन के बावजूद अ अ है। देवदत्त का पुत्र कल अविवाहित था, लेकिन वह आज विवाहित हो जाता है। इस परिवर्तन के बावजूद भी देवदत्त का पुत्र देवदत्त का पुत्र है।

अनुमान अथवा युक्तियों के सम्बन्ध में इस नियम का महत्त्व यह है कि यदि एक युक्ति अथवा अगामी तर्कमाला में एक पद का प्रयोग अनेक स्थानों पर हो तो उसका अर्थ सब जगह एक ही मानना चाहिये अन्यथा युक्ति ही नहीं बनेगी।

**2.2. व्याघात नियम**

व्याघात नियम को निम्नलिखित रूपों में प्रकट किया जाता है :

(क) एक वस्तु में एक विशेष गुण-धर्म का होना और उसी वस्तु में उसी समय उसी गुण-धर्म का न होना सम्भव नहीं हो सकता।

(ख) एक गुण-धर्म का भाव और अभाव एक साथ नहीं रह सकते।

(ग) 'अ ब है' और 'अ ब नहीं है' दोनों एक साथ सत्य नहीं हो सकते। इनमें से एक अवश्य असत्य होगा।

(घ) एक ही वस्तु के बारे में एक साथ व्याघाती पदों का विधान नहीं हो सकता। देवदत्त को एक ही साथ विवाहित और अविवाहित नहीं कहा जा सकता।

2.3. मध्याभाव नियम

मध्याभाव नियम को प्रकट करने के विविध रूप निम्नलिखित हैं :

(क) एक वस्तु में एक विशेष गुण-धर्म का या तो भाव होगा या अभाव होगा।

(ख) 'अ ब है' और 'अ ब नहीं है' दोनों एक साथ असत्य नहीं हो सकते। उनमें से एक अवश्य सत्य होगा।

(ग) या तो अ, ब है या अ, ब नहीं है।

(घ) एक पद के बारे में दो व्याघाती पदों में से एक पद का विधान अवश्य होगा। एक विशेष समय में देवदत्त या तो विवाहित है या अविवाहित है।

**विशेष टिप्पणी :** व्याघाती पद और विपरीत पद

यह बात ध्यान देने की है कि मध्याभाव नियम विपरीत पदों (contrary terms) के बारे में नहीं लागू होता, बल्कि व्याघाती पदों (contradictory terms) के बारे में लागू होता है। एक जाति के अधिक-से-अधिक भिन्न गुणों के बोधक दो पदों को विपरीत पद कहेंगे, जैसे रंगों के सन्दर्भ में काला और सफ़ेद विपरीत पद हैं। व्याघाती पद एक-दूसरे के विरोधी ही नहीं होते अपितु एक-दूसरे के पूरक भी होते हैं क्योंकि उन दोनों पदों के क्षेत्र में उनकी जाति का सम्पूर्ण क्षेत्र आ जाता है। उदाहरण के रूप में "श्वेत" और "अश्वेत" पूरक पद हैं। इनके प्रयोग क्षेत्र में रंगों का सम्पूर्ण क्षेत्र आ जाता है। विपरीत पद एक-दूसरे के विरोधी तो होते हैं, लेकिन पूरक नहीं। यह सम्भव है कि एक स्थान पर दो विपरीत पदों में से एक भी पद न लागू होता हो, उन दोनों के अलावा कोई तीसरा पद लागू होता हो। यह हो सकता है कि एक कपड़े का टुकड़ा न सफ़ेद हो और न काला हो, बल्कि किसी अन्य रंग का हो। इस प्रकार विपरीत पदों (contrary terms) के प्रयोग के सम्बन्ध में मध्याभाव का नियम लागू नहीं होता। यह नियम व्याघाती पदों (contradictory terms) के सम्बन्ध में ही लागू होता है। श्वेत और अश्वेत व्याघाती पद है। रंग वाली किसी भी एक वस्तु के सम्बन्ध में इनमें से एक पद अवश्य लागू होगा। ऐसा नहीं हो सकता कि इनमें से कोई पद न लागू हो।

## 3. तीनों नियमों का सम्बन्ध

कभी-कभी यह कहा जाता है कि इन तीन नियमों में तादात्म्य नियम मूल-नियम है और शेष दोनों नियम इसी नियम पर आश्रित हैं। लेकिन यह विचार ठीक मालूम नहीं देता। तादात्म्य और व्याघात के प्रत्यय बिल्कुल विपरीत हैं और ये दोनों ही मौलिक हैं। तादात्म्य नियम से व्याघात नियम निकलता नहीं है। तादात्म्य नियम का स्वरूप विधानात्मक है, जबकि व्याघात नियम का स्वरूप निषेधात्मक है। तादात्म्य नियम कहता है कि यदि एक वस्तु अ है तो वह अ है। व्याघात नियम कहता है कि

एक वस्तु अ और न-अ एक साथ नहीं हो सकती। व्याघात नियम और मध्याभाव नियम भी भिन्न हैं। व्याघाती पदों के बारे में दो बातें लागू होती हैं : (1) व्याघाती पदों का एक साथ विधान नहीं हो सकता, (2) व्याघाती पदों का एक साथ निषेध नहीं हो सकता। व्याघाती पदों के स्वरूप की इन दो विशेषताओं को व्याघात नियम और मध्याभाव नियम क्रमशः प्रकट करते हैं। इस प्रकार ये तीनों नियम एक-दूसरे के पूरक हैं, और ये तीनों ही मौलिक हैं।

यदि कोई वस्तु अ है तो वह अ है। कोई भी वस्तु अ और न-अ नहीं हो सकती। प्रत्येक वस्तु या तो अ है या न-अ है। ये तीनों नियम एक-दूसरे की अपेक्षा रखते हैं। इसलिए ये तीनों नियम मौलिक हैं। एक वस्तु की रचना का सामान्य रूप इनमें से किसी भी एक नियम के बिना समझा नहीं जा सकता।

## 4. पर्याप्त हेतु नियम

## (Law of Sufficient Reason)

लाइबनीज (leibniz) के अनुसार अरस्तु के तीन नियमों के अलावा "पर्याप्त हेतु नियम" भी एक मौलिक नियम है। इस नियम को इस प्रकार प्रकट करते हैं : एक वस्तु जैसी है, उसके वैसा ही होने का पर्याप्त हेतु या कारण है। यदि एक कथन सत्य है तो उसके सत्य होने का पर्याप्त हेतु है और यदि वह असत्य है तो उसके असत्य होने का पर्याप्त हेतु है। कोई भी कथन पर्याप्त हेतु के बिना सत्य या असत्य नहीं हो सकता। इस नियम का ही रूपान्तर कारणता नियम (law of causation) है। कारणता नियम का अर्थ है कि कोई भी घटना या परिवर्तन बिना कारण के नहीं होता। एक व्यक्ति अन्धा है तो उसके अन्धा होने का कारण है। इस नियम में विश्वास घटनाओं को समझने के लिए मनुष्य के बौद्धिक प्रयास का आधार है।

## 5. विचार नियमों की सामान्य विशेषताएँ

विचार के इन नियमों के सामान्य स्वरूप को समझने के लिए यह स्पष्ट रूप से समझना आवश्यक है कि ये किस अर्थ में नियम नहीं हैं और ये किस अर्थ में नियम हैं।

सबसे पहले तो यह समझना आवश्यक है कि ये नियम मनोवैज्ञानिक अर्थ में विचार के नियम नहीं हैं। ये नियम विचारों के बारे में नहीं हैं। इनमें यह नहीं बताया जाता कि हम विचार कैसे करते हैं।

दूसरे, ये नियम आदेशात्मक या प्रेरणात्मक भी नहीं हैं। 'ऐसे विचार करना चाहिये' 'ऐसे विचार नहीं करना चाहिये' यह रूप भी इन नियमों का नहीं है। तो, इन नियमों का क्या स्वरूप है ? इन नियमों का स्वरूप इनकी निम्नलिखित विशेषताओं से स्पष्ट हो जायेगा :

(1) ये नियम आकारिक (formal) हैं। ये नियम विचार-मात्र की विषय-वस्तु के सामान्य आकार के बारे में हैं उसकी विषय-वस्तु के बारे नहीं हैं। रसायन-शास्त्र के नियम रसायनिक यौगिकों की रचना के बारे में होते हैं, मनोविज्ञान के नियम भावों, संवेगों, स्थायीभावों, मानसिक ग्रन्थियों तथा प्रत्ययों आदि की रचना के बारे में होते हैं। लेकिन विचार के नियमों का सम्बन्ध किसी विशेष प्रकार की वस्तुओं के आकार से नहीं है, अपितु विचार की विषय-भूत प्रत्येक वस्तु के सामान्य रूप से हैं। 'अ, अ है' यह नियम प्रत्येक वस्तु के आकार के बारे में लागू होता है।

(2) ये नियम अति-सामान्य हैं। प्रत्येक नियम सामान्य होता है क्योंकि वह एक प्रकार की सब वस्तुओं पर लागू होता है। लेकिन विचार के ये नियम अति-सामान्य हैं। इनसे अधिक सामान्य नियम और नहीं हैं क्योंकि जो भी कुछ विचार का विषय बन सकता है, उस पर ये नियम लागू होते हैं।

(3) ये नियम सरल हैं। इनका और अधिक सरल नियमों में विश्लेषण नहीं किया जा सकता।

(4) ये ज्ञान और विचार के आधारभूत नियम हैं। इन नियमों को माने बिना कोई भी ज्ञानवर्धक कथन सम्भव नहीं। यदि एक व्यक्ति एक कथन के बाद उसका व्याघाती कथन करता है, तो वह अपने पहले कथन को काटता है। यह बिल्कुल वैसा ही है जैसे एक पंक्ति लिखकर उसे काट देना।

(5) ये स्वयंसिद्ध सत्य है। ये जगत् की रचना सम्बन्धी नियम हैं। ये काल्पनिक नहीं हैं[1]। लेकिन ये जगत् की रचना सम्बन्धी ऐसे नियम हैं कि इन्हें अन्य प्रमाण से प्रमाणित नहीं किया जा सकता क्योंकि प्रत्येक प्रमाण इन नियमों की अपेक्षा रखता है। इनका सत्य होना, विचार की प्रत्येक क्रिया में झलकता है। इसलिए, ये स्वयं-प्रकाश या स्वयंसिद्ध नियम हैं।

## 6. विचार नियमों की आधुनिक व्याख्या

आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार तादात्म्य नियम और मध्याभाव नियम तार्किक सत्य (logical truth) अथवा आकारिक सत्य (formal truth) के दो उदाहरण हैं, तथा व्याघात नियम तार्किक असत्य (logical falsity) अथवा आकारिक असत्य (formal falsity) का उदाहरण है।

ये तीनों नियम प्रतिज्ञप्तियों के आकार के बारे में हैं। संक्षेप में इन नियमों का स्वरूप इस प्रकार है।

### 6·1. तादात्म्य नियम

(क) यदि एक प्रतिज्ञप्ति सत्य है तो वह सत्य है।

---

1. इस सम्बन्ध में आधुनिक तर्क-शास्त्रियों और प्राचीन तर्क-शास्त्रियों में मतभेद है। आधुनिक तर्क-शास्त्री इन नियमों को जगत् सम्बन्धी नियम नहीं मानते बल्कि निगमन के काल्पनिक नियम मानते हैं।

यदि हम किसी भी एक प्रतिज्ञप्ति के लिए प को प्रतीक मान लें, तो इस नियम को प्रकट करने के निम्नलिखित रूप भी हो सकते हैं :

(ख) यदि प सत्य है तो सत्य है।
(ग) यदि प तो प।

प्रतीकात्मक भाषा में[1]

(घ) प ⊃ प।

### 6·2. मध्याभाव नियम

मध्याभाव नियम को प्रकट करने के विविध रूप निम्नलिखित हैं :

(क) एक प्रतिज्ञप्ति या तो सत्य है या असत्य है।
(ख) प सत्य है या प असत्य है।
(ग) प या न-प।

प्रतीकात्मक भाषा में[2]

(घ) प v ∼प

### 6·3. व्याघात नियम

व्याघात नियम को प्रकट करने के विविध रूप निम्नलिखित हैं :

(क) ऐसा नहीं हो सकता कि एक प्रतिज्ञप्ति सत्य और असत्य दोनों हो।
(ख) 'प सत्य है और प सत्य नहीं है' यह व्याघाती कथन का रूप है।
(ग) प . ∼प व्याघात है[3]।

हम प्रथम अध्याय में आनुभविक सत्य (empirical truth) और अनुभवनिरपेक्ष सत्य (a priori truth) में अन्तर कर चुके हैं। इस अन्तर को यहाँ दोहराना उपयोगी होगा।

जिस प्रतिज्ञप्ति का सत्य होना अनुभव से जाना जाता है, उस प्रतिज्ञप्ति का सत्य आनुभविक सत्य है। जैसे 'नमक पानी में घुल जाता है' एक सत्य प्रतिज्ञप्ति है। इसका सत्य आनुभविक है। आनुभविक सत्य को आपातिक सत्य (contingent truth) भी कहते हैं।

---

1. 'यदि—तो—' के स्थान पर '⊃' प्रतीक का प्रयोग किया जाता है। इस प्रतीक की व्याख्या आगे अध्याय 16 में करेंगे।

2. प्रतीकों की कुञ्जी :
   प = कोई भी एक प्रतिज्ञप्ति।
   v = या
   ∼प = न-प अर्थात् प सत्य नहीं है।
   . = और

3. प . ∼प ≡ प सत्य है और प सत्य नहीं है।

जिस प्रतिज्ञप्ति का सत्य होना, उसके आकार (form) की विशेषता है, उसे तार्किक सत्य; आकारिक सत्य (formal truth) अथवा प्रागनुभविक सत्य (a priori truth) कहते हैं। तादात्म्य नियम तथा मध्याभाव नियम आकारिक सत्य के दो उदाहरण हैं। आकारिक सत्य ऐसा सत्य है जो प्रतिज्ञप्ति के आकार के कारण ही सत्य हैं :

यदि प सत्य है तो प सत्य है।

प सत्य है या प असत्य है।

प्रतिज्ञप्तियों के ऐसे दो आकार हैं, जिन आकारों वाली प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति अवश्य सत्य होगी। लेकिन ऐसी प्रतिज्ञप्तियाँ तथ्य-सम्बन्धी नहीं होतीं। जो प्रतिज्ञप्तियाँ अपने आकार के कारण ही सत्य हैं उन्हें पुनरुक्ति (tautology) कहते हैं। इस प्रकार,

यदि प तो प

प या न-प

पुनरुक्तियों के रूप हैं।

जिस प्रकार आनुभविक सत्य और प्रागनुभविक सत्य में अन्तर करते हैं उसी प्रकार आनुभविक असत्य और प्रागनुभविक असत्य में भी अन्तर करते हैं। प्रागनुभविक असत्य अथवा आकारिक असत्य को व्याघात (contradiction) कहते हैं। जो प्रतिज्ञप्ति अपने आकार के कारण ही असत्य है वह व्याघाती प्रतिज्ञप्ति है। 'राम विवाहित है और राम अविवाहित है' व्याघाती प्रतिज्ञप्ति है। यह अपने आकार के कारण ही असत्य है।

परम्परागत व्याघात नियम व्याघात का एक उदाहरण है। 'प और न-प' व्याघात का एक रूप है।

## 7. विचार नियमों के सम्बन्ध में परम्परागत तर्कशास्त्र और आधुनिक तर्कशास्त्र में अन्तर

1. परम्परागत तर्कशास्त्र में ये तीनों नियम पदों के प्रयोग के सम्बन्ध में हैं, जबकि आधुनिक तर्कशास्त्र में प्रतिज्ञप्तियों के आकार के सम्बन्ध में हैं।

2. परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार ये नियम वास्तविक जगत् सम्बन्धी नियम हैं, ये वस्तुओं के रूप-सम्बन्धी नियम हैं, आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार ये नियम जगत् सम्बन्धी नियम नहीं हैं। ये निगमन की मान्यताएँ हैं।

3. परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार ये ही तीन नियम निगमन के मूल आधार हैं, लेकिन आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार निगमन के आधारभूत नियम इनके अलावा और भी हैं। आगे अध्याय 18 में जो मोडस पोनन्स आदि नौ नियम और साहचर्य तथा नियतिन आदि 10 नियम बताये हैं, वे अनुमान की वैधता के लिए इन नियमों से कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। इस प्रकार, आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार ये नियम निगमन के लिए आवश्यक होते हुए भी पर्याप्त नहीं हैं।

## अभ्यास

1. अरस्तु के अनुसार मूल विचार नियम कौन-से हैं ? उनकी संक्षेप में व्याख्या करो।

2. तादात्म्य नियम का क्या स्वरूप है ? जगत् की परिवर्तनशीलता के साथ इसका मेल कैसे हो सकता है ? इस नियम के तार्किक महत्त्व पर प्रकाश डालो।

3. तादात्म्य नियम तथा मध्याभाव नियम की अलग-अलग व्याख्या करो तथा इनका अन्तर स्पष्ट करो।

4. तीनों विचार नियमों के सम्बन्ध पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।

5. पर्याप्त हेतु नियम पर टिप्पणी लिखो।

6. आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार विचार के तीन नियमों का स्वरूप स्पष्ट करो।

7. तीन विचार नियमों की व्याख्या के सम्बन्ध में परम्परागत तर्कशास्त्र और आधुनिक तर्कशास्त्र में क्या अन्तर है ? स्पष्ट करो।

खण्ड 2

# आधुनिक प्रतिज्ञप्तीय न्याय और परिमापन

# 16

# मिश्र प्रतिज्ञप्तियाँ

## 1. मिश्र प्रतिज्ञप्ति और सरल प्रतिज्ञप्ति

बहुत-सी युक्तियों में मिश्र प्रतिज्ञप्तियाँ शामिल होती हैं। ऐसी युक्तियों का ठीक-ठीक विश्लेषण करने और उनकी वैधता की परीक्षा करने के लिए मिश्र प्रतिज्ञप्तियों का विश्लेषण आवश्यक है।

जिस प्रतिज्ञप्ति की रचना का अवयव प्रतिज्ञप्ति हो उसे मिश्र प्रतिज्ञप्ति कहते हैं। जिस प्रतिज्ञप्ति का कोई अवयव स्वतन्त्र प्रतिज्ञप्ति नहीं बन सकता वह सरल प्रतिज्ञप्ति है। 'राम अच्छा लड़का है' एक सरल प्रतिज्ञप्ति है। 'यह बात असत्य है कि राम अच्छा लड़का है' एक मिश्र प्रतिज्ञप्ति है क्योंकि इसका एक अवयव 'राम अच्छा लड़का है' एक प्रतिज्ञप्ति है।

**सत्यताफलनिक मिश्र प्रतिज्ञप्ति :** एक सरल प्रतिज्ञप्ति के सत्य या असत्य होने को उसका सत्यता मूल्य (truth value) कहते हैं। सत्य प्रतिज्ञप्ति का सत्यता मूल्य सत्य कहा जाता है और असत्य प्रतिज्ञप्ति का सत्यता मूल्य असत्य कहा जाता है। 'श्रीमती इन्दिरा गाँधी जवाहर लाल की पुत्री है' का सत्यता मूल्य सत्य है। 'श्रीमती इन्दिरा गाँधी महात्मा गाँधी की पुत्री है' का सत्यता मूल्य असत्य है।

जिस प्रकार सरल प्रतिज्ञप्ति का सत्यता मूल्य सत्य या असत्य होता है, उस प्रकार मिश्र प्रतिज्ञप्ति का भी सत्यता मूल्य सत्य या असत्य होता है। जिस मिश्र प्रतिज्ञप्ति का सत्यता मूल्य उसकी घटक प्रतिज्ञप्तियों के सत्यता मूल्य पर निर्भर हो अर्थात् उससे फलित होता हो, उस मिश्र प्रतिज्ञप्ति को सत्यताफलनिक मिश्र प्रतिज्ञप्ति कहते हैं। 'यह असत्य है कि श्रीमती इन्दिरा गाँधी महात्मा गाँधी की पुत्री है' एक सत्यताफलनिक मिश्र प्रतिज्ञप्ति है। 'श्रीमती इन्दिरा गाँधी महात्मा गाँधी की पुत्री है', इसकी घटक प्रतिज्ञप्ति है। सुविधा के लिए इस प्रतिज्ञप्ति को 'इ' मान लेते हैं। यदि 'इ' सत्य है तो 'यह असत्य है कि इ' असत्य होगी। यदि 'इ' असत्य है तो, 'यह असत्य है कि इ' सत्य होगी। इस प्रकार 'यह असत्य है कि इ' प्रतिज्ञप्ति का सत्यता मूल्य इसकी घटक प्रतिज्ञप्ति इ के सत्यता मूल्य का फलन है। इसलिए, यह प्रतिज्ञप्ति सत्यताफलनिक मिश्र प्रतिज्ञप्ति है।

कुछ मिश्र प्रतिज्ञप्तियाँ सत्यताफलनिक नहीं होतीं। 'मेरा विश्वास है कि श्रीमती इन्दिरा गाँधी साहसी महिला है', मिश्र प्रतिज्ञप्ति होने पर भी सत्यताफलनिक नहीं है। 'श्रीमती इन्दिरा गाँधी साहसी महिला है' के सत्यता मूल्य से 'मेरा विश्वास है कि श्रीमती इन्दिरा गाँधी साहसी महिला है', का सत्यता मूल्य फलित नहीं होता। हम यहाँ केवल सत्यताफलनिक मिश्र प्रतिज्ञप्तियों का अध्ययन करेंगे।

मिश्र प्रतिज्ञप्तियों को अणु प्रतिज्ञप्ति (molecular propositions) और सरल प्रतिज्ञप्ति को परमाणु प्रतिज्ञप्ति (atomic proposition) भी कहते हैं।

## 2. सत्यताफलनिक संक्रियाएँ
## (Truth-functional operations)

**सत्यताफलनिक संक्रियाओं के पाँच प्रकार :** सत्यताफलनिक प्रतिज्ञप्तियाँ सत्यताफलनिक संक्रियाओं द्वारा बनती हैं। किसी प्रतिज्ञप्ति के सम्बन्ध में की गयी वह क्रिया जिसका परिणाम एक नयी प्रतिज्ञप्ति हो प्रतिज्ञप्तिक संक्रिया कहलाती है और जिस प्रतिज्ञप्तिक संक्रिया का परिणाम सत्यताफलनिक प्रतिज्ञप्ति हो वह सत्यताफलनिक संक्रिया कहलाती है। निषेध, संयोजन, वियोजन, आपादन और द्वि-आपादन पाँच सत्यताफलनिक संक्रियाएँ हैं। इनसे क्रमशः निषेधात्मक प्रतिज्ञप्ति, संयोजक प्रतिज्ञप्ति, वियोजक प्रतिज्ञप्ति, आपादनात्मक प्रतिज्ञप्ति तथा द्वि-आपादनात्मक प्रतिज्ञप्ति—ये पाँच प्रकार की मिश्र प्रतिज्ञप्तियाँ बनती हैं।

केवल निषेध एक-प्रतिज्ञप्तिक संक्रिया है। शेष संक्रियाएँ द्विप्रतिज्ञप्तिक हैं।

**अचर और प्रतिज्ञप्तिक चर :** भाषा में निषेध को 'नहीं' से संयोजन को 'और' से, वियोजन को 'या' से, आपादन को 'यदि—तो—' से तथा द्वि-आपादन को 'जब और केवल जब' से प्रकट करते हैं। इसलिए भाषा में इन्हें प्रतिज्ञप्तिक सम्बन्धक (propositional connectives) या प्रतिज्ञप्तिक संक्रिया कारक (propositional operators) कहते हैं। तर्कशास्त्र में इन सम्बन्धकों के स्थान पर सरल चिह्न रखे जाते हैं। इन को अचर (constants) कहते हैं।

मिश्र प्रतिज्ञप्तियों का प्रतीकात्मक अंकन करने के लिए जिन अचरों (constants) का प्रयोग किया जाता है वे इस प्रकार हैं :

| संक्रिया | संक्रिया को प्रकट करने वाला भाषीय सम्बन्धक | अचर |
|---|---|---|
| निषेध | नहीं, या यह नहीं है कि | $\sim$ |
| संयोजन | और | $\cdot$ |
| वियोजन | या | $\vee$ |
| आपादन | यदि—तो— | $\supset$ |
| द्वि-आपादन | जब और केवल जब | $\equiv$ |

**प्रतिज्ञप्तिक चर :** प्रतिज्ञप्तिक चर (propositional variable) वह चिह्न है जिसके स्थान पर कोई भी प्रतिज्ञप्ति रखी जा सकती हो। हम प वर्ग के अक्षरों, प, फ, ब, भ, म का प्रयोग प्रतिज्ञप्तिक चरों के रूप में करेंगे।

एक प्रतिज्ञप्तिक चर का अर्थ होता है कोई भी एक प्रतिज्ञप्ति। प्रतिज्ञप्तिक चरों तथा अचरों के द्वारा मिश्र प्रतिज्ञप्तियों के सामान्य आकार निम्नलिखित ढंग से प्रकट कर सकते हैं :

यदि प कोई भी एक प्रतिज्ञप्ति है, तो उसके निषेध का रूप '∼प' होगा। '∼प' को 'न-प' पढ़ेंगे।

यदि प और फ कोई भी दो प्रतिज्ञप्तियाँ हों तो 'प . फ' किन्हीं भी दो प्रतिज्ञप्तियों का संयोजन होगा। इसी प्रकार 'प v फ' वियोजन, 'प ⊃ फ' आपादन और प ≡ फ' द्वि-आपादन का आकार होगा।

**प्रतिज्ञप्तिक संक्षेप :** प, फ, ब आदि प्रतिज्ञप्तिक चर हैं, प्रतिज्ञप्तियाँ नहीं हैं। ये तो प्रतिज्ञप्तियों के खाली स्थान को घेरने वाले चिह्न हैं जिनके स्थान पर कोई भी प्रतिज्ञप्ति रखी जा सकती है।

लेकिन प्रतिज्ञप्तिक संक्षेप एक विशिष्ट प्रतिज्ञप्ति के लिए प्रयुक्त उसी प्रतिज्ञप्ति का एक वर्ण होता है। जैसे, ऊपर हमने 'इ' का प्रयोग 'श्रीमती इन्दिरा गाँधी गाँधी की पुत्री है' प्रतिज्ञप्ति के लिए किया था। इस सन्दर्भ में '∼इ' का अर्थ होगा : 'यह नहीं है कि श्रीमती इन्दिरा गाँधी गाँधी जी की पुत्री है।'

## 3. प्रतिज्ञप्ति कलन
## (Propositional calculus)

प्रतिज्ञप्तिक संक्रियाओं के परिणामस्वरूप जो प्रतिज्ञप्तियाँ बनती हैं, उनका सत्यता मूल्य संक्रियाकारकों के अर्थ तथा उनसे सम्बन्धित परमाणु प्रतिज्ञप्तियों के सत्यता मूल्य के आधार पर निर्धारित किया जा सकता है। एक मिश्र प्रतिज्ञप्ति का इस प्रकार सत्यतामूल्य निर्धारित करना ही प्रतिज्ञप्ति-कलन कहलाता है। एक मिश्र प्रतिज्ञप्ति केवल एक प्रतिज्ञप्ति पर की गयी संक्रिया का परिणाम हो सकती है और ऐसी भी प्रतिज्ञप्ति हो सकती है जिसकी रचना में अनेक संक्रियाकारक और अनेक परमाणु प्रतिज्ञप्तियाँ हों। जिन प्रतिज्ञप्तियों में अनेक परमाणु प्रतिज्ञप्ति और अनेक संक्रियाकारक शामिल हों उनका कलन अर्थात् उनके सत्यता मूल्य के निर्धारण की क्रिया जटिल होती है। जैसे गणित में +, —, ÷ और × की संक्रियाओं का अलग-अलग अभ्यास करने के बाद उनकी मिली-जुली क्रियाएँ करना सरल हो जाता है. उसी प्रकार ∼, ., v, ⊃ तथा ≡ की संक्रियाओं का पहले अलग-अलग अभ्यास करने के बाद इनकी जटिल क्रियाओं को समझना सरल हो जाता है।

यहाँ यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखनी है कि ~, ., v, ⊃ तथा ≡ संक्रियाकारक विशुद्ध रूप से सत्यताफलनिक हैं। हम किन्हीं दो प्रतिज्ञप्तियों को इनसे सम्बन्धित करके मिश्र प्रतिज्ञप्ति बना सकते हैं। उदाहरण के रूप में, 'राम तर्कशास्त्र पढ़ता है' और 'गंगा जल पवित्र है' प्रतिज्ञप्तियों का अर्थ की दृष्टि से कोई सम्बन्ध नहीं बनता। लेकिन संयोजन, वियोजन आदि संक्रियाएँ तो विशुद्ध रूप से आकारिक हैं। इस प्रकार इन दो प्रतिज्ञप्तियों पर ., v, ⊃ तथा ≡ की संक्रियाएँ करके मिश्र प्रतिज्ञप्तियाँ बना सकते हैं। इस प्रकार जो प्रतिज्ञप्तियाँ बनेंगी वे सार्थक होंगी, भले ही वे वास्तविक सम्बन्धों की दृष्टि से फिजूल लगें। हम यहाँ 'राम तर्कशास्त्र पढ़ता है', के लिए र, और 'गंगाजल पवित्र है' के लिए ग का प्रयोग करेंगे। इस प्रकार,

र . ग ≡ राम तर्कशास्त्र पढ़ता है और गंगाजल पवित्र है।

र v ग ≡ राम तर्कशास्त्र पढ़ता है या गंगाजल पवित्र है।

र ⊃ ग ≡ यदि राम तर्कशास्त्र पढ़ता है तो गंगाजल पवित्र है।

र ≡ ग ≡ गंगाजल तब पवित्र है, जब और केवल जब राम तर्कशास्त्र पढ़ता है। सब सार्थक सत्यताफलनिक कथन हैं।

'र ⊃ ग' आदि उपर्युक्त प्रतिज्ञप्तियों का भाषा में जो रूपान्तर दिया है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि ये प्रतिज्ञप्तियाँ अर्थहीन हैं। इसका कारण यह है कि 'और' 'या', 'यदि—तो', 'जब और केवल जब' भाषीय सम्बन्धक सत्यताफलनिक सम्बन्धक तो हैं लेकिन ये विशुद्ध रूप से सत्यताफलनिक सम्बन्धक नहीं हैं। सत्यताफलनिक होने के साथ-साथ ये तथ्यों के वास्तविक सम्बन्धों को भी प्रकट करते हैं। इसलिए भाषा की दृष्टि से 'राम तर्कशास्त्र पढ़ता है और मोहन गणित पढ़ता है' जहाँ सार्थक वाक्य है, वहाँ 'राम तर्कशास्त्र पढ़ता है और गंगाजल पवित्र है' बेतुका वाक्य लगता है। लेकिन तर्कशास्त्र में ऐसे वाक्यों का विश्लेषण करते समय हम 'और' आदि का केवल सत्यताफलनिक अर्थ ही लेंगे। इससे यह बात भी स्पष्ट है कि भाषा में "और" का जो अर्थ है, वही अर्थ तर्कशास्त्र में प्रतीक "." का नहीं है, यद्यपि 'और' के अर्थ में "." का अर्थ भी शामिल है। इस प्रकार तर्कशास्त्र में भाषीय सम्बन्धकों, 'और' आदि का प्रयोग न करके ., v, ⊃ आदि चिह्नों का प्रयोग करने का महत्त्व समझा जा सकता है। इन चिह्नों का अर्थ परिभाषा द्वारा निश्चित करेंगे।

## 4. निषेध, संयोजन और वियोजन

**निषेध, ~ :** तर्कशास्त्र में निषेध को प्रतीक, ~ से प्रकट किया जाता है। ~ को कुटिल (curl) कहते हैं। निषेध किसी प्रतिज्ञप्ति का किया जाता है। जिस प्रतिज्ञप्ति का निषेध किया जाता है वह सरल या मिश्र हो सकती है। ~ का प्रयोग सदा उस प्रतिज्ञप्ति के पहले किया जाता है जिसका निषेध किया जाता है। मान लीजिये, हम भ को 'भारत रंगभेद नीति में विश्वास रखता है' का संक्षिप्त चिह्न मानते हैं।

भ का निषेधात्मक रूप ~भ होगा । ~भ को 'न-भ' पढ़ेंगे । ~भ को भाषा में निम्न लिखित ढंग से रूपान्तरित कर सकते हैं :

(1) ऐसा नहीं है कि भारत रंगभेदनीति में विश्वास रखता है ।
(2) यह असत्य है कि भारत रंगभेदनीति में विश्वास रखता है ।
(3) यह सत्य नहीं है कि भारत रंगभेदनीति में विश्वास रखता है ।
(4) भारत रंगभेदनीति में विश्वास नहीं रखता ।

यदि प कोई भी एक प्रतिज्ञप्ति हो, तो प के निषेध का सामान्य रूप ~प होगा । '~' सत्यताफलनिक सम्बन्धक है । किसी प्रतिज्ञप्ति के पहले ~ लगने से जो प्रतिज्ञप्ति बनेगी, वह मिश्र सत्यताफलनिक प्रतिज्ञप्ति होगी क्योंकि उसका सत्यतामूल्य उस प्रतिज्ञप्ति के सत्यतामूल्य से फलित होगा जिसका निषेध किया जा रहा है । ~ का सत्यताफलनिक अर्थ इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं :

यदि प सत्य है तो ~प असत्य होगा और यदि प असत्य है तो ~प सत्य होगा ।

**द्वि-निषेध नियम :** जिस प्रकार ~प तब और केवल तब सत्य होगा जब प असत्य हो, उसी प्रकार प तब और केवल तब सत्य होगा जब ~प असत्य हो । इस प्रकार प का विधान करने का अर्थ ~प का निषेध करना है और ~प के निषेध करने का अर्थ प का विधान करना है । इसे ही द्विनिषेध नियम कहते हैं प्रतीकात्मक भाषा में द्विनिषेध नियम इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

प ≡ ~~प

अथवा

~~प ≡ प

'भारत शान्ति प्रिय देश है' और 'यह असत्य है कि भारत शान्ति प्रिय देश नहीं है' तुल्य कथन हैं ।

**संयोजन :** किन्हीं भी दो अथवा अधिक प्रतिज्ञप्तियों का संयोजन किया जा सकता है । भाषा में संयोजन को 'और' से प्रकट करते हैं । 'लेकिन', 'परन्तु', 'यद्यपि' भी संयोजन बोधक हैं । तर्कशास्त्र में प्रतीक, '.' अर्थात् बिन्दु का प्रयोग संयोजनबोधक के रूप में अर्थात् संयोजक के रूप में किया जाता है । यदि प कोई एक प्रतिज्ञप्ति है और फ कोई एक अन्य प्रतिज्ञप्ति है तो इन दोनों के संयोजन से बनने वाली प्रतिज्ञप्ति का रूप 'प . फ' होगा । इसे 'प और फ' पढ़ेंगे । 'प . फ' संयोजक प्रतिज्ञप्ति का सामान्य आकार है । एक संयोजक प्रतिज्ञप्ति की घटक प्रतिज्ञप्तियों को संयुतक (conjuncts) कहते हैं । यदि ज=जवाहर लाल नेहरू भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री थे, और र=राजेन्द्र प्रसाद भारत के प्रथम राष्ट्रपति थे, तो 'ज . र' एक संयोजक प्रतिज्ञप्ति बनेगी और ज और र इसके संयुतक होंगे ।

संयोजन का सत्यताफलनिक अर्थ इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं : एक संयोजक प्रतिज्ञप्ति तब और केवल तब सत्य होगी, जब उसका प्रत्येक संयुतक (conjunct) सत्य हो ।

दूसरे शब्दों में, यदि संयोजक प्रतिज्ञप्ति का एक भी संयुतक असत्य है, तो वह संयोजक प्रतिज्ञप्ति असत्य होगी। इस प्रकार संयोजन के सत्यताफलनिक अर्थ में निम्नलिखित बातें निहित हैं:

सत्य और सत्य का संयोजन सत्य होगा।

सत्य और असत्य का संयोजन असत्य होगा।

असत्य और असत्य का संयोजन असत्य होगा।

1-**उदाहरण**:

**कुञ्जी**

ज=जवाहर लाल नेहरू भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री थे। (सत्य)

र=राजेन्द्र प्रसाद भारत के प्रथम राष्ट्रपति थे। (सत्य)।

क=कालिदास ने रामचरित मानस की रचना की। (असत्य)

स=सूरदास ने मेघदूत की रचना की। (असत्य)

इस प्रकार 'ज . र' तो सत्य प्रतिज्ञप्ति होगी क्योंकि इसके दोनों संयुतक सत्य हैं। 'ज . क', 'र . क', 'क . स' असत्य प्रतिज्ञप्तियाँ होंगी। संयोजक प्रतिज्ञप्ति में दो से अधिक भी संयुतक हो सकते हैं। लेकिन वह सत्य तभी होगी जब उसका प्रत्येक संयुतक सत्य हो। ज . र . क' एक असत्य संयोजक प्रतिज्ञप्ति होगी क्योंकि इसका एक संयुतक, क, असत्य है।

एक संयोजक प्रतिज्ञप्ति के संयुतक विधानात्मक हो सकते हैं, जैसे कि ऊपर के उदाहरणों में। वे निषेधात्मक भी हो सकते हैं। जैसे, 'कालिदास ने रामचरित मानस की रचना नहीं की' और 'सूरदास ने मेघदूत की रचना नहीं' की संयोजक प्रतिज्ञप्ति उपर्युक्त प्रतीकावली के अनुसार '∼क . ∼स' होगी। ∼क और ∼स सत्य प्रतिज्ञप्तियाँ हैं। इसलिए, इनकी संयोजक प्रतिज्ञप्ति अर्थात् '∼क . ∼स' सत्य होगी।

**वियोजन** (disjunction) v :— भाषा में किन्हीं दो प्रतिज्ञप्तियों को जब "या" या "अथवा" से जोड़ते हैं, तो वियोजक प्रतिज्ञप्ति बनाते हैं। इस प्रकार, "या" और "अथवा" भाषीय वियोजक हैं। लेकिन भाषा में "या" और "अथवा" का अर्थ अस्पष्ट रहता है। उदाहरण के रूप में 'सीता गाना जानती है या नाचना जानती है' इस वाक्य का अर्थ दो प्रकार से कर सकते हैं: (1) सीता गाना जानती है या नाचना जानती है या गाना और नाचना दोनों जानती है। (2) सीता गाना जानती है या नाचना जानती है लेकिन वह नाचना और गाना दोनों नहीं जानती। यहाँ वियोजन का पहला अर्थ निर्बल (weak) अथवा संग्राहक (inclusive) है और दूसरा अर्थ सबल (strong) अथवा व्यावर्त्तक (exclusive) है। तार्किक दृष्टि से निर्बल अथवा संग्राहक अर्थ वियोजन का मूल अर्थ है। लातानी भाषा में vel शब्द वियोजन के निर्बल अर्थ का बोधक है। इसी आधार पर निर्बल वियोजन का प्रतीक v स्वीकार किया गया

है। सबल वियोजन के लिए निश्चित प्रतीक का प्रयोग करने की परम्परा नहीं है। हम सबल वियोजन के लिए v के परिवर्तित रूप अर्थात् ʌ का प्रयोग करेंगे। यदि ग को 'सीता गाना जानती है' का और न को 'सीता नाचना जानती है' का संक्षिप्त चिह्न मानें तो 'ग v न' का अर्थ होगा कि ग और न में से कम-से-कम एक अवश्य सत्य है और 'ग ʌ न' का अर्थ होगा कि ग और न में से एक और केवल एक सत्य है। जब तक वियोजन का सबल या व्यावर्तक अर्थ पूर्णतः स्पष्ट न हो, तब तक उसका अर्थ निर्बल या संग्राहक ही लेना चाहिये।

वियोजक प्रतिज्ञप्ति की घटक प्रतिज्ञप्तियों को वियुतक (disjuncts) कहते हैं। 'ग v न' के वियुतक ग और न हैं। तर्कशास्त्र में वियोजन भी विशुद्ध रूप से आकारिक संक्रिया है। किन्हीं भी दो प्रतिज्ञप्तियों का वियोजन हो सकता है। इस प्रकार यदि प कोई एक प्रतिज्ञप्ति है और फ कोई अन्य प्रतिज्ञप्ति है, तो किन्हीं भी दो प्रतिज्ञप्तियों से बनने वाली वियोजक प्रतिज्ञप्ति का सामान्य रूप प v फ होगा। प v फ के सत्य होने के लिए प और फ में से कम-से-कम एक का सत्य होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में प v फ केवल तब असत्य होगी जब प और फ दोनों असत्य हों।

**क्रम-विनिमेय नियम :** संयोजन और वियोजन दोनों के सम्बन्ध में क्रम-विनिमेय नियम लागू होता है। क्रम-विनिमेय का भाव है, एक मिश्र प्रतिज्ञप्ति की घटक प्रतिज्ञप्तियों के स्थान की अदला-बदली। संयोजक प्रतिज्ञप्ति और वियोजक प्रतिज्ञप्ति की घटक प्रतिज्ञप्तियों का स्थान बदलने से उनके सत्यतामूल्य में कोई अन्तर नहीं आता। संयोजन और वियोजन के सम्बन्ध में क्रम-विनिमेय नियम को इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं।

$$प . फ \equiv फ . प$$

$$प \vee फ \equiv फ \vee प$$

'सीता नाचना जानती है या गाना जानती है' और 'सीता गाना जानती है या नाचना जानती है' तुल्य कथन हैं। इसी प्रकार 'सीता नाचना जानती है और गाना जानती है' और 'सीता गाना जानती है और नाचना जानती है' तुल्य कथन हैं।

**सबल वियोजन** ʌ : हम यह बता चुके हैं कि भाषा में 'या' का अर्थ कभी सबल या व्यावर्तक रूप में लिया जाता है। सबल अर्थ में 'या' का अर्थ 'या, लेकिन दोनों नहीं' के बराबर होता है। मान लीजिये एक बच्चा अपने पिता से घड़ी और साइकिल दोनों खरीदवाने का आग्रह कर रहा है। उसका पिता उससे कहता है कि तुम इस महीने घड़ी ले सकते हो या साइकिल ले सकते हो। यहाँ यह स्पष्ट है कि "इस महीने घड़ी ले सकते हो या साइकिल ले सकते हो" से लड़के के पिता का भाव यह है कि 'तुम इस महीने घड़ी ले सकते हो या साइकिल ले सकते हो, लेकिन दोनों नहीं ले सकते।' यदि घ को 'तुम इस महीने घड़ी ले सकते हो' का संक्षिप्त चिह्न मानें और स को 'तुम इस महीने साइकिल ले सकते हो' का तो उपर्युक्त प्रतिज्ञप्ति का

संक्षिप्त रूप 'घ Δ स' होगा। 'घ Δ स' को 'घ व्यावर्तक या स' पढ़ेंगे। 'घ Δ स' सत्य तब और केवल तब होगा जब घ और स में से एक सत्य हो और एक असत्य हो। दूसरे शब्दों में, जब 'घ . स' और '~घ . ~स' दोनों असत्य हों तब 'घ Δ स' सत्य होगा। इस प्रकार सामान्य रूप से, प कोई एक प्रतिज्ञप्ति हो और फ कोई एक अन्य प्रतिज्ञप्ति हो तो 'प Δ फ' की परिभाषा इस प्रकार होगी :

$$प \Delta फ \equiv \sim(प . फ) . \sim(\sim प . \sim फ)।$$

## 5. संयोजन और वियोजन का निषेध

**संयोजन का निषेध** : संयोजक प्रतिज्ञप्ति का सामान्य रूप 'प . फ' है। इस प्रकार संयोजक प्रतिज्ञप्ति के निषेध का रूप ~(प . फ) होगा। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि एक संयोजक प्रतिज्ञप्ति के निषेध का अर्थ उसके प्रत्येक संयुतक का निषेध नहीं है। ~(प . फ) का अर्थ (~प . ~फ) नहीं है। 'यह असत्य है कि सीता नाचना और गाना दोनों जानती है' का अर्थ यह नहीं है कि 'न तो सीता नाचना जानती है और न गाना जानती है।' संक्षेप में,

$$\sim(प . फ) \neq \sim प . \sim फ$$

अर्थात् ~(प . फ) तुल्य नहीं है ~प . ~फ के।

~(प . फ) का अर्थ है ~प v ~फ।

इस प्रकार,

$$\sim(प . फ) \equiv \sim प \lor \sim फ$$

उदाहरण के रूप में, 'यह असत्य है कि सीता नाचना और गाना दोनों जानती है' का अर्थ है कि 'सीता नाचना नहीं जानती है अथवा गाना नहीं जानती है।

**वियोजन का निषेध** : वियोजन से यहाँ हमारा अभिप्राय निर्बल वियोजन है। प्रश्न यह है कि एक वियोजक प्रतिज्ञप्ति के निषेध का क्या अर्थ है। यहाँ भी यह ध्यान देने की बात है कि ~(प v फ) का अर्थ ~प v ~फ नहीं है। ~(प v फ) का अर्थ ~प . ~फ है। संक्षेप में,

$$\sim(प \lor फ) \neq \sim प \lor \sim फ$$

बल्कि

$$\sim(प \lor फ) \equiv \sim प . \sim फ$$

उदाहरण के रूप में, 'यह असत्य है कि सीता नाचना या गाना जानती है' का अर्थ होगा कि 'सीता न तो नाचना जानती है और न गाना जानती है'।

**प Δ फ का निषेध ~(प Δ फ)** : प Δ फ तब और केवल तब सत्य हो सकता है जब प . फ और ~प . ~फ दोनों असत्य हों। इस प्रकार प Δ फ का निषेध अर्थात्

$\sim(\text{प} \wedge \text{फ})$ तब सत्य होगा जब $\text{प} \cdot \text{फ}$ सत्य हो अथवा $\sim\text{प} \cdot \sim\text{फ}$ सत्य हो। अतः $\sim(\text{प} \wedge \text{फ})$ का अर्थ इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं :

$$\sim(\text{प} \wedge \text{फ}) \equiv (\text{प} \cdot \text{फ}) \vee (\sim\text{प} \cdot \sim\text{फ})$$

जिस पिता ने अपने पुत्र से घड़ी और साइकिल में से केवल एक चीज़ दिलाने का वायदा किया है, वह यदि दोनों चीज़ें दिलाता है, तब अपना वचन भंग करता है और यदि वह दोनों में से कोई भी नहीं दिलाता तब भी अपना वचन भंग करता है।

## 6. आपादन और द्वि-आपादन

**आपादन** (Implication) : 'यदि—तो—' के द्वारा दो प्रतिज्ञप्तियों को सम्बन्धित करके जो मिश्र प्रतिज्ञप्ति बनती है, उसे सोपाधिक प्रतिज्ञप्ति, हेतुफलात्मक प्रतिज्ञप्ति या आपादनात्मक प्रतिज्ञप्ति कहते हैं। यदि प कोई भी एक प्रतिज्ञप्ति हो और फ कोई एक अन्य प्रतिज्ञप्ति तो 'यदि प तो फ' सोपाधिक या आपादनात्मक प्रतिज्ञप्ति का सामान्य आकार होगा। तर्कशास्त्र में 'यदि—तो—' के लिए घोड़े की नाल की आकृति, $\supset$, का प्रयोग किया जाता है।

'यदि प तो फ' का प्रतीकात्मक रूप होगा :

$\text{प} \supset \text{फ}$ ।

'यदि प तो फ' के आकार वाली मिश्र प्रतिज्ञप्ति में जो घटक प्रतिज्ञप्ति 'यदि—' से जुड़ी होती है, उसे आपादक (implicans) और जो प्रतिज्ञप्ति 'तो' से जुड़ी होती है उसे आपाद्य (implicate) कहते हैं। आपादक को $\supset$ के पहले और आपाद्य को $\supset$ के

र

बाद लिखा जाता है। उदाहरण के रूप में 'यदि राम को बुखार आ रहा है, तो राम

ब

बीमार है।'

में र आपादक है और ब आपाद्य है। इसे प्रतीकात्मक रूप में 'र $\supset$ ब' लिखेंगे।

इस प्रतिज्ञप्ति को भाषा में, 'राम बीमार है, यदि राम को बुखार आ रहा है' के रूप में भी लिख सकते हैं। लेकिन इसका 'ब $\supset$ र' के रूप में प्रतीकीकरण गलत होगा। 'ब $\supset$ र' का भाषा में रूपान्तर 'यदि राम बीमार है तो राम को बुखार आ रहा है' होगा। इस प्रकार 'र $\supset$ ब' और 'ब $\supset$ र' भिन्न-भिन्न प्रतिज्ञप्तियाँ होंगी। $\supset$ के सम्बन्ध में क्रम-विनिमेय नियम नहीं है : $(\text{र} \supset \text{ब}) \not\equiv (\text{ब} \supset \text{र})$। इसलिए, यह आवश्यक है कि आपादनात्मक प्रतिज्ञप्ति को प्रतीकात्मक रूप में रखते समय उसकी घटक प्रतिज्ञप्तियों की तार्किक स्थिति को ध्यान में रखा जाये।

र $\supset$ ब को पढ़ने के निम्नलिखित रूप हैं :

अ. यदि र तो ब।

आ. र ब का आपादन करता है अथवा र आपादन ब ।

इ. ब का र से आपादन होता है।

ई. र की सत्यता ब के सत्य होने के लिए पर्याप्त है ।

ऊ. ब की सत्यता र की सत्यता के लिए आवश्यक है ।

⊃, **'यदि—तो—' का सत्यताफलनार्थ** : 'प ⊃ फ' अर्थात् 'यदि प तो फ' रूप वाली प्रतिज्ञप्ति में केवल यह दावा किया जाता है कि यदि प सत्य है तो फ अवश्य सत्य होगा । आपादक की सत्यता आपाद्य की सत्यता के लिए पर्याप्त होती है, और आपाद्य की सत्यता आपादक की सत्यता के लिए आवश्यक होती है । 'प ⊃ फ' में यह दावा है कि प की सत्यता फ की सत्यता के लिए पर्याप्त है अर्थात् यदि प सत्य है तो फ की सत्यता निश्चित है । इसमें, यह भी भाव निहित है कि फ की सत्यता प की सत्यता के लिए आवश्यक है अर्थात् जब तक फ सत्य नहीं होगा तब तक प सत्य नहीं हो सकता । इस प्रकार 'प ⊃ फ' आकार वाली प्रतिज्ञप्ति केवल तब असत्य हो सकती है, जब प सत्य हो और फ असत्य हो । शेष सभी अवस्थाओं में यह प्रतिज्ञप्ति सत्य होगी । यदि प और फ कोई दो कथन हों तो उनके निम्नलिखित चार सत्यतामूल्य सम्भव हो सकते हैं :

1. प सत्य और फ सत्य
2. प सत्य और फ असत्य
3. प असत्य और फ सत्य
4. प असत्य और फ असत्य

'प ⊃ फ' केवल दूसरी अवस्था में असत्य समझी जायेगी । शेष तीनों अवस्थाओं में सत्य समझी जायेगी । उदाहरण के रूप में, एक पिता अपने पुत्र से यह वायदा करता है, यदि तुम इस वर्ष की परीक्षा में अपने स्कूल में प्रथम आओगे तो तुम्हें एक घड़ी दूंगा । लड़के का पिता निम्नलिखित अवस्थाओं में से किन-किन अवस्थाओं में अपना वायदा पूरा करता है और किन-किन अवस्थाओं में अपना वायदा तोड़ता है ?

1. लड़का कक्षा में प्रथम आता है और पिता उसे घड़ी इनाम में देता है ।
2. लड़का कक्षा में प्रथम आता है और पिता उसे घड़ी इनाम में नहीं देता ।
3. लड़का कक्षा में प्रथम नहीं आता है और पिता उसे घड़ी इनाम में देता है ।
4. लड़का कक्षा में प्रथम नहीं आता और पिता उसे घड़ी इनाम में नहीं देता ।

लड़के का पिता केवल अवस्था (2) में अपना वायदा तोड़ता है और शेष तीनों अवस्थाओं में वह अपना वायदा नहीं तोड़ता । पाठक के मन में यह शंका हो सकती है कि अवस्था 3 में पिता अपना वायदा कैसे नहीं तोड़ता । वायदे के स्वरूप पर विचार करने से यह शंका दूर हो जायेगी । जहाँ परीक्षा में लड़के के प्रथम आने पर घड़ी का इनाम देना वायदे का अंग है वहाँ परीक्षा में प्रथम न आने पर घड़ी का इनाम देना

घा न देना वायदे का अंग नहीं है । लड़के के प्रथम न आने पर पिता की मर्जी है कि वह घड़ी दे या न दे । इसलिए परीक्षा में लड़के के प्रथम न आने पर यदि पिता घड़ी नहीं देता (अवस्था 4) तो भी वह अपना वायदा नहीं तोड़ता और यदि वह घड़ी देता है (अवस्था 3) तो भी वह अपना वायदा नहीं तोड़ता ।

इस प्रकार 'प ⊃ फ' के सत्य होने के लिए यह पर्याप्त है कि फ सत्य हो या प असत्य हो । इस स्पष्टीकरण के अनुसार प्रतीकात्मक ढंग से 'प ⊃ फ' की परिभाषा दो प्रकार से दी जा सकती है :

(1) प ⊃ फ ≡ ~(प . ~फ) अर्थात् ऐसा नहीं है कि प सत्य है और फ सत्य नहीं है ।

(2) प ⊃ फ ≡ (~प v फ) अर्थात् या तो प असत्य है या फ सत्य है ।

**वास्तविक आपादन** (Real implication), **आकारिक आपादन** (Formal implication) **और वस्तुगत आपादन** (Material implication) : भाषा में 'यदि —तो—' के द्वारा दो प्रतिज्ञप्तियों को सम्बन्धित करते समय उनके अर्थ को भी ध्यान में रखा जाता है । उदाहरण के रूप में 'यदि राम को आज बुखार आ रहा है, तो राम आज बीमार है' एक सार्थक कथन है । लेकिन 'यदि राम को आज बुखार आ रहा है, तो चन्द्रमा एक मक्खन की टिकिया है' भाषा की दृष्टि से बेतुका कथन होगा । प्रतिज्ञप्तीय तर्कशास्त्र में हमारा सम्बन्ध प्रतिज्ञप्तियों के अर्थ और अर्थ के आधार पर बनने वाले उनके सम्बन्धों से नहीं है । यहाँ हम केवल उनके सत्यतामूल्यों के सम्बन्धों पर विचार करते हैं । दो प्रतिज्ञप्तियों के आपादनात्मक सम्बन्ध का अर्थ केवल उनके सत्यतामूल्यों का आपादन लिया जाता है । क्योंकि प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति का सत्यतामूल्य होता है, इसलिए किन्हीं भी दो प्रतिज्ञप्तियों को आपादन से जोड़ा जा सकता है और इस प्रकार बनने वाली आपादनात्मक प्रतिज्ञप्ति का सत्यतामूल्य भी उसकी घटक प्रतिज्ञप्तियों के सत्यतामूल्य के आधार पर निश्चित किया जा सकता है । तर्कशास्त्र में प्रतिज्ञप्तियों के अर्थ के आधार पर बनाये गये आपादन को वास्तविक आपादन (real implication) कहते हैं, और उनके विशुद्ध सत्यतामूल्य की दृष्टि से बने आपादन को वस्तुगत आपादन (material implication) कहते हैं । कार्य से कारण का आपादन वास्तविक आपादन है । जैसे—'यदि रसोईघर में धुआँ है तो रसोईघर में आग है' यह प्रतिज्ञप्ति कारण सम्बन्धी आपादन अर्थात् वास्तविक आपादन को प्रकट करती है ।

वस्तुगत आपादन (material implication) और आकारिक आपादन (formal implication) में भी अन्तर है । एक वैध अनुमान की आधारिकाओं और उसके निष्कर्ष में आकारिक आपादन का सम्बन्ध होता है । जैसे :

सब मनुष्य मरणशील प्राणी हैं ।

सब राजा मनुष्य हैं ।

∴ सब राजा मरणशील प्राणी हैं ।

एक वैध युक्ति है। इसकी आधारिकाओं के आकार से निष्कर्ष का आपादन होता है। आपादनात्मक प्रतिज्ञप्ति के रूप में इस युक्ति को निम्नलिखित ढंग से बदल सकते हैं :

यदि सब मनुष्य मरणशील हैं और सब राजा मनुष्य हैं तो सब राजा मरणशील प्राणी हैं। यह आकारिक आपादन का एक उदाहरण है। यहाँ ऐसा होना असम्भव है कि आपादक सत्य हो और आपाद्य असत्य हो। आकारिक आपादन वहाँ माना जाता है, जहाँ आपादक के सत्य होने पर आपाद्य का असत्य होना असम्भव हो।

'यदि प सत्य है तो फ अवश्य ही सत्य है' आकारिक आपादन का स्वरूप है। लेकिन वस्तुगत आपादन का स्वरूप है : यदि प सत्य है तो फ यथार्थ में सत्य है। आकारिक आपादन और वस्तुगत आपादन के स्वरूप का अन्तर निम्नलिखित ढंग से प्रकट कर सकते हैं :

| **आकारिक आपादन** | **वस्तुगत आपादन** |
|---|---|
| यदि प सत्य है तो फ अवश्य सत्य है। ऐसा नहीं हो सकता कि प सत्य हो और फ असत्य हो। | यदि प सत्य है तो फ सत्य है। ऐसा नहीं है कि प सत्य हो और फ असत्य हो। |

निम्नलिखित कथन वस्तुगत आपादन प्रकट करता है :

"यदि तुम सिनेमा जाओगे तो मैं सैर करने जाऊँगा।" इसका अर्थ केवल इतना है कि यथार्थ में ऐसा नहीं है कि तुम सिनेमा जाओ और मैं सैर करने न जाऊँ। यहाँ न तो कारणात्मक आपादन अर्थात् वास्तविक आपादन है और न आकारिक आपादन है। यहाँ केवल वस्तुगत आपादन है। वस्तुगत आपादन को '⊃' से प्रकट किया जाता है।

'प ⊃ फ' का अर्थ है कि यथार्थ में प से फ का आपादन होता है। दूसरे शब्दों में, ऐसा यथार्थ में नहीं है कि प सत्य हो और फ असत्य हो। इसका यह अर्थ नहीं है कि ऐसा असम्भव है कि प सत्य हो और फ असत्य हो।

वस्तुगत आपादन का स्वरूप अधिक व्यापक है। जहाँ वास्तविक आपादन तथा जहाँ आकारिक आपादन है, वहाँ पर भी वस्तुगत आपादन तो लागू होता ही है। लेकिन वस्तुगत आपादन के ऐसे भी उदाहरण हो सकते हैं जिनमें न तो वास्तविक आपादन हो और न आकारिक आपादन हो। तर्कशास्त्र में विशेषकर निगमन के सम्बन्ध में वस्तुगत आपादन को आपादन का स्वरूप मानकर चलते हैं।

**वस्तुगत आपादन का विरोधाभास :** ऊपर हम यह देख चुके हैं कि 'यदि प तो फ' आकार वाली प्रतिज्ञप्ति के सत्य होने के लिए यह पर्याप्त है कि फ सत्य हो अथवा प असत्य हो। यहाँ हमने यह स्पष्ट कर दिया है कि 'प ⊃ फ' के आकार में किन्हीं भी प्रतिज्ञप्तियों को रखा जा सकता है। इस प्रकार फ कोई भी सत्य प्रतिज्ञप्ति है, तो 'प ⊃ फ' सत्य है। यदि प कोई भी असत्य प्रतिज्ञप्ति है, तो 'प ⊃ फ' सत्य है। इसका अर्थ यह हुआ :

1. एक सत्य प्रतिज्ञप्ति हर किसी अन्य प्रतिज्ञप्ति से आपाद्य होती है ।
2. एक असत्य प्रतिज्ञप्ति हर किसी अन्य प्रतिज्ञप्ति का आपादन करती है ।

इस प्रकार,

सत्य सत्य
(1) 'यदि जवाहर लाल भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री थे, तो तुलसीदास ने रामचरित मानस की रचना की' सत्य है ।

सत्य असत्य
(2) 'यदि जवाहर लाल भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री थे, तो कालिदास ने रातचरित मानस की रचना की' असत्य है ।

असत्य सत्य
(3) 'यदि कालिदास ने रामचरित मानस की रचना की, तो जवाहरलाल भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री थे' सत्य है ।

असत्य असत्य
(4) 'यदि कालिदास ने रामचरित मानस की रचना की, तो चन्द्रमा पृथ्वी से बड़ा है' सत्य है ।

**सारांश**

(1) सत्य का आपादन सत्य और असत्य दोनों से होता है ।
(2) असत्य से सत्य और असत्य दोनों का आपादन होता है ।

इसे वस्तुगत आपादन का विरोधाभास कहते हैं ।

**आपादन और प्रत्यापादन** (Implication and counterimplication) : 'प ⊃ फ' का तार्किक स्वरूप स्पष्ट करते हुए यह स्पष्ट किया जा चुका है कि इसमें प की सत्यता फ की सत्यता के लिए पर्याप्त है, और फ की सत्यता प की सत्यता के लिए आवश्यक है । यहाँ हमें 'पर्याप्ति आधार' और 'आवश्यक आधार' का अन्तर स्पष्ट रूप से समझना चाहिये । न तो पर्याप्त आधार का आवश्यक आधार होना आवश्यक है और न आवश्यक आधार का पर्याप्त आधार होना । उदाहरण के रूप में राम को बुखार होना राम के बीमार होने के लिए पर्याप्त है, लेकिन राम को बुखार होना राम के बीमार होने के लिए आवश्यक नहीं है; राम को बुखार न होने पर भी राम बीमार हो सकता है । इसी प्रकार, राम का बीमार होना राम को बुखार होने के लिए आवश्यक तो है, लेकिन पर्याप्त नहीं । 'यदि राम को बुखार है तो राम बीमार है' में 'यदि राम बीमार है तो राम को बुखार है' निहित नहीं है । लेकिन 'यदि राम को बुखार है तो राम बीमार है' में 'यदि राम बीमार नहीं है तो राम को बुखार नहीं है' निहित है । प्रतीकात्मक रूप में इसी बात को सामान्य रूप से इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं :

$$(\text{प} \supset \text{फ}) \not\equiv (\text{फ} \supset \text{प})$$

लेकिन,

$(प \supset फ) \equiv (\sim फ \supset \sim प)$

प्रकान्तर से इसे कहेंगे कि यदि प, फ का आपादन करता है तो ~फ, ~प का प्रत्यापादन करता है।

$(प \supset फ) \equiv (\sim फ \supset \sim प)$ को अन्तर्विनिमय नियम (law of transposition) कहते हैं।

**उत्क्रम आपादन** (Implication in-reverse) : निम्नलिखित दो वाक्यों के अर्थ पर विचार करें और यह देखने का प्रयत्न करें कि क्या इनमें कुछ अन्तर है :

(1) यदि तुम मुझे रूसी भाषा पढ़ाओगे तो मैं तुम्हें संस्कृत पढ़ाऊँगा।

(2) केवल जब तुम मुझे रूसी भाषा पढ़ाओगे तो मैं तुम्हें संस्कृत पढ़ाऊँगा।

यहाँ हम विचार की सुविधा के लिए 'तुम मुझे रूसी भाषा पढ़ाओगे' के लिए र और 'मैं तुम्हें संस्कृत पढ़ाऊँगा' के लिए स संक्षिप्त चिह्न अपनायेंगे। (1) में र को स के लिए पर्याप्त हेतु बताया है। इसलिए (1) का प्रतीकीकरण 'र ⊃ स' के रूप में ठीक होगा। लेकिन (2) में यह नहीं बताया गया कि र, स के लिए पर्याप्त हेतु है। इसमें यह कहा गया है कि र, स की आवश्यक उपाधि है। इसका भाव है कि र की सत्यता स की सत्यता के लिए अनिवार्य तो है, लेकिन पर्याप्त नहीं। यदि र, स के लिए अनिवार्य है, तो स की सत्यता र की सत्यता का पर्याप्त हेतु होगी ही। दूसरे शब्दों में, (2) में यह बताया गया है कि स से र का आपादन होता है, न कि यह बताया है कि र से स का आपादन होता। इस प्रकार (2) का प्रतीकीकरण 'स ⊃ र' के रूप में होगा, न कि 'र ⊃ स' के रूप में।

सारांश यह है कि सोपाधिक प्रतिज्ञप्ति की जिस घटक प्रतिज्ञप्ति के साथ 'केवल जब' जुड़ता है, वह आपादक नहीं होती अपितु आपाद्य होती है और उससे अन्य जो प्रतिज्ञप्ति होती है, वह आपादक होती है। इस प्रकार, जिस प्रतिज्ञप्ति के साथ 'केवल जब' जुड़ता है, वह अपने से अन्य प्रतिज्ञप्ति के साथ उत्क्रम आपादन (implication in-reverse) के रूप में सम्बन्धित होती है।

**द्वि-आपादन** : 'यदि' और 'केवल यदि', अर्थात् 'केवल जब' का तार्किक अर्थ स्पष्ट रूप से समझने के बाद 'जब और केवल जब' का तार्किक अर्थ आसानी से समझा जा सकता है। निम्नलिखित वाक्य के अर्थ पर विचार करें :

जब और केवल जब तुम मुझे रूसी पढ़ाओगे तो मैं तुम्हें संस्कृत पढ़ाऊँगा।

इस वाक्य में 'जब तुम मुझे रूसी पढ़ाओगे तो मैं तुम्हें संस्कृत पढ़ाऊँगा' और 'केवल जब तुम मुझे रूसी पढ़ाओगे तो मैं तुम्हें संस्कृत पढ़ाऊँगा' इन वाक्यों का अर्थ सम्मिलित है। पीछे निर्धारित संक्षिप्त चिह्नों का प्रयोग करते हुए 'जब तुम मुझे रूसी पढ़ाओगे तो मैं तुम्हें संस्कृत पढ़ाऊँगा' का 'र ⊃ स' के रूप में, और 'केवल जब तुम मुझे रूसी पढ़ाओगे तो मैं तुम्हें संस्कृत पढ़ाऊँगा' का 'स ⊃ र' के रूप में प्रतीकीकरण करेंगे।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त विचारणीय वाक्य में यह बताया है कि र से स का आपादन होता है और स से र का, अर्थात् र और स एक-दूसरे का आपादन करते हैं। यही द्वि-आपादन की स्थिति है। द्वि-आपादन के लिए तीन पड़ी छड़, ≡, को प्रतीक के रूप में स्वीकार करते हैं। इस प्रकार, उपर्युक्त वाक्य का प्रतीकीकरण 'र ≡ स' होगा। इसे पढ़ेंगे : जब और केवल जब र तो स। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'र ≡ स' का विस्तृत रूप '(र ⊃ स) . (स ⊃ र)' होगा।

**सत्यताफलनार्थ :** 'प ≡ फ' आकार की प्रतिज्ञप्ति द्वि-उपाधिक प्रतिज्ञप्ति (biconditional proposition) कहलाती है। एक द्वि-उपाधिक प्रतिज्ञप्ति तब सत्य होती है जब और केवल जब उसकी दोनों संघटक प्रतिज्ञप्तियाँ या तो सत्य हों या दोनों असत्य हों। 'प ≡ फ' का सत्यताफलनिक अर्थ निम्नलिखित ढंग से व्यक्त कर सकते हैं

(प ≡ फ) = [(प . फ) v (~प . ~फ)]

## 7. परिभाषाएँ

~, ., v, ⊃ तथा ≡ का अलग-अलग अर्थ स्पष्ट करने के बाद अब यह स्पष्ट करेंगे कि कम-से-कम सम्बन्धकों के आधार पर अन्य सम्बन्धकों की परिभाषाएँ किस प्रकार दे सकते हैं।

पहले ~ और . के आधार पर शेष अन्य सम्बन्धकों को परिभाषित करेंगे।

**v की ~, . के द्वारा परिभाषा :** यह स्पष्ट कर चुके हैं कि प और फ में से कम-से-कम एक सत्य हो तो 'प v फ' सत्य होगा। दूसरे शब्दों में, 'प v फ' तब और केवल तब सत्य होगा जब प और फ दोनों एक साथ असत्य न हों। इस प्रकार 'प v फ' की परिभाषा बनी :

(1) प v फ = ~(~प . ~फ)

**~ और . के आधार पर ∆ की परिभाषा :** ∆ को हमने सबल वियोजन का प्रतीक माना है। 'प ∆ फ' का अर्थ है कि न तो प और फ दोनों एक साथ सत्य हैं और न दोनों एक साथ असत्य हैं। इस प्रकार 'प ∆ फ' की परिभाषा निम्नलिखित बनी :

(2) प ∆ फ = ~(प . फ) . ~(~प . ~फ)

**⊃ की ~ और . के द्वारा परिभाषा :** 'प ⊃ फ' का अर्थ है कि ऐसा नहीं है कि प सत्य हो और फ असत्य हो। इस प्रकार 'प ⊃ फ' की परिभाषा बनी :

(3) प ⊃ फ = ~(प . ~फ)

**≡ की ~ और . के द्वारा परिभाषा :** 'प ≡ फ' का अर्थ (प ⊃ फ) . (फ ⊃ प) है। 'प ⊃ फ' की परिभाषा ~(प . ~फ) के रूप में दी जा चुकी है।

इसी प्रकार (फ ⊃ प) की परिभाषा ~(फ . ~प) हुई। अतः 'प ≡ फ' की परिभाषा बनी :

(4) प ≡ फ = ~(प . ~फ) . ~(~प . फ)

अब ~ और v के द्वारा अन्य सम्बन्धकों को परिभाषित करेंगे :

**~ और v के द्वारा . की परिभाषा :** 'प . फ' तब और केवल तब असत्य हो सकता है जब ~प और ~फ में से कम-से-कम एक सत्य हो। इस प्रकार ~ और v के द्वारा 'प . फ' की निम्नलिखित परिभाषा बनती है :

(5) प . फ = ~(~प v ~फ)

**Δ की ~ और v के द्वारा परिभाषा :** 'प Δ फ' का अर्थ है कि प और फ में से एक सत्य है और एक असत्य है। इस प्रकार इसका अर्थ हुआ कि 'प . ~फ सत्य है अथवा ~प . फ' सत्य है। प्रतीकात्मक रूप में

प Δ फ = (प . ~फ) v (~प . फ)

लेकिन यहाँ ., ~ और v तीन सम्बन्धकों का प्रयोग है। इसे ~ और v के द्वारा अभिव्यक्त करने के लिए . को v में परिवर्तित करना होगा। 'प . ~फ' को v और ~ के द्वारा ~(~प v फ) के द्वारा प्रकट करेंगे। इसी प्रकार ~प . फ को ~(प v ~फ) के द्वारा प्रकट करेंगे। इस प्रकार केवल ~ और v के द्वारा Δ की परिभाषा निम्नलिखित बनी :

(6) प Δ फ = ~(~प v फ) v ~(प v ~फ)

**~ और v के द्वारा ⊃ की परिभाषा :** यह स्पष्ट कर चुके हैं कि वस्तुगत आपादन का प्रतीक ⊃ है। वस्तुगत आपादन के सन्दर्भ में यह भी स्पष्ट कर चुके हैं कि यदि प असत्य हो या फ सत्य हो तो 'प ⊃ फ' अवश्य सत्य होगा। इस प्रकार ~ और v के द्वारा ⊃ की निम्नलिखित परिभाषा बनी :

(7) प ⊃ फ = ~प v फ

**≡ की ~ और v के द्वारा परिभाषा :** क्योंकि 'प ≡ फ' का रूपान्तर (प ⊃ फ) . (फ ⊃ प) है। प ⊃ फ की परिभाषा ~प v फ है और फ ⊃ प की परिभाषा ~फ v प है। इस प्रकार, प ≡ फ की परिभाषा (~प v फ) . (~फ v प) बनी। लेकिन इस परिभाषा में . का प्रयोग है। . का v में रूपान्तर करने से परिभाषा का रूप इस प्रकार बना :

(8) प ≡ फ = ~[~(~प v फ) v ~(~फ v प)]

⊃ और ~ के द्वारा भी ., v, Δ तथा ≡ को परिभाषित कर सकते हैं। लेकिन विस्तार भय से इन परिभाषाओं की यहाँ व्याख्या नहीं करते।

## 8. प्रतीकात्मक कथनों के ग्रुप बनाना और कोष्ठकों का प्रयोग

भाषा के वाक्य में एक से अधिक सम्बन्धक हों तो उन सम्बन्धकों का क्षेत्र निर्धारित करने के लिए अर्धविराम आदि चिह्नों का प्रयोग किया जाता है। ऐसे वाक्यों को प्रतीकात्मक रूप में प्रकट करते समय प्रतीकों के बलाबल की परम्परा तथा कोष्ठकों के प्रयोग का सहारा लिया जाता है।

अर्धविराम चिह्नों के प्रयोग के कारण निम्नलिखित दो वाक्यों का रचनाभेद स्पष्ट है :

(1) राम ने गर्म सूट खरीदा, या शीला ने साड़ी और मञ्जु ने फ्राक खरीदा।

(2) राम ने गर्म सूट खरीदा या शीला ने साड़ी खरीदी, और मञ्जु ने फ्राक खरीदा।

इन दोनों वाक्यों के अन्तर को प्रतीकात्मक भाषा में प्रदर्शित करने के लिए कोष्ठक का प्रयोग करना होगा।

यहाँ हम निम्नलिखित कुञ्जी का प्रयोग करते हैं :

र = राम ने गर्म सूट खरीदा

श = शीला ने साड़ी खरीदी

म = मञ्जु ने फ्राक खरीदा।

कोष्ठक के प्रयोग के आधार पर (1) का प्रतीकात्मक रूप होगा : र v (श . म)। इसी प्रकार (2) का प्रतीकात्मक रूप होगा : (र v श) . म।

इसी प्रकार

(3) यह बात असत्य है कि राम परिश्रमी और धनवान् दोनों है।

तथा

(4) राम परिश्रमी नहीं है लेकिन धनवान् है।

को प्रतीकात्मक ढंग से भिन्न-भिन्न ढंग से प्रकट करेंगे।

(3) को ∼(प . ध) के रूप में तथा (4) को (∼प) . ध के रूप में प्रकट करेंगे।

जिस प्रकार गणित में, का, ÷, ×, +, − के बलाबल की परम्परा है, उसी प्रकार तर्कशास्त्र में भी ∼, . आदि सम्बन्धकों के बलाबल की परम्परा है जो इस प्रकार है :

सबसे बलवान् ∼, ., v, ⊃, ≡ सबसे निर्बल

इस परम्परा के अनुसार (∼प) . फ में कोष्ठक व्यर्थ है। इसे ∼प . फ के रूप में लिखा जा सकता है। इसी प्रकार (प . फ) v ब में भी कोष्ठक व्यर्थ है। इसे भी प . फ v ब के रूप में लिखने में वही अर्थ लिया जायेगा जो प . फ को कोष्ठक में बन्द करने पर होगा। इसी प्रकार :

(5) (प . फ) v (ब . भ)
(6) (प . फ) ⊃ प
(7) (प . फ) ≡ (फ . प)

में कोष्ठकों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है।

लेकिन (8) प . (फ v ब)
(9) ∼(प . फ)
(10) (प ⊃ फ) . (प ⊃ ∼ब)

में कोष्ठक का प्रयोग अनिवार्य है। उदाहरण के रूप में (8) को यदि बिना कोष्ठक के अर्थात् प . फ v ब के रूप में प्रकट करें तो इसका अर्थ (प . फ) v ब लिया जायेगा।

### अभ्यास 1

हिन्दी के वाक्यों का प्रतीकात्मक भाषा में रूपान्तरण :

कुछ संकेत :

1. एक सरल वाक्य के लिए उस वाक्य के किसी प्रमुख शब्द का कोई वर्ण उसके संक्षिप्त चिह्न के रूप में प्रयुक्त करें।

2. एक मिश्र वाक्य में एक सरल वाक्य का प्रयोग जितनी बार हो, उतनी बार उसके प्रतीक के रूप में एक ही वर्ण का प्रयोग करें।

3. एक मिश्र वाक्य को प्रतीकात्मक रूप में प्रकट करने के लिए एक वर्ण का प्रयोग केवल एक ही सरल वाक्य के लिए करें।

4. सम्बन्धकों के बलाबल के नियम का ध्यान रखें।

5. भाषा में, और, यद्यपि, किन्तु, परन्तु, तथा, मगर के अर्थ भेद की उपेक्षा कर दें और प्रत्येक के लिए संयोजक '.' का प्रयोग करें।

6. 'या' को निर्बल वियोजन के अर्थ में ही लें और प्रत्येक दशा में 'या' के लिए 'v' का प्रयोग करें।

7. वाक्यों की तार्किक रचना पर ध्यान दें।

8. सरल वाक्यों के संक्षिप्त चिह्नों की कुञ्जी स्पष्ट रूप में दें।

हल किये हुए कुछ उदाहरण :

1. राम ने गणित में या हिन्दी में 90 प्रतिशत अंक प्राप्त किये हैं।

कुञ्जी :

ग = राम ने गणित में 90 प्रतिशत अंक प्राप्त किये हैं।

ह = राम ने हिन्दी में 90 प्रतिशत अंक प्राप्त किये हैं।

मिश्र वाक्य का प्रतीकात्मक रूप :

ग v ह।

2. राम गणित में पास नहीं हुआ या अंग्रेजी में पास नहीं हुआ, और मोहन अपनी कक्षा में प्रथम आया है।

कुञ्जी :

ग=राम गणित में पास हुआ है।

अ=राम अंग्रेजी में पास हुआ है।

म=मोहन अपनी कक्षा में प्रथम आया है।

मिश्र वाक्य का प्रतीकात्मक रूप :

(~ग ∨ ~अ) . म।

ध्यान रखिये यहाँ कोष्ठका का प्रयोग आवश्यक है।

3. यदि तुम्हारा उच्चारण शुद्ध है और भाषा पर तुम्हारा अधिकार है और तुम्हारे विचारों में मौलिकता है तो तुम अपने भाषण से लोगों को प्रभावित कर सकते हो।

कुञ्जी :

उ=तुम्हारा उच्चारण शुद्ध है।

अ=भाषा पर तुम्हारा अधिकार है।

म=तुम्हारे विचारों में मौलिकता है।

प=तुम अपने भाषण से लोगों को प्रभावित कर सकते हो।

मिश्र वाक्य का प्रतीकात्मक रूप :

उ . अ . म ⊃ प।

4. यदि न तो तुम मेरी सहायता करते हो और न तुम्हारा मित्र मोहन मेरी सहायता करता है तो हरि मेरी सहायता करेगा।

कुञ्जी :

त=तुम मेरी सहायता करते हो।

म=तुम्हारा मित्र मोहन मेरी सहायता करता है।

ह=हरि मेरी सहायता करेगा।

मिश्र वाक्य का प्रतीकात्मक रूप :

~त . ~म ⊃ ह।

5. तुम न तो पशु हो न देवता हो, लेकिन तुम मानव हो।

कुञ्जी :

प=तुम पशु हो।

द=तुम देवता हो।

म=तुम मानव हो।

मिश्र वाक्य का प्रतीकात्मक रूप :

~प . ~द . म।

6. यदि हम यह नहीं जानते कि सत्य क्या है तो हम यह तो जानते ही हैं कि असत्य क्या है, और यदि हम सत्य से प्यार करते हैं और असत्य से घृणा करते हैं तो हम असत्य का विरोध तो कर ही सकते हैं।

कुञ्जी :

स=हम यह जानते हैं कि सत्य क्या है।

अ=हम यह जानते हैं कि असत्य क्या है।

प=हम सत्य से प्यार करते हैं।

घ=हम असत्य से घृणा करते हैं।

व=हम असत्य का विरोध कर सकते हैं।

मिश्र वाक्य का प्रतीकात्मक रूप :

(~स ⊃ अ) . (प . घ ⊃ व)।

7. यह सत्य नहीं है कि भारत ने पाकिस्तान पर आक्रमण किया और भारत ने बंगलादेश की सहायता नहीं की।

कुञ्जी :

आ=भारत ने पाकिस्तान पर आक्रमण किया।

ब=भारत ने बंगला देश की सहायता की।

मिश्र वाक्य का प्रतीकात्मक रूप :

~(आ . ~ब)

8. जब तक गरीबों की हालत नहीं सुधरती हमारा संघर्ष चलता रहेगा।

कुञ्जी :

ग=गरीबों की हालत सुधरती है।

स=संघर्ष चलता रहेगा।

वाक्य का प्रतिकात्मक रूप :

~ग ⊃ स

टिप्पणी : 'जब तक' का अर्थ "यदि" के अर्थ की तरह लगाना है।

9. हम काम पर तब तक नहीं जायेंगे, जब तक हमारी माँगें पूरी नहीं होतीं।

कुञ्जी :

क=हम काम पर जायेंगे।

म=हमारी माँगें पूरी होती हैं।

वाक्य का शुद्ध तार्किक रूप है :

यदि हमारी माँगें पूरी नहीं होतीं तो हम काम पर नहीं जायेंगे।

इसका प्रतीकात्मक रूप हुआ :

~म ⊃ ~क।

10. मैं छात्र-परिषद् के प्रधान के लिए उम्मीदवार के रूप में तब और केवल तब खड़ा होऊँगा, जब मेरा कोई प्रतिद्वन्द्वी न हो।

कुञ्जी :

उ=मैं छात्र-परिषद् के प्रधान के पद के लिए उम्मीदवार के रूप में खड़ा होऊँगा।

प=मेरा कोई प्रतिद्वन्द्वी हो।

वाक्य का प्रतीकात्मक रूप :

उ ≡ ~प।

### अभ्यास 2

सरल वाक्य के लिए वर्णमाला के अक्षरों का प्रयोग करके निम्नलिखित वाक्यों को प्रतीकात्मक रूप में रखो :

1. यदि रात्रि में आसमान साफ है, तो राम को या तो तारे दिखायी देते हैं या उसे रतौंध है।
2. या तो राम या मोहन थियेटर में हैं, और मोहन तो वहाँ है ही।
3. यदि कौओं से कोयल अधिक हैं, तो बगुलों से हंस अधिक हैं और नदियों से नाले अधिक हैं।
4. यदि गांधी टोपी सुन्दर लगती है या मोटरगाड़ी बैलगाड़ी से तेज चलती है, तो तर्कशास्त्र का अध्ययन उपयोगी है।
5. गणेश की पूजा महादेव की पूजा के साथ तब जुड़ी है, जब गणेश शिव के पुत्र हैं और शिव महादेव हैं।
6. मोहन राम का भक्त नहीं है यदि वह शिव से द्रोह करता है और राम की भक्ति करता है।
7. मानव में जब तक पाशविकता का अंश है, तब तक मानव क्षेत्र से हिंसा समाप्त नहीं हो सकती।
8. हनुमान ने लंका जलायी, या आज रविवार है और कल सोमवार होगा।
9. हरियाणा वीरों की भूमि है और ऐवरेस्ट सबसे ऊँची पर्वत चोटी है, या पृथ्वी चन्द्रमा से बड़ी नहीं है।

### अभ्यास 3

कुञ्जी

ट=रवीन्द्रनाथ टैगोर ने गीतांजलि लिखी। (सत्य)

र=राम ने रावण मारा। (सत्य)

क=कालिदास हिन्दी के प्रसिद्ध कवि थे। (असत्य)

स=सूरदास ने रामचरित मानस की रचना की। (असत्य)

उपयुक्त कुञ्जी के आधार पर निम्नलिखित प्रतीकात्मक कथनों को भाषा में प्रकट करो और इनका सत्यतामूल्य निश्चित करो।

1. ट ⊃ र।
2. र ⊃ ट।
3. ट ⊃ क।
4. क ⊃ ट।
5. क ⊃ र।
6. स ⊃ क।
7. क ⊃ स।
8. ट ⊃ ~र।
9. ~र ⊃ ट।
10. ~क ⊃ ~स।
11. ~स ⊃ ~क।
12. ट . र।
13. र . क।
14. ट v र।
15. ट v क।
16. क v स।
17. ~क . ~स।
18. ~क v ~स।
19. ~क v स।
20. ~(क . स)।

# 17

# मिश्र प्रतिज्ञप्तियों से निर्मित युक्तियों के वैध आकार

पिछले अध्याय में हम मिश्र प्रतिज्ञप्तियों के विभिन्न प्रकार और उनके तार्किक अर्थ की व्याख्या कर चुके हैं। इस अध्याय में हम युक्तियों के उन प्रमुख वैध आकारों की व्याख्या करेंगे जिनका आधार मिश्र प्रतिज्ञप्तियाँ हैं।

यह बात तो पहले अध्याय में ही स्पष्ट की जा चुकी है कि युक्ति के आकार और युक्ति में अन्तर है तथा युक्ति के वैध होने का अर्थ युक्ति के आकार का वैध होना है।

युक्ति के एक वैध आकार को युक्ति की वैधता का नियम भी कहते हैं तथा एक वैध युक्ति को वैध आकार अर्थात् वैधता के नियम का दृष्टान्त कहते हैं। किसी युक्ति की वैधता/अवैधता की परीक्षा करते समय यह देखना होता है कि वह युक्ति किसी वैध आकार का दृष्टान्त है या नहीं। यदि एक युक्ति वैध आकार का दृष्टान्त है तो वह वैध है अन्यथा अवैध है।

## 1. द्विनिषेध-नियम

द्विनिषेध नियम जिसका विवेचन पहले कर चुके हैं, अनुमान का एक मूल नियम है। इसका रूप इस प्रकार है :

प

∴ ∼ ∼प

अथवा

∼ ∼प

∴ प

**दृष्टान्त 1.**

राम दर्शनशास्त्र पढ़ता है।

∴ यह असत्य है कि राम दर्शनशास्त्र नहीं पढ़ता।

दृष्टान्त 2.

यह असत्य है कि राम दर्शनशास्त्र नहीं पढ़ता ।
∴ राम दर्शनशास्त्र पढ़ता है ।

## 2. आपादन (Implication) और युक्ति के वैध आकार : मॉडस पॉनेन्स और मॉडस टॉलन्स

हम यह देख चुके हैं कि 'प ⊃ फ' आपादनात्मक प्रतिज्ञप्ति का सामान्य आकार है । इसका अर्थ यह है कि प का सत्य होना फ के सत्य होने के लिए पर्याप्त है और फ का सत्य होना प के सत्य होने के लिए आवश्यक है । दूसरे शब्दों में, 'प ⊃ फ' का अर्थ है : 'यदि प सत्य है तो फ अवश्य सत्य है और यदि फ असत्य है तो प अवश्य असत्य है' । 'प ⊃ फ' के अर्थ के इस विश्लेषण से युक्ति के निम्नलिखित दो वैध आकार स्पष्ट होते हैं :

**नियम 1. मॉडस पॉनेन्स** (Modus Ponens)

प ⊃ फ
प
∴ फ

**नियम 2. मॉडस टॉलन्स** (Modus Tollens)

प ⊃ फ
∼फ
∴ ∼प

मॉडस पॉनन्स के आकार को देखने से पता चलता है कि जिस युक्ति में हेतुफल-प्रतिज्ञप्ति के और उसके हेतुवाक्यांश के सत्य होने के दावे के आधार पर निष्कर्ष में उसके फल-वाक्यांश के सत्य होने का दावा किया जाता है वह वैध है।

**मॉडस पॉनन्स का दृष्टान्त**

मॉडस पॉनन्स का एक दृष्टान्त निम्नलिखित है :

यदि राम को बुखार आ रहा है तो राम बीमार है (र, ब) ।
राम को बुखार आ रहा है ।
∴ राम बीमार है ।

प्रतीकात्मक रूप में :

र ⊃ ब
र
∴ ब

यह युक्ति वैध है क्योंकि यह नियम मॉडस पॉनन्स अर्थात्

प ⊃ फ

प

∴ फ

का दृष्टान्त है ।

**फलवाक्य-विधान-दोष** (Fallacy of affirming the consequent) : जिस युक्ति में हेतुफल प्रतिज्ञप्ति के सत्य होने और उसके फलवाक्यांश के सत्य होने के दावे के आधार पर उसके हेतुवाक्यांश के सत्य होने का दावा निष्कर्ष में किया जाता है, वह अवैध युक्ति होगी । उसमें फलवाक्य-विधान-दोष (Fallacy of affirming the consequent) होता है ।

इस प्रकार युक्ति का निम्नलिखित आकार अवैध है :

प ⊃ फ

फ

∴ प

जैसे :

यदि राम को बुखार आ रहा है तो राम बीमार है ।

राम बीमार है ।

∴ राम को बुखार आ रहा है ।

प्रतीकात्मक रूप में :

र ⊃ ब

ब

∴ र

यह युक्ति अवैध है । इसमें फलवाक्य-विधान-दोष है ।

**मॉडस टॉलन्स का दृष्टान्त** : मॉडस टॉलन्स का अर्थ है कि हेतुफल प्रतिज्ञप्ति के फलवाक्यांश का निषेध करने पर उसके हेतुवाक्यांश का निषेध करना वैध है ।

दृष्टान्त :

यदि राम को बुखार आ रहा है तो राम बीमार है ।

राम बीमार नहीं है ।

∴ राम को बुखार नहीं आ रहा है ।

प्रतीकात्मक रूप में :

र ⊃ ब

~ब

∴ ~र

यह युक्ति नियम मॉडस टॉलन्स

प ⊃ फ

~फ

∴ ~प

का दृष्टान्त है। इसलिए वैध है।

**हेतुवाक्य-निषेध-दोष** (Fallacy of denying the antecedent) : यदि हेतु-वाक्यांश के निषेध करने के आधार पर फलवाक्यांश का निषेध किया जाये तो युक्ति अवैध होगी।

इस प्रकार युक्ति का निम्नलिखित आकार अवैध है :

प ⊃ फ

~प

∴ ~फ

इस आकार में जो भी युक्ति होगी, उसमें हेतुवाक्य-निषेध-दोष होगा।

दृष्टान्त :

यदि राम को बुखार आ रहा है तो राम बीमार है।
राम को बुखार नहीं आ रहा है।
∴ राम बीमार नहीं है।

प्रतीकात्मक रूप में इसे व्यक्त करेंगे :

र ⊃ ब

~र

∴ ~ब

यह युक्ति अवैध है क्योंकि यह अवैध आकार का दृष्टान्त है। इसमें, हेतुवाक्य-निषेध-दोष है।

**हेतुफलात्मक न्याय-वाक्य नियम** (Law of hypothetical syllogism) : युक्ति का एक अन्य वैध आकार हेतुफलात्मक न्याय-वाक्य नियम कहलाता है। यह इस प्रकार है :

प ⊃ फ

फ ⊃ ब

∴ प ⊃ ब

इस न्याय का आधार आपादन सम्बन्ध (implication) का संक्रामी (transitive) होना है। यदि प से फ का आपादन होता है और फ से ब का आपादन होता है तो प से ब का भी आपादन होगा। आपादन सम्बन्धों की यह लड़ी कितनी भी लम्बी क्यों

न हो, हर हालत में सबसे पहली प्रतिज्ञप्ति के हेतुवाक्यांश से अन्तिम प्रतिज्ञप्ति के फलवाक्यांश का आपादन निश्चित रूप में होता है।

दृष्टान्त :

यदि राम पढ़ाई में परिश्रम करता है तो प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होगा (प, उ)।

यदि राम प्रथम श्रेणी में पास होता है, तो उसे अगली कक्षा में छात्रवृत्ति मिलने लगेगी (उ, छ)।

∴ यदि राम पढ़ाई में परिश्रम करता है तो उसे अगली कक्षा में छात्रवृत्ति मिलने लगेगी।

इस युक्ति का प्रतीकात्मक रूप होगा :

$$प \supset उ$$
$$उ \supset छ$$
$$\therefore प \quad छ$$

**आपादन और प्रत्यापादन का तुल्यता नियम :** $(प \supset फ) \equiv (\sim फ \supset \sim प)$

यह कहना कि प का सत्य होना फ के सत्य होने के लिए पर्याप्त है इस कथन के तुल्य है कि फ का असत्य होना प के असत्य होने के लिए पर्याप्त है। इस प्रकार यह नियम बनता है :

$$(प \supset फ) \equiv (\sim फ \supset \sim प)$$

$\sim फ \supset \sim प$ को $प \supset फ$ का प्रत्यापादन (counterimplication) कहते हैं।

दृष्टान्त :

यदि राम भाषण प्रतियोगिता में प्रथम आता है तो उसे पुरस्कार मिलेगा (भ, प)।

और

यदि राम को पुरस्कार नहीं मिलता तो वह भाषण प्रतियोगिता में प्रथम नहीं आया है।

ये दोनों तुल्य कथन हैं। इन्हें प्रतीकात्मक रूप में इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं :

$$(भ \supset प) \equiv (\sim प \supset \sim भ)$$

**निषेधात्मक हेतुफल न्याय :** तुल्यता के इस नियम के आधार पर निम्नलिखित निषेधात्मक हेतुफल न्याय बनता है।

हेतुफल न्याय, निषेधात्मक :

$$प \supset फ$$
$$\sim ब \supset \sim फ$$
$$\therefore \sim ब \supset \sim प$$

क्योंकि

(प ⊃ फ) ≡ (~फ ⊃ ~प)

इसलिए इस युक्ति का विधानात्मक हेतुफल-न्याय में रूपान्तर निम्नलिखित होगा :

~ब ⊃ ~फ
~फ ⊃ ~प
∴ ~ब ⊃ ~प

दृष्टान्त :

(म) यदि राम मोहन का मित्र है तो वह उसकी संकट में सहायता करेगा। (स)

(ग) यदि राम बैंक डकैती काण्ड में मोहन की गवाही नहीं देता तो राम संकट के समय मोहन की सहायता नहीं करता।

∴ यदि राम बैंक डकैती काण्ड में मोहन की गवाही नहीं देता तो राम मोहन का मित्र नहीं है।

प्रतीकात्मक रूप में :

म ⊃ स
~ग ⊃ ~स
∴ ~ग ⊃ ~म

**अवैध आकार** हम यह देख चुके हैं कि 'प ⊃ फ' और 'फ ⊃ प' तुल्य नहीं हैं और न 'प ⊃ फ' और '~प ⊃ ~फ' तुल्य हैं। इसलिए निम्नलिखित युक्ति आकार अवैध बनते हैं :

| अवैध | अवैध |
|---|---|
| प ⊃ फ | प ⊃ फ |
| प ⊃ ब | फ ⊃ ब |
| ∴ फ ⊃ ब | ∴ ब ⊃ प |

| अवैध | अवैध |
|---|---|
| प ⊃ फ | प ⊃ फ |
| ~फ ⊃ ~ब | ~ब ⊃ ~फ |
| ∴ ~ब ⊃ ~प | ∴ ~प ⊃ ~ब |

### अभ्यास

अब तक बताये गये वैध आकारों के आधार पर निम्नलिखित युक्तियों की वैधता/अवैधता निश्चित करें।

**संकेत** : पहले प्रतिज्ञप्तियों के लिए संक्षिप्त प्रतीक निश्चित करके युक्तियों को प्रतीकात्मक रूप में प्रकट करें और फिर यह देखें कि युक्ति का आकार वैध है या नहीं। यदि युक्ति वैध है तो वैधता का नियम भी बतायें, यदि अवैध है तो उसके दोष का नाम बतायें।

(1) यदि राम के पास काला धन है तो वह दण्डनीय है।
राम के पास काला धन नहीं है।
इसलिए, वह दण्डनीय नहीं है।

(2) यदि दुर्घटना से पहले मोटर चालक ने हार्न बजाया है तो वह दोषी नहीं है।
मोटर चालक ने दुर्घटना से पहले हार्न नहीं बजाया।
इसलिए, वह दोषी है।

(3) यदि हरि का पिता दहेज मांगता है तो मीना का उससे विवाह नहीं होगा।
हरि का पिता दहेज नहीं माँगता।
इसलिए, मीना का विवाह हरि से होगा।

(4) यदि विकासशील देश संगठित हो जाते हैं तो बड़े राष्ट्र उनका शोषण नहीं कर सकते।
अब विकासशील देश संगठित हो गये हैं।
इसलिए, अब बड़े राष्ट्र उनका शोषण नहीं कर सकते।

(5) यदि छात्रों की माँगें स्वीकार न की गयीं तो छात्र आन्दोलन करेंगे।
यदि छात्र आन्दोलन करेंगे तो सरकार छात्र नेताओं को जेल में डाल देगी।
इसलिए, यदि छात्रों की माँगें स्वीकार नहीं होती तो छात्र नेताओं को जेल की हवा खाने के लिए तैयार रहना चाहिये।

(6) यदि कक्षा में एक भी विद्यार्थी उपस्थित नहीं है तो प्राध्यापक ने कोई पाठ नहीं पढ़ाया।
यदि प्राध्यापक ने कोई पाठ नहीं पढ़ाया तो उस पाठ में किसी विद्यार्थी की अनुपस्थिति नहीं हो सकती।
इसलिए, यदि कक्षा में कोई भी विद्यार्थी उपस्थित न हो तो उस दिन किसी की अनुपस्थिति नहीं लग सकती।

(7) यदि राम बहुत मोटा है तो उसे दिल का कोई रोग होने की सम्भावना है।
लेकिन राम मोटा नहीं है।
इसलिए, उसे दिल का कोई रोग होने की सम्भावना नहीं है।

(8) यदि बड़े-बड़े पूंजीपति राजनीतिक पार्टियों को बड़ी रकम देते हैं तो युवा संघर्ष समिति उनका घेराव करेगी।

बड़े-बड़े पूंजीपति निश्चित ही राजनीतिक पार्टियों को बड़ी रकम देंगे।

इसलिए, युवा संघर्ष समिति उनका घेराव करेगी।

## 3. वियोजन और युक्ति के वैध आकार

हम यह देख चुके हैं कि वियोजन के सबल वियोजन और निर्बल वियोजन दो आकार हैं।

निर्बल वियोजन का प्रतीक 'v' है और इस अर्थ में वियोजक प्रतिज्ञप्ति का प्रतीकात्मक आकार 'प v फ' बनता है। 'प v फ' के कथन करने का अर्थ यह दावा करना है कि प और फ में से कम-से-कम एक अवश्य सत्य है, लेकिन दोनों भी सत्य हो सकते हैं। जब प और फ दोनों ही असत्य हों तभी 'प v फ' असत्य हो सकता है। इस प्रकार निर्बल वियोजन के आधार पर युक्ति का निम्नलिखित वैध आकार बनाता है :

**वियोजन न्याय-वाक्य :**

प v फ

~प

∴ फ

क्रम विनिमेय के नियम के अनुसार

(प v फ) ≡ (फ v प)

इसलिए,

प v फ

~फ

∴ प

भी वैध है।

दृष्टान्त :

राम गरीब है या कंजूस है (ग, क)

राम गरीब नहीं है।

∴ राम कंजूस है।

प्रतीकात्मक रूप में :

ग v क

~ग

∴ क

यदि युक्ति

ग V क

∼क

∴ ग

हो, तब भी यह वैध होगी।

**अवैध आकार :** निर्बल वियोजन के आधार पर युक्ति के निम्नलिखित आकार अवैध होंगे। इनमें वियुतक विधान दोष (fallacy of affirming a disjunct) माना जायेगा।

अवैध आकार :

| | |
|---|---|
| प V फ | प V फ |
| प | फ |
| ∴ ∼फ | ∴ ∼प |

इस प्रकार

| | |
|---|---|
| ग V क | ग V क |
| ग | क |
| ∴ ∼क | ∴ ∼ग |

अवैध युक्तियाँ होंगी। इनमें वियुतक विधान दोष है।

**सबल वियोजन के न्याय :** सबल वियोजन को 'प Δ फ' के रूप में प्रकट करते हैं। 'प Δ फ' का अर्थ है कि प और फ में से एक सत्य है और एक असत्य है। इस प्रकार सबल वियोजन के आधार पर निम्नलिखित वैध आकार बनते हैं :

| वैध आकार | वैध आकार |
|---|---|
| प Δ फ | प Δ फ |
| प | ∼प |
| ∴ ∼फ | ∴ फ |

| वैध आकार | वैध आकार |
|---|---|
| प Δ फ | प Δ फ |
| फ | ∼फ |
| ∴ ∼प | ∴ प |

सबल वियोजन के आधार पर निम्नलिखित आकार अवैध होंगे :

| अवैध | अवैध |
|---|---|
| प Δ फ | प Δ फ |
| प | ∼प |
| ∴ फ | ∴ ∼फ |

**विशेष टिप्पणी :** किसी वियोजक प्रतिज्ञप्ति के बारे में जब तक यह स्पष्ट न हो कि उसमें वियोजन का प्रयोग सबल वियोजन के आकार में है तब तक उसका अर्थ निर्बल वियोजन के आकार में ही करना चाहिये। इसलिए, सामान्यतः वियोजक प्रतिज्ञप्तियों वाली युक्तियों की वैधता की परीक्षा निर्बल वियोजन के न्याय के आधार पर ही करनी चाहिये।

**तुल्यता का नियम : प v फ ≡ ∼प ⊃ फ**

'प v फ' की परिभाषा '∼प ⊃ फ' के रूप में की जा सकती है। इस प्रकार '∼प ⊃ फ' और 'प v फ' तुल्य हैं। किसी युक्ति की वैधता की परीक्षा करते समय '∼ प ⊃ फ' आकार की प्रतिज्ञप्ति को 'प v फ' के आकार में बदल सकते हैं।

जैसे :

यदि राम मुकदमा न जीता तो उसे नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा।
(∼म ⊃ न)
राम मुकदमा नहीं जीता।
∴ राम को नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा।

इस युक्ति की वैधता मॉडस पॉनन्स के न्याय तथा वियोजन के न्याय दोनों के द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं।

मॉडस पॉनन्स के अनुसार :

∼म ⊃ न
∼म
∴ न

मॉडस पॉनन्स का न्याय :

प ⊃ फ
प
∴ फ

युक्ति वैध है।

वियोजन के न्याय के अनुसार इस युक्ति की वैधता निम्नलिखित ढंग से सिद्ध कर सकते हैं :

(∼म ⊃ न) ≡ (म v न)

इस प्रकार युक्ति का आकार बना :

म v न
∼म
∴ न

अब यह स्पष्ट है कि यह वैध है क्योंकि यह वियोजन के न्याय के अनुरूप है।

सारांश यह है कि वियोजन का निम्नलिखित न्याय :

प V फ

∼प

∴ फ

और

मॉडस-पॉनन्स न्याय का निम्नलिखित आकार :

∼प ⊃ फ

∼प

∴ फ

तुल्य हैं और एक के स्थान पर दूसरे को रखा जा सकता है ।

**संघटन न्याय** (Law of addition) : एक वियोजक प्रतिज्ञप्ति के कथन का अर्थ यह है कि उस प्रतिज्ञप्ति की कम-से-कम एक घटक प्रतिज्ञप्ति सत्य है। इसलिए, यदि एक प्रतिज्ञप्ति सत्य है तो उस प्रतिज्ञप्ति के साथ किसी भी अन्य प्रतिज्ञप्ति का वियोजन अर्थात् योग सत्य होगा। इसे ही योग का न्याय अथवा संघटन न्याय कहते हैं। संघटन न्याय का प्रतीकात्मक रूप इस प्रकार है :

प

∴ प V फ

दृष्टान्त :

श्रीमती इन्दिरा गाँधी साहसी महिला है। (इ)

∴ श्रीमती इन्दिरा गाँधी साहसी महिला है या चन्द्रमा मक्खन की टिकिया है (च)।

प्रतीकात्मक रूप में :

इ

∴ इ V च

## 4. उभयतः पाश (Dilemma)

वाद-विवाद के क्षेत्र में प्रचलित युक्ति का एक प्रमुख प्रकार उभयतः पाश (dilemma) है। उभयतः पाश के रूप में युक्ति देने वाला अपने विपक्षी के सामने दो विकल्प रखता है और यह सिद्ध करना चाहता है कि उसे दोनों विकल्पों में से एक विकल्प अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा और वह चाहे कोई भी विकल्प स्वीकार करे उसे नुकसान उठाना पड़ेगा।

रचना की दृष्टि से उभयतः पाश ऐसी युक्ति है जिसकी एक आधारिका दो हेतुफलात्मक प्रतिज्ञप्तियों के संयोजन से बनती है और दूसरी आधारिका उन प्रतिज्ञप्तियों के हेतुवाक्यांशों के वियोजन से या उनके फलवाक्यांशों के निषेध के वियोजन से बनती

है और निष्कर्ष में या तो फलवाक्यांश का विधान किया जाता है और या हेतुवाक्यांश का निषेध किया जाता है।

उभयतः पाश के चार रूप हैं : (1) सरल विधानात्मक उभयतः पाश, (2) जटिल विधानात्मक उभयतः पाश, (3) सरल निषेधात्मक उभयतः पाश और (4) जटिल निषेधात्मक उभयतः पाश।

**सरल विधानात्मक उभयतः पाश :** सरल विधानात्मक उभयतः पाश का आकार निम्नलिखित है :

$$(प \supset फ) \cdot (ब \supset फ)$$

$$प \vee ब$$

$$\therefore फ$$

इस रचना की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :

1. इसकी एक आधारिका दो हेतुफलात्मक प्रतिज्ञप्तियों के संयोजन से बनती है। इन दोनों हेतुफलात्मक प्रतिज्ञप्तियों का फलवाक्यांश एक ही होता है।

2. दूसरी आधारिका हेतुवाक्यांशों के वियोजन से बनती है।

3. निष्कर्ष में फलवाक्यांश का कथन विधानात्मक सरल प्रतिज्ञप्ति के रूप में होता है।

**दृष्टान्त :** सरल विधानात्मक उभयतः पाश का एक प्रसिद्ध दृष्टान्त यूनानी शिक्षक प्रोटेगोरस की एक युक्ति है जो उसने अपने शिष्य यूलेथस से अपनी फीस वसूल करने के लिए दी थी। प्रोटेगोरस ने यूलेथस को कानून और वाद-विवाद की शिक्षा इस करारनामे के आधार पर दी थी कि वह आधी फीस तो पहले दे देगा और आधी फीस पहला मुकदमा जीतने पर देगा। जब बहुत दिनों तक यूलेथस ने कोई मुकदमा ही अपने हाथ में न लिया तो प्रोटेगोरस ने उस पर दावा कर दिया जिसके बचाव की वकालत यूलेथस ने स्वयं की। कोर्ट में प्रोटेगोरस ने जो युक्ति दी, वह इस प्रकार थी—

यदि यूलेथस मुकदमा हारता है तो उसे अदालत के फैसले के अनुसार मेरी फीस देनी चाहिये और यदि वह जीतता है तो उसे अपने करारनामे के अनुसार फीस देनी चाहिये। या तो वह मुकदमा हारता है या जीतता है।

इसलिए हर हालत में उसे मेरी फीस देनी चाहिये।

**जटिल विधानात्मक उभयतः पाश का न्याय :** जटिल विधानात्मक उभयतः पाश का सूत्र निम्नलिखित है :

$$(प \supset फ) \cdot (ब \supset भ)$$

$$प \vee ब$$

$$\therefore फ \vee भ$$

इस प्रतीकात्मक रूप से जटिल विधानात्मक उभयतः पाश की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं :

(1) हेतुफलात्मक प्रतिज्ञप्तियों के दोनों अंश—हेतुवाक्यांश और फलवाक्यांश भिन्न-भिन्न होते हैं।

(2) निष्कर्ष वियोजक प्रतिज्ञप्ति के रूप में होता है।

दृष्टान्त :

एक प्राचीन यूनानी युक्ति जिसमें माँ अपने लड़के को राजनीति से अलग रहने के लिए समझाती है इस प्रकार है :

यदि तुम न्याय का पक्ष लोगे तो लोग तुम से नाराज़ होंगे और यदि तुम अन्याय का पक्ष लोगे तो देवता तुम से नाराज़ होंगे।

या तो तुम न्याय का पक्ष लोगे या अन्याय का पक्ष लोगे।

∴ या तो तुम से लोग नाराज़ होंगे या देवता नाराज़ होंगे।

**सरल निषेधात्मक उभयतः पाश का न्याय :** सरल निषेधात्मक उभयतः पाश का रूप निम्न लिखित हैं :

(प ⊃ फ) . (प ⊃ भ)

~फ V ~भ

∴ ~प

इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट हैं :

(1) दोनों हेतुफलात्मक प्रतिज्ञप्तियों का हेतुवाक्यांश एक ही होता है।

(2) वियोजक प्रतिज्ञप्ति में फलवाक्यांश के निषेध के वियोजन का कथन होता है।

(3) निष्कर्ष में हेतुवाक्यांश के निषेध का कथन होता है।

दृष्टान्त :

यदि राम जुआ (ज) खेलता है तो अपना समय (स) बर्बाद करता है और यदि राम जुआ खेलता है तो अपना धन (ध) बर्बाद करता है।

या तो राम अपना धन बर्बाद नहीं करता या अपना समय बर्बाद नहीं करता है।

∴ राम जुआ नहीं खेलता।

प्रतीकात्मक भाषा में :

(ज ⊃ स) . (ज ⊃ ध)

~ध V ~स

∴ ~ज

**जटिल निषेधात्मक उभयतः पाश का न्याय :** जटिल निषेधात्मक उभयतः पाश का न्याय इस इस प्रकार है :

(प ⊃ फ) . (ब ⊃ भ)

~फ v ~भ

∴ ~प v ~ब

जटिल निषेधात्मक उभयतः पाश की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :

(1) साध्य-आधारिका में भिन्न फलवाक्यांशों वाली दो प्रतिज्ञप्तियों के संयोजन का कथन किया जाता है।

(2) पक्ष-आधारिका में साध्य-आधारिका के फलवाक्यांशों के वियोजन का कथन किया जाता है।

(3) निष्कर्ष में साध्य-आधारिका के हेतुवाक्यांशों के निषेध के वियोजन का कथन किया जाता है।

दृष्टान्त

म स

यदि राम मातृभक्त है तो घर पर बीमार माँ की सेवा करेगा और यदि

द ल

देशभक्त है तो लड़ाई के मोर्चे पर लड़ने जायेगा।

या तो वह घर पर रहकर माँ की सेवा नहीं करेगा या युद्ध के मोर्चे पर लड़ने नहीं जायेगा।

∴ या तो वह मातृभक्त नहीं है या देशभक्त नहीं है।

प्रतीकात्मक भाषा में :

(म ⊃ स) . (द ⊃ ल)

~स v ~ल

∴ ~म v ~द

## 5. उभयतः पाश का खण्डन
## (Rebuttal of a Dilemma)

उभयतः पाश एक ऐसी युक्ति है जो आकार की दृष्टि से तो वैध होती है, लेकिन जिसके निष्कर्ष का सत्य होना आवश्यक नहीं है। क्योंकि वाद-विवाद में एक वादी अपने प्रतिवादी को परास्त करने के लिए उभयतः पाश का प्रयोग करता है, इसलिए यह सोचना भी आवश्यक है कि प्रतिवादी अपना बचाव कैसे कर सकता है। उभयतः पाश की मार से बचने का अर्थ यह सिद्ध करना है कि उसका निष्कर्ष असत्य है। यह बात तीन प्रकार से की जा सकती है :

(1) उभयतः पाश की साध्य-आधारिका की कम-से-कम एक हेतुफलात्मक प्रतिज्ञप्ति को असत्य बताकर। इसे उभयतः पाश के सींग पकड़कर झकझोरना भी कहा जाता है। यदि एक भी हेतुफलात्मक प्रतिज्ञप्ति असत्य है तो हेतुफलात्मक प्रतिज्ञप्तियों का संयोजन अर्थात् पूरी साध्य-आधारिका भी असत्य होगी।

इस प्रकार

(प ⊃ फ) . (ब ⊃ भ)

के आकार की साध्य-आधारिका की असत्यता का कथन निम्नलिखित तीन आकारों में से किसी एक आकार में किया जा सकता है :

(1) (प ⊃ ~फ) . (ब ⊃ भ)

(2) (प ⊃ फ) . (ब ⊃ ~भ)

(3) प ⊃ ~फ) . (ब ⊃ ~भ)

हम पहले एक यूनानी माँ के जिस उभयतः पाश का पहले कथन कर चुके हैं उसका बेटा उस युक्ति का खण्डन यह बताकर कर सकता है :

यदि मैं न्याय का पक्ष लूँगा तो लोग मुझ से नाराज नहीं होंगे। इससे माँ के इस कथन का कि "यदि तुम न्याय का पक्ष लेते हो, तो लोग तुम से नाराज होंगे" खण्डन होता है और फलस्वरूप माँ की सम्पूर्ण युक्ति का खण्डन हो जाता है।

(2) **उभयतः पाश के सींगों के बीच से निकलकर बचना** : इसका अर्थ उभयतः पाश की पक्ष-आधारिका को असत्य सिद्ध करना है। पक्ष-आधारिका ऐसी वियोजित प्रतिज्ञप्ति के रूप में होती है जिसमें केवल दो विकल्प बताये होते हैं। यदि यह बता दिया जाये कि वह वियोजन ग़लत है क्योंकि दो विकल्पों के अलावा एक अन्य विकल्प भी हो सकता है, तब उभयतः पाश का निष्कर्ष असत्य सिद्ध हो जाता है।

जैसे :

यदि आप रूढ़िवादी हैं तो समाज की प्रगति में बाधक हैं और यदि आप क्रान्तिकारी हैं तो समाज की शान्ति में बाधक हैं।

या तो आप रूढ़िवादी हैं या क्रान्तिकारी हैं।

∴ या तो आप समाज की प्रगति में बाधक हैं या समाज की शान्ति में बाधक हैं।

इस उभयतः पाश का खण्डन वियोजक वाक्य का खण्डन करके अर्थात् तीसरा विकल्प बताकर किया जा सकता है। एक व्यक्ति का रूढ़िवादी या क्रान्तिकारी होना आवश्यक नहीं है, वह प्रगतिवादी भी हो सकता है। इस प्रकार यह कहकर कि 'न तो मैं रूढ़िवादी हूँ और न क्रान्तिकारी हूँ अपितु प्रगतिवादी हूँ' किया जा सकता है।

(3) उभयतः पाश का खण्डन करने की तीसरी विधि एक विपरीत उभयतःपाश प्रस्तुत करने की विधि है। इसे प्रतिवाद की विधि भी कहते हैं। इसमें मूल उभयतःपाश की साध्य-आधारिका के फलवाक्यांशों को अदल-बदल दिया जाता है और उनका गुण बदल दिया जाता है :

जैसे :

(प ⊃ फ) . (ब ⊃ भ)
प v ब
∴ फ v भ

का प्रतिवाद करने वाला उभयतः पाश

(प ⊃ ~भ) . (ब ⊃ ~फ)
प v ब
∴ ~भ v ~फ

होगा।

राजनीति में भाग लेने से रोकने वाली माँ के उभयतः पाश का प्रतिवाद उसका लड़का इस प्रकार भी कर सकता है :

यदि मैं न्याय का पक्ष लेता हूँ तो देवता मुझसे नाराज़ नहीं होंगे और यदि मैं अन्याय का पक्ष लेता हूँ तो लोग मुझसे नाराज़ नहीं होंगे।

या तो मैं न्याय का पक्ष लूँगा या अन्याय का।

∴ या तो मुझसे देवता नाराज़ नहीं होंगे या लोग नाराज़ नहीं होंगे।

## अभ्यास

निम्नलिखित युक्तियों को प्रतीकात्मक रूप में प्रकट करें तथा वैधता के नियम का स्पष्ट कथन करके युक्ति की वैधता/अवैधता बतायें। जहाँ सम्भव हो वहाँ युक्ति का खण्डन भी प्रस्तुत करें।

(1) एक शतरंज का खिलाड़ी इस प्रकार सोचता है :
यदि मैं किलाबन्दी करता हूँ तो मैं ठीक आक्रमण नहीं कर पाता और यदि मैं किलाबन्दी नहीं करता तो मेरी सुरक्षा पंक्ति कमज़ोर रहती है।
या तो मैं किलाबन्दी करता हूँ या किलाबन्दी नहीं करता।
इसलिए, या तो मैं ठीक आक्रमण नहीं कर पाता या मेरी सुरक्षापंक्ति कमज़ोर रहती है।

(2) यदि लोगों को भाषण की स्वतन्त्रता दी जाती है तो देश के विघटनकारी तत्त्वों को प्रोत्साहन मिलता है और यदि लोगों को भाषण की स्वतन्त्रता नहीं दी जाती तो प्रजातन्त्र खत्म होता है।

या तो लोगों को भाषण की स्वतन्त्रता दी जाती है या नहीं दी जाती ।
इसलिए, या तो विघटनकारी तत्त्वों को प्रोत्साहन मिलता है या प्रजातन्त्र समाप्त होता है ।

(3) यदि मैं युद्ध करूँगा तो मैं मारा जाऊँगा या मेरे सब भाई-बन्धु मारे जायेंगे और यदि मैं युद्ध नहीं करूँगा तो कायर कहलाऊँगा ।
या तो मैं युद्ध करूँगा या युद्ध नहीं करूँगा ।
इसलिए, या तो मैं या मेरे भाई-बन्धु मारे जायेंगे या मैं कायर कहलाऊँगा ।

(4) यदि मैं ईमानदार रहता हूँ तो गरीब रहता हूँ और यदि मैं बेईमान बनता हूँ तो मेरा नैतिक पतन होता है ।
या तो मैं ईमानदार रहता हूँ या बेईमान बनता हूँ ।
इसलिए या तो मैं गरीब रहता हूँ या मेरा नैतिक पतन होता है ।

(5) यदि छात्रों की हड़ताल चलती है तो उनकी पढ़ाई का नुकसान होता है और यदि हड़ताल टूटती है तो छात्र-परिषद् का अस्तित्त्व ख़तरे में है ।
या तो हड़ताल चलती है या टूटती है ।
इसलिए, या तो छात्रों की पढ़ाई का नुकसान होता है या छात्र-परिषद् का अस्तित्त्व खतरे में पड़ता है ।

## 6. संयोजन और युक्ति की वैधता

एक संयोजक प्रतिज्ञप्ति तब और केवल तब सत्य मानी जाती है, जब उसमें शामिल प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति सत्य हो । संयोजन के इस अर्थ के आधार पर युक्ति के दो न्याय बनते हैं ।

(1) सरलीकरण का न्याय और (2) संयोजन का न्याय ।

**सरलीकरण का न्याय :**

प . फ
∴ प

दृष्टान्त :

यह चाय गर्म और मीठी है ।
∴ यह चाय गर्म है ।

**संयोजन का न्याय :**

प
फ
∴ प . फ

दृष्टान्त :

यह चाय गर्म है।
यह चाय मीठी है।
∴ यह चाय गर्म और मीठी है।

## 7. संयोजन का निषेध और युक्ति का वैध आकार

संयोजन के निषेध का प्रतीकात्मक आकार है :

~(प . फ)

इसका अर्थ है कि प और फ में से कम-से-कम एक असत्य है

प्रतीकात्मक रूप में :

~(प . फ) ≡ (~प v ~फ)

~(प . फ) के इस अर्थ के आधार पर युक्ति के निम्नलिखित आकार वैध बनते हैं :

~(प . फ)
प
∴ ~फ

~(प . फ)
फ
∴ ~प

निम्नलिखित आकार अवैध होंगे :

~(प . फ)
~प
∴ फ

~(प . फ)
~फ
∴ प

# 18

# सत्यतासारणी के रूप में प्रतिज्ञप्तिक सम्बन्धकों की परिभाषाएँ और वैधता का प्रमाण

## 1. सत्यतासारणी के रूप में प्रतिज्ञप्तिक सम्बन्धकों की परिभाषाएँ

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि प्रतिज्ञप्तिक सम्बन्धकों का अर्थ सत्यताफलनिक है। प्रतिज्ञप्तिक सम्बन्धकों के सत्यताफलनिक अर्थ को दर्शाने की एक सरल विधि सत्यतासारणी की विधि है। जिस सारणी में मिश्र प्रतिज्ञप्ति के सत्यतामूल्य का निर्धारण उसकी घटक प्रतिज्ञप्तियों के सत्यतामूल्य के आधार प्रदर्शित किया जाता है, उसे सत्यतासारणी कहते हैं। नीचे हम सत्य के लिए 'स' और असत्य के लिए 'अ' का प्रयोग करके सत्यतासारणी के रूप में भिन्न-भिन्न सम्बन्धकों की परिभाषा देते हैं :

**~ की परिभाषा :**

सत्यतासारणी 1.

| प | ~प |
|---|---|
| स | अ |
| अ | स |

की परिभाषा

सत्यतासारणी 2.

| प | फ | प . फ |
|---|---|---|
| स | स | स |
| स | अ | अ |
| अ | स | अ |
| अ | अ | अ |

v की परिभाषा

सत्यतासारणी 3.

| प | फ | प v फ |
|---|---|---|
| स | स | स |
| स | अ | स |
| अ | स | स |
| अ | अ | अ |

Δ की परिभाषा

सत्यतासरणी 4.

| प | फ | प Δ फ |
|---|---|---|
| स | स | अ |
| स | अ | स |
| अ | स | स |
| अ | अ | अ |

**की परिभाषा**

सत्यतासारणी 5.

| प | फ | प ⊃ फ |
|---|---|---|
| स | स | स |
| स | अ | अ |
| अ | स | स |
| अ | अ | स |

**≡ की परिभाषा**

सत्यतासारणी 6.

| प | फ | प ≡ फ |
|---|---|---|
| स | स | स |
| स | अ | अ |
| अ | स | अ |
| अ | अ | स |

इन सत्यतासारणियों में दोहरी खड़ी रेखा के बायीं ओर सरल प्रतिज्ञप्तियों के स्तम्भ[1] हैं और उसके दायीं ओर सम्बन्धकों के प्रयोग से बनने वाली मिश्र प्रतिज्ञप्ति का स्तम्भ है ।

सरल प्रतिज्ञप्तियों के स्तम्भों में उनके सत्यतामूल्य की सभी सम्भावनाएँ दी हैं । एक पंक्ति[2] सरल प्रतिज्ञप्तियों के मूल्य की एक सम्भावना और उस मूल्य के आधार पर मिश्र प्रतिज्ञप्ति का फलन प्रदर्शित करती है । उदाहरण के रूप में सत्यातसारणी 6 की पहली पंक्ति प्रदर्शित करती है कि यदि प सत्य है और फ सत्य है तो प ≡ फ सत्य होगा । दूसरी पंक्ति प्रदर्शित करती है कि प सत्य हो और फ असत्य हो तो प ≡ फ असत्य होगा ।

सब सम्बन्धकों की एक मिश्रित सत्यतासारणी आगे दी है ।

1. खड़ी कतार को स्तम्भ कहते हैं ।
2. दायें बायें बनने वाली कतार को पंक्ति कहते हैं ।

सत्यतासारणी 7.

| मूल प्रतिज्ञप्तियाँ | | निषेध | संयोजन | निर्बल वियोजन | सबल वियोजन | आपादन | द्वि-आपादन |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| प | फ | ~प | प . फ | प v फ | प △ फ | प ⊃ फ | प ≡ फ |
| स | स | अ | स | स | अ | स | स |
| स | अ | अ | अ | स | स | अ | अ |
| अ | स | स | अ | स | स | स | अ |
| अ | अ | स | अ | अ | अ | स | स |

## 2. सत्यतासारणी का विस्तार

सत्यताफलनिक कथनों के सम्बन्ध में हम निम्नलिखित दो बातें देख चुके हैं :

(1) ~, ., v, ⊃ तथा ≡ की संक्रिया से एक नया मिश्र वाक्य बनता है। यह नया वाक्य मिश्र होने पर भी अधिक जटिल मिश्र वाक्य का अंग बन सकता है। इस प्रकार सैद्धान्तिक दृष्टि से एक मिश्र वाक्य की जटिलता की कोई सीमा नहीं है। प्रतीकात्मक रूप में जितने जटिल मिश्र वाक्य रचे जा सकते हैं, उतने जटिल वाक्यों का प्रचलन भाषा में न होता है और न सम्भव ही है। प्रतीकों के लाघव का महत्त्व यहाँ स्पष्ट है।

(2) ~, . आदि सम्बन्धकों की संक्रिया द्वारा जो नये मिश्र वाक्य बनते हैं वे सत्यताफलनिक होते हैं। इस प्रकार एक मिश्र वाक्य कितना ही जटिल क्यों न हो उस पूरे वाक्य का मूल्य सत्य या असत्य होगा और यह मूल्य उसके घटक वाक्यों के सत्यता-मूल्य का फलन होगा। इस प्रकार घटक वाक्यों के सत्यतामूल्य के आधार पर और ~, ., आदि सबन्धकों की परिभाषाओं के आधार पर मिश्र वाक्य का सत्यतामूल्य निकाला जा सकता है। यदि प फ ब भ का सत्यतामूल्य दिया हो तो

(प . फ v ब ⊃ भ v ~प . ~फ ⊃ भ) v (प . ~फ ⊃ ब)

का सत्यतामूल्य निर्धारित किया सकता है।

**सम्बन्धक का क्षेत्र-विस्तार**

जटिल मिश्र वाक्यों के सम्बन्ध में यह समझना आवश्यक है कि एक सम्बन्धक का क्षेत्र-विस्तार कितना है। एक सम्बन्धक की संक्रिया जिन सरल वाक्यों या मिश्र वाक्यों पर लागू होती है वे सब उस सम्बन्धक के क्षेत्र-विस्तार में आ जाते हैं। यह तो हम

देख ही चुके हैं कि ~ को छोड़कर शेष सभी सम्बन्धक युग्मक (binary) हैं अर्थात् वे अपने दोनों ओर के वाक्यों को सम्बन्वित करते हैं। ~ की क्रिया केवल एक ही ओर अर्थात् अपने दायें वाक्य पर ही होती है। ~ का उदाहरण लेकर सम्बन्धक के क्षेत्र-विस्तार का अन्तर नीचे स्पष्ट करते हैं :

(अ) ~प

(आ) ~(प . फ)

(इ) ~(प . फ v फ . ब)

(ई) ~[(प v फ) . (ब . भ v प)]

उपर्युक्त वाक्यों के नीचे लगी रेखा से ~ का क्षेत्र-विस्तार निर्देशित होता है। इसी प्रकार नीचे के वाक्य में विभिन्न सम्बन्धकों का क्षेत्र विस्तार रेखा द्वारा प्रदर्शित किया है :

010 3 10 2 1 0 4 0210

प . फ v ~प . ~फ ⊃ प v ~प
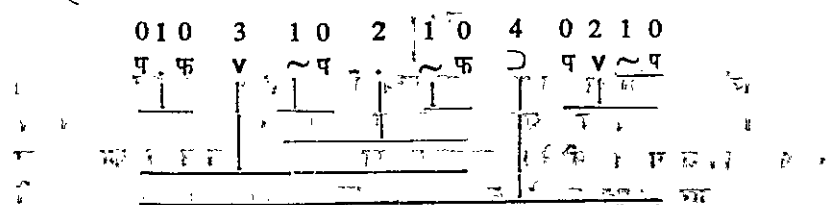
एक वाक्य में जिस सम्बन्धक का विस्तार क्षेत्र सबसे अधिक हो, उसे प्रधान सम्बन्धक कहते हैं। उपर्युक्त वाक्य में ⊃ प्रधान सम्बन्धक है। सम्बन्धकों के क्षेत्र-विस्तार को अंकों द्वारा भी निर्देशित किया जा सकता है। सरल वाक्य का क्षेत्र-विस्तार 0 होगा। जिस मिश्र वाक्य में केवल सरल वाक्य हों उसके सम्बन्धक का क्षेत्र-विस्तार 1 माना जायेगा। इसी प्रकार उससे अधिक जटिल मिश्र वाक्य के प्रधान सम्बन्धक का क्षेत्र-विस्तार 2 माना जायेगा। इसी क्रम से अधिक जटिल मिश्र वाक्यों के प्रधान सम्बन्धकों का क्षेत्र-विस्तार बनेगा। उपर्युक्त वाक्य में अंकों द्वारा सभी सम्बन्धकों का क्षेत्र-विस्तार दिखाया गया है।

**अभ्यास**

प्रत्येक सरल वाक्य तथा सम्बन्धकों के ऊपर संख्या चिह्न लिखकर उनकी जटिलता के स्तर का भेद स्पष्ट करो तथा उनकी सत्यतासारणी भी बताओ।

1. ~(प . ~फ)
2. ~(~प v फ ⊃ प v ~फ)
3. ~(~प . ~फ v ब)
4. (~प v ~फ) . (प v फ)
5. ~{~(प v फ) ⊃ [(भ ⊃ ब) . ~प]}

## 3. पुनरुक्ति, व्याघात और आपातिकता
## (Tautology, Contradiction and Contingency)

सत्यतासारणी में प्रधान सम्बन्धक का सत्यतामूल्य क्या है इस आधार पर मिश्र प्रतिज्ञप्तियों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है : (1) पुनरुक्ति प्रतिज्ञप्ति (Tautology), (2) व्याघाती प्रतिज्ञप्ति (Contradiction), (3) आपातिक प्रतिज्ञप्ति (Contingency)।

**पुनरुक्ति** : वह प्रतिज्ञप्ति पुनरुक्ति है, जिसकी सत्यतासारणी में प्रधान सम्बन्धक के स्तम्भ में केवल स (सत्य) हो। उदाहरण के रूप में 'प v ~प' पुनरुक्ति है, जैसा कि नीचे सत्यतासारणी से स्पष्ट है :

सत्यतासारणी 8.

| प | ~प | प v ~प |
|---|---|---|
| स | अ | स |
| अ | स | स |

पुनरुक्ति को निरपेक्ष सत्य या तार्किक सत्य भी कहते हैं क्योंकि यह सदा सत्य होती है। इसकी सत्यता घटक वाक्यों की सत्यता पर आश्रित नहीं होती, बल्कि रचना के स्वरूप पर ही आधारित होती है। पुनरुक्ति वास्तव में रचना अथवा आकार की विशेषता है। जो आकार की पुनरुक्ति है उसके चरों के स्थान पर कोई भी और कैसा भी (सरल या मिश्र) वाक्य रख दें, वह वाक्य पुनरुक्ति अर्थात् निरपेक्ष रूप से सत्य ही रहेगा।

प v ~प के स्थान पर यदि हम (प . फ) v ~(प . फ) आकार वाला वाक्य रखें, तो वह भी पुनरुक्ति ही होगा। पुनरुक्ति आकार वाला जो वाक्य होगा वह पुनरुक्ति होगा। जैसे : 'राम ईमानदार है या राम ईमानदार नहीं है' एक पुनरुक्ति है।

**व्याघात** : जिस प्रतिज्ञप्ति की सत्यतासारणी में प्रधान सम्बन्धक के स्तम्भ में अ (असत्य) ही हो, उसे व्याघात कहते हैं। व्याघात को निरपेक्ष असत्य या तार्किक असत्य भी कहते हैं।

जिस प्रकार पुनरुक्ति की सत्यता घटक वाक्यों की सत्यता/असत्यता पर निर्भर न होकर रचना के आकार की ही विशेषता है, उसी प्रकार व्याघात की असत्यता घटक वाक्यों की सत्यता/असत्यता पर निर्भर न होकर, रचना के आकार की विशेषता है।

प . ~प एक व्याघात है, जैसाकि निम्नलिखित सत्यतासारणी से स्पष्ट है :

सत्यातसारणी 9.

| प | ~प | प . ~प |
|---|---|---|
| स | अ | अ |
| अ | स | अ |

प . ∼प की स्थानापन्न जो भी मिश्र प्रतिज्ञप्ति होगी, वह व्याघात ही होगी। निम्नलिखित प्रतिज्ञप्तीय रचना व्याघात है क्योंकि इसका प्रधान रूप प . ∼प ही है :

(प ⊃ फ) . ∼(प ⊃ फ)

व्याघाती तार्किक रचना वाली प्रतिज्ञप्ति व्याघात होगी। जैसे : 'राम ईमानदार है और राम ईमानदार नहीं है' व्याघात है।

**आपातिक** : जिस तार्किक रचना की सत्यतासारणी में प्रधान सम्बन्धक के स्तम्भ में स और अ (सत्य और असत्य) दोनों मूल्य हों, वह आपातिक रचना कहलाती है। आपातिक रचना वाली प्रतिज्ञप्ति आपातिक प्रतिज्ञप्ति होती है।

(प ⊃ फ) . प

आपातिक रचना है जैसाकि सत्यतासारणी से स्पष्ट है :

सत्यतासारणी 10.

| प | फ | प ⊃ फ | (प ⊃ फ) . प |
|---|---|---|---|
| स | स | स | स |
| स | अ | अ | अ |
| अ | स | स | अ |
| अ | अ | स | अ |

**पुनरुक्ति मूलक आपादन** : जो आपादन पुनरुक्ति हो, वह पुनरुक्ति मूलक आपादन कहलाता है। [(प ⊃ फ) . प] ⊃ फ पुनरुक्तिमूलक आपादन है, जैसाकि निम्नलिखित सत्यतासारणी से स्पष्ट है :

सत्यतासारणी 11.

| प | फ | प ⊃ फ | (प ⊃ फ) . प | [(प ⊃ फ) . प] ⊃ फ |
|---|---|---|---|---|
| स | स | स | स | स |
| स | अ | अ | अ | स |
| अ | स | स | अ | स |
| अ | अ | स | अ | स |

पुनरुक्तिमूलक आपादन, जिसे हमने प्रथम अध्याय में तथा इससे पहले के अध्याय में आकारिक आपादन कहा है, वैध अनुमान या वैध युक्ति का तार्किक आधार है।

**पुनरुक्तिमूलक तुल्यता :** जो तुल्यता पुनरुक्ति है, वह पुनरुक्तिमूलक तुल्यता कहलाती है।

(प ⊃ फ) ≡ (∼फ ⊃ ∼प) पुनरुक्तिमूलक तुल्यता है, जैसा कि निम्नलिखित सत्यतासारणी से स्पष्ट है :

सत्यतासारणी 12.

| प | फ | ∼प | ∼फ | प ⊃ फ | ∼फ ⊃ ∼प | (प ⊃ फ) ≡ (∼फ ⊃ ∼प) |
|---|---|---|---|---|---|---|
| स | स | अ | अ | स | स | स |
| स | अ | अ | स | अ | अ | स |
| अ | स | स | अ | स | स | स |
| अ | अ | स | स | स | स | स |

## अभ्यास

1. यदि प और फ कोई दो प्रतिज्ञप्तियाँ हों तो निम्नलिखित में से कौन-सी प्रतिज्ञप्ति पुनरुक्ति है :

(क) प ≡ फ
(ख) प ≡ प v प
(ग) प v फ ≡ फ v प
(घ) (प ⊃ फ) ≡ (फ ⊃ प)
(ङ) (प ⊃ फ) ≡ (∼फ ⊃ ∼प)
(च) ∼(प . फ) ≡ ∼प v ∼फ

2 प और फ कोई भी दो विभिन्न प्रतिज्ञप्तियाँ हैं तो बताओ प . फ से कौन-से वाक्य पुनरुक्ति द्वारा आपादित हैं :

1. प
2. फ
3. प v फ
4. प . ∼फ
5. ∼प v ∼फ
6. ∼प v फ

7. प्र ≡ फ

8. ~(~प v ~फ)

9. ~(~प . ~फ)

10. ~(प . ~फ)

## 4. सत्यतासारणी की रचना

जटिल मिश्र प्रतिज्ञप्तियों की सत्यतासारणी की रचना के सम्बन्ध में उपयोगी बातें बताने से पहले प्रतिज्ञप्ति और प्रतिज्ञप्तिक आकार का अन्तर दोहरा देना आवश्यक है। चरों और तार्किक सम्बन्धकों, ~, ., v आदि से जो रचना बनेगी वह प्रतिज्ञप्ति नहीं होगी, बल्कि प्रतिज्ञप्तिक आकार होगी। ऐसी रचना को व्यंजक कहते हैं। यहाँ हमारा सम्बन्ध प्रतिज्ञप्तिक आकार से है। इसके पीछे एक सामान्य नियम यह है कि एक प्रतिज्ञप्तिक आकार के बारे में जो सत्यतासारणी बनती है, वही सत्यतासारणी उस आकार वाली हर किसी प्रतिज्ञप्ति की होगी।

जटिल प्रतिज्ञप्तिक आकारों (व्यंजकों) की सत्यतासारणी की रचना के सम्बन्ध में निम्नलिखित उपयोगी बातें हैं :

1. प्रत्येक चर तथा सम्बन्धक के प्रत्येक प्रयोग के लिए एक स्तम्भ की आवश्यकता होगी।

2. यदि $n$* चरों की संख्या हो, तो पंक्तियों की संख्या $2^n$ होगी। यदि दो चर हैं तो $2 \times 2$ पंक्तियों की आवश्यकता होगी। यदि 3 चर हैं तो $2 \times 2 \times 2$ पंक्तियों की आवश्यकता होगी।

3. प्रतिज्ञप्तिक चरों को बायीं ओर से वर्णमाला क्रम से लिखें।

4. प्रतिज्ञप्तिक चरों के बाद पहले कम क्षेत्र-विस्तार वाले और उनके बाद अधिक क्षेत्र-विस्तार वाले सम्बन्धकों के व्यंजकों को लिखें।

5. प्रतिज्ञप्तिक चरों का सम्भव सत्यतामूल्य लिखने का उपयोगी क्रम इस प्रकार है : सबसे दायें चर से प्रारम्भ करें और उसके स्तम्भ में स अ स अ—के क्रम से सत्यतामूल्य लिखें। दूसरे चर (दायीं ओर से) के स्तम्भ में स स अ अ स स—के क्रम से सत्यतामूल्य लिखें। इसी प्रकार तीसरे चर के स्तम्भ में स स स स अ अ अ अ—क्रम से सत्यतामूल्य लिखें।

---

*$n$ = कोई भी एक संख्या।

प, फ, ब प्रतिज्ञप्तिक चरों के सत्यतामूल्य लिखने का क्रम नीचे चरणों में दिखाया है :

प्रथम चरण :

| | प | फ | ब |
|---|---|---|---|
| 1. | | | स |
| 2. | | | अ |
| 3. | | | स |
| 4. | | | अ |
| 5. | | | स |
| 6. | | | अ |
| 7. | | | स |
| 8. | | | अ |

द्वितीय चरण :

| | प | फ | ब |
|---|---|---|---|
| 1. | | स | स |
| 2. | | स | अ |
| 3. | | अ | स |
| 4. | | अ | अ |
| 5. | | स | स |
| 6. | | स | अ |
| 7. | | अ | स |
| 8. | | अ | अ |

तृतीय चरण :

| | प | फ | ब |
|---|---|---|---|
| 1. | स | स | स |
| 2. | स | स | अ |
| 3. | स | अ | स |
| 4. | स | अ | अ |
| 5. | अ | स | अ |
| 6. | अ | स | अ |
| 7. | अ | अ | स |
| 8. | अ | अ | अ |

**एक उदाहरण :** [(प ⊃ फ) . (फ ⊃ ब)]⊃(प ⊃ ब) की सत्यतासारणी ।

सत्यतासारणी 13.

| प | फ | ब | प⊃फ | फ⊃ब | प⊃ब | (प⊃फ) . (फ⊃ब) | [(प⊃फ) . (फ⊃ब)]⊃(प⊃ब) |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| स | स | स | स | स | स | स | स |
| स | स | अ | स | अ | अ | अ | स |
| स | अ | स | अ | स | स | अ | स |
| स | अ | अ | अ | स | अ | अ | स |
| अ | स | स | स | स | स | स | स |
| अ | स | अ | स | अ | स | अ | स |
| अ | अ | स | स | स | स | स | स |
| अ | अ | अ | स | स | स | स | स |

## 5. सत्यतासारणी का लघु रूप

सत्यतासारणी बनाने का एक लघु रूप है। इसमें हम घटक वाक्यों के नीचे उनका सत्यतामूल्य और मिश्र वाक्यों का सत्यतामूल्य उनके सम्बन्धकों के नीचे लिखते हैं। नीचे एक सरल उदाहरण द्वारा सत्यतासारणी के लघु रूप और बृहत् रूप की तुलना दिखायी है।

**सत्यतासारणी का बृहत् रूप**

सत्यतासारणी 14.

| प | फ | प ⊃ फ |
|---|---|---|
| स | स | स |
| स | अ | अ |
| अ | स | स |
| अ | अ | स |

**सत्यतासारणी का लघु रूप**

सत्यतासारणी 15.

| प | ⊃ | फ |
|---|---|---|
| स | स | स |
| स | अ | अ |
| अ | स | स |
| अ | स | अ |

यदि व्यंजक बहुत जटिल हो, अर्थात् उसमें विभिन्न क्षेत्र-विस्तार वाले सम्बन्धक हों, तो उनमें क्षेत्र-विस्तार को संख्या चिह्नों से स्पष्ट कर लेना चाहिये और फिर 0 (शून्य) विस्तार वाले घटकों से प्रारम्भ करके क्रमशः आगे बढ़ना चाहिये। चरों के सम्बन्ध में नियम वही है जो पृष्ठ 265 पर बताया गया है। प्रथम चरण में 0 (शून्य) विस्तार वाले घटकों के सत्यतामूल्य भरें। द्वितीय चरण में 1 विस्तार वाले घटकों का, फिर 2 विस्तार वाले। इसी क्रम से अधिक विस्तार वाले घटकों का सत्यतामूल्य भरें :

**उदाहरण :** सत्यतासारणी 16.

| 0 | 1 | 0 | 2 | 0 | 1 | 0 | 3 | 0 | 1 | 0 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| (प | ⊃ | फ) | . | (फ | ⊃ | ब) | ⊃ | (प | ⊃ | ब) |
| स | स | स | स | स | स | स | स | स | स | स |
| स | स | स | अ | स | अ | अ | स | स | अ | अ |
| स | अ | अ | अ | अ | स | स | स | स | स | स |
| स | अ | अ | अ | अ | स | अ | स | स | अ | अ |
| अ | स | स | स | स | स | स | स | अ | स | स |
| अ | स | स | अ | स | अ | अ | स | अ | स | अ |
| अ | स | स | अ | अ | स | स | स | अ | स | स |
| अ | स | स | अ | अ | स | अ | स | अ | स | अ |

## 6. सत्यतासारणी द्वारा युक्ति की वैधता का प्रमाण

एक वैध निगमनात्मक युक्ति वह युक्ति है जिसके आधार-वाक्य निष्कर्ष का आपादन करते हों। इस प्रकार एक निगमनात्मक युक्ति को आपादन वाक्य के रूप में प्रकट कर सकते हैं। जैसे, मॉडस पॉनन्स,

प ⊃ फ
प ;

∴ फ

को [(प ⊃ फ) . प] ⊃ फ के प्रतिज्ञप्तिक आकार में प्रकट कर सकते हैं। इस प्रतिज्ञप्तिक आकार का प्रधान सम्बन्धक ⊃ है जिसके बायीं ओर आधार-वाक्यों का संयुक्त रूप है और दायीं ओर निष्कर्ष है।

हम यह देख चुके हैं कि पुनरुक्तिमूलक आपादन निरपेक्ष रूप से सत्य होता है और जो प्रतिज्ञप्ति पुनरुक्तिमूलक आपादन के आकारों की होती है, वह भी निरपेक्ष रूप से सत्य होती है। इससे हम निगमनात्मक युक्ति की वैधता के प्रमाण का नियम इस प्रकार बना सकते हैं : यदि एक युक्ति का प्रतिज्ञप्तिक आकार पुनरुक्तिमूलक आपादन का आकार है, तो वह वैध है, अन्यथा अवैध है।

दूसरे शब्दों में, यदि एक युक्ति को प्रतिज्ञप्तिक आकार में रखने पर जो आपादनात्मक प्रतिज्ञप्ति बनी है, उसकी सत्यतासारणी के प्रधान सम्बन्धक के स्तम्भ में केवल स है, तो वह युक्ति वैध है, और यदि प्रधान सम्बन्धक के स्तम्भ में एक भी अ है, तो युक्ति अवैध है।

**उदाहरण 1.** प ⊃ फ
प

∴ फ

अर्थात् मॉडस पॉनन्स की वैधता का सत्यतासारणी[1] द्वारा प्रमाण

सत्यतासारणी 17.

| 0 | 1 | 0 | 2 | 0 | 3 | 0 |
|---|---|---|---|---|---|---|
| [(प | ⊃ | फ) | . | प] | ⊃ | फ |
| स | स | स | स | स | स | स |
| स | अ | अ | अ | स | स | अ |
| अ | स | स | अ | अ | स | स |
| अ | स | अ | अ | अ | स | अ |

क्योंकि प्रधान सम्बन्धक के स्तम्भ में केवल स है, इसलिए युक्ति का उपर्युक्त आकार वैध है।

**उदाहरण 2.** प ⊃ फ
फ ⊃ ब

∴ प ⊃ ब

1. यहाँ सत्यतासारणी का लघु रूप दिया है। यदि कोई छात्र इसमें कठिनाई अनुभव करे, तो वह सत्यतासारणी का बृहत् रूप अपना सकता है।

अर्थात् हेतुफलात्मक न्याय-वाक्य का प्रतिज्ञप्तिक आकार होगा :

[(प ⊃ फ) . (फ ⊃ ब)] ⊃ (प ⊃ ब)

यह आकार वैध है, जैसा कि सत्यतासारणी 16 से स्पष्ट है।

## 7. अवैधता का प्रमाण

जिस युक्ति के प्रतिज्ञप्तिक आकार की सत्यतासारणी के प्रधान स्तम्भ में एक भी अ हो, वह अवैध है :

**उदाहरण 3.** प ⊃ फ

~प

---

∴ ~फ

प्रतिज्ञप्तिक आकार :

[(प ⊃ फ) . ~प] ⊃ ~फ

सत्यतासारणी 18.

| 0 | 1 | 0 | 2 | 1 | 0 | 3 | 1 | 0 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| [(प | ⊃ | फ) | . | ~ | प] | ⊃ | ~ | फ |
| स | स | स | अ | अ | स | स | अ | स |
| स | अ | अ | अ | अ | स | स | स | अ |
| अ | स | स | स | स | अ | अ | अ | स |
| अ | स | अ | स | स | अ | स | स | अ |

क्योंकि प्रधान स्तम्भ में एक अ है, इसलिए, युक्ति का यह आकार अवैध है।

**उदाहरण 4.** प ⊃ फ

फ

---

∴ प

प्रतिज्ञप्तिक आकार :

[(प ⊃ फ) . फ] ⊃ प

सत्यतासारणी 19.

| 0 | 1 | 0 | 2 | 0 | 3 | 0 |
|---|---|---|---|---|---|---|
| [(प | ⊃ | फ) | . | फ] | ⊃ | प |
| स | स | स | स | स | स | स |
| स | अ | अ | अ | अ | स | स |
| अ | स | स | स | स | अ | अ |
| अ | स | अ | अ | अ | स | अ |

क्योंकि यहाँ प्रधान स्तम्भ में एक अ है, इसलिए यह अवैध है।

## 8. व्याघात प्रदर्शन प्रमाण पद्धति
## (Method of Reductio ad Absurdum)

जिस युक्ति को आपादनात्मक प्रतिज्ञप्ति में बदलने पर सरल प्रतिज्ञप्तियों की संख्या अधिक होती हो, उसकी सत्यतासारणी द्वारा वैधता/अवैधता प्रमाणित करना असुविधाजनक रहता है क्योंकि उसकी सत्यतासारणी लम्बी बनती है। यहाँ हम एक अन्य प्रमाण पद्धति का विवेचन करेंगे जो सत्यतासारणी पद्धति की अपेक्षा अधिक सुविधाजनक है। यह पद्धति व्याघात प्रमाण प्रदर्शन पद्धति है।

यह पद्धति वास्तव में सत्यतासारणी पद्धति का ही एक रूप है। इसमें पहले युक्ति को आपादनात्मक प्रतिज्ञप्ति के रूप में बदलते हैं और उसके प्रधान सम्बन्धक '⊃' का सत्यतामूल्य अ अर्थात् असत्य मान लेते हैं। सत्यतासारणी की रचना के नियमों का अनुसरण करते हुए अब उलटे क्रम से अर्थात् अधिक विस्तार वाले सम्बन्धकों से कम विस्तार वाले सम्बन्धकों का सत्यतामूल्य निर्धारित करते हैं। इस प्रकार सब घटकों का सत्यतामूल्य निर्धारित करने की प्रक्रिया के किसी चरण में सत्यतासारणी की रचना के किसी नियम का व्याघात स्पष्ट होता है, तो इससे यह प्रमाणित होता है कि प्रधान सम्बन्धक, '⊃' का सत्यतामूल्य असत्य मानना ग़लत है और तदनुसार युक्ति वैध है।

लेकिन यदि प्रधान सम्बन्धक का सत्यतामूल्य असत्य स्वीकार करने पर शेष घटकों का सत्यतामूल्य निर्धारित करते समय कोई व्याघात नहीं आता तो इससे यह सिद्ध होता है कि प्रधान सम्बन्धक का मूल्य असत्य मानना ठीक है और इसलिए युक्ति अवैध है।

**उदाहरण 5.** प ⊃ फ
∼फ — का व्याघात प्रदर्शन द्वारा वैधता प्रमाण
∴ ∼प

**प्रमाण रचना :**

प्रथम चरण :

$$\begin{bmatrix} 0 & 1 & 0 & 2 & 1 & 0 \\ (\text{प} & \supset & \text{फ}) & . & \sim & \text{फ} \end{bmatrix} \begin{matrix} 3 & 1 & 0 \\ \supset & \sim & \text{प} \end{matrix}$$

द्वितीय चरण :

$$\begin{bmatrix} 0 & 1 & 0 & 2 & 1 & 0 \\ (\text{प} & \supset & \text{फ}) & . & \sim & \text{फ} \end{bmatrix} \begin{matrix} 3 & 1 & 0 \\ \supset & \sim & \text{प} \\ | & & \\ \text{अ} & & \end{matrix}$$

तृतीय चरण :

$$\begin{bmatrix} 0 & 1 & 0 & 2 & 1 & 0 \\ (\text{प} & \supset & \text{फ}) & . & \sim & \text{फ} \end{bmatrix} \begin{matrix} 3 & 1 & 0 \\ \supset & \sim & \text{प} \\ | & | & \\ \text{अ} & \text{अ} & \end{matrix}$$
(बिन्दु '.' के नीचे: स)

चतुर्थ चरण :

```
[0  1  0   2  1  0]  3  1  0
[(प ⊃ फ)  .  ~  फ]  ⊃  ~  प
   |      |  |       |  |  |
   स      स  स       अ  अ  स
```

पंचम चरण :

```
[0  1  0   2  1  0]  3  1  0
[(प ⊃ फ)  .  ~  फ]  ⊃  ~  प
 |  |  |   |  |  |   |  |  |
 स     अ   स  स  अ   अ  अ  स     युक्ति वैध
```

उपर्युक्त प्रमाण रचना से यह प्रदर्शित होता है कि अंक 3 से निर्देशित प्रधान सम्बन्धक का सत्यतामूल्य असत्य मानने पर, जब अन्य घटकों का सत्यतामूल्य निर्धारित करते हैं तो एक स्थिति वह आ जाती है, जिसमें प के सत्य और फ के असत्य होने पर पर 'प ⊃ फ' सत्य निर्धारित होता है। लेकिन यह तार्किक व्याघात है। यदि प सत्य और फ असत्य हो तो 'प ⊃ फ' कभी सत्य नहीं हो सकता। इस व्याघात को 'प⊃फ' के निर्धारित सत्यतामूल्य, स, को काटकर प्रदर्शित किया गया है। क्योंकि यहाँ प्रधान सम्बन्धक को असत्य मानने पर व्याघात आता है, इसलिए इसे असत्य मानना ग़लत है और युक्ति वैध है। इस प्रमाण रचना में जो पाँच चरण दिखाये हैं, वे प्रमाण रचना के क्रम को प्रदर्शित करते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि प्रमाण रचना लिखते समय इस प्रकार पाँचों चरणों को अलग-अलग लिखा जाये। एक ही पंक्ति में प्रमाण रचना हो सकती है।

इसी प्रमाण रचना को एक पंक्ति में निम्नलिखित ढंग से लिख सकते हैं :

```
[0  1  0   2  1  0]  3  1  0
[(प ⊃ फ)  .  ~  फ]  ⊃  ~  प
 स     अ   स  स  अ   अ  अ  स
 3  3  4   2  3  4   1  2  3     युक्ति वैध
```

यहाँ ऊपर लिखे अंक घटकों का क्षेत्र-विस्तार प्रदर्शित करते हैं और नीचे लिखे अंक प्रमाण रचना में सत्यता निर्धारण के क्रम को प्रदर्शित करते हैं। सबसे पहले अंक 3 से संकेतित सम्बन्धक '⊃' का असत्य मूल्य स्वीकार किया है। इसलिए इसके मूल्य अ के नीचे 1 लिखा है। यह असत्य तभी बन सकता है, जब अंक 2 से संकेतित सम्बन्धक, ., का मूल्य स और दायीं ओर अंक 1 से संकेतित ~ का मूल्य अ स्वीकार किया जाये। इस प्रकार यह दूसरा चरण है जिसे नीचे लिखे अंक 2 से प्रदर्शित किया है। इसी प्रकार, नीचे लिखे अंक 3 और 4 तीसरे और चौथे चरण को प्रदर्शित करते हैं।

**उदाहरण 6.**

```
    प ⊃ फ
    ~प          की अवैधता का प्रमाण
∴  ~फ
```

[0 1 0 2 1 0] 3 1 0
[(प ⊃ फ) . ~ प] ⊃ ~ फ
अ स स स स अ अ अ स
4 3 3 2 3 4 1 2 3

यहाँ कोई व्यघात नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि प्रधान सम्बन्धक का असत्यमूल्य मानना वैध है। इसलिए युक्ति का यह आकार अवैध है।

व्याघात प्रदर्शन पद्धति से सभी युक्तियों की वैधता/अवैधता का प्रमाण एक ही पंक्ति में प्रदर्शित करना सम्भव नहीं होता। कुछ ऐसे भी उदाहरण हो सकते हैं, जिनमें अधिक पंक्तियों की आवश्यकता हो। हम यह जानते हैं कि v सत्य हो तो इसके घटकों के सत्यतामूल्य की कई सम्भावनाएँ हो सकती हैं। इसी प्रकार . के असत्य होने पर इसके घटकों के सत्यतामूल्य की सम्भावनाएँ कई हो सकती हैं। इस प्रकार जिन युक्तियों की वैधता का प्रमाण निश्चित करते समय v का सत्य या '.' का असत्य या ⊃ का सत्य बनता हो तो इनके घटकों के सत्यतामूल्य की सम्भावनाओं को निश्चित करने के लिए अधिक पंक्तियों की आवश्यकता होगी। हम यहाँ ऐसी जटिल प्रक्रिया को विस्तारभय से छोड़ रहे हैं।

## अभ्यास 1

प्रतिज्ञप्तियों के लिए संक्षिप्त चिह्नों का प्रयोग करके निम्नलिखित युक्तियों का प्रतीकीकरण करें और सत्यतासारणी द्वारा उनकी वैधता/अवैधता प्रमाणित करें।

1. राम के साथ सीता का विवाह तब और केवल तब हो सकता है, जब राम धनुष तोड़ें।
   राम ने धनुष तोड़ दिया।
   ∴ सीता का विवाह राम के साथ होगा।

2. यदि दशरथ कैकेयी के रूप पर मोहित न होते तो वे उसे दो वर न देते और यदि कैकेयी को दो वर न दिये होते तो राम वन न जाते।
   यदि राम वन न जाते तो रावण न मरता।
   ∴ यदि दशरथ कैकेयी के रूप पर मोहित न होते तो रावण न मरता।

3. यदि राम और मोहन दोनों सहमत हों तो मैं उनका समझौता करवा सकता हूँ।
   क्योंकि राम सहमत नहीं है।
   ∴ मैं समझौता नहीं करवा सकता।

4. यदि मनुष्य अपनी परिग्रह की वृत्ति पर काबू प्राप्त कर ले तो गरीब अमीर का भेद समाप्त हो जाता है।
   लेकिन मनुष्य अपनी परिग्रह की वृत्ति पर काबू प्राप्त नहीं कर सकता।
   ∴ गरीब अमीर का भेद समाप्त नहीं हो सकता।

5. यदि आपात काल की अवधि में जनता कांग्रेस शासन से सन्तुष्ट होती, तो 1977 के लोकसभा चुनावों में उसकी हार न होती।
क्योंकि 1977 के लोकसभा चुनावों में कांग्रेस हार गयी।
∴ जनता कांग्रेस के आपात काल के शासन से सन्तुष्ट न थी।

6. यदि रावण अभिमानी न होता और उसने अपने भाई विभीषण का अनादर न किया होता तो लंका का विनाश न होता।
लेकिन लंका का विनाश हुआ।
∴ या तो रावण अभिमानी था या उसने अपने भाई विभीषण का अनादर किया था।

7. यदि राम और कृष्ण मंजे हुए टेनिस खिलाड़ी होते, तो वे इस प्रतियोगिता में न हारते।
लेकिन इस प्रतियोगिता में वे हारे।
∴ या तो राम मंजा हुआ खिलाड़ी नहीं है या कृष्ण नहीं है।

8. मोहन और सोहन मित्र हैं या राम और कृष्ण मित्र हैं।
मोहन और सोहन मित्र नहीं हैं।
∴ राम और कृष्ण मित्र हैं।

9. राम को या तो सीता की अग्निपरीक्षा नहीं लेनी चाहिये थी या उसे वनवास नहीं देना चाहिये था।
राम ने सीता की अग्निपरीक्षा ली।
∴ राम को सीता को वनवास नहीं देना चाहिये था।

10. यदि राम साधारण मनुष्य होते, तो वे एक बाण से खरदूषण के लाखों सैनिकों का संहार नहीं कर सकते थे।
लेकिन राम ने एक बाण से खरदूषण के लाखों सैनिकों का संहार किया है।
∴ राम साधारण मनुष्य नहीं थे।

# 19

# आकारिक प्रमाण-पद्धति

पिछले अध्याय में हमने युक्तियों की वैधता/अवैधता का प्रमाण प्रस्तुत करने की सत्यतातालिका पद्धति और इसी के एक रूप व्याघात प्रदर्शन की पद्धति का विवेचन किया। इस अध्याय में युक्ति की वैधता की आकारिक प्रमाण पद्धति का विवेचन करेंगे। यह पद्धति सत्यतातालिका पद्धति से इस बात में सुगम है कि इसमें युक्ति की अधिक घटक प्रतिज्ञप्तियाँ होने पर भी कोई असुविधा नहीं होती।

यह तो हम स्पष्ट कर चुके हैं कि एक युक्ति की वैधता या अवैधता उसके आकार की विशेषता है। एक वैध आकार की सभी युक्तियाँ वैध होंगी और एक अवैध आकार की सभी युक्तियाँ अवैध होंगी। ऐसा नहीं हो सकता कि दो युक्तियों का आकार एक हो और उनमें से एक वैध और दूसरी अवैध हो। अध्याय 17 में युक्तियों के प्रमुख प्राथमिक वैध आकारों की व्याख्या कर चुके हैं। यहाँ यह प्रदर्शित करेंगे कि इन प्राथमिक वैध आकारों के आधार पर जटिल युक्तियों की वैधता की प्रमाण रचना कैसे कर सकते हैं। जो युक्ति एक प्राथमिक वैध आकार में है, वह उसका स्थानापन्न दृष्टान्त कहलायेगी।

## 1. आकारिक प्रमाण रचना

जो युक्ति किसी प्राथमिक अनुमान नियम का स्थानापन्न दृष्टान्त नहीं बन सकती, वह जटिल युक्ति मानी जायेगी। एक जटिल युक्ति वैध हो सकती है और अवैध भी। एक जटिल युक्ति के वैध होने का अर्थ यह नहीं है कि उसकी वैधता स्पष्ट है। इसलिए, एक जटिल वैध युक्ति की वैधता प्रमाणित करने की आवश्यकता होती है।

एक जटिल युक्ति की वैधता की आकारिक प्रमाण रचना प्राथमिक अनुमान नियमों के आधार पर की जाती है। आधारिकाओं से नियमानुसार निगमन-शृंखला तब तक चलती है, जब तक निष्कर्ष तक नहीं पहुँच जाते। इस प्रकार किसी युक्ति की वैधता का आकारिक प्रमाण अथवा उपपत्ति (proof) प्रस्तुत करने का अर्थ आधारिकाओं से लेकर निष्कर्ष तक निगमन के प्रत्येक चरण का उल्लेख करना है और साथ यह भी बताना है कि निगमन का एक चरण किस नियम द्वारा घटित हुआ है। हम आकारिक प्रमाण रचना में पहले निम्नलिखित नौ नियमों का प्रयोग करेंगे :

**अनुमान के नौ नियम**

1. मॉडस पॉनन्स (मॉ० पॉ०)
Modus Ponens (M. P.)

प ⊃ फ
प
———
∴ फ

2. मॉडस टॉलन्स (मॉ० टॉ०)
Modus Tollens (M. T.)

प ⊃ फ
~फ
———
∴ ~प

3. हेतुफलात्मक न्याय-वाक्य (हे० न्या०)
Hypothetical Syllogism (H. S.)

प ⊃ फ
फ ⊃ ब
———
∴ प ⊃ ब

4. वियोजन न्याय-वाक्य (वि० न्या०)
Disjunctive Syllogism (D. S.)

प V फ
~प
———
∴ फ

5. संघटन (संघ०)
Addition (Add.)

प
———
∴ प V फ

6. विधायक उभयत: पाश (वि० उ०)
Contructive Dilemma (C. D.)

(प ⊃ फ) . (ब ⊃ भ)
प V ब
———
∴ फ V भ

7. निषेधक उभयतः पाश (नि० उ०)
   Destructive Dilemma (D. D.)

   (प ⊃ फ) . (ब ⊃ भ)
   ~फ v ~भ
   ――――――――
   ∴ ~प v ~ब

8. संयोजन (संयो०)
   Conjunction (Conj.)

   प
   फ
   ――――――――
   ∴ प . फ

9. सरलीकरण (सरल०)
   Simplification (Simp.)

   प . फ
   ――――――――
   ∴ प

   अथवा

   प . फ
   ――――――――
   ∴ फ

इन नौ नियमों के सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखने की है कि इनमें से संघटन और सरलीकरण ऐसे दो नियम हैं जिनके अनुसार एक ही पंक्ति से निगमन घटित हो जाता है। शेष नियमों के अनुसार दो पंक्तियों से ही निगमन घटित हो सकता है।

उदाहरण 1.

यदि राम इंजीनियरिंग में डिग्री प्राप्त करता है तो वह नौकरी करेगा या अपना लघु-उद्योग प्रारम्भ करेगा।

राम इंजीनियरिंग में डिग्री प्राप्त करेगा लेकिन वह नौकरी नहीं करेगा।

∴ राम अपना लघु-उद्योग प्रारम्भ करेगा।

इ = राम इंजीनियरिंग में डिग्री प्राप्त करेगा।

न = राम नौकरी करेगा।

उ = राम अपना लघु-उद्योग प्रारम्भ करेगा।

युक्ति का प्रतीकात्मक रूप :

1. इ ⊃ (न v उ)
2. इ . ~न / ∴ उ

प्रमाण :

3. इ — 2, सरली०
4. ~न — 2. सरली०
5. न v उ — 1, 3 मॉ० पॉ०
6. उ — 5, 4 वि० न्या०

उपर्युक्त उदाहरण से प्रमाण-रचना के स्वरूप के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं :

1. युक्ति को प्रतीकात्मक रूप में प्रकट करने पर आधारिकाओं को क्रमानुसार एक स्तम्भ में लिखते हैं और अन्तिम आधारिका के सामने तिर्यक् रेखा लगाकर निष्कर्ष लिखते हैं। निष्कर्ष को इस प्रकार लिखने से एक तो निष्कर्ष और आधारिकाओं का स्पष्ट भेद हो जाता है और दूसरे आधारिकाओं और उनसे निगमित प्रतिज्ञप्तियों का भेद भी।

2. प्रमाण-रचना में निगमित प्रतिज्ञप्तियों को आधारिकाओं के स्तम्भ में ही क्रमानुसार लिखते हैं। प्रत्येक निगमित प्रतिज्ञप्ति के बायीं ओर उसकी क्रमसंख्या लिखी होती है और उसके दायीं ओर उन पूर्वगामी प्रतिज्ञप्तियों की क्रमसंख्या दी होती है जिनसे उसे निगमित किया होता है। इसके साथ-साथ वह अनुमान-नियम भी संक्षेप में लिखा होता है, जिसके द्वारा निगमन सम्पन्न हुआ है। जैसे, उदाहरण (1) में आधारिकाओं की क्रमसंख्या तो 2 तक है। इसके आगे प्रतिज्ञप्ति इ की क्रमसंख्या 3 है। इसके सामने '2, सरली०' का अर्थ यह है कि यह प्रतिज्ञप्ति पूर्वगामी प्रतिज्ञप्ति, 2, से सरलीकरण द्वारा निगमित हुई है। इसी प्रकार क्रमसंख्या, 5, की प्रतिज्ञप्ति के सामने लिखे '1, 3 मॉ० पॉ०' का अर्थ है कि यह प्रतिज्ञप्ति पूर्वगामी 1 और 3 प्रतिज्ञप्तियों से मॉडस पॉनन्स नियम द्वारा निगमित हुई है।

## अभ्यास

(क) निम्नलिखित प्रतीकात्मक युक्तियों की प्रमाण-रचना की उस प्रत्येक पंक्ति के औचित्य का हेतु बताएँ जो आधारिका नहीं है।

(1) 1. क ⊃ ख
2. ख ⊃ (ग v घ)
3. क . ~ग / ∴ घ

प्रमाण :

4. क
5. ~ग
6. ख
7. ग v घ
8. घ

(2) 1. प ⊃ (क . ख)
2. ख ⊃ न
3. प / ∴ न

प्रमाण :

4. क . ख
5. ख
6. न

(3)
1. (प ⊃ फ) . (ब ⊃ भ)
2. (य ⊃ ~फ) . (र ⊃ ~भ)
3. य . र / ∴ ~प . ~ब

प्रमाण :

4. य ⊃ ~फ
5. र ⊃ ~भ
6. य
7. र
8. ~फ
9. ~भ
10. प ⊃ फ
11. ब ⊃ भ
12. ~प
13. ~ब
14. ~प . ~ब

(4)
1. (क ⊃ ख) . (ग ⊃ घ)
2. क . ग
3. (ख . घ) ⊃ (य v र)
4. ~य / ∴ र

प्रमाण :

5. क ⊃ ख
6. ग ⊃ घ
7. क
8. ग
9. ख
10. घ
11. ख . घ
12. य v र
13. र

(5) 1. (प ⊃ फ) . (ब ⊃ भ)
2. प . ब
3. (फ ⊃ य) . (भ ⊃ र) / ∴ र . य

प्रमाण :

4. प ⊃ फ
5. ब ⊃ भ
6. प
7. ब
8. फ
9. भ
10. फ ⊃ य
11. भ ⊃ र
12. प ⊃ य
13. ब ⊃ र
14. र
15. य
16. र . य

(ख) निम्नलिखित प्रतीकात्मक युक्तियों की प्रमाण-रचना कीजिये ।

(6) 1. क ⊃ (ख . ग)
2. क . र / ∴ ग v भ

(7) 1. प v (ब . भ)
2. (ब . भ) ⊃ य
3. ~प . ~र / ∴ य . ~र

(8) 1. प v (फ ⊃ र)
2. (फ ⊃ र) ⊃ य
3. ~प / ∴ य

(9) 1. (य ⊃ र) ⊃ (व ⊃ ल)
2. य . क / ∴ र v ल

(10) 1. (~क ⊃ ख) . (प ⊃ फ)
2. फ ⊃ ब
3. प . ~क / ∴ ब . ख

(ग) आगे दी हुई युक्तियों की निर्देशित प्रतिज्ञप्तीय संक्षिप्त चिह्नों के अनुसार प्रतीकात्मक रचना कीजिये और इनकी वैधता का प्रमाण प्रस्तुत कीजिये ।

(11) यदि यह गैस नाइट्रोजन है तो रंगहीन और स्वादहीन है ।
यह गैस नाइट्रोजन है ।
∴ यह गैस स्वादहीन है। (न, र, स)

(12) यदि सीता कत्थक नृत्य में पारंगत है तो लीला वीणावादन में और मोहन तबलावादन में । यदि मोहन तबलावादन में निपुण है तो रघबीर सिंह भंगडा में माहिर है या कमला लोकगीतों में प्रसिद्ध है । सीता कत्थक नृत्य में पारंगत है और रघबीर सिंह भंगड़ा में माहिर नहीं है । इसलिए, कमला लोकगीतों में प्रसिद्ध है । (क, व, त, भ, ल)

(13) यदि राम ने अपने पिता की अभिलाषा पूरी करनी है तो उसे डाक्टर बनकर दिखाना होगा और यदि राम ने अपनी माता की अभिलाषा पूरी करनी है तो पुलिस कप्तान बनकर दिखाना होगा । यदि राम ने डाक्टर बनकर दिखाना है तो उसे प्री-मैडिकल परीक्षा में 70 प्रतिशत अंक प्राप्त करने होंगे । राम के प्री-मैडिकल में 70 प्रतिशत अंक नहीं आयेंगे । राम ने अपने पिता की अभिलाषा पूरी करनी है या अपनी माता की । इसलिए, या तो राम पुलिस कप्तान बनकर दिखायेगा या घास खोदेगा । (प, ड, मं, के, अ, घ)

(14) यदि सरकार जनसंख्या वृद्धि रोकने के लिए कटिबद्ध है तो परिवार नियोजन सफल बनाना होगा । यदि परिवार-नियोजन सफल बनाना है तो सरकार इसके लिए जनता को प्रशिक्षित करने का प्रयत्न करेगी और निश्चित कानून बनायेगी । यदि सरकार परिवार-नियोजन के सम्बन्ध में निश्चित कानून बनाती है तो प्रत्येक "योग्य" दम्पती में से पति को नसबन्धी करानी होगी या पत्नी को नलबन्धी करानी होगी । सरकार जनसंख्या वृद्धि रोकने के लिए कटिबद्ध है । इसलिए, प्रत्येक "योग्य" दम्पती में से पति को नसबन्धी करानी होगी या पत्नी को नलबन्धी करानी होगी । (ज, स, प, क, न, ल)

(15) यदि लीला का आई० ए० एस० की परीक्षा में बैठने का निश्चय है तो वह अभी अविवाहित रहना पसन्द करेगी और यदि उसे प्राध्यापक रहना पसन्द है तो वह स्वजातीय योग्य प्राध्यापक से विवाह करने के लिए तैयार हो जायेगी । या तो लीला का आई० ए० एस० परीक्षा में बैठने का निश्चय है या वह प्राध्यापक रहना पसन्द करती है । लीला अब अविवाहित रहना पसन्द नहीं करेगी । इसलिए, वह स्वजातीय योग्य प्राध्यापक से विवाह करने के लिए तैयार हो जायेगी । (आ, अ, प, त)

## 2. प्रतिस्थापन नियम और प्रमाण-रचना

यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि ऐसी दो प्रतिज्ञप्तियाँ जिनका सत्यतामूल्य समान हो तार्किक दृष्टि से तुल्य प्रतिज्ञप्तियाँ समझी जाती हैं। युक्ति की किसी घटक प्रतिज्ञप्ति के स्थान पर उसकी तुल्य प्रतिज्ञप्ति रखने से युक्ति की वैधता/अवैधता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसी प्रकार, युक्ति की प्रमाण-रचना में भी जहाँ आवश्यक हो एक प्रतिज्ञप्ति के स्थान पर उसकी तुल्य प्रतिज्ञप्ति रख देते हैं। प्रमाण-रचना में प्रयुक्त होने वाले प्रतिस्थापन नियमों को अनुमान-नियमों की सूची में जोड़ना आवश्यक है। पूर्ववर्णित अनुमान के नौ नियमों के अलावा प्रमाण-रचना में प्रयुक्त होने वाले प्रतिस्थापन नियम नीचे दिये हैं।

10. द्वि-निषेध नियम (द्वि० नि०) (Law of double negation)

$$प \equiv \sim \sim प$$

अथवा

$$\sim \sim प \equiv प$$

11. डी मोर्गन प्रमेय (डी मोर्गन) (De Morgan's Theorems)

(अ) $\sim(प \,.\, फ) \equiv (\sim प \vee \sim फ)$

(आ) $\sim(प \vee फ) \equiv (\sim प \,.\, \sim फ)$

12. क्रम विनिमय नियम (क्र० वि०) (Commutative Laws)

(अ) $(प \vee फ) \equiv (फ \vee प)$

(आ) $(प \,.\, फ) \equiv (फ \,.\, प)$

13. साहचर्य नियम (साह०) (Laws of Association)

(अ) $[प \vee (फ \vee ब)] \equiv [(प \vee फ) \vee ब]$

(आ) $[प \,.\, (फ \,.\, ब)] \equiv [(प \,.\, फ) \,.\, ब]$

14. अन्तर्विनिमय नियम (अ० वि०) (Law of Transposition)

$$(प \supset फ) \equiv (\sim फ \supset \sim प)$$

15. व्याप्ति नियम (व्याप्ति०) (Law of Distribution)

(अ) $[प \vee (फ \,.\, ब)] \equiv [(प \vee फ) \,.\, (प \vee ब)]$

(आ) $[प \,.\, (फ \vee ब)] \equiv [(प \,.\, फ) \vee (प \,.\, ब)]$

16. वस्तुगत आपादन नियम (व० आपादन) (Material Implication)

$$(प \supset फ) \equiv (\sim प \vee फ)$$

17. वैषयिक तुल्यता नियम (तुल्यता०) (Material Equivallence)

(अ) $(प \equiv फ) \equiv [(प \supset फ) \,.\, (फ \supset प)]$

(आ) $(प \equiv फ) \equiv [(प \,.\, फ) \vee (\sim प \,.\, \sim फ)]$

18. निर्यातन नियम (निर्या०) (Law of Exportation)

$$[(\text{प} \,.\, \text{फ}) \supset \text{ब}] \equiv [\text{प} \supset (\text{फ} \supset \text{ब})]$$

19. पुनरुक्तिता नियम (पुनरु०) (Tautology)

(अ) $\text{प} \equiv (\text{प} \vee \text{प})$

(आ) $\text{प} \equiv (\text{प} \,.\, \text{प})$

## अभ्यास

(क) निम्नलिखित युक्तियों की प्रमाण-रचना की उन पंक्तियों का तार्किक हेतु प्रस्तुत करें जो आधारिकाएँ नहीं हैं.

(16) 1. $\sim(\text{प} \,.\, \text{फ})$

2. $\text{फ} \,.\, (\sim\text{प} \supset \text{य}) \;/\; \therefore \text{य}$

प्रमाण :

3. $\sim\text{प} \vee \sim\text{फ}$ — 1, डी० मोर्गन

4. फ — 2, सरली०

5. $\sim\text{फ} \vee \sim\text{प}$ — 3, क्रम० वि०

6. $\sim\sim\text{फ}$ — 4, द्वि० नि०

7. $\sim\text{प}$ — 5, 6 वि० न्याय०

8. $\sim\text{प} \supset \text{य}$ — 2, सरली०

9. य — 8, 7, मॉ० पॉ०

(17) 1. $(\text{प} \vee \text{फ}) \vee \text{ब}$

2. $(\text{ई} \supset \sim\text{प}) \,.\, (\text{र} \supset \sim\text{फ})$

3. $\text{ई} \,.\, \text{र} \;/\; \therefore \text{ब}$

प्रमाण :

4. $\text{प} \vee (\text{फ} \vee \text{ब})$

5. $\text{ई} \supset \sim\text{प}$

6. $\text{र} \supset \sim\text{फ}$

7. ई

8. र

9. $\sim\text{प}$

10. $\text{फ} \vee \text{ब}$

11. $\sim\text{फ}$

12. ब

(18) 1. र v (प ⊃ फ)
2. (य ⊃ ~र) . (न ⊃ ~फ)
3. य . न / ∴ ~प

प्रमाण :

4. य ⊃ ~र
5. न ⊃ ~फ
6. य
7. न
8. ~र
9. ~फ
10. प ⊃ फ
11. ~प

(19) 1. प v (फ . ब)
2. (प ⊃ र) . (फ ⊃ न)
3. ~न / ∴ र

प्रमाण :

4. (प v फ) . (प v ब)
5. प v फ
6. र v न
7. न v र
8. र

(20) 1. (प . र) . य
2. (र . य) ⊃ न / ∴ न

प्रमाण :

3. प . (र . य)
4. र . य
5. न

(21) 1. य ⊃ (र ⊃ न)
2. ~न . र / ∴ ~य

प्रमाण :

3. ~न
4. र
5. (य . र) ⊃ न
6. ~(य . र)

7. ∼य v ∼र
8. ∼र v ∼य
9. ∼ ∼र
10. ∼य

(22) 1. क ≡ ख
2. य ⊃ ∼ख
3. य / ∴ ∼क

प्रमाण :
4. (क ⊃ ख) . (ख ⊃ क)
5. क ⊃ ख
6. ∼ख ⊃ ∼क
7. ∼ख
8. ∼क

(23) 1. (र ⊃ य) . (∼ल v य)
2. र v ल / ∴ य

प्रमाण :
3. र ⊃ य
4. ∼ल v य
5. ल ⊃ य
6. (र ⊃ य) . (ल ⊃ य)
7. य v य
8. य

(24) 1. ∼ब . य
2. (प . फ) ⊃ ब
3. प / ∴ ∼फ

प्रमाण :
4. ∼ब
5. ∼(प . फ)
6. ∼प v ∼फ
7. ∼ ∼प
8. ∼फ

(25) 1. (प ⊃ फ) . ∼फ
2. ∼प ⊃ र / ∴ र

प्रमाण :

3. प ⊃ फ
4. ∼फ
5. ∼प
6. र

(घ) निर्देशित चिह्नों का प्रयोग करके निम्नलिखित युक्तियों की प्रतीकात्मक रचना कीजिए और इनकी वैधता प्रमाणित कीजिए।

(26) या तो राम छात्र परिषद् का प्रधान नहीं चुना जाता या हरि छात्र परिषद् का सचिव चुना जायेगा। यदि हरि छात्र परिषद् का सचिव चुना जाता है तो मोहन कोषाध्यक्ष नहीं बनेगा। लेकिन मोहन कोषाध्यक्ष बना है। इसलिए, राम छात्र परिषद् का प्रधान नहीं चुना गया। (र ह, म)

(27) यदि ईश्वर पूर्ण होता और यह संसार ईश्वर की सृष्टि होता, तो इस संसार में बुराई न होती। यह संसार ईश्वर की सृष्टि है और इसमें बुराई है। इसलिए, ईश्वर अपूर्ण है। (प, स, ब)

(28) यदि राम आज क्लब गया तो यदि मोहन उसे क्लब में मिला तो वह उसके साथ शतरंज खेलेगा। यदि राम मोहन के साथ शतरंज खेलेगा तो क्लब से 12 बजे से पहले घर नहीं आयेगा। राम आज क्लब गया और 12 से पहले घर आ गया। इसलिए, आज उसे क्लब में मोहन नहीं मिला। (र, म, श, घ)

(29) यदि राम धनवान् है और उदार है तो वह मन्दिर के लिए दस हज़ार रुपया चन्दा देगा। या तो राम के पिता उदार नहीं हैं या राम उदार है। राम का भाई मूर्ख है, और राम धनवान् है और उसके पिता उदार हैं। इसलिए, राम मन्दिर के लिए दस हज़ार रुपया चन्दा देगा। (ध, उ, म, प, भ)

(30) राम दर्शनशास्त्र पढ़ता है, और उसकी बहिन इतिहास पढ़ती है या राजनीतिशास्त्र पढ़ती है। ऐसा नहीं है कि राम दर्शनशास्त्र पढ़ता है और उसकी बहिन इतिहास पढ़ती है। इसलिए, राम की बहिन राजनीतिशास्त्र पढ़ती है। (द, इ, र)

# 20

# परिमाणन
## (Quantification)

नवीन तर्कशास्त्र की एक प्रमुख शाखा परिमाणन तर्कशास्त्र (Quantificational Logic) है। यह तर्कशास्त्र का सशक्त अंग है जिसमें वाक्यों की रचना का पूर्ण विश्लेषण किया जाता है और युक्तियों की वैधता के प्रमाण निश्चित किये जाते हैं। तर्कशास्त्र की इस प्रारम्भिक पुस्तक में हम केवल नवीन तर्कशास्त्र की इस शाखा की प्रतीकात्मक भाषा तथा साधारण वाक्यों को प्रतीकात्मक भाषा में रखने की विधि का अध्ययन करेंगे।

### 1. एकव्यापी वाक्य का विश्लेषण
### (Analysis of Singular Sentence)

वाक्य रचना का सरल रूप एकव्यापी वाक्य है। एकव्यापी वाक्य वह वाक्य है जिसमें किसी विशिष्ट व्यक्ति का गुण-धर्म, क्रिया अथवा सम्बन्ध बताया जाता है। जैसे

(1) राम बलवान् है।
(2) राम सो रहा है।
(3) राम सोहन का मित्र है

**पद और विधेय :** वाक्य की रचना में जो शब्द विशिष्ट व्यक्ति का बोधक है उसे पद कहते हैं। संक्षेप में व्यक्ति के नाम को पद (term) कहते हैं। यहाँ "व्यक्ति" शब्द का अर्थ कोई भी विशिष्ट वस्तु है। इस प्रकार राम, मोहन, एवरेस्ट, देहली व्यक्ति हैं और इनके वाचक शब्द "राम", "सोहन" आदि पद हैं। पद की यह परिभाषा परम्परागत तर्कशास्त्र में दी हुई परिभाषा से भिन्न है। परम्परागत तर्कशास्त्र में जाति-वाचक संज्ञा शब्द जैसे, "मनुष्य" "पुष्प" आदि भी पद माने जाते हैं। लेकिन वाक्यों के नवीन विश्लेषण में केवल व्यक्ति के नाम को पद कहते हैं। जाति-वाचक संज्ञा शब्द को विधेय (predicate) माना जाता है।

वाक्य-रचना में जिन शब्दों द्वारा व्यक्ति के गुण-धर्म, क्रिया अथवा सम्बन्ध बताये जाते हैं उन्हें विधेय (predicate) कहते हैं। ऊपर वाक्य (1) में "राम" पद है

और "बलवान् है" विधेय है। वाक्य (2) में "राम" पद है और "सो रहा है" विधेय है। वाक्य (3) में "राम" और "सोहन" पद है तथा "का मित्र है" विधेय है। "का मित्र है" सम्बन्ध-वाची है। सम्बन्ध-वाची शब्द समूह को भी विधेय कहते हैं। सम्बन्ध-वाची विधेय बहुपदीय विधेय होता है अर्थात् यह एक से अधिक पदों पर आश्रित होता है। वाक्य (3) में "का मित्र है" द्विपदीय विधेय है। त्रिपदीय विधेय, चतुष्पदीय विधेय तथा इनसे भी अधिक पदों वाले विधेय के उदाहरण सोचे जा सकते हैं।

पद और विधेय के सम्बन्धों के इस विवेचन से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि एक सरल-वाक्य में एक पद हो सकता है, दो पद भी हो सकते हैं अथवा दो से भी अधिक पद हो सकते हैं। सरल-वाक्य को परमाणु-वाक्य भी कहते हैं तथा सरल-वाक्य के पद तथा विधेय में विश्लेषण को परमाणु-विश्लेषण (atomic analysis) कहते हैं।

**अभ्यास**

निम्नलिखित वाक्यों को पद और विधेय में विश्लेषण करो :

(1) सीता सुन्दर स्त्री है।
(2) सीता राम की पत्नी है।
(3) राम भरत का भाई है।
(4) राम रावण से युद्ध करता है।
(5) राम भारतीय है।

## 2. पद और विधेय के संक्षिप्त चिह्न और वाक्यों की नवीन तार्किक रचना

व्याकरण के अनुसार वाक्य-रचना में पहले पद और फिर विधेय आता है। लेकिन तर्कशास्त्र में वाक्य की रचना में पहले विधेय और उसके बाद पद रखा जाता है। वाक्य की तार्किक रचना में सुविधा के लिए पद तथा विधेय के संक्षिप्त चिह्नों का प्रयोग किया जाता है। पद के किसी अक्षर को तथा विधेय के किसी अक्षर को उनके संक्षिप्त चिह्नों के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। किसी वाक्य को प्रतीकात्मक रूप में बदलते समय पद तथा विधेय के लिए किन अक्षरों को उनके संक्षिप्त चिह्नों के रूप में अपनाया गया है, इस बात को एक कुञ्जी के रूप में स्पष्ट करना आवश्यक होता है।

**उदाहरण 1.**

कुञ्जी : (र)=राम
ब=बलवान् है।

इस प्रकार,

(1) ब (र)

एक वाक्य है। इसका साधारण भाषा में अनुवाद होगा :

(2) राम बलवान् है।

उदाहरण 2.

कुञ्जी :

(र)=राम

व=विवाहित है ।

इस प्रकार

(3) व (र)

का अर्थ है

(4) राम विवाहित है ।

यहां (3) और (4) को भिन्न-भिन्न वाक्य कहेंगे क्योंकि इनकी रचना भिन्न है, यद्यपि इनका अर्थ एक है अर्थात् ये दोनों एक ही प्रतिज्ञप्ति प्रकट करते हैं ।

उदाहरण 3.

कुञ्जी :

र=राम

स=सीता

प=का पति है ।

इस प्रकार

(5) प (र, स)

का भाषीय रूप होगा :

(6) राम सीता का पति है ।

उदाहरण 4.

कुञ्जी :

र=राम

म=मोहन

त्र=का मित्र है ।

इस प्रकार

(7) त्र (र, म)

का भाषीय रूप होगा :

(8) राम मोहन का मित्र है ।

## 3. वाक्य-सूत्र, पदचर तथा विधेयचर

**(Sentential formula, term variable and predicate variable)**

क्योंकि तर्कशास्त्र में हमारी रुचि भिन्न-भिन्न वाक्यों में नहीं होती, अपितु वाक्यों की रचना के भिन्न-भिन्न आकारों में होती है, इसलिए हमें यह भी जान लेना चाहिये कि वाक्य रचना के एक आकार (form) को किस प्रकार प्रकट किया जाता है ।

निम्नलिखित वाक्यों को देखिये :

(1) ब (र)
(2) व (र)
(3) प (र, स)
(4) त (र, म)

इन वाक्यों को देखने से यह पता चलता है कि वाक्य (1) और (2) की रचना बिल्कुल एक-सी है। इसी प्रकार वाक्य (3) और (4) की रचना एक-सी है। पदचर (term variable) तथा विधेयचर (prepicate variable) का प्रयोग करके वाक्य रचना के इन रूपों को प्रकट किया जा सकता हैं।

वाक्य रचना में पद और विधेय की अपनी-अपनी स्थिति होती है। हम यह देख चुके हैं कि वाक्य रचना में विधेय की स्थिति पद की स्थिति से पहले होती है। वाक्य रचना में विधेय और पद की स्थिति को निम्नलिखित रेखाचित्र से प्रकट कर सकते हैं।

विधेय
————(पद)

इस चित्र में पड़ी रेखा विधेय के स्थान की और कोष्ठक पद के स्थान के द्योतक हैं। यह रेखाचित्र वाक्य नहीं है क्योंकि इसमें किसी के बारे में कुछ नहीं बताया गया है। विधेय के खाली स्थान को बताने के लिए पड़ी रेखा की जगह किसी भी भाषा के किसी भी अक्षर का प्रयोग हो सकता है। जो अक्षर विधेय के खाली स्थान का बोधक हो उसे विधेयचर कहते हैं। इसी प्रकार पद के खाली स्थान को बताने के लिए भी किसी भी अक्षर का प्रयोग हो सकता है। जो अक्षर पद के खाली स्थान का बोधक हो उसे पदचर कहते हैं। हम अंग्रेजी के अक्षर F, G, H का प्रयोग विधेयचर के रूप में और अंग्रेजी के अक्षर, $x$, $y$, $z$ का प्रयोग पदचर के रूप में करेंगे। इस प्रकार ऊपर रेखाचित्र से वाक्य रचना के जिस आकार को प्रदर्शित किया है, उसी आकार को

(5) F ($x$)

द्वारा भी प्रदर्शित किया जा सकता है। यह ध्यान रखने की बात है कि यहाँ F विधेय का संक्षिप्त नहीं है, इसी प्रकार '$x$' भी पद का संक्षिप्त चिह्न नहीं है। यहाँ F किसी भी विधेय के खाली स्थान का और $x$ किसी भी पद के खाली स्थान का बोधक है। यहाँ पर F विधेयचर है और $x$ पदचर है। पदचर को स्पष्टता के लिए कोष्ठक में रखा जाता है।

यह भी स्पष्ट है कि 'F ($x$)'

वाक्य नहीं है, अपितु वाक्य के रूप को प्रकट करने वाली एक प्रतीकात्मक रचना है। वाक्य के रूप को प्रकट करने वाली प्रतीकात्मक रचना को वाक्य-सूत्र (sentential formula) कहते हैं।

$F(x)$

एक वाक्य-सूत्र है।

इसी प्रकार

(6) $F(x, y)$

भी एक वाक्य-सूत्र है।

एक वाक्य-सूत्र के अनुरूप वाक्य को उस सूत्र का दृष्टान्त कहते हैं। वाक्य (1) और (2) सूत्र (5) के दृष्टान्त हैं और वाक्य (3) और (4) सूत्र (6) के दृष्टान्त हैं।

जिस सूत्र में विधेयचर के बाद निश्चित संख्या में पदचर हों उसे परमाणु-सूत्र (atomic formula) कहते हैं।

$F(x)$

तथा

$F(x, y)$

दोनो परमाणु-सूत्र हैं।

वाक्य सम्बन्धकों $\sim$, ., v, $\supset$, $\equiv$ की मदद से मिश्र सूत्र (compound formula) बनते हैं।

7. $\sim F(x)$
8. $F(x) . G(x)$
9. $F(x) . G(y)$
10. $F(x) \vee G(x)$
11. $F(x) \supset G(x)$
12. $F(x) \equiv G(x)$

ये मिश्र वाक्य सूत्र हैं।

इनके दृष्टान्त क्रमशः निम्नलिखित हैं:

(7) $\sim$ब (र) $\equiv$ ऐसा नहीं है कि राम बलवान् है।

(8) ब (र) . स (र) $\equiv$ राम बलवान् और सुशील है।

(9) ब (र) . क (स) $\equiv$ राम बलवान् है और सीता कोमल है।

(10) द (र) v न (र) $\equiv$ राम दयालु या न्याय प्रिय है।

(11) ज (र) $\supset$ द (र) $\equiv$ यदि राम राजा है तो दण्डधारी है।

(12) द (र) $\equiv$ अ (र) $\equiv$ राम देवता तब और केवल तब है जब वह अमर है।

### अभ्यास

निम्नलिखित वाक्यों को प्रतीकात्मक वाक्यों में प्रकट करो तथा विधेयचर और पदचर का प्रयोग करके इनका आकार सूत्र के द्वारा प्रकट करो।

(1) केशव राजा है।
(2) केशव नरेन्द्र का पिता है।
(3) श्रीमती इन्दिरा गाँधी भारत की प्रधान मन्त्री है।
(4) मोहन हरि का मित्र है।
(5) मोहन हरि का मित्र है और राम धनुर्धारी है।
(6) राम दर्शनशास्त्र पढ़ता है या गाय चराता है।
(7) यदि भरत संन्यासी है तो वह गृहस्थी नहीं है।
(8) सुशीला विदुषी और विवाहित है।
(9) भारत विशाल देश है और भारत महान् है।
(10) गंगा पवित्र नदी है और ऐवरेस्ट सबसे ऊँची पर्वत चोटी है।

## 4. प्रतिज्ञप्ति-फलन
## (Propositional Function)

एक ही विधेय अनेक व्यक्तियों के बारे में लागू हो सकता है। जैसे :

(1) राम मनुष्य है।
(2) हरि मनुष्य है।
(3) विष्णु मनुष्य है।
(4) मोहन मनुष्य है।

इन कथनों से यह स्पष्ट है कि "मनुष्य है" विधेय अनेक व्यक्तियों में से किसी भी एक व्यक्ति पर लागू हो सकता है। यदि हम किसी विधेय का सामान्य स्वरूप बताना चाहें और यह न बताना चाहें कि वह किन-किन व्यक्तियों पर लागू होता है तो हम इस बात को पदचर का प्रयोग करके प्रकट कर सकते हैं। वह रचना जिसमें विधेय का तो स्पष्ट कथन हो लेकिन पद के स्थान पर पदचर का प्रयोग हो प्रतिज्ञप्ति-फलन (propositional function) कहलाती है। जैसे :

(5) $x$ मनुष्य है।

एक प्रतिज्ञप्ति-फलन है।

"मनुष्य है" के लिए 'म' का प्रयोग करके इस प्रतिज्ञप्ति-फलन को

(6) म $(x)$

के रूप में प्रकट कर सकते हैं।

(5) तथा (6) का अर्थ है कि 'कोई मनुष्य है'। "कोई मनुष्य है" प्रतिज्ञप्ति या कथन नहीं है क्योंकि इसे न सत्य कह सकते हैं और न असत्य। जब तक यह निश्चित न हो कि '$x$' अथवा 'कोई' का क्या मूल्य है, तब तक यह रचना कथन नहीं बन सकती। लेकिन जब हम $x$ के स्थान पर कोई पद रखेंगे जो यह रचना प्रतिज्ञप्ति में बदल जायेगी।

यदि

म ($x$)

में '$x$' के स्थान पर पद र (राम) रखते हैं तो

(7) म (र)

प्रतिज्ञप्ति बन जायेगी। इसे हम पढ़ेंगे

राम मनुष्य है।

यदि $x$ का मूल्य ए (एवरेस्ट) निश्चित करते हैं तो

(8) म (ए)

प्रतिज्ञप्ति बन जायेगा इसका भाषीय रूप होगा : एवरेस्ट मनुष्य है। इनमें से (7) सत्य प्रतिज्ञप्ति है और (8) असत्य प्रतिज्ञप्ति है।

संक्षेप में प्रतिज्ञप्ति और प्रतिज्ञप्ति-फलन में निम्नलिखित अन्तर है :

1. प्रतिज्ञप्ति की रचना पद तथा विधेय से बनती है जबकि प्रतिज्ञप्ति-फलन की रचना पदचर (term variable) और विधेय से बनती है।

2. प्रतिज्ञप्ति सत्य या असत्य होती है, लेकिन प्रतिज्ञप्ति-फलन न सत्य कही जा सकती है और न असत्य।

प्रतिज्ञप्ति-फलन के पदचर के मूल्य-निर्धारण का फल प्रतिज्ञप्ति होता है। पदचर का मूल्य निश्चित करने का अर्थ है पदचर के स्थान पर पद रखना। जैसे $x$ के स्थान पर "राम" पद रखना $x$ का मूल्य निश्चित करना है :

## 5. प्रतिज्ञप्ति-फलन और परिमाणक
## (Propositional Function and Quantifier)

यद्यपि प्रतिज्ञप्ति-फलन प्रतिज्ञप्ति नहीं है, लेकिन इससे प्रतिज्ञप्ति बनायी जा सकती है। प्रतिज्ञप्ति-फलन से प्रतिज्ञप्ति बनाने की दो विधियाँ हैं :

1. पदचर का मूल्य निश्चित करने की विधि।

2. परिमाणन की विधि (method of quantification)।

पदचर का मूल्य निर्धारण करने से जो प्रतिज्ञप्ति बनेगी वह एकव्याप्ती प्रतिज्ञप्ति (singular proposition) होगी। जैसे :

(1) म (x)

के x का मूल्य क्रमशः राम (र), हरि (ह) और सोहन (स) निश्चित करने पर निम्नलिखित प्रतिज्ञप्तियाँ बनेंगी :

(2) म (र) राम मनुष्य है।

(3) म (ह) हरि मनुष्य है।

(4) म (स) सोहन मनुष्य है।

प्रतिज्ञप्ति फलन से प्रतिज्ञप्ति बनाने की दूसरी विधि परिमाणन (quantification) की विधि है। किसी प्रतिज्ञप्ति फलन के बारे में यह निश्चित करना कि वह एक वर्ग के सब व्यक्तियों पर लागू होता है या कुछ व्यक्तियों पर लागू होता है उस प्रतिज्ञप्ति-जन का परिमाणन करना है।

परिमाणन (quantification) के भी दो रूप हैं :

1. सर्व-परिमाणन (Universal quantification)
2. अंशव्यापी परिमाणन (Particular quantification)

किसी प्रतिज्ञप्ति-फलन के बारे में यह बताना कि वह संसार की प्रत्येक वस्तु पर लागू होता है, उसका सर्वव्यापी परिमाणन होगा और यह बताना कि वह कुछ वस्तुओं पर लागू होता है, उसका अंशव्यापी परिमाणन होगा।

## 6. सर्वव्यापी परिमाणक और अंशव्यापी पीरमाणक (Universal quantifier and Particular quantifier)

भाषा में "सब" तथा "कुछ" शब्दों का प्रयोग क्रमशः सर्वव्यापी परिमाणक और अंशव्यापी परिमाणक के रूप में किया जाता है। लेकिन प्रतीकात्मक भाषा में इनकी रचना प्रतीकों से होती है। एक प्रतिज्ञप्ति-फलन में प्रयुक्त पदचर को कोष्ठक में रखने पर सर्वव्यापी परिमाणक बनता है और पदचर के पहले $\exists x$ लिखकर और इन दोनों को कोष्ठक में रखने से अंशव्यापी परिमाणक बनता है। यदि $x$ पदचर हो तो $(x)$ सर्वव्यापी परिमाणक होगा और $(\exists x)$ अंशव्यापी परिमाणक होगा। यदि $y$ पदचर हो तो $(y)$ सर्वव्यापी परिमाणक और $(\exists y)$ अंशव्यापी परिमाणक होगा।

प्रतिज्ञप्ति-फलन से प्रतिज्ञप्ति बनाते समय परिमाणक को प्रतिज्ञप्ति-फलन से पहले जोड़ना होता है।

जैसे :

म (x)

के पहले सर्वव्यापी परिमाणक (x) जोड़ने पर

(5) (x) म (x)

प्रतिज्ञप्ति बनेगी। भाषा में इसे पढ़ने के निम्नलिखित विभिन्न रूप हैं :

(6) $x$ के प्रत्येक मूल्य के बारे में यह सत्य है कि वह मनुष्य है।

(7) प्रत्येक $x$ वस्तु के बारे में यह सत्य है कि वह मनुष्य है।

(8) प्रत्येक वस्तु मनुष्य है।

(9) सब वस्तु मनुष्य हैं।

म $(x)$

के पहले अंशव्यापी परिमाणक $(\exists x)$ जोड़ने पर

(10) $(\exists x)$ म $(x)$

प्रतिज्ञप्ति बनेगी। इसे भाषा में निम्नलिखित ढंग से पढ़ेंगे।

(11) कम-से-कम $x$ का एक मूल्य ऐसा है जो मनुष्य है।

(12) कम-से-कम एक $x$ वस्तु ऐसी है जो मनुष्य है।

(13) कम-से-कम एक वस्तु मनुष्य है।

(14) कुछ वस्तुएँ मनुष्य हैं।

वाक्य (5) में $(x)$ का प्रयोग दो बार हुआ है। दोनों जगह इसका व्यापार भिन्न है। वाक्य-रचना के प्रारम्भ का $(x)$ तो परिमाणक है जिसका अर्थ है कि $x$ के जितने भी मूल्य सोचे जा सकते हैं वे सब। लेकिन दूसरा $(x)$ तो केवल सर्वनाम का काम करता है। वाक्य (6) और (7) में जो काम 'वह' सर्वनाम का है वही काम वाक्य (5) में दूसरे $(x)$ का है।

F को विधेयचर और $(x)$ को पदचर मानकर सर्वव्यापी परिमाणन से बनने वाले वाक्य का सामान्य रूप इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं :

(15) $(x)$ $F(x)$

ध्यान रखिये कि रचना (15) वाक्य नहीं है अपितु परिमाणित वाक्य (quantified sentence) के एक आकार को प्रकट करने वाला वाक्य-सूत्र है। यह सर्व-परिमाणित वाक्य (universally quantified sentence) का सूत्र (formula) है।

अंशव्यापी परिमाणक $(\exists x)$ को अस्तित्व परिमाणक (existential quantifier) भी कहते हैं। इसमें $\exists$ अंग्रेजी के अक्षर E का परिवर्तित रूप है और E अंग्रेजी के शब्द 'Existence' का संक्षिप्त रूप है। अस्तित्व परिमाणक से बनने वाले वाक्य को अस्तित्व परिमाणित वाक्य (existentially quantified sentence) कहते हैं।

(16) $(\exists x)$ म$(x)$

अस्तित्व परिमाणित वाक्य है। अस्तित्व परिमाणित वाक्य का सामान्य सूत्र निम्नलिखित है :

(17) $(\exists x)$ $F(x)$

परिमाणित प्रतिज्ञप्तियाँ (quantified propositions) *सामान्य प्रतिज्ञप्तियाँ* (general propositios) कहलाती हैं और ये एकव्यापी प्रतिज्ञप्तियों (singular propositions) से भिन्न होती हैं।

## 7. निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों—*अ, ए, इ, ओ* को परिमाणन की भाषा में प्रकट करना

परम्परागत—*अ, ए, इ, ओ* प्रतिज्ञप्तियाँ न तो सरल प्रतिज्ञप्तियाँ हैं और न मिश्र प्रतिज्ञप्तियाँ ही हैं। ये मिश्र प्रतिज्ञप्ति-फलनों के परिमाणन से बनने वाली प्रतिज्ञप्तियाँ हैं। निम्नलिखित विश्लेषण से इनका यह स्वरूप स्पष्ट हो जायेगा।

*अ प्रतिज्ञप्ति*

अ प्रतिज्ञप्ति के आकार को निम्नलिखित ढंग से प्रकट किया जाता है :

(1) सब क ख हैं।

नवीन तर्कशास्त्र के अनुसार इसका अर्थ है :

यदि किसी में क होने का गुण है तो उसमें ख होने का गुण है। परिमाणन की भाषा मे अ वाक्य का सूत्र है :

(2) $(x)[F(x) \supset G(x)]$

इसका भाषा में रूपान्तर है :

(3) प्रत्येक x के बारे में यह सत्य है कि यदि वह F है तो वह G है।

इस सूत्र के अनुसार

(4) सब राजा मनुष्य हैं। (र, म)

का प्रतीकात्मक रूप है :

(5) $(x)[र(x) \supset म(x)]$

भाषा में इसका रूपान्तर (4) के अतिरिक्त निम्नलिखित भी होगा :

(6) सब वस्तुओं में से यदि कोई वस्तु राजा है तो वह मनुष्य है।

*ए वाक्य*

ए वाक्य का परम्परागत आकार है :

(7) कोई क ख नहीं है।

परिमाणन की भाषा में (7) वाक्य का सूत्र है :

(8) $(x)[F(x) \supset \sim G(x)]$

इसका भाषा में रूपान्तर है :

(9) प्रत्येक (x) के बारे में यह सत्य है कि यदि वह F है वह G नहीं है।

इस सूत्र के अनुसार

(10) कोई मनुष्य पूर्ण नहीं है। (म, प)

का रूपान्तर होगा :

(11) $(x)[म(x) \supset \sim प(x)]$

भाषा में इसका एक अन्य रूपान्तर होगा :

(12) प्रत्येक (x) के बारे में यह सत्य है कि यदि वह मनुष्य है तो वह पूर्ण नहीं है।

अ तथा ए वाक्यों को परिमाणन की भाषा में बदलते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना है :

1. इनमें परिमाणक '(x)' का प्रयोग होगा।
2. परम्परागत ढंग से जिन्हें उद्देश्यपद और विधेयपद कहते हैं वे दोनों ही विधेय होते हैं और उन्हें प्रतिज्ञप्ति-फलन के रूप में प्रकट किया जाता है।
3. इन दो प्रतिज्ञप्ति-फलनों का सम्बन्ध $\supset$ से जोड़ा जाता है।
4. परिमाणक '(x)' के बाद '$\supset$' से सम्बन्धित दोनों प्रतिज्ञप्ति-फलनों को कोष्ठक "[ ]" में बांधा जाता है जो इस बात को स्पष्ट करता है कि परिमाणक '(x)' के विस्तार-क्षेत्र में '$\supset$' से सम्बन्धित दोनों प्रतिज्ञप्ति-फलन आते हैं।

**इ वाक्य**

इ वाक्य का आकार है :

(13) कुछ क ख हैं।

इसका *परिमाणित* सूत्र (quantified formula) है :

(14) $(\exists x)[F(x) . G(x)]$

भाषा में इसका रूपान्तर है :

(15) कम-से-कम एक ऐसा x है जो F और G है।

इस सूत्र के अनुसार :

(16) कुछ मनुष्य विद्वान हैं। (म, व)

का रूपान्तर होगा :

(17) $(\exists x)[म(x) . व(x)]$

भाषा में इसे पढ़ेंगे :

(18) कम-से-कम एक ऐसा x है जो मनुष्य है और विद्वान है।

***ओ वाक्य***

ओ वाक्य का परम्परागत आकार है :

(19) कुछ क ख नहीं हैं।

इसका परिमाणित सूत्र (quantified formula) है :

(20) $(\exists x)[F(x) . \sim G(x)]$

भाषा में इसका रूपान्तर है :

(21) कम-से-कम एक ऐसा x है जो F और G नहीं है।

'२८

इस सूत्र के अनुसार :

(22) कुछ मनुष्य विद्वान नहीं हैं।

का परिमाणित वाक्य में रूपान्तर होगा :

(23) (∃x) [म(x) . ∼व(x)]

भाषा में इसे पढ़ेंगे :

(24) कम-से-कम एक ऐसा x है जो मनुष्य है और विद्वान नहीं है।

इ तथा ओ वाक्यों को परिमाणन की भाषा में बदलते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है :

1. इनमें *अस्तित्व परिमाणक* (existential quantifier) (∃x) का प्रयोग होता है।
2. इनमें दो प्रतिज्ञप्ति-फलनों को " . " से जोड़ा जाता है और इन्हें कोष्ठक '[ ]' में बाँधा जाता है।

विशेष ध्यान देने की बात यह है कि *अ* तथा *ए* वाक्यों का परिमाणन की भाषा में रूपान्तर करते समय प्रतिज्ञप्ति-फलनों का . से संयोजित करना गलत होगा। इसी प्रकार इ तथा ओ वाक्यों को प्रतीकात्मक भाषा में बदलते समय प्रतिज्ञप्ति-फलनों का ⊃ से जोड़ना गलत होगा।

संक्षेप :

*अ, ए, इ, ओ* वाक्यों के सूत्र हैं :

(अ) (x) [F(x) ⊃ G(x)]

(ए) (x) [F(x) ⊃ ∼G(x)]

(इ) (∃x) [F(x) . G(x)]

(ओ) (∃x) [(F(x) . ∼G(x)]

**अन्य रूपान्तर**

*अ, ए, इ, ओ* वाक्यों के आकार को स्पष्ट करने के अन्य रूप भी हैं। हमने *अ, ए, इ, ओ* वाक्यों का जो विश्लेषण पहले दिया है उसके अनुसार

(1) सब मनुष्य प्राणी हैं।

का अर्थ होगा :

संसार की जितनी भी वस्तुएँ हैं उनमें से यदि किसी में मनुष्य होने का गुण है तो उसमें प्राणी होने का भी गुण है।

इसे प्रतीकात्मक भाषा में

(x) [म(x) ⊃ प(x)]

के रूप में प्रकट करेंगे।

लेकिन (1) का अर्थ इस प्रकार भी कर सकते हैं :

*संसार मे ऐसी किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है जिसमें मनुष्य होने का गुण हो और प्राणी होने का गुण न हो।*

इसे प्रतीकात्मक भाषा में प्रकट करेंगे :

$$\sim (\exists x)\ [\text{म}x\ .\ \sim \text{प}(x)]$$

इस प्रकार

$$(x)\ [\text{म}(x) \supset \text{प}(x)]$$

और

$$\sim (\exists x)\ [\text{म}(x)\ .\ \sim \text{प}(x)]$$

तुल्यार्थक वाक्य हैं।

संक्षेप में :

$$(x)\ [\text{म}(x) \supset \text{प}(x)] \equiv \sim \{(\exists x)\ [\text{म}(x)\ .\ \sim \text{प}(x)]\}$$

(2) कोई मनुष्य प्राणी नहीं है।

को भी दो प्रकार से प्रकट कर सकते हैं :

(क) $(x)\ [\text{म}(x) \supset \sim \text{प}(x)]$

(ख) $\sim (\exists x)\ [\text{म}(x)\ .\ \text{प}(x)]$

(ख) को भाषा में पढ़ेंगे :

ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो मनुष्य है और जो प्राणी है।

इस प्रकार

$$\sim (\exists x)\ [\text{म}(x)\ .\ \text{प}(x)] \equiv (x)\ [\text{म}(x) \supset \sim \text{प}(x)]$$

(3) कुछ मनुष्य विद्वान् हैं।

को प्रकट करने के दो रूप हैं :

(क) $(\exists x)\ [\text{म}(x)\ .\ \text{व}(x)]$

(ख) $\sim (x)\ [\text{म}(x) \supset \sim \text{व}(x)]$

(ख) को भाषा में पढ़ेंगे :

प्रत्येक वस्तु के बारे में यह सत्य नहीं है कि यदि वह मनुष्य है तो वह प्राणी नहीं है।

इस प्रकार

$$(\exists x)\ [\text{म}(x)\ .\ \text{व}(x)] \equiv \sim (x)\ [\text{म}(x) \supset \sim \text{व}(x)]$$

(4) कुछ मनुष्य प्राणी नहीं हैं।

को प्रकट करने के दो रूप हैं :

(क) $(\exists x)\ [\text{म}(x)\ \ \sim \text{व}(x)]$

(ख) $\sim (x)\ [\text{म}(x) \supset \text{प}(x)]$

(ख) को भाषा में पढ़ेंगे :

प्रत्येक x के बारे में यह सत्य नहीं है कि यदि x मनुष्य है तो वह प्राणी है।

अ, ए, इ, ओ वाक्यों के दोनों रूपों की तुलना नीचे देख सकते हैं :

(अ) $(x)[\text{म}(x) \supset (\text{प}x)] \equiv \sim(\exists x)[\text{म}(x) . \sim\text{प}(x)]$

(ए) $(x)[\text{म}(x) \supset \sim\text{प}(x)] \equiv \sim(\exists x)[\text{म}(x) . \text{प}(x)]$

(इ) $(\exists x)[\text{म}(x) . \text{प}(x)] \equiv \sim(x)[\text{म}(x) \supset \sim\text{प}(x)]$

(अ) $(\exists x)[\text{म}(x) . \sim\text{प}(x)] \equiv \sim(x)[\text{म}(x) \supset \text{प}(x)]$

सूत्र रूप में :

(अ) $(x)[F(x) \supset G(x)] \equiv \sim(\exists x)[F(x) . \sim G(x)]$

(ए) $(x)[F(x) \supset \sim G(x)] \equiv \sim(\exists x)[F(x) . G(x)]$

(इ) $\sim(x)[F(x) \supset \sim G(x)] \equiv (\exists x)[F(x) . G(x)]$

(ओ) $\sim(x)[F(x) \supset G(x)] \equiv (\exists x)[F(x) . G(x)]$

इन सूत्रों को देखने से यह पता चलता है कि *अ, ए, इ, ओ* वाक्यों में से प्रत्येक को *सर्वव्यापी परिमाणक* '(x)' के द्वारा *अस्तित्व परिमाणक* $(\exists x)$ के द्वारा प्रकट किया जा सकता है। क्योंकि *अ* और *ओ* तथा ए और इ व्याघाती हैं, इसलिए इनमें से एक का निषेध दूसरा वाक्य बन जाएगा।

अ वाक्य, $(x)[F(x) \supset G(x)]$ का निषेध, $\sim(x)[F(x) \supset G(x)]$ होगा और वह ओ वाक्य बनता है।

ए वाक्य, $(x)[F(x) \supset \sim G(x)]$ का निषेध इ वाक्य,
$\sim(x)[F(x) \supset \sim G(x)]$,

बनेगा।

इ वाक्य, $(\exists x)[F(x) . G(x)]$ का निषेध ए वाक्य,
$\sim(\exists x)[F(x) . G(x)]$

बनेगा।

ओ वाक्य, $(\exists x)[F(x) . \sim G(x)]$ का निषेध, अ वाक्य,
$\sim(\exists x)[F(x) . \sim G(x)]$

होगा।

इन सूत्रों को देखने से यह भी पता चलता है कि *विधानात्मक वाक्यों* (Affirmative sentences) तथा निषेधात्मक वाक्यों का विरोध इतना बुनियादी नहीं है जितना कि *सर्वव्यापी वाक्यों* (universal sentences) और *अंशव्यापी वाक्यों* (particular sentences) का।

## 8. विरोध चतुरस्त्र

### (Square of Opposition)

यह बात अध्याय 8 में स्पष्ट की जा चुकी है कि अ, ए, इ, ओ वाक्यों की आधुनिक व्याख्या के अनुसार अ और ओ तथा ए और इ का व्याघात तो बनता है लेकिन इनमें विरोध के जो अन्य रूप—उपाश्रितता, विपरीतता तथा उपविपरीतता, परम्परागत तर्कशास्त्र में माने गये हैं वे नहीं बनते।

अ और ए वाक्य अस्तित्ववाचक नहीं हैं जबकि इ और ओ वाक्य अस्तित्ववाचक हैं। इसलिए, न तो अ से इ निकलता है और न ए से ओ। इस प्रकार इसमें उपाश्रितता सम्बन्ध नहीं बनता।

अ अर्थात् $\sim(\exists x)\ [F(x)\ .\ \sim G(x)]$ तथा
ए अर्थात् $\sim(\exists x)\ [F(x)\ .\ G(x)]$

दोनों एक साथ सत्य हो सकते हैं।

जैसे :

(i) चन्द्रमा पर रहने वाले सब मनुष्य सहस्रायु हैं। (अ)

अर्थात्

चन्द्रमा पर ऐसा कोई नहीं है जो मनुष्य है और सहस्रायु नहीं है।

प्रतीकात्मक रूप में :

$(\exists x)\ [म(x)\ .\ \sim स(x)]$

और

(2) चन्द्रमा पर रहने वाला कोई मनुष्य सहस्रायु नहीं है। (ए)

अर्थात्

चन्द्रमा पर ऐसा कोई नहीं है जो मनुष्य है और सहस्रायु है।

प्रतीकात्मक रूप में :

$\sim(\exists x)\ [(x)\ .\ स\ (x)]$

दोनों कथन सत्य हैं क्योंकि चन्द्रमा पर कोई मनुष्य है ही नहीं। क्योंकि ये दोनों कथन सत्य हैं, इसलिए विपरीत नहीं हैं।

(3) चन्द्रमा पर रहने वाले कुछ मनुष्य सहस्रायु हैं। (इ)

अर्थात्

चन्द्रमा पर रहने वाला कम-से-कम एक मनुष्य है और वह सहस्रायु है

प्रतीकात्मक रूप में :

$(\exists x)\ [म(x)\ .\ स(x)]$

और

(4) चन्द्रमा पर रहने वाले कुछ मनुष्य सहस्रायु नहीं हैं। (ओ)

अर्थात्

चन्द्रमा पर कम-से-कम एक मनुष्य है और वह सहस्रायु नहीं है।

प्रतीकात्मक रूप में :

$$(\exists x)[म(x) . \sim स(x)]$$

**दोनों कथन असत्य हैं क्योंकि चन्द्रमा पर एक भी मनुष्य नहीं है। इस प्रकार इ और ओ उपविपरीत नहीं हैं क्योंकि ये दोनों एक साथ असत्य हो सकते हैं।**

इस व्याख्या के अनुसार अ, ए, इ, ओ वाक्यों के विरोध चतुरस्र (square of opposition) का रूप निम्नलिखित होगा :
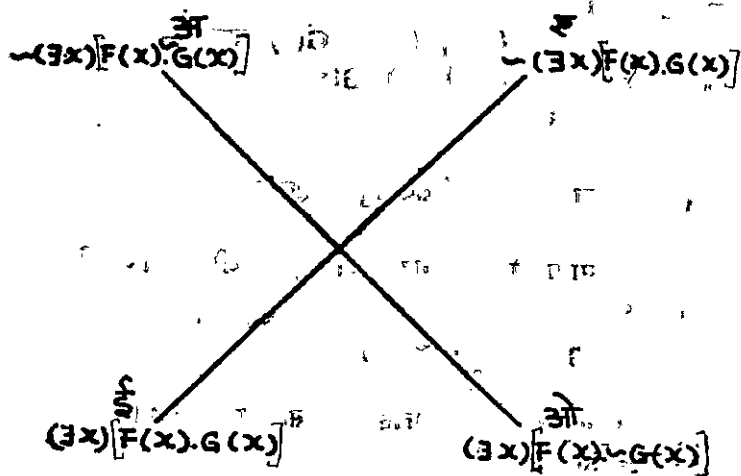
अभ्यास

1. पद, विधेय, परिमाणक तथा वाक्य-सम्बन्धकों का प्रयोग करके निम्नलिखित वाक्यों को प्रतीकात्मक रूप में प्रकट करो।

1. सब सच्चरित्र (स) सम्पन्न (प) नहीं होते।
2. सब करुणाशील व्यक्ति (र) कोमल हृदय के होते हैं (म)।
3. कुछ विद्यार्थी खेलों में रुचि रखते हैं और कुछ पढ़ाई में।
4. कुछ नदियाँ बरसाती होती हैं।
5. कुछ ईमानदार व्यक्ति कुशल व्यक्ति नहीं होते।
6. कुछ कुशल व्यक्ति ईमानदार नहीं होते।
7. कुछ कुशल व्यक्ति ईमानदार होते हैं और कुछ कुशल व्यक्ति ईमानदार नहीं होते।
8. सब तपस्वी संयमी होते हैं और कुछ तपस्वी दीर्घायु होते हैं।
9. कुछ प्रतिभावान् व्यक्ति अल्पायु होते हैं।

10. सब विक्षिप्त दुर्बल चरित्र के होते हैं।
11. सब भारतीय किसान गरीब नहीं हैं और सब दुकानदार अमीर नहीं हैं।
12. राम गणित पढ़ता है या दर्शनशास्त्र पढ़ता है।
13. यदि राम हरियाणवी है तो वह भारतीय है।
14. कुछ पुस्तकें ध्यान से पढ़ने की होती हैं और कुछ जल्दी पढ़ने की।
15. सब मनुष्य नश्वर हैं और राम मनुष्य है।
16. सब सुन्दर वस्तु आकर्षक होती हैं और ताजमहल सुन्दर है।
17. कुछ प्रसिद्ध लेखक बी॰ ए॰ पास नहीं होते।
18. कुछ अभिनेता सुन्दर नहीं होते और कुछ महान् नेता गरीब घरों में जन्म लेते हैं।
19. यदि राम आयकर देता है तो उसकी वार्षिक आय 10000 रुपये से अधिक है।
20. कुछ मन्त्री भ्रष्ट हैं और कुछ लोकसभा सदस्य मन्त्री हैं।
21. यदि कुछ मन्त्री भ्रष्ट हैं और कुछ लोकसभा सदस्य मन्त्री हैं तो कुछ लोकसभा सदस्य भ्रष्ट हैं।
22. यदि सब लोकसभा सदस्य राजनीतिज्ञ हैं और सब मन्त्री लोकसभा सदस्य हैं तो सब मन्त्री राजनीतिज्ञ हैं।
23. यदि सब कांग्रेसी खद्दर पहनते हैं और राम कांग्रेसी है तो राम खद्दर पहनता है।
24. हनुमान ब्रह्मचारी हैं और राम विवाहित हैं।
25. विवेकानन्द ने वेदान्त का प्रचार किया।

2. कुञ्जी :

व = विद्यार्थी

श = शतायु

इस कुञ्जी के आधार पर निम्नलिखित प्रतीकात्मक वाक्यों को अ, ए, इ, ओ वाक्यों की भाषा में प्रकट करो।

(1) (x) [व(x) ⊃ श(x)]

(2) ~(∃x)[व(x) . श(x)]

(3) ~(∃x) [व(x) . ~श(x)]

(4) ~(x) [व(x) . ~श(x)]

(5) ~(x) [व(x) . श(x)]

(6) (∃x) [व(x) . श(x)]

(7) (∃x) [व(x) . ~श(x)]

(8) (x) [व(x) ⊃ ~श(x)]

3. निम्नलिखित का अर्थ उदाहरण सहित स्पष्ट करो :
   (क) पद, (ख) विधेय, (ग) पदचर, (घ) विधेयचर, (ङ) प्रतिज्ञप्ति-फलन ।
4. निम्नलिखित का अन्तर स्पष्ट करो :
   (क) प्रतिज्ञप्ति और प्रतिज्ञप्ति-फलन ।
   (ख) सर्वव्यापी परिमाणक और अस्तित्व परिमाणक ।
5. अ, ए, इ, ओ वाक्यों के रूपों को प्रकट करने वाले सूत्रों को परिमाणक $(x)$ तथा $(\exists x)$ दोनों के द्वारा प्रकट करो तथा इन्हें भाषा में भी प्रकट करो ।
6. अ तथा ओ और ए तथा इ का व्याघात परिमाणित सूत्रों द्वारा स्पष्ट करो ।

## खण्ड 3

# आगमन और वैज्ञानिक विधि

# 21

# ज्ञान के स्रोत

प्रथम अध्याय में हम निगमनात्मक युक्ति और आगमनात्मक युक्ति का अन्तर स्पष्ट कर चुके हैं। वहीं हमने आकारिक सत्य और वास्तविक सत्य का अन्तर भी स्पष्ट किया है। यहाँ केवल इतना दोहराना आवश्यक है कि आकारिक सत्य का अध्ययन निगमनात्मक तर्कशास्त्र का विषय है, जबकि वास्तविक सत्य आगमनात्मक तर्कशास्त्र का विषय है।

आकारिक सत्य विश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्तियाँ (analytical propositions) का गुण-धर्म है, जबकि वास्तविक सत्य संश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्तियों (synthetic propositions) का गुण-धर्म है।

## 1. विश्लेषात्मक और संश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्तियाँ (Analytical and Synthetic Propositions)

आगमनात्मक तर्कशास्त्र का विषय संश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्तियाँ हैं। इसलिए, यहाँ हमें संश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्तियों का स्वरूप समझना आवश्यक है।

संश्लेषात्मक और विश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्तियों के अन्तर का स्पष्टीकरण सबसे पहले जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक इमेनुअल कांट ने किया था। उन्होंने यह अन्तर उद्देश्य-विधेय आकार वाली प्रतिज्ञप्तियों के सम्बन्ध में किया है। उद्देश्य-विधेय आकार की प्रतिज्ञप्ति में दो पद होते हैं—उद्देश्य-पद और विधेय-पद। काण्ट के अनुसार, जिस प्रतिज्ञप्ति में विधेय-पद उद्देश्य-पद के गुणार्थ को ही स्पष्ट करता है, वह विश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्ति है और जिस प्रतिज्ञप्ति में विधेय-पद उद्देश्य-पद के गुणार्थ से अतिरिक्त कोई नयी बात प्रकट करता है, वह संश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्ति है। "मनुष्य विचारशील प्राणी है" एक विश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्ति है। विचारशील प्राणी होना "मनुष्य" का गुणार्थ ही है। "मनुष्य आग पर पकाकर भोजन करने वाला प्राणी है" संश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्ति है। आग पर पका कर भोजन करने का गुण "मनुष्य" के गुणार्थ में नहीं आता। यह मनुष्य का आकस्मिक गुण है।

आधुनिक तर्कशास्त्री विश्लेषात्मक और संश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्तियों के स्वरूप की व्याख्या कुछ भिन्न प्रकार से करते हैं। इनके अनुसार वह प्रतिज्ञप्ति विश्लेषात्मक है जिसका सत्य/असत्य या तो उसके आकार पर ही निर्भर होता हो अथवा उसमें प्रयुक्त पदों की स्वीकृत परिभाषा पर। आधुनिक मत के अनुसार, विश्लेषात्मक और संश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्तियों का भेद उद्देश्य-विधेय आकार की प्रतिज्ञप्तियों पर ही लागू नहीं होता अपितु मिश्र प्रतिज्ञप्तियों पर भी लागू होता है। ऐसी मिश्र प्रतिज्ञप्तियाँ हो सकती हैं जो आकार के कारण ही सत्य या असत्य हों। ऐसी प्रतिज्ञप्तियाँ विश्लेषात्मक होंगी। जैसे :

(1) राम दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी है या दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी नहीं है।
(2) राम दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी है और राम दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी नहीं है।

इनमें से (1) सत्य है और इसका सत्य होना इसके आकार की विशेषता है, विषय-वस्तु से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका सत्य आकारिक सत्य है। 'प या न–प' के आकार में जो भी प्रतिज्ञप्ति होगी वह सत्य ही होगी। प्रतिज्ञप्ति (2) असत्य है और इसकी असत्यता आकारिक है, इसका विषय-वस्तु से कोई सम्बन्ध नहीं है। 'प और न–प' आकार की प्रतिज्ञप्ति आवश्यक रूप से असत्य होगी। जिन प्रतिज्ञप्तियों का सत्य या असत्य आकरिक है, वे विश्लेषात्मक हैं। इस प्रकार ऊपर दी हुई दोनों प्रतिज्ञप्तियाँ विश्लेषात्मक हैं।

जो मिश्र प्रतिज्ञप्तियाँ अपने आकार के कारण सत्य या असत्य नहीं होतीं अपितु अपनी विषय-वस्तु के कारण सत्य या असत्य होती हैं; वे संश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्तियाँ होती हैं। जैसे :

(3) राम दर्शनशास्त्र पढ़ता है या गणित पढ़ता है।
(4) राम दर्शनशास्त्र और गणित पढ़ता है।

इन दोनों में से किसी भी प्रतिज्ञप्ति को अपने आकार के कारण सत्य या असत्य नहीं कहा जा सकता। इनका सत्य या असत्य होना इनकी विषय-वस्तु का गुण-धर्म है। इनमें जो बात कही है, वह यदि वस्तु-स्थिति के अनुरूप है तो ये सत्य होंगी अन्यथा असत्य। इनके सत्य/असत्य का निश्चय करने के लिए हमें यह देखना होगा कि ये वास्तविकता के अनुरूप हैं या नहीं। जिन प्रतिज्ञप्तियों की सत्यता/असत्यता का निश्चय करने के लिए वास्तविक घटनाओं का प्रेक्षण आवश्यक हो, वे संश्लेषात्मक होती हैं। ऊपर दी हुई प्रतिज्ञप्तियाँ (3) और (4) संश्लेषात्मक हैं क्योंकि इनकी सत्यता/असत्यता का निश्चय प्रेक्षण द्वारा हो सकता है।

जिन प्रतिज्ञप्तियों का सत्य या असत्य होना उनमें प्रयुक्त शब्दों की स्वीकृत परिभाषा पर निर्भर हो वे भी विश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्तियाँ होती हैं। जैसे :

(1) सब कुआरे अविवाहित हैं।
(2) सब त्रिभुज तीन भुजाओं की आकृतियाँ हैं।
(3) सब मनुष्य विचारशील प्राणी हैं।

ये सब प्रतिज्ञप्तियाँ विश्लेषात्मक हैं। इनकी सत्यता का निश्चय करने के लिए, हमें वास्तविक तथ्यों के अनुभव की आवश्यकता नहीं है। ये प्रतिज्ञप्तियाँ वास्तविक तथ्यों के बारे में कुछ नहीं कहतीं। ये केवल शब्दों के अर्थ के बारे में कथन है। ये सब प्रतिज्ञप्तियाँ इसलिए सत्य नहीं हैं कि ये किसी वास्तविक तथ्य का कथन करती हैं, अपितु इसलिए सत्य हैं कि ये उद्देश्य पदों का जो अर्थ बताती हैं, वह भाषा की परम्परा के अनुसार ठीक है। भाषा में जो अर्थ "कुआरे" शब्द का लिया जाता है, वही "अविवाहित" शब्द का अर्थ है। इस प्रकार की प्रतिज्ञप्तियाँ वास्तविकता-सम्बन्धी नहीं होतीं, अपितु शब्द-सम्बन्धी होती हैं। ये शाब्दिक प्रतिज्ञप्तियाँ (verbal propositions) हैं।

इनके विपरीत जो प्रतिज्ञप्तियाँ शाब्दिक नहीं होतीं अपितु वास्तविक होती हैं अर्थात् जो शब्द के बारे में नहीं होती अपितु वास्तविकता के बारे में होती हैं, वे संश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्तियाँ होती हैं। जैसे :

1. सब कुआरे दुःखी होते हैं।
2. सब कुआरे सुखी होते हैं।

संश्लेषात्मक हैं। ये शाब्दिक नहीं हैं, अपितु वास्तविक हैं। ये "कुआरे" शब्द के बारे में नहीं है अपितु जिन लोगों को कुआरा कहा जाता है, उनके बारे में है। इसलिए इनकी सत्यता या असत्यता का निश्चय शब्द-कोश में "कुआरे" शब्द का अर्थ देख कर नहीं हो सकता, अपितु कुआरों की वास्तविक स्थिति का प्रेक्षण करके हो सकता है।

संक्षेप में, जिन प्रतिज्ञप्तियों के सत्य/असत्य का निश्चय करने के लिए वास्तविक तथ्यों का प्रेक्षण आवश्यक हो, वे संश्लेषात्मक हैं। संश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्तियों का सत्य या असत्य आनुभविक और आपातिक होता है। जिन प्रतिज्ञप्तियों का सत्य या असत्य आकारिक अथवा शाब्दिक है वे विश्लेषात्मक हैं; इनका सत्य/असत्य प्रागनुभविक और असंदिग्ध होता है।

## 2. सामान्य संश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्तियों के ज्ञान का महत्त्व

विश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्तियाँ वास्तविकता सम्बन्धी ज्ञान प्रदान नहीं करतीं। इनमें किसी वस्तु के बारे में अथवा किसी वस्तु-स्थिति के बारे में कुछ नहीं कहा जाता। लेकिन जीवन में जिस ज्ञान की आवश्यकता है, और जिस पर हमारे जीवन की योजनाओं और क्रियाओं की सफलता निर्भर होती है, वह वास्तविक ज्ञान है, वह वास्तविक प्रतिज्ञप्तियों का ज्ञान है। संश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्ति अंशव्यापी हो सकती है और सर्वव्यापी भी। "कुछ कौए काले हैं" अंशव्यापी संश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्ति है। "सब कौए काले हैं" सर्वव्यापी संश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्ति है। केवल अंशव्यापी संश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्तियों के ज्ञान से न तो हमारी जिज्ञासा सन्तुष्ट होती है और न इनसे हमारे व्यावहारिक

जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। हम अपने जीवन में ऐसी प्रतिज्ञप्तियों के ज्ञान की आवश्यकता अनुभव करते हैं, जिनका सम्बन्ध, भूत तथा वर्तमान की घटनाओं से ही न हो अपितु भविष्यत् की घटनाओं से भी हो। हम भविष्यत् के बारे में भी जानना चाहते हैं जिससे ठीक-ठीक योजनाएँ बना सकें। जो प्रतिज्ञप्ति एक प्रकार के सब दृष्टान्तों, भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् के बारे में कुछ कहती है, वह सामान्य प्रतिज्ञप्ति कहलाती है। अनेक सामान्य प्रतिज्ञप्तियों में हम विश्वास करते हैं। जैसे :

1. सब कौए काले हैं।
2. सब तोते हरे हैं।
3. सब जुगाल करने वाले पशुओं के खुर फटे होते हैं।
4. सब ठोस भौतिक वस्तुएँ ऊपर को उछालने पर पृथ्वी पर गिरती हैं।

इस प्रकार की ऐसी अनेक प्रतिज्ञप्तियाँ हैं, जिनमें हम विश्वास करते हैं। लेकिन यहाँ प्रश्न यह है कि सामान्य वास्तविक प्रतिज्ञप्तियों में हमारे विश्वास का स्रोत क्या है और उनकी सच्चाई का क्या प्रमाण है। सामान्य वास्तविक सत्य प्रतिज्ञप्तियों की स्थापना कैसे हो सकती है ? यह वैज्ञानिक विधि की समस्या है क्योंकि विज्ञान का उद्देश्य ऐसी प्रतिज्ञप्तियों की स्थापना करना है। पुस्तक का यह भाग इसी समस्या से सम्बन्धित है। लेकिन यहाँ हमें पहले यह जानना भी अवश्यक है कि ज्ञान क्या है और ज्ञान के स्रोत क्या हैं।

## 3. ज्ञान का स्वरूप

ज्ञान के स्रोतों पर विचार करने से पहले ज्ञान का स्वरूप स्पष्ट करना आवश्यक है। प्रमाण पर आधारित वास्तविक प्रतिज्ञप्ति में निश्चित विश्वास ज्ञान है। ज्ञान तीन बातों की अपेक्षा रखता है : (1) ज्ञाता, (2) ज्ञान का विषय, (3) ज्ञान का स्रोत या साधन। ज्ञान का विषय प्रतिज्ञप्ति के रूप में ही प्रकट किया जा सकता है। जब हम यह कहते हैं कि हमें एक विशेष बात का ज्ञान है तो हम दो बातें प्रकट करना चाहते हैं : (1) हमारा उस बात अर्थात् प्रतिज्ञप्ति में विश्वास है; (2) हमारे इस विश्वास का निश्चित प्रमाण है, और हम उस प्रमाण को जानते हैं। ध्यान में रखने की बात यह है कि एक सत्य प्रतिज्ञप्ति में विश्वास होना ही उस प्रतिज्ञप्ति को जानना नहीं है। मेरा इस बात में विश्वास कि सूर्य पृथ्वी से बड़ा है, तब तक ज्ञान का स्तर प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक मुझे अपने इस विश्वास का प्रामाणिक आधार न ज्ञात हो। उपर्युक्त प्रमाण के बिना किसी विश्वास को ज्ञान नहीं कहा जा सकता; वह केवल विश्वास या अन्ध-विश्वास ही होता है। किसी विश्वास का उचित आधार अर्थात् प्रमाण होना और उस विश्वास का कारण होना अलग-अलग बातें हैं। कारण तो हर विश्वास का होता है। अन्ध-विश्वास का भी कारण होता है, लेकिन

हम यह नहीं कह सकते कि प्रत्येक विश्वास का आधार उपयुक्त प्रमाण होता है। बचपन में ही, जब विचार-शक्ति बहुत विकसित नहीं होती—माँ बाप तथा बुजुर्गों से अनेक विश्वास ग्रहण कर लेते हैं जो जीवन भर बने रहते हैं। किसी व्यक्ति के मन में विश्वास कैसे बनते हैं, यह प्रश्न मनोविज्ञान का है लेकिन विश्वास के किन आधारों को उपयुक्त या प्रामाणिक आधार माना जा सकता है यह प्रश्न तर्कशास्त्र का है।

## 4. ज्ञान के स्रोत

विश्वासों के प्रामाणिक आधार अथवा ज्ञान के स्रोत चार माने जाते हैं: (1) अनुमान, (2) शब्द, (3) अन्तःप्रज्ञा, (4) प्रत्यक्ष।

जो प्रतिज्ञप्तियाँ ज्ञान का विषय बनती हैं, उन्हें दो वर्गों में रख सकते हैं: (1) वे प्रतिज्ञप्तियाँ जो अन्य प्रतिज्ञप्तियों से निकाली गई (derived proposition) हैं। (2) वे प्रतिज्ञप्तियाँ जो अन्य प्रतिज्ञप्तियों से नहीं निकाली गई (non-derived proposition) हैं। जो प्रतिज्ञप्ति अन्य प्रतिज्ञप्तियों से निकाली गई है, वह अनुमेय अर्थात् अनुमान का विषय होती है। और जो प्रतिज्ञप्ति अन्य प्रतिज्ञप्तियों से नहीं निकाली गई है अर्थात् जो अनुमान का विषय नहीं है उसका ज्ञान शब्द अर्थात् प्रामाणिक वचन, अन्तःप्रज्ञा (intuition) और प्रत्यक्ष (perception) में से किसी के द्वारा हो सकता है।

**अनुमान** : कुछ दी हुई सत्य प्रतिज्ञप्तियों से अन्य सत्य प्रतिज्ञप्ति निकालने की प्रक्रिया अनुमान कहलाती है। अनुमान की क्रिया में हमें पहले कुछ प्रतिज्ञप्तियों का और प्रतिज्ञप्तियों के सम्बन्धों का ज्ञान होता है और फिर इस प्राप्त ज्ञान के आधार पर नई प्रतिज्ञप्ति के ज्ञान तक पहुँचते हैं। अनुमान की प्रामाणिकता की दो शर्तें हैं: (1) जिन प्रतिज्ञप्तियों को आधारिकाएँ माना गया है, वे वास्तव में सत्य हैं। (2) निष्कर्ष आधारिकाओं से आपादित होता है अर्थात् आधारिकाओं और निष्कर्ष का ऐसा सम्बन्ध है कि निष्कर्ष के सत्य हुए बिना आधारिकाएँ सत्य नहीं हो सकती। इनमें से दूसरी शर्त अनुमान की आकारिक वैधता की शर्त है और पहली, उसकी वास्तविक सत्यता की शर्त है। वही अनुमान, प्रामाणिक अनुमान है, वही ठोस अनुमान है, वही ज्ञान का स्रोत है, जिसमें ये दोनों विशेषताएँ हों।

**अनुमान का महत्त्व** : अनुमान ज्ञान का प्रमुख स्रोत है। साधारण व्यवहार तथा विज्ञान दोनों क्षेत्रों में इसका प्रयोग किया जाता है। हम धुएँ को देखकर आग का अनुमान करते हैं, डाक्टर रोगी के लक्षणों को देखकर रोग का अनुमान करता है, ज्योतिषी ग्रहों की स्थिति का हिसाब लगाकर सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण का अनुमान करता है। अनुमान द्वारा दूरस्थ वस्तुओं तथा घटनाओं का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इससे भूत वर्तमान तथा भविष्यत् तीनों कालों की घटनाओं का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

**अनुमान की सीमा :** हमारा जितना भी ज्ञान है, वह सब अनुमान द्वारा प्राप्त किया हुआ नहीं हो सकता। जिन प्रतिज्ञप्तियों को अनुमान की आधारिका स्वीकार करते हैं, उनके ज्ञान का मूल स्रोत अनुमान नहीं हो सकता क्योंकि ऐसा मानने पर अनवस्था दोष आता है। यह ठीक है कि कुछ अनुमानों की आधारिकाओं का ज्ञान अन्य अनुमान पर आधारित हो सकता है। लेकिन यह क्रम अनन्त नहीं हो सकता। कुछ अनुमानों की आधारिकाएँ तो ऐसी होंगी जो अनुमान द्वारा अन्य प्रतिज्ञप्तियों से नहीं निकाली गई हों। अब प्रश्न यह है कि जो प्रतिज्ञप्तियाँ अनुमान की आधारिकाएँ बनती हैं, उनके ज्ञान के क्या स्रोत हैं? अनुमान के अतिरिक्त शब्द या आप्त-वचन, अन्तःप्रज्ञा तथा प्रेक्षण पर आधारित वैज्ञानिक विधि सामान्य संश्लेषणात्मक प्रतिज्ञप्तियों के स्रोत माने जाते हैं। यहाँ हम इनका संक्षिप्त विवेचन करते हैं :

**साक्ष्य, शब्द या आप्त-वचन** (Testimony) : व्यक्ति का जीवन बहुत छोटा है और ज्ञान का क्षेत्र अनन्त है। लेकिन व्यक्ति की जिज्ञासा असीमित है। इसलिए, जिन बातों को एक व्यक्ति स्वयं अपने प्रेक्षण द्वारा अथवा अनुमान द्वारा नहीं जान पाता उनकी जानकारी के लिए वह अन्य व्यक्तियों के वचनों पर निर्भर रहता है। इस प्रकार दूसरे व्यक्तियों के वचन भी हमारे ज्ञान के स्रोत होते हैं। दूसरे व्यक्तियों के वचन जहाँ ज्ञान के स्रोत होते हैं, वहाँ वे ग़लत विश्वासों के तथा अफवाहों के स्रोत भी होते हैं। इसलिए, प्रत्येक व्यक्ति के वचन प्रामाणिक नहीं हो सकते। जिन व्यक्तियों ने अपने प्रेक्षण अथवा तर्कपूर्ण चिन्तन द्वारा किसी विषय का ज्ञान प्राप्त किया है, जो उस विषय के विशेषज्ञ हैं, उस विषय के सम्बन्ध में उनके वचन आप्त-वचन समझे जाते हैं और आप्त-वचन को ही प्रमाण कहते हैं। कभी-कभी शब्द अथवा आप्त-वचन को स्वयं सिद्ध प्रमाण माना जाता है।

लेकिन शब्द अथवा आप्त-वचन को स्वयं सिद्ध प्रमाण मानने पर ज्ञान के विकास में बाधा आती है। इतनी बात तो ठीक है कि आँख में तकलीफ होने पर हम एक साधारण व्यक्ति की अपेक्षा आँखों के विशेषज्ञ डाक्टर के परामर्श को अधिक महत्त्व दें। लेकिन यदि हम यह मान बैठें कि एक विशेषज्ञ का वचन ही अन्तिम प्रमाण है और इसमें कोई संशोधन नहीं हो सकता और जो उस विशेषज्ञ के वचन को नहीं मानता, वह मूर्ख है, जाहिल है, तो हम ज्ञान के विकास की गति रोकते हैं। विज्ञान के क्षेत्र में किसी भी विशेषज्ञ के वचनों को अन्तिम प्रमाण मानने पर ज़ोर नहीं दिया जाता। इसमें किसी भी विशेषज्ञ के वचनों में संशोधन करने की, अथवा नये तथ्यों के उद्घाटित होने पर उन्हें बिल्कुल छोड़ने की सम्भावना से इनकार नहीं किया जाता। लेकिन धर्म के क्षेत्र में धार्मिक ग्रन्थों के वचनों में अन्धविश्वास पर बल दिया जाता है और कभी तो उनमें विश्वास पैदा करने के लिए लोगों पर बल प्रयोग भी किया जाता है। यह एक अवैज्ञानिक और ख़तरनाक स्थिति है।

यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि शब्द प्रमाण मूल प्रमाण नहीं है। शब्द-प्रमाण का आधार प्रत्यक्ष तथा तर्कपूर्ण चिन्तन होता है।

**अन्त:प्रज्ञा** (Intuition) :कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि तथ्य-सम्बन्धी अमूर्त नियमों के ज्ञान का स्रोत अन्त:प्रज्ञा है। अन्त:प्रज्ञा का स्वरूप रहस्यमय है। अन्त:प्रज्ञा को बाहरी ज्ञानेन्द्रियों से भिन्न एक आन्तरिक ज्ञानेन्द्रिय माना जाता है। इस प्रकार अन्त:प्रज्ञा से जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह प्रत्यक्ष की तरह ही अपरोक्ष होता है। जब कोई बात हमारी बुद्धि में सहज रूप से साफ झलकती हुई आती है, तो हम ऐसा कहते हैं कि हम उसे अन्तप्रज्ञा: द्वारा जानते हैं।

अन्त:प्रज्ञा को कभी-कभी स्वत: प्रमाण समझ लिया जाता है। तब ज्ञान के विकास में कठिनाई आती है। आधुनिक तर्क-शास्त्रियों ने यह बात स्पष्ट की है कि तथ्य-सम्बन्धी ज्ञान कभी स्वयं सिद्ध नहीं हो सकता। कोई भी सामान्य संश्लेषणात्मक प्रतिज्ञप्ति स्वयं सिद्ध नहीं हो सकती। हम इतना तो मान सकते हैं कि अन्त:प्रज्ञा द्वारा विशेषज्ञों को सामान्य नियम सूझते हैं। लेकिन इन्हें स्वयं सिद्ध नहीं माना जा सकता है, इनकी सत्यता की परीक्षा अनुभव पर निर्भर होती है।

**प्रत्यक्ष** : जो बात हम ज्ञानेन्द्रियों द्वारा सीधे ही जानते हैं उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। प्रत्यक्ष में शंका का स्थान नहीं होता। मैं अपनी हथेली पर रखे हुए आंवले का प्रत्यक्ष करता हूँ तो यह शंका करना कि यह आंवला है या नहीं पागलपन ही समझा जाएगा। प्रत्यक्ष वास्तविक ज्ञान का मूल स्रोत है। शब्द और अनुमान का मूल स्रोत भी प्रत्यक्ष ही है।

लेकिन प्रत्यक्ष की सीमा है। प्रत्यक्ष द्वारा विशिष्ट वस्तुओं का ही ज्ञान हो सकता है। सामान्य-प्रतिज्ञप्तियों का ज्ञान प्रत्यक्ष द्वारा नहीं हो सकता। आप सामने बैठे कौए का तो प्रत्यक्ष कर सकते हैं और देख सकते हैं कि वह काला है। लेकिन भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् के सब कौओं का प्रत्यक्ष सम्भव नहीं है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि "सब कौए काले हैं" ऐसी सामान्य प्रतिज्ञप्तियों का ज्ञान केवल प्रत्यक्ष द्वारा प्राप्त नहीं होता। लेकिन प्रत्यक्ष के बिना भी सामान्य वास्तविक प्रतिज्ञप्तियों का ज्ञान नहीं हो सकता। इस प्रकार यह समस्या बनती है कि विशेष घटनाओं के प्रत्यक्ष के आधार पर सामान्य प्रतिज्ञप्ति स्थापित करने की क्या विधि है। यह विधि आगमन विधि मानी जाती है जिसका सम्बन्ध वैज्ञानिक विधि से है। इसके स्वरूप पर आगे विचार करेंगे।

## अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रतिज्ञप्तियों में विश्लेषणात्मक और संश्लेषणात्मक प्रतिज्ञप्तियों की पहचान करें :

   1. यदि राम मोहन से बड़ा है और मोहन सोहन से बड़ा है तो राम सोहन से बड़ा है।
   2. राम मोहन से बड़ा है।

3. यदि माँग बढती है और आपूर्ति स्थिर रहती है, तो वस्तुओं की कीमत बढ़ती है ।
4. जिस क्रिया का परिणाम सुखद होता है, उसे अपना लेते हैं और जिसका परिणात दुःखद हो उसे छोड़ देते हैं ।
5. सब जीव निर्जीव वस्तुओं से भिन्न होते हैं ।
6. सब गाय पशु हैं ।
7. किसी गधे के सींग नहीं होते ।
8. राम मोहन का मित्र है या मोहन का मित्र नहीं है ।
9. गुरुत्व का अर्थ है कि एक भौतिक वस्तु दूसरी भौतिक वस्तु की ओर गतिशील होती है ।
10. सब चमकने वाली वस्तुएँ सोना नहीं होती ।

2. संश्लेषणात्मक और विश्लेषणात्मक प्रतिज्ञप्तियों का अन्तर उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करें ।

3. संश्लेषणात्मक प्रतिज्ञप्तियों का ज्ञान प्राप्त करने के कितने स्रोत हैं ? उन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें ।

4. अनुमान का स्वरूप क्या है ? अनुमान और निगमन का अन्तर स्पष्ट करें ।

5. अनुमान के महत्त्व और उसकी सीमाओं पर टिप्पणी लिखें ।

6. शब्द-प्रमाण के स्वरूप, महत्त्व तथा सीमाओं पर प्रकाश डालें ।

7. ज्ञान के स्रोत के रूप में अन्तःप्रज्ञा के स्वरूप पर प्रकाश डालें ।

8. ज्ञान के स्रोत के रूप में प्रत्यक्ष के महत्त्व और सीमाओं पर प्रकाश डालें ।

# 22

# आगमन का स्वरूप और आगमन के आधार

पिछले अध्याय में हमने यह स्पष्ट किया कि वास्तविक ज्ञान तथ्य-सम्बन्धी ज्ञान है और इसका मूल स्रोत प्रत्यक्ष है। लेकिन साथ ही साथ हमने इस बात पर भी बल दिया था कि प्रत्यक्ष से सामान्य वास्तविक सत्य उद्घाटित नहीं होता। इसलिए, प्रश्न यह है कि प्रत्यक्ष के आधार पर सामान्य वास्तविक प्रतिज्ञप्तियों की स्थापना किस विधि से हो सकती है। प्रत्यक्ष के आधार पर सामान्य वास्तविक प्रतिज्ञप्ति स्थापित करने की प्रक्रिया आगमन कहलाती है।

## 1. आगमन की परिभाषा और स्वरूप

विशेष घटनाओं के प्रेक्षण के आधार पर सामान्य वास्तविक प्रतिज्ञप्तियों की स्थापना करने की प्रक्रिया आगमन कहलाती है। उदाहरण के रूप में हम कुछ कौओं का प्रेक्षण करते हैं और यह देखते हैं कि वे सब काले हैं। जितने कौए हमने देखे हैं उन सबके के बारे में यह देखकर कि वे काले हैं हम यह अनुमान लगाते हैं कि सब कौए काले हैं। यह आगमनात्मक अनुमान है। "आगमन" शब्द का प्रयोग कभी तो अनुभव पर आधारित सामान्य प्रतिज्ञप्ति के लिए किया जाता है और कभी ऐसी प्रतिज्ञप्ति को स्थापित करने वाली प्रक्रिया के लिए। फउलर ने बड़े सरल शब्दों में आगमन की परिभाषा इस प्रकार दी है: "आगमन विशेष से सामान्य का या कम सामान्य से अधिक सामान्य का अनुमान है।" ए. वुल्फ के अनुसार, "जिन तथ्यों का हम प्रेक्षण और अध्ययन करते हैं, उनके बारे में एक नियम अथवा व्यवस्था निश्चित करने की प्रक्रिया आगमनात्मक अनुमान है।"

इन परिभाषाओं से इतना स्पष्ट है कि आगमन एक प्रकार का अनुमान है: इसमें आधारिकाओं से निष्कर्ष तक पहुँचा जाता है और इसकी आधारिकाएँ घटनाओं के प्रेक्षण द्वारा प्राप्त होती हैं। आगमन अथवा आगमनात्मक अनुमान की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं:

1. **आगमनात्मक अनुमान का प्रधान उद्देश्य सामान्य वास्तविक प्रतिज्ञप्ति की स्थापना है।**

सबसे पहली बात तो यह है कि आगमन का उद्देश्य वास्तविक ज्ञान प्रदान करना है, इसका उद्देश्य वास्तविक प्रतिज्ञप्तियों की स्थापना है। इसका उद्देश्य शाब्दिक अथवा विश्लेषणात्मक प्रतिज्ञप्तियों की स्थापना नहीं है।

दूसरे, प्रधान रूप में इसका उद्देश्य सामान्य वास्तविक प्रतिज्ञप्ति की स्थापना है। यहाँ, यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि आगमनात्मक अनुमान का निष्कर्ष विशेष प्रतिज्ञप्ति भी हो सकता है। लेकिन प्रधान रूप में आगमन का उद्देश्य सामान्य प्रतिज्ञप्ति की स्थापना है।

2. **आगमन वास्तविक घटनाओं के दृष्टान्तों के प्रेक्षण पर आधारित होता है।** आगमनात्मक अनुमान की आधारिकाएँ विशेष प्रतिज्ञप्तियाँ होती है और ये प्रेक्षण द्वारा प्राप्त होती हैं। वास्तविक दृष्टान्तों के प्रेक्षण से ही आगमन की प्रक्रिया का प्रारम्भ होता है।

3. **आगमन में सामान्यीकरण होता है।** एक प्रकार के कुछ व्यक्तियों में एक विशेषता देखकर, यह समझना कि वह विशेषता उस प्रकार के सब व्यक्तियों में हैं, सामान्यीकरण कहलाता है। यह आगमन की विशेषता है।

4. **आगमनिक प्लुति** (Inductive Leap) : आगमन में ज्ञात दृष्टान्तों से अज्ञातदृष्टान्तों के बारे में, कुछ से सब के बारे में अनुमान लगाया जाता है। यह अनुमान, एक प्रकार से, अन्धेरे में कूदना है। ऐसा करने में हम एक बड़ा ख़तरा उठाते हैं। हो सकता है कि अगले दृष्टान्त के प्रत्यक्ष से ही हमारा अनुमान ग़लत सिद्ध हो जाए। प्रेक्षित घटनाओं से अप्रेक्षित घटनाओं के अनुमान का जोख़िम उठाना ही आगमनिक-प्लुति कहलाता है। यह आगमन की बुनियादी विशेषता है।

5. **आगमनात्मक अनुमान का निष्कर्ष सम्भाव्य होता है।** आगमनात्मक अनुमान का निष्कर्ष आधारिकाओं में निहित नहीं होता। इसलिए, इसमें आधारिकाओं के सत्य से निष्कर्ष का सत्य पूर्णतः सिद्ध नहीं होता. बल्कि इसकी सम्भाव्यता ही प्रतिपादित होती है।

6. **आगमनात्मक अनुमान के निष्कर्ष की सम्भाव्यता कम या अधिक हो सकती है :** निष्कर्ष की सम्भाव्यता के कम या अधिक होने के आधार पर आगमनात्मक अनुमान का मूल्यांकन सबल अथवा निर्बल अनुमान के रूप में किया जाता है। आगमनिक अनुमान की सम्भाव्यता व्यावहारिक दृष्टि से निश्चितता का रूप ले सकती है। लेकिन तार्किक दृष्टि से किसी भी आगमनात्मक अनुमान का निष्कर्ष पूर्णतः निश्चित नहीं कहा जा सकता, वह सम्भाव्य ही होगा। प्रत्येक आगमनात्मक अनुमान के बारे में यह सम्भावना रहती है कि नए तथ्यों के मिलने पर वह ग़लत सिद्ध हो जाए। क्योंकि सामान्य वास्तविक प्रतिज्ञप्तियों के ज्ञान का स्रोत आगमन है, इसलिए

इनकी सत्यता केवल सम्भाव्य होती है। सम्भाव्यता का आकलन हो सकता है। सम्भाव्यता का आकलन करना गणित का काम है।

## 2. आगमन का महत्त्व

1. **पूर्वकथनात्मक ज्ञान का स्रोत आगमन है :** जीवन में घटनाओं के पूर्वकथनात्मक ज्ञान का महत्त्व है। पूर्वकथनात्मक ज्ञान का अर्थ है, घटनाओं के घटने से पहले ही उनका ज्ञान। हम दियासलाई को डिब्बी पर रगड़ने से पहले ही यह जानते हैं कि इस प्रकार की रगड़ से आग पैदा होगी। यह हमारा पूर्वकथनात्मक ज्ञान है। हमारे जीवन की सभी क्रियाएँ पूर्वकथनात्मक ज्ञान पर ही आधारित हैं और और पूर्वकथनात्मक ज्ञान का स्रोत आगमन है।

2. **आगमन वैज्ञानिक विधि का प्रमुख अंग है :** जो विज्ञान तथ्य-सम्बन्धी ज्ञान प्रदान करते हैं, उनके अध्ययन की विधि प्रधान रूप में आगमनात्मक है।

3. **आगमनात्मक ज्ञान सम्भाव्य होता है :** जब हम आगमन के महत्त्व की बात करते हैं, तो हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि आगमनात्मक ज्ञान केवल सम्भाव्य होता है, पूर्णतः निश्चित नहीं। वास्तव में, तथ्य-सम्बन्धी कोई भी पूर्वकथनात्मक ज्ञान पूर्णतः निश्चित नहीं कहा जा सकता। तथ्य-सम्बन्धी ज्ञान की, अथवा आगमनात्मक ज्ञान की यह विशेषता है कि नये तथ्यों के मिलने पर इसमें संशोधन की सम्भावना सदा रहती है।

4. **सम्भाव्यता ही हमारा सहारा है :** मनुष्य तीनों कालों की घटनाओं को नहीं देख सकता। वह कुछ घटनाओं को देखकर अन्य घटनाओं के बारे में अनुमान करने का प्रयोग ही कर सकता है। मनुष्य के लिए इसके अलावा और कोई उपाय नहीं है कि वह भविष्यत् की घटनाओं के बारे में प्रेक्षित तथ्यों के आधार पर अनुमान करे और यदि आगे चलकर यह अनुमान ग़लत निकले तो इसमें संशोधन करे।

**प्रो० राइखेन बाख** सुन्दर शब्दों में आगमनात्मक अनुमिति के स्वरूप तथा महत्त्व का विवेचन इस प्रकार करते हैं : "उस व्यक्ति की तुलना, जो आगमनात्मक अनुमितियों का प्रयोग करता है, उस मछुए से की जा सकती है जो महासमुद्र के किसी अज्ञात भाग में अपना जाल फेंकता है, उसे यह ज्ञात नहीं होता कि वह मछली पकड़ सकेगा, किन्तु वह यह जानता है कि यदि वह मछली पकड़ना चाहता है, तो उसे अपना जाल फेंकना ही होगा। प्रत्येक आगमनात्मक पूर्वकथन प्रकृति की घटनाओं के महासमुद्र में जाल फेंकने के समान है, हमें यह मालूम नहीं होता कि हमें बड़ी संख्या में मछलियाँ मिलेंगी या नहीं, किन्तु कम से कम हम प्रयत्न तो करते हैं, और, अच्छे से अच्छे सुलभ साधन की सहायता से करते हैं।'[1]

1. राइखेन बाख : वैज्ञानिक दर्शन का उदय पृष्ठ 237.

'समस्त ज्ञान सम्भाव्य ज्ञान है, और संधारणाओं के अर्थ में ही उसे लागू किया जा सकता है, और आगमन सर्वश्रेष्ठ संधारणाओं को ढूंढने का उपकरण है।"[1]

## 3. आगमन की समस्या

निगमनात्मक अनुमान से वस्तु सम्बन्धी ज्ञान तभी प्राप्त हो सकता है जब उसकी आधारिकाएँ वस्तु-सम्बन्धी हों अर्थात् वे अनुभव पर आधारित वास्तविक प्रतिज्ञप्तियाँ हों। निगमनात्मक अनुमान के लिए एक आधारिका का सामान्य होना भी आवश्यक है। इस प्रकार समस्या यह बनती है कि जो सामान्य वास्तविक प्रतिज्ञप्तियाँ निगमनात्मक अनुमान का आधार बनती हैं उनकी स्थापना कैसे हो सकती है ? सामान्य वास्तविक प्रतिज्ञप्तियों का अन्तिम आधार निगमन नहीं हो सकता, क्योंकि निगमन तो सामान्य प्रतिज्ञप्तियों से प्रारम्भ होता है। यह ठीक है कि कुछ सामान्य प्रतिज्ञप्तियाँ निगमन का निष्कर्ष हो सकती हैं, लेकिन निगमन उनकी वास्तविक सत्यता का प्रमाण नहीं हो सकता। जैसे, "सब मनुष्य मरणशील प्राणी हैं" इस सामान्य प्रतिज्ञप्ति की सत्यता, "सब प्राणी मरणशील हैं" इसे अधिक व्यापक सामान्य प्रतिज्ञप्ति से निम्नलिखित ढंग से निगमन द्वारा सिद्ध हो सकती है :

सब प्राणी मरणशील हैं।
सब मनुष्य प्राणी हैं।

∴ सब मनुष्य मरणशील हैं

लेकिन फिर प्रश्न होगा कि "सब प्राणी मरणशील हैं" इसकी सत्यता कैसे स्थापित होती है। यह तो निगमन द्वारा सिद्ध नहीं हो सकती और जब तक यही सिद्ध नहीं होता कि "सब प्राणी मरणशील हैं" तब तक इससे निकाले गये निष्कर्ष, "सब मनुष्य मरणशील प्राणी हैं" की सत्यता भी स्थापित नहीं होती। सारांश यह है कि निगमन से किसी सामान्य प्रतिज्ञप्ति का वास्तविक सत्य स्थापित नहीं हो सकता। इसकी विधि निगमन से भिन्न ही हो सकती है। निगमन के भिन्न वह विधि जिसके द्वारा सामान्य वास्तविक प्रतिज्ञप्तियों की स्थापना होती है आगमन विधि कहलाती है। यह आगमन विधि क्या है ? विशेष घटनाओं के निरीक्षण के आधार पर सामान्य वास्तविक प्रतिज्ञप्तियों की स्थापना करना आगमन है। अब प्रश्न यह उठता है कि यह स्थापना कैसे होती है ? किस प्रकार वैज्ञानिक विशेष तथ्यों का निरीक्षण और अध्ययन करता है और उनकी व्याख्या करने वाले नियमों की खोज करता है ? यह आगमन की एक समस्या है, जिसे वैज्ञानिक विधि की समस्या कह सकते हैं। यह एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक समस्या है।

1. वही, पृष्ठ 238.

आगमन की तार्किक समस्या भी है। आगमन की तार्किक समस्या कुछ से सब का, ज्ञात से अज्ञात का अनुमान करने के उचित आधार की समस्या है। प्रश्न यह है कि जब हम एक जाति के कुछ उदाहरणों में कोई गुण देखते हैं और इस आधार पर उस जाति के सब उदाहरणों के बारे में अनुमान करते हैं, तो ऐसा अनुमान करने का क्या हमारे पास कोई उचित तार्किक आधार होता है। जिस तार्किक आधार पर ज्ञात से अज्ञात का अनुमान किया जाता है, उसका बल कितना होता है और उसके आधार पर कितने बल के साथ आगमन के निष्कर्ष के सत्य होने का दावा किया जा सकता है ? आगमन की यह दूसरी समस्या है, जिसे आगमन की तार्किक समस्या कहते हैं।

## 4. आगमन की समस्याओं का समाधान : आगमन के आधार

आगमन की पहली समस्या आगमनिक विधि की समस्या है। यह मनोवैज्ञानिक समस्या है। विचार अथवा अध्ययन की किस विधि द्वारा सामान्य प्रतिज्ञप्तियाँ स्थापित करते हैं, इस समस्या का समाधान प्रेक्षण और प्रयोग के आधार पर किया जाता है। आगमन की विधि के ये मूल आधार हैं, ये उसकी नींव हैं, इन्हीं से आगमन के लिए वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है। इसलिए प्रेक्षण और प्रयोग को आगमन के वास्तविक आधार (material grounds) कहा जाता है।

आगमन की दूसरी समस्या का, उसकी तार्किक समस्या का, ज्ञात से अज्ञात का अनुमान करने के तार्किक औचित्य की समस्या का समाधान मिल ने प्रकृति के सम्बन्ध में दो नियमों को मानकर किया है। ये दो नियम हैं : (1) प्रकृति की एकरूपता का नियम और (2) कारणता का नियम। आगमनात्मक अनुमान के औचित्य का प्रश्न उसके आकार के औचित्य का प्रश्न है। क्या कुछ से सब के अनुमान का आकार तार्किक दृष्टि से उचित है? स्पष्ट ही यह उचित नहीं है। तो क्या इसे किसी प्रकार उचित आकार प्रदान किया जा सकता है। मिल के अनुसार प्रकृति की एकरूपता और कारणता के नियम को मानकर आगमन के आकार का औचित्य सिद्ध किया जा सकता है। क्योंकि इन नियमों से आगमन के आकार का औचित्य बनता है, इसलिए इन्हें आगमन के आकारिक आधार कहते हैं। प्रकृति की एकरूपता का अर्थ यह है कि प्रकृति में समान अवस्थाओं में समान घटनाएँ घटती हैं। कारणता के नियम का अर्थ यह है कि प्रकृति में जो भी घटना घटती है, उसका कारण अवश्य होता है, कारण के बिना कोई घटना नहीं घटती। दोनों नियमों का सार यह है कि प्रकृति में व्यवस्था है, उसमें जो भी कुछ होता है, वह नियमानुसार होता है, प्रकृति की प्रत्येक घटना किसी सामान्य नियम का एक विशेष दृष्टान्त होती है। हम इस विश्वास के आधार पर कि प्रत्येक घटना एक सामान्य नियम का दृष्टान्त है, विशेष से सामान्य का अनुमान कर सकते हैं।

**आगमन और सम्भाव्यता :** मिल ने प्रकृति की एकरूपता और कारणता के नियम के आधार पर आगमनात्मक अनुमान के औचित्य को सिद्ध करने का जो प्रयत्न किया है वह भी, तर्कशास्त्रियों की दृष्टि में सफल प्रयत्न नहीं है। यहाँ इन दो नियमों,

प्रकृति की एकरूपता के नियम और कारणता के नियम, में विश्वास के तार्किक आधार के औचित्य की समस्या पैदा होती है। इस समस्या का मिल कोई हल नहीं दे सका। वास्तव में, कुछ तर्कशास्त्रियों का मत है कि इनमें विश्वास का कोई पूर्ण तार्किक आधार प्रस्तुत नहीं हो सकता। ये तर्कशास्त्री यह मानते हैं कि आगमन की तार्किक समस्या का समाधान सम्भाव्यता (probability) को मान कर किया जा सकता है। जब हम इस प्रकार तर्क देते हैं कि

सब देखे हुए कौए काले हैं।

∴ सब कौए काले हैं।

तो वास्तव में हमारा तर्क आकार की दृष्टि से दोषपूर्ण बन जाता है। लेकिन जब हम यह कहते हैं कि

सब देखे हुए कौए काले हैं

∴ सब कौओं के काले होने की सम्भाव्यता है।

तो हमारे तर्क में कोई आकारिक दोष नहीं आता।

इस प्रकार आगमन की आकारिक समस्या का समाधान यह मानकर किया जाता है कि आगमनिक अनुमान में आधारिकाओं से निष्कर्ष की सम्भाव्यता ही प्रतिपादित होती है, उसकी निश्चितता नहीं।

सम्भाव्यता निश्चित मात्रा का गुण नहीं है। यह कम हो सकती है और अधिक भी। सम्भाव्यता के सम्बन्ध में एक व्यावहारिक समस्या इसका निश्चित आकलन करने की है। यह समस्या तर्कशास्त्र के क्षेत्र से बाहर जाती है और गणित की समस्या बनती है। हम यहाँ केवल इतना कहना ही पर्याप्त समझते हैं कि एक आगमनात्मक अनुमान की आधारिकाओं से उसके निष्कर्ष की जितनी सम्भाव्यता प्रतिपादित होती है, यदि अनुमान में उतनी ही सम्भाव्यता का दावा किया गया है तो तर्क आकार की दृष्टि से वैध है और यदि आधारिकाओं से निष्कर्ष की सत्यता की जितनी सम्भाव्यता वास्तव में प्रतिपादित होती है उससे अधिक सम्भाव्यता का दावा निष्कर्ष में किया जाता है, तो वह तर्क अवैध है।

## 5. प्रकृति की एकरूपता का नियम
## (Law of Uniformity of Nature)

**एकरूपता का स्वरूप :** मिल के अनुसार अनुभव के आधार पर जो भी अनुमान किया जाता है, उसका आधार प्रकृति की एकरूपता के नियम में विश्वास है। प्रकृति की एकरूपता के नियम का वर्णन विभिन्न ढंग से इस प्रकार किया जाता है :

(क) प्रकृति में समान घटनाएँ घटती हैं।

(ख) समान अवस्थाओं में प्रकृति समान व्यवहार करती है।

(ग) जो भी कुछ ज्ञात दृष्टान्तों के बारे में सच है, वह उसी प्रकार के अन्य दृष्टान्तों के बारे में भी सच होगा।

(घ) प्रकृति नियमबद्ध है अर्थात् प्रकृति में घटनाएँ मनमाने ढंग से नहीं होतीं अपितु नियमानुसार होती हैं।

(ङ) भविष्यत् की घटनाएँ भूत की घटनाओं की तरह होंगी। अथवा, यह कहना अधिक उचित है कि अज्ञात घटनाएँ ज्ञात घटनाओं की तरह ही होती हैं। आग कल जलायेगी क्योंकि यह आज जलाती है और कल भी जलाती थी। इसी आधार पर हम यह भी कह सकते हैं कि हमारे जन्म से पहले भी यह जलाती थी और इस समय दूर देशों जैसे चीन के किसी एक कोने में भी यह जलाती है।

**एकरूपता का नियम और प्रकृति की विविधता :** प्रकृति की एकरूपता का प्रकृति की विविधता से कोई विरोध नहीं है। प्रकृति में विविधता है। इस चराचर जगत् में नाना प्रकार के तत्त्व हैं और नाना प्रकार की घटनाएँ घटती हैं। लेकिन इस विविधता के होते हुए भी प्रकृति में एकरूपता का सामान्य नियम है। यहाँ प्रकृति की एकरूपता का अर्थ केवल यह है कि समान अवस्थाओं में प्रकृति में समान घटनाएँ घटती हैं। पानी और आग की लपट भिन्न हैं लेकिन इनके अपने-अपने व्यवहार की एकरूपता है। पानी सदा नीचे की ओर बहता है। आग की लपट सदा ऊपर को उठती है। इस प्रकार प्रकृति की एकरूपता का अर्थ केवल इतना है कि प्रकृति में प्रत्येक घटना नियमबद्ध है, प्रत्येक घटना नियमानुसार होती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रकृति में सब घटनाएँ एक ही नियम से घटती हैं। पानी के बहने का नियम और आग की लपट उठने का नियम भिन्न है। कभी-कभी "प्रकृति की एकरूपता" का कथन न करके "प्रकृति की एकरूपताओं" का कथन करते हैं। जब हम बहुवचन में "प्रकृति की एकरूपताओं" का प्रयोग करते हैं तो इसका अर्थ प्राकृतिक नियम होता है। इस प्रकार "पानी नीचे बहता है" यह एक प्रकृति की एकरूपता है अर्थात् प्रकृति का एक नियम है और "आग की लपट ऊपर को उठती है", यह एक अन्य प्रकृति की एकरूपता है अर्थात् एक अन्य नियम है। लेकिन जब हम एक वचन में "प्रकृति की एक रूपता" शब्द का प्रयोग करते हैं तो इसका केवल इतना अर्थ है कि प्रकृति के प्रत्येक क्षेत्र की घटना अपने नियम के अनुसार घटती है।

मिल ने प्रकृति की एक रूपता के नियम को सभी आगमनात्मक अनुमानों का आधार बताया है। वैज्ञानिक आगमन तथा अवैज्ञानिक आगमन अर्थात् केवल गणनात्मक आगमन प्रकृति की एक रूपता के नियम की मान्यता पर आधारित हैं।

**प्रकृति की एकरूपता के प्रकार :** मिल ने प्रकृति की एकरूपताओं के दो प्रकार बताएँ हैं : (1) सह-अस्तित्व की एकरूपता और (2) अनुक्रम की एकरूपता। दो गुणों, विशेषताओं अथवा घटनाओं के साथ होने की एकरूपता सह-अस्तित्व की एकरूपता

कहलाती है। सह-अस्तित्व की एकरूपता के कुछ दृष्टान्त इस प्रकार हैं :

(1) गाय में सींग और पूँछ के सह-अस्तित्व की एकरूपता।

(2) रस के साथ रूप के अस्तित्व की एकरूपता।

(3) पशुओं में जुगाली करने की विशेषता के साथ उनके खुरों के फटे होने की विशेषता की एकरूपता।

सह-अस्तित्व की एकरूपता वस्तुओं के ज्ञान और उनके वर्गीकरण का आधार है। हम एक फल को आम उसमें कुछ विशेषताओं के सह-अस्तित्व के आधार पर कहते हैं और दूसरे फल को अमरूद उसमें अन्य विशेषताओं के सह-अस्तित्व के आधार पर कहते हैं। सह-अस्तित्वकी एकरूपता में विश्वास के बिना वस्तुओं का ज्ञान और उनका वर्णन सम्भव नहीं है।

अनुक्रम की एकरूपता का अर्थ एक घटना के बाद दूसरी घटना के होने की एकरूपता है। कुछ उदाहरण :

(1) ग्रीष्म ऋतु के बाद वर्षा ऋतु आने की एकरूपता।

(2) बचपन के बाद किशोरावस्था की, किशोरावस्था के बाद युवावस्था आने की एकरूपता।

(3) बिजली की चमक के बाद बादलों के गड़बड़ाहट की एकरूपता।

(4) हृदय में गोली लगने के बाद मृत्यु की एकरूपता।

## 6. कारणता-नियम

आगमन का दूसरा आकारिक आधार कारणता-नियम है। वैज्ञानिक घटनाओं के कारण-कार्य सम्बन्धों की खोज करते हैं जिससे अनिष्ट बातों को रोक सकें और इष्ट बातों को पैदा कर सकें। वैज्ञानिक अच्छी फसल का कारण जानना चाहते हैं, जिससे अच्छी फसलें पैदा की जा सके। वैज्ञानिक मलेरिया आदि बीमारियों का कारण भी जानना चाहते हैं जिससे उन्हें रोका जा सके। कारण-सम्बन्धों की खोज आरम्भ करने से पहले वैज्ञानिक कारणता के सर्वव्यापी नियम को मानकर चलता है। कारणता-नियम का भाव यह है कि प्रत्येक घटना का कारण होता है। कोई भी घटना बिना कारण नहीं घटती और न कोई घटना अपने आप घटती है। प्रत्येक घटना अपनी कुछ पूर्ववर्ती घटनाओं द्वारा पैदा होती है। प्रकृति में आकस्मिकता नाम की कोई चीज़ नहीं है। हम व्यवहार में उन बातों को आकस्मिक कहते हैं जिनका कारण हमें ज्ञात नहीं होता। यदि एक व्यक्ति की मृत्यु का कारण ज्ञात न हो तो उस मृत्यु को आकस्मिक मृत्यु कहते हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि उस मृत्यु का कारण नहीं है। प्रत्येक घटना का कारण होता है, कारण के बिना कुछ नहीं घटता। यही कारणता-नियम है।

**मिल** और **बेन** कारणता के नियम में कारण-एकरूपता भी शामिल करते हैं। इनके अनुसार कारण-नियम में दो बातें हैं :

(1) प्रत्येक घटना का कारण है, (2) एक कारण सदा एक ही कार्य पैदा करता है। ऐसा सोचना कि आज क से ख पैदा होता है और कल को क से ग पैदा होगा कारणता-नियम के विरुद्ध है।

## 7. कारणता-नियम और प्रकृति की एकरूपता के नियम का सम्बन्ध

ऊपर यह बताया जा चुका है कि कारणता-नियम में एक तो यह बात शामिल है कि प्रत्येक घटना का कारण होता है, दूसरे, इसमें यह भी शामिल है कि एक कारण सदा एक ही कार्य पैदा करता है। कारणता-नियम का दूसरा अंश प्रकृति की एकरूपता का ही एक रूप है। प्रकृति की एकरूपता सह-अस्तित्व की एकरूपता हो सकती है और अनुक्रम की एकरूपता भी। अनुक्रम की एकरूपता कारण और कार्य के अनुक्रम की एकरूपता हो सकती है और उससे भिन्न भी। पोटैशियम साइनाइड खाने और मृत्यु के अनुक्रम की एकरूपता कारण-कार्य के अनुक्रम की एकरूपता है। लेकिन बिजली की चमक दिखाई देने और बादल की गड़गड़ाहट सुनाई देने में अनुक्रम की एकरूपता तो है लेकिन इसे कारण-कार्य के अनुक्रम की एकरूपता नहीं मान सकते। बिजली दिखाई देना बादल की गड़गड़ाहट सुनाई देने का कारण नहीं है। निष्कर्ष यह है कि प्रकृति की एकरूपता का नियम अधिक व्यापक है। जहाँ कारणता-सम्बन्ध नहीं है, वहाँ भी प्रकृति की एकरूपता हो सकती है।

## 8. कारण का स्वरूप

"कारण" शब्द का प्रयोग साधारण व्यवहार तथा विज्ञान दोनों में किया जाता है। यद्यपि "कारण" और "कार्य" बहुत ही प्रचलित शब्द हैं, लेकिन इनकी ठीक-ठीक परिभाषा देना अथवा इनका ठीक-ठीक स्वरूप निश्चित करना सरल नहीं है। एक स्थान पर आग जल रही है, उस पर पानी पड़ता है और आग बुझ जाती है। हम कहते हैं कि पानी आग के बुझने का कारण है। इसी प्रकार एक व्यक्ति पोटेशियम साइनाइड खाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। हम कहते हैं कि पोटेशियम साइनाइड खाना उसकी मृत्यु का कारण है। अब प्रश्न यह है कि यहाँ "कारण" शब्द का क्या अर्थ है ?

### अदृष्ट शक्ति का सिद्धान्त

क्या पोटेशियम साइनाइड में अपने रासायनिक स्वरूप के अलावा कोई ऐसा गुण, विशेषता अथवा शक्ति है, जिसे मृत्यु का कारण कहते हैं अथवा इसमें मृत्यु के कारण नाम की ऐसी कोई शक्ति नहीं है ? क्योंकि पोटेशियम साइनाइड में ऐसी कोई शक्ति या विशेषता दिखाई नहीं देती, लेकिन पोटेशियम साइनाइड के खाने के बाद एक व्यक्ति

की मृत्यु हो जाती है, इसलिए कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि इसमें "मृत्यु का कारण" नाम की एक अदृश्ट शक्ति है। लेकिन ऐसा सोचना वास्तव में अवैज्ञानिक है, किसी अदृश्ट शक्ति की कल्पना का कोई आधार नहीं है। यदि "कारण" नाम की कोई अदृष्ट शक्ति नहीं है, तो, कारण का क्या स्वरूप है?

**वैज्ञानिक मत :** कारण के स्वरूप के सम्बन्ध में **ह्यूम** ने यह कहा है कि एक घटना का कारण वह है जो उसका नियत पूर्ववर्ती है। **मिल** ने **ह्यूम** के इस मत का संशोधन करते हुए कहा है कि एक घटना का कारण उसका निरुपाधिक, नियत पूर्ववर्ती है। **कार्वेथरीड** ने इसमें यह बात और जोड़ दी कि कारण एक घटना का अव्यवहित पूर्ववर्ती होता है। कारण के स्वरूप के सम्बन्ध में **मिल** तथा **कार्वेथरीड** का मत वैज्ञानिक समझा जाता है। इसके अनुसार कारण की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं।

1. कारण और कार्य सापेक्ष पद हैं। कोई घटना अपने आप में कारण या कार्य नहीं होती, वह अन्य घटना के सम्बन्ध में कारण या कार्य कहलाती है। जो बात एक घटना का कारण है, वह किसी अन्य घटना का कार्य हो सकती है। गोली लगना घाव का कारण कहा जा सकता है, जबकि पिस्तौल के घोड़े का दबना और उसमें कारतूस का होना गोली चलने का कारण कहा जायेगा।

2. कारण कार्य का पूर्ववर्ती (antecedent) और कार्य कारण का अनुवर्ती (consequent) होता है। कारण और कार्य दोनों समय की दृष्टि से एक साथ नहीं होते। कारण पहले होता है और कार्य बाद में। जो घटना के बाद में घटता है, अथवा जो उसके बिल्कुल साथ-साथ घटता है उसे उस घटना का कारण नहीं कह सकते। गाय के दोनों सींग साथ-साथ आते हैं। उनमें से एक को दूसरे का कारण नहीं कह सकते।

(3) कारण कार्य का नियत पूर्ववर्ती (invariable antecedent) होता है। एक घटना की अनेक पूर्ववर्ती परिस्थितियाँ होती हैं। लेकिन इन पूर्ववर्ती परिस्थितियों में से उन्हीं को उस घटना का कारण कहेंगे, जो सदा उस घटना के पहले आती हैं। जो परिस्थिति एक घटना के पहले कभी दिखायी देती है और कभी दिखाई नहीं देती, वह उस घटना की नियत पूर्ववर्ती नहीं है, अपितु अनियत अर्थात् आकस्मिक पूर्ववर्ती है और उसे उस घटना का कारण नहीं कह सकते। किसी अनियत पूर्ववर्ती को कारण मानने में कारणता का काकतालीय दोष (Post hoc ergo propter hoc) होता है। बिल्ली के रास्ता काटने पर काम में सफल न होने पर, उसे असफलता का कारण कहना काकतालीय दोष का एक उदाहरण है।

4. एक घटना का कारण उसका नियत पूर्ववर्ती ही नहीं होता, अपितु निरुपाधिक (unconditional) भी होता है। **ह्यूम** ने एक घटना के कारण को उसका केवल नियत पूर्ववर्ती ही बताया है। लेकिन केवल नियत पूर्ववर्ती को ही कारण मानना गलत है। यदि हम नियत पूर्ववर्ती को ही घटना का कारण कहें तो दिन को रात का और रात को

दिन का कारण मानना पड़ेगा। लेकिन वास्तव में दिन का कारण रात और रात का कारण दिन नहीं है अपितु पृथ्वी का सूर्य के इर्द-गिर्द घूमना है। मिल ने, इसलिए, कारण की परिभाषा में निरुपाधिक विशेषता और जोड़ दी। "निरुपाधिक" का अर्थ है उपाधिरहित अर्थात् पर्याप्त। जो नियत पूर्ववर्ती परिस्थिति अथवा परिस्थितियों का संपात घटना को पैदा करने के लिए पर्याप्त है, अर्थात् जिसके होने पर घटना अवश्य घटे, वह घटना के लिए निरुपाधिक है अर्थात् पर्याप्त है और वह घटना का कारण है।

**कारण और उपाधि** (Cause and Condition) : **मिल** के कारणता सिद्धान्त को अधिक स्पष्टता से समझने के लिए कारण और उपाधि का सम्बन्ध और अन्तर समझना आवश्यक है।

जो घटना के लिए अनिवार्य है, लेकिन पर्याप्त नहीं है, वह घटना की उपाधि है, और जो घटना के लिए अनिवार्य और पर्याप्त दोनों है वह घटना का कारण है। जिसके अभाव में घटना नहीं घटती, वह घटना के लिए अनिवार्य होता है और इसलिए वह घटना की उपाधि है। जिसके होने पर, अन्य किसी बात की अपेक्षा किये बिना घटना अवश्य घटे, वह घटना का कारण है। उपाधि कारण का एक अंश होती है। अच्छी फसल के लिए अच्छा बीज अनिवार्य है, लेकिन पर्याप्त नहीं है, इसलिए अच्छा बीज अच्छी फसल की एक उपाधि है। अच्छा बीज, अच्छी ज़मीन, समय पर जुताई और बुवाई, समय पर पानी तथा खाद का देना, ओला-तूफान और पौधों में रोगों के अभाव का होना, ये सब मिलकर अच्छी फसल का कारण बनाते हैं क्योंकि इन सबके होने पर अच्छी फसल अवश्य होती है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि कारण का स्वरूप जटिल होता है, कारण अनेक उपाधियों से बनता है।

**भावात्मक और अभावात्मक उपाधि** (Positive Condition and Negative Condition) : उपाधियाँ भावात्मक हो सकती हैं और अभावात्मक भी। एक घटना के लिए कुछ साधक तत्त्व होते हैं तो कुछ बाधक। साधक तत्त्व का होना भावात्मक उपाधि है और बाधक तत्त्व का न होना अर्थात् बाधक तत्त्व का अभाव अभावात्मक उपाधि है। अच्छी फसल के लिए अच्छा बीज, अच्छी ज़मीन, समय पर खाद पानी आदि भावात्मक उपाधियाँ हैं और ओला-तूफान, पौधों के रोग आदि का अभाव अभावात्मक उपाधियाँ हैं। कुछ लेखकों ने बाधक तत्त्वों को ही अभावात्मक उपाधियाँ कहा है। लेकिन वास्तव में बाधक तत्त्वों के अभाव को अभावात्मक उपाधि कहना अधिक ठीक प्रतीत होता है। उपाधि वह है जो घटना के लिए अनिवार्य है। बाधक तत्त्व तो घटना के लिए अनिवार्य नहीं होता। लेकिन बाधक तत्त्व का अभाव घटना के लिए अनिवार्य होता है। इसलिए बाधक तत्त्व के अभाव को ही अभावात्मक उपाधि कहना उचित है।

संक्षेप में, कारण के स्वरूप के सम्बन्ध में इतना कहना पर्याप्त है कि एक घटना का कारण उसकी भावात्मक तथा अभावात्मक उपाधियों की समष्टि है।

कारण का अव्यवहित पूर्ववर्ती होना भी आवश्यक है। कारण और कार्य के बीच अन्य कोई और तत्त्व नहीं आना चाहिये। मान लीजिये क से ख पैदा होता है और ख

से ग तो क को ग का कारण नहीं मानना चाहिये। मान लीजिये, प्रजातन्त्र में एक सरकार अहितकारी कानून बनाती है। इसके लिए, जनता को ही दोष देना क्योंकि जनता ने ही उस पार्टी को चुना है, दूरस्थ कारण को वास्तविक कारण मानना होगा और यह ग़लत है।

**घटना के होने और घटना के न होने का कारण :** यह बात हम पहले कह चुके हैं कि हमारी रुचि कभी तो एक घटना को पैदा करने में होती है और कभी एक घटना को रोकने में। जब हम एक घटना पैदा करना चाहते हैं तो हमें उसकी भावात्मक तथा अभावात्मक सभी उपाधियों की व्यवस्था करनी होगी। उस समय केवल एक उपाधि पर्याप्त नहीं होगी। मान लीजिये हम एक कैम्प में रात्रि को बिजली का प्रकाश करना चाहते हैं तो हमें मुख्य लाइन से कैम्प तक तारों को ले जाना होगा, बल्ब आदि लगाने होंगे और यह भी देखना होगा कि उन रात्रियों में उस लाइन पर बिजली रहती है। यदि हम इनमें से एक बात का भी प्रबन्ध छोड़ देते हैं, तो हम बिजली के प्रकाश का पूरा प्रबन्ध नहीं करते। अब मान लीजिए, एक स्थान पर बिजली का प्रकाश हो रहा है और हम नहीं चाहते कि वहाँ प्रकाश रहे, तो क्या हमें बिजली की आपूर्ति को, तारों की व्यवस्था को, बल्बों की व्यवस्था को, सबको भंग करना पड़ेगा अथवा इनमें से किसी एक के भंग करने से ही काम चल जायेगा ? स्पष्ट है कि इनमें से किसी भी एक के भंग करने से काम चल जायेगा। इस प्रकार निष्कर्ष यह निकलता है कि एक घटना का अभाव करने के लिए उस घटना के किसी भी एक आवश्यक हेतु अर्थात् उपाधि का अभाव पर्याप्त होगा। संक्षेप में, एक घटना के अभाव का कारण उसकी किसी एक उपाधि का आभाव होगा।

## 9. कारण-अनेकत्व का प्रश्न

कारण-अनेकत्व का अर्थ यह है कि एक ही घटना के विभिन्न कारण हो सकते हैं। इन विभिन्न कारणों में से कोई भी एक कारण घटना को पैदा कर सकता है। **मिल** इस सिद्धान्त को मानता है। उसके अनुसार मृत्यु के विभिन्न कारण हो सकते हैं। मृत्यु गोली के लगने से हो सकती है, और गोली न लगने पर भी। पानी में डूबने, आग से जलने, पोटेशियम साइनाइड के खाने, विषधर साँप के डसने, आदि अनेकों कारणों में से किसी भी एक कारण से मृत्यु हो सकती है। इस प्रकार **मिल** के अनुसार यह स्पष्ट है कि एक घटना के अनेक कारण हो सकते हैं। अब प्रश्न यह है कि क्या कारण की अनेकता का यह सिद्धान्त तार्किक दृष्टि से ठीक है।

निम्नलिखित हेतुओं के आधार पर कारण-अनेकत्व का मत ठीक नहीं माना जाता :

1. कारण-अनेकत्व का मत कारण की परिभाषा के विरुद्ध पड़ता है। **मिल** ने कारण की जो परिभाषा दी है उसका सार यह है कि कारण एक घटना का अनिवार्य

और पर्याप्त हेतु है। यदि कारण-अनेकत्व स्वीकार करते हैं, तो एक घटना के लिए किसी भी कारण को अनिवार्य नहीं कह सकते। लेकिन **मिल** तथा अन्य तर्क-शास्त्रियों ने कारण को कार्य का अनिवार्य हेतु बताया है। उदाहरण के रूप में, मृत्यु एक घटना है। मृत्यु जल में डूबने से हो जाती है और जल में डूबे बिना भी आग आदि से मृत्यु हो जाती है, तो मृत्यु के लिए न जल आवश्यक है और न आग, तो इनमें से किसी को मृत्यु का कारण कैसे कह सकते हैं। इस आधार पर कारण-अनेकत्व का सिद्धान्त ठीक नहीं बैठता।

2. कारण-अनेकत्व का मत अनुभव के आधार पर भी ठीक नहीं बैठता कारण-अनेकत्व का मत एक कार्य के केवल एक पहलू को ही कार्य मान लेने पर आधारित है। जिस प्रकार कारण अनेक तत्वों का समूह होता है, उसी प्रकार एक कारण से जो परिवर्तन होते हैं उन सबका समूह ही उस कारण का कार्य समझना चाहिये; उनमें से किसी एक परिवर्तन को ही कार्य मानना ग़लत होगा। संक्षेप में, कार्य के पूर्ण रूप को ही कार्य मानना चाहिये। जल में डूबने से मृत्यु के दृष्टान्त और आग में जलने से मृत्यु के दृष्टान्तों में केवल इतनी समानता रहती है कि व्यक्ति के प्राण निकल जाते हैं, लेकिन इन दोनों दृष्टान्तों में शरीर की दशा में होने वाले परिवर्तनों में अन्तर होता है। इस प्रकार, जल में डूबने से मृत्यु का रूप और आग में जलने से मृत्यु का रूप भिन्न होता है। संक्षेप में, पानी में डूबने और आग में जलने का परिणाम भिन्न-भिन्न होता है। डाक्टर शव-परीक्षा से मृत्यु के कारण का ठीक-ठीक अनुमान लगा लेते हैं। यह अनुमान तभी सम्भव है, जब यह मान लिया जाये कि एक प्रकार की मृत्यु का एक ही कारण हो सकता है।

इस प्रकार, इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कारण-अनेकत्व का मत अवैज्ञानिक है। यह घटनाओं के विश्लेषण से और वास्तविक अनुभव से पुष्ट नहीं होता। व्यावहारिक दृष्टि से हमारी रुचि कार्य के पूर्ण रूप में नहीं होती, अपितु उसके एक पहलू में होती है। इसलिए, साधारण व्यवहार में कारण-अनेकत्व की बात करते हैं। लेकिन वास्तव में एक विशिष्ट कार्य का एक ही कारण हो सकता है और एक विशिष्ट कारण एक ही विशिष्ट कार्य पैदा कर सकता है।

## 10. भारतीय न्यायशास्त्र में कारण का स्वरूप

भारतीय दर्शन के विभिन्न सम्प्रदाय हैं। उन सब में कारण-कार्य सम्बन्ध का अपने-अपने ढंग से विवेचन किया है। यहाँ हम केवल न्याय-वैशेषिक दर्शन के अनुसार कारण-कार्य सम्बन्ध की व्याख्या करते हैं।

**कार्य की परिभाषा :** जो अपने प्रा भाव का प्रतियोगी है वह कार्य है।[1] इसका **अर्थ** यह है कि कार्य की एक विशेष क्षण में उत्पत्ति होती है और उस क्षण से पहले उसका पूर्ण अभाव होता है। कार्य एक घटना है, यह एक नया आरम्भ है। एक कुम्हार मिट्टी

1. कार्य प्राग्भाव प्रतियोगी (तर्कसंग्रह)।

से घड़ा बनाता है। घड़ा कार्य है। अपनी उत्पत्ति के क्षण से पहले घड़े का पूर्ण अभाव रहता है। ऐसा नहीं है कि घड़ा गुप्त रूप में मिट्टी में हो और कुम्हार उसे प्रकट रूप प्रदान करता हो। अपनी उत्पत्ति से पूर्व घड़ा असत् है (अर्थात् उसका पूर्ण अभाव है)। न्यायशास्त्र के सिद्धान्त को असत्कार्यवाद कहते हैं।

**कार्य-कारण नियम :** यद्यपि कार्य बिल्कुल नयी वस्तु है, अपनी उत्पत्ति से पहले इसका पूर्ण अभाव होता है। लेकिन कोई भी कार्य अथवा घटना, बिना कारण के नहीं होती (कारणेन बिना कार्यं नोत्पद्यते)। सब घटनाएँ कारण नियम से होती हैं। कारण-नियम में कारण-कार्य सम्बन्ध की एकरूपता भी शामिल है। न्यायशास्त्र के अनुसार एक कारण सदा एक ही कार्य उत्पन्न करता है और एक कार्य सदा एक ही कारण से उत्पन्न होता है। इस प्रकार न्यायशास्त्र का कारण सिद्धान्त निम्नलिखित मतों का विरोधी है।

यह स्वभाववाद का विरोधी है। यह इस मत का विरोधी है कि एक घटना अपने आप घट जाती है। दूसरे, यह यदृच्छावाद का विरोधी है। यदृच्छावाद के अनुसार एक कार्य किसी भी कारण से पैदा हो सकता है। इसके अनुसार हम कुछ नहीं कह सकते कि एक विशेष परिस्थित में कौन-सी घटना घटेगी। न्यायशास्त्र इस मत का विरोध करता है।

तीसरे, न्यायशास्त्र कारण-अनेकत्व का भी खण्डन करता है। यह इस मत को नहीं मानता कि एक कार्य अनेक कारणों से हो सकता है।

**कारण की परिभाषा :** विश्वनाथ ने अपनी न्याय कारिकावली में कारण की परिभाषा इस प्रकार दी है :

अन्यथासिद्ध न होना और कार्य का नियत पूर्ववर्ती होना कारणत्व है।[1]

**व्याख्या :** इस परिभाषा के अनुसार कारण की निम्नलिखित विशेषताएँ बनती हैं :

1. कारण कार्य का पूर्ववर्ती होता है। कारण कार्य का सहवर्ती या अनुवर्ती नहीं होता।

2. केवल 'पूर्ववर्ती होना' कारण होने के लिए पर्याप्त नहीं है। जो कारण नहीं है वह भी पूर्ववर्ती हो सकता है। जिस गधे पर कुम्हार मिट्टी लाता है, वह घड़े का पूर्ववर्ती तो होता है लेकिन नियत पूर्ववर्ती नहीं होता, क्योंकि कभी-कभी सिर पर भी मिट्टी लायी जाती है। इसलिए, गधे को घड़े का कारण नहीं मान सकते।

3. नियत पूर्ववर्ती होना ही कारण का पर्याप्त लक्षण नहीं है। अप्रासंगिक बातें भी नियत पूर्ववर्ती हो सकती हैं। उदाहरण के रूप में दण्ड घड़े का नियत पूर्ववर्ती है और घड़े का कारण है। 'दण्डत्व' अर्थात् दण्ड का सामान्य स्वरूप भी दण्ड में रहने के कारण घड़े का नियत पूर्ववर्ती हुआ। लेकिन, यह घड़े का कारण नहीं है। यदि कारण की

1. अन्यथासिद्धि शून्यस्य नियतापूर्ववर्तिता कारणत्वं भवेत्।

परिभाषा में केवल इतना कहा जाये कि वह नियत पूर्ववर्ती होता है, तो 'दण्डत्व' भी घड़े का कारण होगा, कुम्हार का पिता भी घड़े का कारण होगा। इसलिए, कारण की परिभाषा में यह जोड़ा गया कि कारण अन्यथासिद्ध नहीं होना चाहिये अर्थात् कार्य को पैदा करने के लिए उसे अन्य किसी की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिये। वह कार्य को पैदा करने में समर्थ होना चाहिये। न्याय शास्त्र में पाँच प्रकार के अन्यथासिद्ध बताये हैं।

**पाँच अन्यथासिद्ध** : कारण इन पाँच अन्यथासिद्धों से भिन्न और नियत पूर्ववर्ती होना चाहिये।

क : पहला अन्यथासिद्ध कारण का सामान्य रूप है। दण्ड घड़े का कारण है, लेकिन दण्डत्व अन्यथासिद्ध है।

ख : कारण के बिना जिसका अन्वय-व्यतिरेक न बनता हो वह दूसरा अन्यथासिद्ध है। दो घटनाओं में अन्वय होने का अर्थ है एक के होने पर दूसरे का होना, और 'व्यतिरेक' का अर्थ है एक के न होने पर दूसरे का न होना। कुम्हार का डण्डा उसके चाक को घुमाने में सहायक होने से घड़े का कारण बनता है। 'डण्डे' और 'डण्डे' के रंग में तो अन्तर है लेकिन जहाँ 'डण्डा' रहता है वहाँ 'डण्डे' का रंग है और जहाँ 'डण्डा' नहीं है, वहाँ डण्डे का रंग भी नहीं रहता है। इस प्रकार, जहाँ 'डण्डा' घड़े का नियत पूर्ववर्ती होने के कारण घड़े का कारण है, वहाँ 'डण्डे' के रंग को भी घड़े का नियत पूर्ववर्ती होने के कारण, कारण मानना चाहिये। लेकिन ऐसा मानना गलत है। 'डण्डे' के रंग का घड़े के साथ अन्वय-व्यतिरेक 'डण्डे' पर आश्रित होने के कारण ही होता है। घड़े के साथ 'डण्डे' से स्वतन्त्र इसका अन्वय-व्यतिरेक नहीं बन सकता। इसलिए 'डण्डे' का रंग घड़े के लिए अन्यथासिद्ध है अर्थात् घड़े के उत्पादन में इसका कोई योग नहीं है।

ग : तीसरे, अन्यथासिद्ध का दृष्टान्त आकाश बताया जाता है। आकाश सर्वव्यापी है और यह शब्द का समवायिकारण है। आकाश घड़े की उत्पत्ति के पूर्व भी सदा वर्तमान रहता है लेकिन घड़े के उत्पादन में इसका विशेष योग नहीं होता। इसलिए, यह नियत पूर्ववर्ती होने पर भी घड़े के लिए अन्यथासिद्ध है।

घ : जो कार्य का अव्यवहित पूर्ववर्ती नहीं है, वह नियत पूर्ववर्ती होने पर भी अन्यथासिद्ध होगा। कुम्हार का पिता घड़े का नियत पूर्ववर्ती तो है लेकिन यह घड़े का अव्यवहित पूर्ववर्ती (immediate antecedent) नहीं है। इसलिए, यह घड़े का कारण नहीं है, यह घड़े के लिए अन्यथासिद्ध है।

ङ : जो बातें नियत पूर्ववर्ती होने पर भी अप्रासंगिक हैं वे सब पाँचवें अन्यथासिद्ध में आ जाती हैं। कुम्हार का गधा घड़े बनाने के समय सदा घर में बँधा रहता है, लेकिन गधा घड़े के लिए अप्रासंगिक है अर्थात् अन्यथा सिद्ध है।

इस प्रकार न्यायशास्त्र के अनुसार कारण की तीन विशेषताएँ हैं : (1) पूर्ववर्ती होना, (2) नियत पूर्ववर्ती होना, (3) अनन्यथासिद्ध होना। न्यायशास्त्र में इस बात पर भी

बल दिया जाता है कि कारण अनेक उपाधियों का संग्रह है। कारण-सामग्री में उत्पादक तत्त्वों का भाव और बाधक तत्त्वों का अभाव शामिल है।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि न्यायशास्त्र में कारण के स्वरूप की जो व्याख्या की है, उसकी **मिल** तथा **कार्वेथरीड** द्वारा दी गयीं कारण की व्याख्या से समानता है।

## अभ्यास

1. आगमन के आकारिक आधार क्या हैं ? संक्षेप में इनका विवेचन करो।
2. प्रकृति की एकरूपता से क्या समझते हो ? इसके स्वरूप का विवेचन करो तथा अनुक्रम और सह-अस्तित्व की एकरूपता का विवेचन करो।
3. कारणता-नियम से क्या समझते हो ? इसे वैज्ञानिक आगमन का आधार क्यों माना जाता है ?
4. कारणता-नियम और प्रकृति की एकरूपता के नियम के सम्बन्ध पर टिप्पणी लिखो।
5. कारण का स्वरूप क्या है ? कारण की विशेषताओं का उदाहरण सहित विवेचन करो।
6. कारण और उपाधि का सम्बन्ध और अन्तर स्पष्ट करो।
7. कारण-अनेकत्व के प्रश्न पर टिप्पणी लिखो।
8. न्यायशास्त्र के अनुसार कारण का स्वरूप क्या है ? स्पष्ट विवेचन करो।
9. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखो :
   (अ) असत्कार्यवाद
   (आ) अन्यथासिद्ध
10. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखो :
   (अ) कारण का शक्ति-सिद्धान्त
   (आ) काकतालीय दोष
   (इ) अभावात्मक उपाधि
   (उ) भावात्मक उपाधि

# 23

# आगमन के वैषयिक आधार : प्रेक्षण और प्रयोग

आगमनात्मक सामान्यीकरण की विषय-वस्तु तथ्यसम्बन्धी होती है और इसका ज्ञान वास्तविक घटनाओं के प्रेक्षण द्वारा प्राप्त किया जाता है। प्रयोग भी प्रेक्षण का ही एक विशिष्ट प्रकार है। क्योंकि प्रेक्षण और प्रयोग से आगमन की विषय-सामग्री इकट्ठी की जाती है, इसलिए इन्हें आगमन के वैषयिक आधार कहते हैं।

## 1. प्रेक्षण

**प्रेक्षण का स्वरूप :** किसी विशेष समस्या को ध्यान में रखकर उस समस्या से सम्बन्धित तथ्यों को उनकी वास्तविक परिस्थितियों में सावधानीपूर्वक योजनाबद्ध ढंग से देखना प्रेक्षण कहलाता है। मापन भी प्रेक्षण के अन्तर्गत आता है। किसी घटना का प्रेक्षण करने में और किसी घटना के आकस्मिक ढंग से दिखायी पड़ जाने में अन्तर है। प्रेक्षण की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :

1. **प्रेक्षण सोद्देश्य होता है :** प्रेक्षणकर्ता पहले समस्या निश्चित करता है और फिर तथ्यों का प्रेक्षण करता है। इस प्रकार प्रेक्षण आकस्मिक नहीं होता अपितु सोद्देश्य होता है। रेलगाड़ी की एक सवारी को गाड़ी में उतरते-चढ़ते लोग दिखायी पड़ जाना प्रेक्षण नहीं है। लेकिन एक डाकू की तलाश करने वाले पुलिस के सिपाहियों द्वारा रेलगाड़ी के सब डिब्बों के लोगों को ध्यानपूर्वक देखना प्रेक्षण है।

2. **प्रेक्षण चयनात्मक होता है :** क्योंकि प्रेक्षण सोद्देश्य होता है, इसलिए चयनात्मक होता है। प्रेक्षणकर्ता उन्हीं बातों की ओर ध्यान देता है, जिन्हें वह अपनी समस्या से सम्बन्धित समझता है। वह प्रासंगिक बातों की ओर ध्यान देता है और अप्रासंगिक बातों की उपेक्षा कर देता है। वनस्पति-शास्त्र का विद्यार्थी एक प्रदेश के पेड़-पौधों का प्रेक्षण करते समय पेड़-पौधों की ओर ध्यान देता है और ऐतिहासिक इमारतों तथा खण्डहरों की उपेक्षा कर देता है। लेकिन पुरातत्व-विद्या का विद्यार्थी एक प्रदेश के ऐतिहासिक तत्वों का अध्ययन करते समय वहाँ की ऐतिहासिक इमारतों और खण्डहरों की ओर ध्यान देगा और वहाँ के पेड़-पौधों की उपेक्षा कर देगा।

3. **प्रेक्षण योजनाबद्ध होता है :** प्रेक्षण तथ्य-सम्बन्धी सामग्री इकट्ठा करने का एक प्रामाणिक आधार माना जाता है। इसके लिए आवश्यक है कि यह योजनाबद्ध हो। यदि एक प्रदेश की सभी ऐतिहासिक इमारतों का प्रेक्षण करना हो तो इसकी पहले से योजना बनाना आवश्यक है, जिससे कि किसी इमारत के छूट जाने की सम्भावना न रहे।

4. **प्रेक्षण का लिखना :** जहाँ प्रेक्षण का उद्देश्य वैज्ञानिक सामग्री इकट्ठा करना होता है, वहाँ घटना स्थल पर ही प्रेक्षण लिख लिया जाता है। इस सम्बन्ध में स्मृति पर भरोसा करने में जोखिम रहता है।

5. **घटनाओं का प्रेक्षण उनकी प्राकृतिक परिस्थितियों में किया जाता है :** प्रेक्षणकर्ता घटना की परिस्थितियों में कोई हस्तक्षेप नहीं करता। घटना की परिस्थितियों में हस्तक्षेप किये बिना जो भी कुछ देखा जाता है, वह प्रेक्षण है और प्रेक्षण द्वारा प्राप्त सामग्री प्रेक्षणात्मक सामग्री कहलाती है।

**प्रेक्षण और उपकरण :** मानव सामान्यतः घटनाओं तथा उनकी परिस्थितियों का प्रेक्षण करने के लिए अपनी ज्ञानेन्द्रियों—आँख, नाक, कान आदि का सहारा लेता है। ये ज्ञानेन्द्रियाँ वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के प्राकृतिक उपकरण हैं। लेकिन प्रकृति से प्राप्त इन उपकरणों की शक्ति बहुत सीमित है और मानव की जिज्ञासा असीमित है। जैसे-जैसे मानव को तथ्यों की ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त करने में अपनी ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति की कमी का अनुभव हुआ, वैसे-वैसे उसने अपनी ज्ञानेन्द्रियों की प्रकृतिक शक्ति की कमी को पूरा करने के लिए अनेक प्रकार के उपकरण और यन्त्रों का आविष्कार किया। प्रेक्षण में सहायक उपकरणों का अविष्कार वैज्ञानिक खोज में बहुत महत्त्व रखता है। ज्योतिर्वैज्ञानिक दूरवीक्षक यन्त्र की सहायता से ग्रहों तथा उपग्रहों का प्रेक्षण अधिक स्पष्टता से कर सकते हैं। रक्त की परीक्षा करते समय सूक्ष्मदर्शक यन्त्र की सहायता से ही उसके सूक्ष्म तत्त्वों को और उसमें मिले हुए सूक्ष्म जीवाणुओं को देखा जा सकता है। इस प्रकार यन्त्रों के द्वारा मानव के प्रेक्षण का क्षेत्र अधिक विस्तृत होता है। जो बातें ज्ञानेन्द्रियों से नहीं देखी जा सकतीं, वे यन्त्रों की सहायता से देखी जा सकती हैं।

यन्त्रों के प्रयोग का एक अन्य लाभ ठीक-ठीक मापन है। इनकी सहायता से वस्तु-स्थिति की किसी विशेषता के ठीक-ठीक परिमाण का निश्चित ज्ञान प्राप्त होता है। हम एक व्यक्ति का स्पर्श करके उसके ताप की मात्रा का उतना निश्चित ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते, जितना कि थर्मामीटर की सहायता से प्राप्त कर सकते हैं। सभी प्रकार के माप तौल के यन्त्र निश्चित मात्रा का ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होते हैं।

केवल यन्त्रों का प्रयोग करने से कोई प्रेक्षण प्रयोग नहीं बन जाता। जब एक वैज्ञानिक दूरवीक्षक यन्त्र की सहायता से एक ग्रह को देखता है, तो हम यह नहीं कह सकते कि वह उस ग्रह पर प्रयोग कर रहा है, क्योंकि इससे ग्रह की वास्तविक परिस्थिति से कोई हस्तक्षेप नहीं होता।

**प्रेक्षण की आवश्यक शर्तें :** प्रेक्षणात्मक सामग्री वैज्ञानिक अध्ययन का प्रारम्भ-विन्दु है। यदि प्रेक्षणात्मक सामग्री ही ग़लत हो तो उस पर आधारित अनुमान तो ठीक हो ही नहीं सकता। इसलिए, प्रेक्षण में बहुत सावधानी बरतना आवश्यक है। प्रेक्षण की निम्नलिखित तीन आवश्यक शर्तें हैं जो प्रयोग पर भी लागू होती हैं :

1. **शारीरिक :** प्रेक्षणकर्ता शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ होना चाहिये। विशेष-कर, उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ स्वस्थ होनी चाहियें। जहाँ भी आवश्यक हो, ज्ञानेन्द्रियों की सहायता के लिए उपयुक्त यन्त्रों का प्रयोग होना चाहिये। प्रेक्षण के बहुत से दोषों का कारण ज्ञानेन्द्रियों तथा यन्त्रों का दोष होता है।

2. **भौतिक :** प्रकाश आदि भौतिक बातों का उचित प्रबन्ध होना चाहिये। प्रेक्षण के दोषों का कारण अनेक बार भौतिक शर्तों का उचित प्रबन्ध न होना होता है।

3. **बौद्धिक :** शरीर से स्वस्थ होने पर और प्रकाश आदि के ठीक होने पर भी एक अस्थिर बुद्धि का व्यक्ति प्रेक्षण में ग़लती कर सकता है। इसलिए, प्रेक्षण करते समय व्यक्ति का शान्त चित्त और सावधान होना आवश्यक है। घबराहट में तथा उतावलेपन में ठीक प्रेक्षण नहीं हो सकता। प्रेक्षणकर्ता में सच्ची जिज्ञासा, ज्ञान-पिपासा का होना भी आवश्यक है।

4. **नैतिक :** प्रेक्षणकर्ता को अपनी पसन्द, नापसन्द, रुचियों, अरुचियों से प्रभावित नहीं होना चाहिये। उसके सामने सत्य का उद्‌घाटन ही एकमात्र लक्ष्य होना चाहिये। प्रिय सिद्धान्त के मोह से प्रेक्षण प्रभावित नहीं होना चाहिये। कई बार ऐसा देखा गया है कि जो तथ्य प्रिय सिद्धान्त के विपरीत जाते हैं, वैज्ञानिक उनकी उपेक्षा कर देते हैं। वैज्ञानिक में इतना नैतिक बल होना चाहिये कि वह अपने प्रिय सिद्धान्त के मोह में किसी तथ्य की उपेक्षा न करे, बल्कि सिद्धान्त के विरोधी तथ्यों के मिलने पर अपने सिद्धान्त में संशोधन करने का और आवश्यकता पड़ने पर उसका बिल्कुल त्याग करने का नैतिक साहस रखे। वैज्ञानिक चरित्र के उत्कृष्ट रूप का एक दृष्टान्त न्यूटन के चरित्र में मिलता है। जब न्यूटन ने अपना प्रसिद्ध गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त गणितीय पद्धति से निश्चित कर लिया तो उसने उसका प्रेक्षणात्मक प्रमाण प्राप्त करना चाहा। चन्द्रमा की मासिक गति उसके गुरुत्वाकर्षण के नियम का एक दृष्टान्त थी। लेकिन चन्द्रमा की मासिक गति का प्रेक्षण करने पर उसे बड़ी निराशा हुई क्योंकि प्रेक्षण से प्राप्त तथ्य उसके गणितीय सिद्धान्त के विरुद्ध थे। न्यूटन ने प्रेक्षणात्मक तथ्यों की उपेक्षा नहीं की और अपने सिद्धान्त की पाण्डुलिपि दराज़ में डाल दी। लगभग बीस वर्ष बाद एक फ्रांसीसी अभियान से पृथ्वी की परिधि की ठीक-ठीक माप की गयी। इस माप के अनुसार न्यूटन का सिद्धान्त ठीक निकला। तब न्यूटन ने अपना सिद्धान्त प्रकाशित किया।[1]

**प्रेक्षण के दोष :** प्रेक्षण में सावधानी न रखने पर जो दोष सम्भव हो सकते हैं उन्हें दो वर्गों में रख सकते हैं : (1) अप्रेक्षण-दोष (Fallacy of non-observation)

---

1. देखिये : राइखेन बाख : वैज्ञानिक दर्शन का उदय पृ० 99।

(2) भ्रान्त-प्रेक्षण दोष (Fallacy of mal-observation) । अप्रेक्षण-दोष भी दो प्रकार के हो सकते हैं—(क) दृष्टान्तों के अप्रेक्षण का दोष (ख) घटना की प्रासंगिक परिस्थितियों के अप्रेक्षण का दोष।

दृष्टान्तों के अप्रेक्षण का दोष व्यतिरेकी दृष्टान्तों की उपेक्षा करने में विशेष रूप से देखा जाता है। जहाँ एक विशेष घटना नहीं घटती वहाँ उस घटना का व्यतिरेकी दृष्टान्त बनता है। हमारे बहुत से सामान्यीकरण व्यतिरेकी दृष्टान्तों की उपेक्षा करने के कारण दोषपूर्ण बनते हैं। छींक के बिना प्रारम्भ होने वाले असफल कार्यों की, या छींक से प्रारम्भ होने वाले सफल कार्यों की उपेक्षा करके ही यह धारणा बनाते हैं कि छींक से प्रारम्भ होने पर एक कार्य असफल रहता है। हमारा यह विश्वास व्यतिरेकी दृष्टान्तों के अनिरीक्षण के दोष से दूषित है। बच्चों के अपराधों के सम्बन्ध में यह धारणा कि बुद्धि की कमी अपराध का कारण है, इसी दोष पर आधारित है। जो अपराधी बच्चे पकड़े जाते हैं, वे प्रायः हीन-बुद्धि होते हैं। लेकिन इससे यह निष्कर्ष तो नहीं निकलता कि हीन-बुद्धि होना ही अपराधी होने का कारण है। यह सम्भव है कि बुद्धिमान अपराधी बच्चे पकड़े न जाते हों।

**प्रासंगिक परिस्थितियों की उपेक्षा :** एक घटना की अनेक प्रासंगिक परिस्थितियाँ होती हैं। इसलिए, एक घटना की कुछ प्रासंगिक परिस्थितियों की उपेक्षा करके, उसके सम्बन्ध में कोई निर्णय बनाना गलत होगा। विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में अंग्रेज़ी में असफल होने वाले विद्यार्थियों की ऊँची प्रतिशत के लिए केवल अध्यापकों को दोषी ठहराने में अन्य प्रासंगिक परिस्थितियों, जैसे विद्यार्थियों के घरेलू वातावरण, कालेज में प्रवेश लेने से पहले अंग्रेज़ी-ज्ञान के उनके स्तर, आदि की उपेक्षा की जाती है।

**भ्रान्त प्रेक्षण :** जो वस्तु जैसी नहीं है, उसे वैसा देख लेना भ्रान्त प्रेक्षण होता है। उतावलेपन में या भावुकता में प्रायः हमारा प्रेक्षण भ्रान्त हो जाता है। रस्सी को साँप समझ लेना, सादगी को गरीबी समझ लेना, किसी की मुस्कराहट को प्रेम मान लेना भ्रान्त प्रेक्षण है। भ्रान्त प्रेक्षण में अस्पष्ट अनुमान का अंश होता है।

## 2. प्रयोग

**प्रयोग का स्वरूप :** सुनियन्त्रित अवस्थाओं में किया गया प्रेक्षण प्रयोग कहलाता है। "प्रयोग प्रकृति से पूछा गया एक प्रश्न है"। प्रयोगकर्ता कुछ परिस्थितियाँ स्वयं तैयार करता है और यह जानना चाहता है कि उन परिस्थितियों में एक घटना घटती है या नहीं। सफल प्रयोग वही है जिसका प्रकृति से स्पष्ट उत्तर "हाँ" या "ना" में प्राप्त हो जाये। एक वैज्ञानिक यह जानना चाहता है कि क्या आवाज़ सुनाई देने के लिए आवाज़ के स्रोत से कानों तक किसी माध्यम की आवश्यकता है या नहीं। वह ऐसी परिस्थितियाँ तैयार करता है जिनमें आवाज़ के स्रोत और कान के बीच हवा का माध्यम भी नहीं

रहता। प्रयोगकर्ता एक कलश में बिजली की घण्टी रखता है, लेकिन वायु-पम्प से उसकी वायु निकाल देता है और उसमें निर्वात स्थिति बना देता है। वह बिजली के स्विच को दबाता है। उसका प्रश्न पूछना पूरा हुआ। प्रकृति से क्या उत्तर मिलता है ? उत्तर "ना" में आता है, आवाज सुनाई नहीं देती। प्रयोग सफल हुआ क्योंकि परिस्थितियाँ इस ढंग से तैयार की गयीं कि "हाँ" या "ना" में से स्पष्टता के साथ 'ना' में उत्तर मिल गया।

प्रयोग में प्रायः उपकरणों की आवश्यकता होती है। प्रयोग में उपकरणों की आवश्यकता दो कामों के लिए पड़ती है, एक तो प्रेक्षण और मापन के लिए और दूसरे परिस्थितयों को नियन्त्रित करने के लिए। उपर्युक्त प्रयोग वायु-पम्प के बिना सम्भव नहीं हो सकता क्योंकि वायु-पम्प के बिना निर्वात स्थिति नहीं बनायी जा सकती।

**प्रेक्षण और प्रयोग का अन्तर :** हम पहले कह चुके हैं कि प्रयोग एक विशेष प्रकार का प्रेक्षण है। प्रयोग और प्रेक्षण में निम्नलिखित अन्तर हैं :

1. प्रेक्षण में घटना की परिस्थितियाँ प्रकृतिदत्त होती हैं जबकि प्रयोग में घटना की परिस्थितियाँ मनुष्य-निर्मित होती हैं।

2. प्रेक्षण में परिस्थितियाँ प्रेक्षणकर्ता के नियन्त्रण में नहीं होतीं, जबकि प्रयोग में परिस्थितियाँ प्रयोगकर्ता के नियन्त्रण में होती हैं। प्रयोगकर्ता परिस्थितियों को स्वयं बनाता है, उन्हें अपने नियन्त्रण में रखता है, आवश्यकतानुसार वह उनमें जितना और जैसा परिवर्तन करना चाहता है कर सकता है। लेकिन प्रेक्षणकर्ता घटना की परिस्थितियों में बिल्कुल हस्तक्षेप नहीं करता।

3. "प्रेक्षण एक घटना को ढूंढना है, जबकि प्रयोग एक घटना को पैदा करना है।" प्रेक्षणकर्ता घटनास्थल पर जाता है, प्रयोगकर्ता प्रयोगशाला में घटना पैदा करता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि प्रयाग प्रेक्षण का ही एक रूप है। प्रयोग प्रेक्षण से अधिक व्यवस्थित और नियन्त्रण होता है। इस प्रकार इनमें मात्रा का भेद है, प्रकार का नहीं।

## 3. प्रेक्षण तथा प्रयोग के तुलनात्मक लाभ

प्रेक्षण और प्रयोग दोनों वास्तविक ज्ञान के साधन हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रयोग की तकनीक नयी है और तथ्य-सम्बन्धी निश्चित जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रेक्षण से यह अधिक उपयोगी भी है। वास्तव में, आधुनिक विज्ञान में जहाँ प्रयोग सम्भव हो सकता है, वहाँ केवल प्रेक्षण के आधार पर किसी अध्ययन को पर्याप्त नहीं समझा जाता। लेकिन विज्ञान में प्रेक्षण भी अपना महत्त्व रखता है। प्रेक्षण और प्रयोग के तुलनात्मक लाभ इस प्रकार हैं :

**प्रयोग की तुलना में प्रेक्षण के लाभ :** 1. प्रेक्षण का क्षेत्र प्रयोग के क्षेत्र से अधिक व्यापक है। ऐसी बहुत-सी घटनाएँ हैं, जिन पर प्रयोग सम्भव नहीं हो सकता। सूर्यग्रहण,

चन्द्रग्रहण, वर्षा, तूफान आदि घटनाओं पर प्रयोग नहीं हो सकता, इनका प्रेक्षण ही हो सकता है।

कुछ घटनाओं पर प्रयोग सम्भव तो हो सकता है, लेकिन उन पर प्रयोग वांच्छित नहीं समझा जा सकता। युद्ध, अकाल, महामारी आदि पर प्रयोग कभी वांच्छित नहीं समझा जायेगा। लेकिन ये घटनाएँ घटती तो हैं। इनके कारणों और परिणामों को जानने का साधन प्रेक्षण ही है।

2. प्रेक्षण कारण से कार्य का तथा कार्य से कारण का ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होता है, प्रयोग कारण से कार्य का ज्ञान प्राप्त करने में ही सहायक होता है। जब घटना घट ही गयी तो उसका तो प्रेक्षण ही हो सकता है। हम गरीबी के कारणों तथा परिणामों, दोनों का अध्ययन प्रेक्षण से कर सकते हैं। क्योंकि प्रयोग में एक घटना की परिस्थितियाँ तैयार करते हैं, और फिर उनका परिणाम देखते हैं, इसलिए प्रयोग हमें कारण से कार्य की ओर ही ले जाता है।

3. प्रेक्षण तथ्य-सम्बन्धी ज्ञान का प्रारम्भ-बिन्दु है। वैज्ञानिक अनुसन्धान में भी पहले प्रेक्षण होता है और उसके बाद प्रयोग। प्रेक्षण प्रयोग की पृष्ठभूमि तैयार करता है।

**प्रेक्षण की अपेक्षा प्रयोग के लाभ :** प्रेक्षण की अपेक्षा प्रयोग के निम्नलिखित विशिष्ट लाभ हैं :

1. प्रयोग में घटना के दृष्टान्त आवश्यकतानुसार दोहराये जा सकते हैं। इसके विपरीत प्रेक्षण में प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ता है। सूर्य-ग्रहण का प्रेक्षण करने के लिए, सूर्यग्रहण की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। लेकिन एक मनोवैज्ञानिक यह जानने के लिए कि ध्यान में बाधक शोर का कार्य-कुशलता पर क्या प्रभाव पड़ता है, जितने विद्यार्थियों पर, जितनी बार प्रयोग दोहराना चाहे, दोहरा सकता है।

2. प्रयोग का सबसे महत्त्वपूर्ण लाभ यह है कि इसके द्वारा एक घटना पर प्रभाव डालने वाले विभिन्न कारण-तत्त्वों को पृथक् किया जा सकता है और उनका मूल्यांकन किया जा सकता है। जिन घटनाओं का हम प्रेक्षण करते हैं, वे विभिन्न कारणों के मिश्रण का परिणाम होती हैं। कारणों के मिश्रित रूप का विश्लेषण करना और कारण के प्रत्येक घटक के अलग-अलग प्रभाव का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करना प्रयोग द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

उदाहरण के लिए, किसी वृक्ष से पत्ते के लड़खड़ाकर इधर-उधर होकर नीचे गिरने की घटना गुरुत्वाकर्षण शक्ति और वायु के प्रतिरोध के मिश्रण के परिणामस्वरूप घटती है। "यदि एक ओर हम वायुरहित स्थान में पत्ते को गिरने दें और वायु को अलग कर लें तो हम देखेंगे कि जहाँ तक गुरुत्वाकर्षण का सम्बन्ध है, उस पत्ते का गिरना उसी प्रकार का है जैसा किसी पत्थर के गिरने का। यदि, दूसरी ओर, किसी हवाई नली में से किसी स्थिर धरातल के प्रति हवा का प्रवाह फेंका जाये तो वह हवा के प्रवाह के नियमों

को बतायेगा। योजनाबद्ध प्रयोगों की कृत्रिम घटनाग्रों के द्वारा प्रकृति की मिश्रित घटना ग्रपने घटकों में इस प्रकार विश्लिष्ट होती है। इसलिए, प्रयोग ग्राधुनिक विज्ञान का उपकरण बन गया है।"[1]

(3) प्रयोग घटना का धैर्यपूर्वक प्रेक्षण करने की स्थिति प्रस्तुत करता है। जितने धैर्य के साथ प्रयोगशाला में निर्मित घटना का प्रेक्षण हो सकता है उतने धैर्य के साथ प्राकृतिक घटना का प्रेक्षण सम्भव नहीं। ग्राकाशीय बिजली क्षणभर के लिए कौंधती है। इसका धैर्यपूर्वक प्रेक्षण सम्भव नहीं। लेकिन प्रयोगशाला में निर्मित विद्युत् का प्रेक्षण ग्राराम से धैर्य के साथ हो सकता है।

## 4. प्रेक्षण ग्रौर प्रयोग के नियामक तत्त्व

प्रेक्षण ग्रौर प्रयोग को नियमित करने में निम्नलिखित बातें सहायक होती हैं:

1. **उद्देश्य की स्पष्टता ग्रौर निश्चितता :** पहले बताया जा चुका है कि प्रेक्षण ग्रौर प्रयोग दोनों सोद्देश्य होते हैं। लेकिन कई बार प्रेक्षण करते समय उद्देश्य बहुत स्पष्ट नहीं होता। उद्देश्य की स्पष्टता के बिना प्रेक्षण से प्राप्त सामग्री बहुत उपयोगी नहीं होती।

उद्देश्य की स्पष्टता के लिए परिभाषा का सहारा लिया जा सकता है। एक विद्यार्थी एक प्रदेश की संस्कृति का ग्रध्ययन करने के लिए उस प्रदेश के जन-जीवन का प्रेक्षण करना चाहता है। प्रेक्षण प्रारम्भ करने से पहले उसे "संस्कृति" शब्द की स्पष्ट परिभाषा करनी चाहिये।

2. **प्रश्नावली :** ग्रपने प्रेक्षण के उद्देश्य को स्पष्टता ग्रौर निश्चितत प्रदान करने के लिए प्रेक्षणकर्ता ग्रपनी प्रधान समस्या का विश्लेषण छोटे-छोटे निश्चित प्रश्नों में कर सकता है। वैज्ञानिक प्रेक्षण के लिए तो प्रेक्षण प्रारम्भ करने से पहले ही एक प्रश्नावली तैयार करना ग्रावश्यक होता है। प्रश्नावली के बिना प्रेक्षण से बहुत-सी उपयोगी सामग्री के छूट जाने की सम्भावना रहती है। सर्वेक्षण भी प्रेक्षण का ही रूप है। प्रश्नावली तैयार करना सर्वेक्षण की पहली ग्रवस्था है।

3. **प्रेक्षण-योजनाबद्ध होना चाहिये :** प्रश्नावली तैयार करने के साथ-साथ प्रेक्षण की योजना भी तैयार कर लेनी चाहिये। यदि एक गाँव के लोगों की ग्रार्थिक दशा का सर्वेक्षण करना है, तो प्रश्नावली तैयार करने के बाद, इस बात की भी निश्चित योजना बना लेनी चाहिये कि सर्वेक्षण किस मुहल्ले से प्रारम्भ करना है ग्रौर किस क्रम से ग्रागे बढ़ना है। ठीक-ठीक योजना बनाने से किसी परिवार के छूटने की सम्भावना नहीं रहेगी।

4. **प्रेक्षण घटना स्थल पर ही लिख लेना चाहिये :** जिससे स्मृति पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। ज्ञान की निश्चितता के सम्बन्ध में स्मृति विश्वसनीय नहीं समझी जाती।

---

1. राइखेन बाख : वैज्ञानिक दर्शन का उदय, पृष्ठ 95, 96.

5. **प्रेक्षण धैर्य के साथ करना चाहिये :** इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि कहीं अस्पष्ट अनुमान को ही तो प्रेक्षण नहीं समझ लिया गया है। प्राय: उतावलेपन में कल्पना अथवा अनुमान को ही प्रेक्षण समझने के कारण प्रेक्षण के दोष हो जाते हैं।

6. **एक प्रकार के अधिक-से-अधिक दृष्टान्तों का प्रेणक्ष करना चाहिये :** थोड़े से दृष्टान्तों के प्रेक्षण से प्राप्त सामग्री को अपर्याप्त समझना चाहिये और उसे किसी अनुमान का आधार नहीं बनाना चाहिये।

7. **प्रेक्षण तथा प्रयोग के लिए परिस्थितियों की विविधता आवश्यक है :** समान परिस्थितियों में देखे गये अनेक दृष्टान्तों का उतना महत्त्व नहीं है, जितना अधिक-से-अधिक भिन्न परिस्थितियों में प्रेक्षित दो दृष्टान्तों का। प्रयोग में तो परिस्थिति में परिवर्तन इच्छानुसार किया जा सकता है। लेकिन, प्रेक्षण में भिन्न परिस्थितियों वाले दृष्टान्तों का मिलना एक बड़ी कठिनाई है। प्रेक्षणकर्ता को फिर भी निराश नहीं होना चाहिये और अधिक-से-अधिक भिन्न परिस्थितियों वाले दृष्टान्तों की खोज करनी चाहिये।

8. जहाँ प्रयोग सम्भव हो, वहाँ प्रयोग के बिना केवल प्रेक्षण को प्रामाणिक नहीं मानना चाहिये।

## अभ्यास

1. आगमन के वैषयिक आधार क्या हैं ? उनका स्वरूप स्पष्ट कीजिये।
2. प्रेक्षण का क्या स्वरूप है ? वैज्ञानिक अध्ययन के लिए सामग्री इकट्ठा करने में इसका क्या महत्त्व है ?
3. प्रेक्षण के नियामक तत्त्व क्या हैं ? उदाहरण सहित इनके महत्त्व पर प्रकाश डालें।
4. प्रेक्षण के कौन-कौन से दोष हो सकते हैं ? उदाहरण सहित इन पर टिप्पणी लिखें। इनसे बचने के लिए कौन-सी सावधानियाँ रखनी चाहियें।
5. प्रयोग का क्या स्वरूप है ? इसके महत्त्व पर प्रकाश डालें।
6. जिस अध्ययन में प्रयोग सम्भव हो सकता है, उसके लिए केवल प्रेक्षण पर्याप्त क्यों नहीं समझा जाता ? वैज्ञानिक अध्ययन में प्रयोग के विशेष महत्त्व पर प्रकाश डालें।
7. प्रेक्षण और प्रयोग के स्वरूप का अन्तर स्पष्ट कीजिये और इनके तुलनात्मक महत्त्व का विवेचन कीजिये।
8. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखें :
   (अ) वैज्ञानिक अध्ययन में उपकरणों का महत्त्व।
   (आ) अप्रेक्षण-दोष।

# 24

# केवल गणनात्मक आगमन और साम्यानुमान

पिछले अध्याय में हमने आगमनात्मक अनुमान के वैषयिक और आकारिक आधारों का अध्ययन किया। अब हम आगमनात्मक अनुमान के प्रमुख रूपों का अध्ययन करेंगे। हम यह तो पहले ही देख चुके हैं कि आगमन की प्रमुख विशेषता सामान्यीकरण है। हम आगे देखेंगे कि सामान्यीकरण विज्ञान का भी मूल स्रोत है। यहाँ प्रश्न यह है कि सामान्यीकरण किन-किन प्रणालियों से किया जाता है। यही प्रश्न आगमनात्मक अनुमान के प्रकारों का प्रश्न है। इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जाता है कि आगमनात्मक अनुमान के तीन प्रकार हैं। अर्थात् ज्ञात से अज्ञात का अनुमान करने की तीन प्रणालियाँ हैं :

(1) केवल गणनात्मक आगमन

(2) साम्यानुमान

(3) वैज्ञानिक आगमन

केवल गणनात्मक प्रणाली में देखे हुए दृष्टान्तों की केवल संगणना आगमनात्मक अनुमान के निष्कर्ष का आधार बनती है। साम्यानुमान में देखे हुए दृष्टान्तों तथा साध्य-वस्तु का साम्य अनुमान का आधार बनता है। वैज्ञानिक आगमन में प्रेक्षण तथा प्रयोग द्वारा एक घटना के कुछ दृष्टान्तों का अध्ययन ऐसी प्रणालियों से किया जाता है जिनसे उस घटना की अप्रासंगिक परिस्थितियों का निरास हो सके और घटना के बारे में कार्य-कारण सम्बन्ध निश्चित हो सके। हम यह देख चुके हैं कि कारण-नियम आगमन की एक मान्यता है। इसमें जहाँ यह बात शामिल होती है कि प्रत्येक घटना का कारण होता है, वहाँ इसमें यह बात भी शामिल होती है कि एक कारण सदा एक कार्य उत्पन्न करता है। वैज्ञानिक आगमन में कार्य-कारण सम्बन्ध का निश्चय सामान्यीकरण का अर्थात् सामान्य वास्तविक प्रतिज्ञप्ति स्थापित करने का आधार होता है। **जे० एस० मिल** ने कार्य-कारण सम्बन्ध निश्चित करने की पाँच प्रणालियाँ बतायी हैं। **मिल** के अनुसार वैज्ञानिक आगमन इन पाँच प्रणालियों से ही होता है। इन पर हम अध्याय 25 में विचार

करेंगे। यहाँ केवल गणनात्मक आगमन और साम्यानुमान के स्वरूप और महत्त्व का अध्ययन करते हैं।

## 1. केवल गणनात्मक आगमन

**परिभाषा :** एक जाति के कुछ दृष्टान्तों में एक गुण देखकर, उस जाति के सब दृष्टान्तों (ज्ञात तथा अज्ञात, भूत, वर्तमान तथा भविष्यत्) में उस गुण के होने का अनुमान करना केवल गणनात्मक आगमन कहलाता है। इस आगमन का प्रतीकात्मक रूप इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं :

यह क, ख है।
वह क, ख है।
वह एक और क, ख है।
वह एक और अन्य क, ख है।

---

∴ सब क, ख हैं।

आगमन के इस रूप को और भी संक्षिप्त ढंग से निम्नलिखित ढंग से प्रकट किया जा सकता है :

क1, क2, क3, क4, क5 . . . . क$n$, ख हैं।

---

∴ सब क, ख हैं।

यहाँ जगह-जगह टूटी रेखा के ऊपर आधारिका दी है और उसके नीचे निष्कर्ष दिया है। यहाँ आधारिकाओं और निष्कर्ष के बीच टूटी रेखा का प्रयोग इस बात का संकेत देने के लिए किया गया है कि यहाँ निष्कर्ष आधारिकाओं से निकलता नहीं है; आधारिकाएँ निष्कर्ष के लिए थोड़ा-बहुत प्रमाण हैं और ये निष्कर्ष की केवल सम्भाव्यता ही प्रतिपादित करती हैं। "सब कौए काले हैं", यह सामान्यीकरण केवल गणनात्मक आगमन का बहुत प्रसिद्ध उदाहरण है। इस आगमन का स्पष्ट रूप इस प्रकार होगा :

अब तक जितने कौए देखे हैं, (कौआ 1, कौआ 2 . . . . . . कौआ$n$) वे सब काले मिले हैं।

---

∴ सब कौए काले हैं।

उपर्युक्त विवेचन से केवल गणनात्मक आगमन की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं :

1. केवल गणनात्मक आगमन वास्तविक घटनाओं के प्रेक्षण पर आधारित होता है। इसमें, इसलिए, वास्तविक प्रतिज्ञप्ति की स्थापना होती है।

2. इसमें सामान्यीकरण होता है अर्थात् इसमें कुछ दृष्टान्तों के प्रेक्षण के आधार पर सामान्य वास्तविक प्रतिज्ञप्ति की स्थापना होती है।

3. इसमें आगमनिक-प्लुति होती है।

4. इसमें सामान्यीकरण का आधार कार्य-कारण सम्बन्ध का ज्ञान नहीं होता। प्रकृति की एक रूपता में विश्वास के आधार पर और प्रेक्षित दृष्टान्तों की गणना के आधार पर ही इसमें सामान्यीकरण किया जाता है।

5. केवल गणनात्मक आगमन का निष्कर्ष केवल सम्भाव्य होता है, निश्चित नहीं। अब तक देखे गये सभी कौओं का काला होना, इस बात को कि जो कौए आगे देखे जायेंगे वे भी काले होंगे केवल सम्भाव्य बनाता है, निश्चित नहीं।

**केवल गणनात्मक आगमन के बल का मूल्यांकन**

कुछ केवल गणनात्मक आगमन व्यावहारिक दृष्टि से निश्चितता तक पहुँच जाते हैं: जबकि कुछ स्पष्टतः बचकाना तथा मूर्खतापूर्ण प्रतीत होते हैं। सब केवल गणनात्मक आगमनों का बल बराबर नहीं होता। "सब सींग वाले पशु पूँछ वाले पशु होते हैं" और "सब गंजे धनवान् होते हैं" दोनों ही केवल गणनात्मक आगमन हैं। लेकिन इनमें से पहला अधिक निश्चित है। इसका क्या आधार है ? दूसरे शब्दों में केवल गणनात्मक आगमन का बल किन बातों पर निर्भर करता है ? केवल गणनात्मक आगमन का बल निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है:

1. **दृष्ट समान दृष्टान्तों का महत्त्व :** आगमनों के बल का एक निर्धारक तत्त्व दृष्ट समान दृष्टान्तों की संख्या है। उपर्युक्त उदाहरणों में से आगमन का पहला उदाहरण दूसरे उदाहरण की तुलना में अधिक दृष्टान्तों के प्रेक्षण पर आधारित है। इसलिए, इसका बल अधिक है।

लेकिन आगमनों के बल का निर्धारण करने के लिए प्रेक्षित दृष्टान्तों की केवल संख्या पर्याप्त नहीं है। एक आगमन के लिए कितने समान दृष्टान्तों को पर्याप्त समझा जाना चाहिये, इसका कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता। रसायन-शास्त्र का विद्यार्थी एक गैस पर एक प्रयोग करता है और एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचता है। वह एक प्रयोग के आधार पर ही यह निश्चित रूप से कह सकता है कि जब जब उस प्रयोग को दोहराया जायेगा, उसका वही परिणाम निकलेगा। लेकिन हज़ारों गंजे लोगों को धनवान् देखकर उतनी ही निश्चितता के साथ यह नहीं कहा जा सकता कि आगे जो भी गंजा दिखायी देगा वह धनवान् होगा।

2. **विविध क्षेत्रों से दृष्टान्तों का चुनाव :** केवल एक ही क्षेत्र से दृष्टान्तों का चुनाव करके सामान्यीकरण करने में ग़लत अनुमान की अधिक सम्भावना रहती है और विविध क्षेत्रों से दृष्टान्तों का चुनाव करके सामान्यीकरण करने में ग़लती की सम्भावना कम हो जाती है। बच्चों के सम्बन्ध में जो सामान्यीकरण विविध वर्गों—गरीब,

अमीर, ग्रामीण, शहरी, शिक्षित-अशिक्षित—के बच्चों का चुनाव करने पर आधारित होगा, उसके सत्य होने की अधिक सम्भावना होगी और जो एक विशेष वर्ग, जैसे ग्रामीण वर्ग, से बच्चों का चुनाव करने पर आधारित होगा, उसके सत्य होने की अपेक्षाकृत कम सम्भावना होगी।

3. **अन्य आगमनों से सामजस्य** : केवल गणनात्मक आगमन के बल का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्त्व उसका अन्य आगमनों से सामजस्य है। एक आगमन का मूल्यांकन अन्य आगमनों से अलग-थलक करके नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में प्रो० राइखेन बाख़ का यह अवलोकन बहुत महत्त्वपूर्ण है कि सभी आगमनात्मक अनुमितियाँ एकाकी रूप में नहीं होतीं, अपितु अनेक आगमनों के व्यूह में की जाती हैं।"[1] केवल गणनात्मक आगमन को पूर्णतः अनुपयोगी प्रमाणित करने के लिए शताब्दियों तक यूरोप में प्रचलित यह आगमन कि "सब हंस सफेद होते हैं", उद्धृत किया जाता है। यूरोप में शताब्दियों तक लोगों ने केवल सफेद हंस देखे थे। इसलिए, वहाँ केवल गणनात्मक आगमन पर आधारित यह सामान्यीकरण प्रचलित था कि "सब हंस सफेद होते हैं"। लेकिन जब आस्ट्रेलिया में काले हंस देखे गये तो सैकड़ों वर्षों के तथा हजारों दृष्टान्तों के प्रेक्षण पर आधारित यह आगमन कि "सब हंस सफेद होते हैं" ग़लत हो गया। लेकिन यहाँ संगणनात्मक आगमन का मूल्यांकन ही ठीक-ठीक नहीं हुआ। यदि इस आगमन का मूल्यांकन केवल प्रेक्षित दृष्टान्तों की संख्या पर न करके, अन्य आगमनों से इसकी तुलना करके किया होता तो इसकी कमज़ोरी का पता पहले ही चल जाता। हम प्राणियों के सम्बन्ध में यह देखते हैं कि एक ही जाति के प्राणी विविध रंगों के होते हैं। इस तथ्य के सामने, एक जाति के प्राणियों के दृष्ट दृष्टान्तों में एक ही रंग मिलने पर भी हमारे पास यह कहने का उचित आधार नहीं बनता कि उस जाति का कोई अदृष्ट दृष्टान्त भिन्न रंग का नहीं होगा।

**केवल गणनात्मक आगमन का महत्त्व**

केवल गणनात्मक आगमन के महत्त्व के सम्बन्ध में तर्कशास्त्रियों में बहुत मतभेद है। **फ्रांसिस बेकन** ने केवल गणनात्मक विधि को "बचकाना" कहा है। इसके विपरीत **मिल** के अनुसार यह आगमन की अन्य सभी प्रणालियों का आधार है। **मिल** ने कार्य-कारण नियम और प्रकृति की एकरूपता के नियमों को आगमन का आधार माना है। उसके अनुसार इन नियमों का ज्ञान केवल गणनात्मक आगमन की विधि पर आधारित है। **प्रो० राइखेन बाख** यह मानते हैं कि समस्त आगमनात्मक अनुमितियाँ संगणना द्वारा आगमन में परिणत हो सकती हैं।[2]

केवल गणनात्मक विधि के उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि इसे बिल्कुल "बचकाना" कहना तो ठीक नहीं है।

---

1. प्रो० राइखेन बाख "वैज्ञानिक दर्शन का उदय" पृ० 235.
2. वैज्ञानिक दर्शन का उदय : पृष्ठ 236.

केवल गणनात्मक आगमन का महत्त्व निम्नलिखित बातों से स्पष्ट होता है :

1. केवल गणनात्मक आगमन आगमन का प्रारम्भिक रूप है। सामान्यीकरण वास्तविक ज्ञान का आवश्यक तत्त्व है और इसका प्रारम्भ केवल गणनात्मक आगमन के रूप में ही होता है।

2. आगमन की इस प्रणाली का व्यावहारिक महत्त्व है। हमारा व्यवहार केवल गणनात्मक आगमन पर निर्भर होता है। इसमें गलतियाँ भी होती हैं। लेकिन इसके बिना व्यवहार चल नहीं सकता।

3. विज्ञान के क्षेत्र में भी इसका महत्त्व है। इससे वैज्ञानिक अध्ययन का सुझाव मिलत है। इससे कारणात्मक सम्बन्धों का सुझाव मिलता है।

4. यदि प्रेक्षण के लिए दृष्टान्तों का चुनाव विभिन्न क्षेत्रों से किया जाये तो केवल गणनात्मक प्रणाली "गुप्त निराश" की प्रणाली बन जाती है; यह अनावश्यक तत्त्वों से आवश्यक तत्त्वों को पृथक् करने में सहायक होती है।

**दोष :** केवल गणनात्मक आगमन के उपर्युक्त लाभों को स्वीकार करने पर भी हम यह नहीं मान सकते कि केवल गणनात्मक आगमन वैज्ञानिक प्रणाली है। इसमें निम्नलिखित दोष हैं :

1. इसमें व्यतिरेकी दृष्टान्तों की प्रायः उपेक्षा होती है।
2. इसमें परिस्थितियों का ठीक-ठीक विश्लेषण नहीं होता और प्रासंगिक परिस्थितियों को अप्रासंगिक परिस्थितियों से पृथक् नहीं किया जा सकता।
3. इससे कारणात्मक-सम्बन्धों का केवल सुझाव मिलता है। इसके द्वारा उन्हें सिद्ध नहीं किया जा सकता।

**अवैध-सामान्यीकरण अथवा जल्दबाज का सामान्यीकरण** (Illicit generalization or Hasty generalization)

कुछ थोड़े-से दृष्टातों को देखकर जल्दबाज़ी में किया गया सामान्यीकरण अवैध-सामान्यीकरण (illicit generalization) या जल्दबाज का सामान्यीकरण कहलाता है। वास्तव में, यह बचकाना होता है। यदि मैं अपनी कक्षा के कुछ गरीब विद्यार्थियों को परिश्रमी देखकर यह सामान्यीकरण बनाऊँ कि सब गरीब विद्यार्थी परिश्रमी होते हैं तो यह अवैध-सामान्यीकरण होगा। "सब सरदार बहादुर होते हैं", "सब ब्राह्मण तीव्र बुद्धि वाले होते हैं", "सब लाला मक्खीचूस होते हैं" अवैध-सामान्यीकरण के कुछ उदाहरण हैं।

## 2. साम्यानुमान
### (Argument from Analogy)

**पारिभाषिक शब्द**

साम्यानुमान आगमनात्मक अनुमान का एक प्रमुख रूप है। "साम्य" का अर्थ है सादृश्य, साधर्म्य अथवा समानता। साम्य अथवा साधर्म्य जिस अनुमान का आधार हो

उसे साम्यानुमान कहते हैं। साम्यानुमान के निष्कर्ष में एक विशेष वस्तु में विशेष गुण-धर्म के होने का कथन किया किया जाता है और यह किसी अन्य प्रसिद्ध वस्तु या वस्तुओं के साथ प्रस्तुत वस्तु के ज्ञात साम्य पर आधारित होता है। साम्यानुमान के तार्किक स्वरूप को स्पष्टता से समझने के लिए कुछ पारिभाषिक शब्दों का अर्थ समझना आवश्यक है।

**साध्य-धर्मी** : साम्यानुमान के निष्कर्ष में जिस वस्तु में विशेष गुण-धर्म के होने का कथन किया जाता है, उसे साध्य-धर्मी कहते हैं।

**साध्य-धर्म** : साम्यानुमान के निष्कर्ष में जिस गुण-धर्म का विधान किया जाता है, उसे साध्य-धर्म कहते हैं।

**दृष्टान्त** : जिस प्रसिद्ध वस्तु के साथ साध्य-धर्मी की समानता को अनुमान का आधार माना जाता है, उसे दृष्टान्त कहते हैं।

**साम्यानुमान की परिभाषा और विशेषताएँ** : अब हम साम्यानुमान की परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं : दृष्टान्त और साध्य-धर्मी (अथवा साध्य-वस्तु) का ज्ञात साम्य जिस अनुमान का आधार हो, उसे साम्यानुमान कहते हैं।

**उदाहरण 1.** मंगल और पृथ्वी में अनेक गुणों में समानता ज्ञात है : मंगल और और पृथ्वी एक ही सूर्य के ग्रह हैं, ये एक ही सूर्य से प्रकाश लेते हैं और एक ही सूर्य के इर्द-गिर्द चक्कर लगाते हैं। मंगल ग्रह पर पृथ्वी की तरह वायु-मण्डल है।

पृथ्वी पर जीव-जन्तु रहते हैं।

---

∴ मंगल पर भी जीव-जन्तु रहते होंगे।

यहाँ मंगल साध्य-धर्मी है, जीव-जन्तुओं के रहने की विशेषता साध्य-धर्म है। पृथ्वी दृष्टान्त है। एक ही सूर्य का ग्रह होना, एक ही सूर्य से प्रकाश लेना, एक ही सूर्य के इर्द-गिर्द घूमना, मंगल और पृथ्वी के ज्ञात समान गुण-धर्म हैं। उपर्युक्त सब ज्ञात समान गुणों से मिलकर मंगल और पृथ्वी का ज्ञात साधर्म्य अर्थात् साम्य बनता है। यह ज्ञात साम्य इस अनुमान का आधार है कि मंगल पर जीव जन्तु रहते हैं।

**प्रतीकात्मक रूप** : साम्यानुमान का आकार प्रतीकात्मक ढंग से इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

क और ख में अ, इ, उ, ए गुणों का साम्य है।
क में अ, इ, उ, ए गुणों के साथ ओ गुण भी है।

---

∴ ख में भी ओ गुण होगा।

उपर्युक्त विवेचन से साम्यानुमान की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं :

1. साम्यानुमान में साध्य-वस्तु (संक्षेप में साध्य) और दृष्टान्तों में कुछ गुणों की ज्ञात समानता के आधार पर उनमें किसी एक अन्य गुण की समानता का अनुमा

लगाया जाता है । इसमें विचार की प्रक्रिया ज्ञात समानता से अधिक समानता की ओर बढ़ती है ।

2. सामान्यानुमान विशेष प्रतिज्ञप्तियों से विशेष प्रतिज्ञप्ति का अनुमान है । यह विशेष से विशेष का अनुमान है । यह विशेष से सामान्य का अनुमान नहीं है ।

3. साम्यानुमान में ज्ञात से अज्ञात का अनुमान लगाया जाता है । इसमें, निष्कर्ष आधारिकाओं से आगे जाता है । इसमें आगमनिक-प्लुति होती है ।

4. यह अनुमान कार्य-कारण के सम्बन्ध के ज्ञान पर आधारित नहीं होता । हमें यह बात निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है कि एक ग्रह पर वायु-मण्डल का होना उस पर जीवों के होने का निश्चित कारण है ।

5. साम्यानुमान केवल सम्भाव्य अनुमान होता है । साम्यानुमान का निष्कर्ष आधारिकाओं से तार्किक ढंग से निकलता नहीं है । आधारिकाओं द्वारा निष्कर्ष केवल सूझता है । यह निष्कर्ष सच है या गलत है, इसके बारे में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । हम पृथ्वी और मंगल ग्रह की ज्ञात समानताओं के आधार पर केवल इतना कह सकते हैं कि मंगल ग्रह पर जीवों के होने की सम्भावना है ।

**साम्यानुमान के कुछ और उदाहरण**

**उदाहरण 2.** आज आकाश में कल जैसी काली घटाएँ उमड़ रही हैं और हवा का रुख तथा दिन का समय भी वही है । कल मूसलाधार वर्षा हुई थी । इसलिए, आज भी मूसलाधार वर्षा होने वाली है ।

**उदाहरण 3.** तुम्हारा गर्म सूट रामकिशन दर्जी अच्छा सीयेगा क्योंकि उसने मेरा गर्म सूट अच्छा सिया था ।

**उदाहरण 4.** बकरा भी मनुष्य की तरह एक प्राणी है । जिस तरह मनुष्य की हत्या पाप है उसी तरह बकरे की हत्या भी पाप है ।

**उदाहरण 5.** देवदत्त तर्कशास्त्र का अध्ययन उन्हीं आचार्य से कर रहा है, जिनसे रविदत्त ने किया था । रविदत्त की लगन और बुद्धि भी देवदत्त जैसी है । गत वर्ष की परीक्षा में रविदत्त के 70 प्रतिशत अंक आये थे । इसलिए, इस वर्ष की परीक्षा में देवदत्त के भी 70 प्रतिशत अंक प्राप्त करने की सम्भावना है ।

**साम्यानुमान का मूल्यांकन** :— साम्यानुमान के सम्बन्ध में यह बात तो स्पष्ट की जा चुकी है कि साम्यानुमान सम्भाव्य ही होता है । लेकिन साम्यानुमानों की कम या अधिक सम्भाव्यता हो सकती है । साम्यानुमान की सम्भाव्यता का मूल्यांकन करते समय निम्नलिखित छः बातों को ध्यान में रखना चाहिये :

1. **दृष्टान्तों की संख्या** : साम्यानुमान एक दृष्टान्त पर आधारित हो सकता है और एक से अधिक दृष्टान्तों पर भी । हमने साम्यानुमान के ऊपर जो उदाहरण दिये हैं वे सब एक ही दृष्टान्त पर आधारित हैं । लेकिन इनमें से यदि हम किसी उदाहरण

में दृष्टान्तों की संख्या बढ़ाते हैं तो निष्कर्ष की सम्भाव्यता भी बढ़ जायेगी। जैसे, पाँचवें उदाहरण में, हम यह और जोड़ दें कि हरिदत्त और सोमदत्त ने उन्हीं आचार्य से बड़ी लगन के साथ तर्कशास्त्र पढ़ा था जिनसे रविदत्त ने, और परीक्षा में उनके अंक भी 70 प्रतिशत के लगभग आये थे, तो हमारे निष्कर्ष की सम्भावना बढ़ जायेगी। इस प्रकार, आधारिकाओं में दृष्टान्तों की संख्या बढ़ाने से साम्यानुमान के निष्कर्ष की सम्भाव्यता बढ़ती है। लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि जितने अधिक दृष्टान्त बढ़ाये जायें उसी अनुपात में निष्कर्ष की सम्भाव्यता बढ़े।

2. **दृष्टान्तों और साध्य (साध्य-वस्तु) की ज्ञात समानता का विस्तार :** दृष्टान्तों और साध्य में अधिक गुणों की समानता का ज्ञान होने पर निष्कर्ष की सम्भाव्यता बढ़ेगी। पाँचवें उदाहरण में, दृष्टान्त और साध्य के साम्य में, समान लगन, समान बुद्धि तथा एक ही आचार्य से शिक्षा प्राप्त करना शामिल है। यदि इस साम्य में, लिखायी को सुन्दरता और रफ्तार तथा भाषा पर अधिकार की समानता और जोड़ देते हैं, तो हमारे निष्कर्ष की सम्भावना बढ़ जायेगी। लेकिन यहाँ भी यह ध्यान रखना चाहिये कि ज्ञात समान गुणों की संख्या जितनी बढ़े उसी अनुपात में निष्कर्ष की सम्भाव्यता का बढ़ना आवश्यक नहीं है।

3. **दृष्टान्त तथा साध्य की ज्ञात असमानता का विस्तार :** दृष्टान्त और साध्य के ज्ञात असमान गुणों की संख्या बढ़ने पर निष्कर्ष की सम्भाव्यता कम होगी। मान लीजिए, अपने पाँचवें उदाहरण की आधारिका में हम यह जोड़ देते हैं कि देवदत्त का स्वास्थ्य रविदत्त की तरह अच्छा नहीं है और उस पर घर की जिम्मेदारी भी है, तो हमारे निष्कर्ष की सम्भावना कम हो जाती है।

4. **दृष्टान्तों की असमानता :** जो साम्यानुमान एक ही दृष्टान्त पर आधारित है, उसके सम्बन्ध में तो यह विशेषता लागू नहीं होती। लेकिन जो साम्यानुमान एक से अधिक दृष्टान्तों पर आधारित है, उसके सम्बन्ध में यह बात लागू होती है कि दृष्टान्तों में अधिक असमानता होने पर दृष्टान्त तथा साध्य के साम्य का महत्त्व बढ़ेगा और निष्कर्ष की सम्भाव्यता बढ़ेगी। हम फिर अपने पाँचवें उदाहरण पर आ जाते हैं। मान लीजिए, इस उदाहरण में रविदत्त, सोमदत्त, यज्ञदत्त, हरिदत्त दृष्टान्त हैं और देवदत्त साध्य है। इन पाँचों ने एक ही आचार्य से भिन्न-भिन्न वर्षों में तर्कशास्त्र पढ़ा है। हमें मालूम है कि पहले चारों ने परीक्षा में 70 प्रतिशत के लगभग अंक प्राप्त किये। इसलिए, अनुमान लगाते हैं कि देवदत्त भी इस वर्ष तर्कशास्त्र में 70 प्रतिशत अंक प्राप्त करेगा। अब यह और मान लीजिए कि रविदत्त, सोमदत्त, यज्ञदत्त और रविदत्त भिन्न-भिन्न जाति के हैं, उनका आर्थिक और सामाजिक स्तर भी भिन्न-भिन्न है, उनमें से कोई छात्रावास में रहता है और कोई रोज घर से पढ़ने आता है। ऐसा मानने पर हमारे अनुमान की सम्भाव्यता बढ़ेगी।

5. **दृष्टान्तों और साध्य की समानता तथा असमानता की प्रासंगिकता :** साम्यानुमान के मूल्यांकन के सम्बन्ध में दृष्टान्त और साध्य की समानता तथा असमानता

के विस्तार से भी अधिक महत्त्व इनकी प्रासंगिकता का है। अनुमान के आधार के रूप में कितने समान धर्म बताये गये हैं, यह प्रश्न इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि यह प्रश्न कि आधार-भूत धर्म और साध्य-धर्म में सम्बन्ध की कितनी निकटता है। हमने अपने पाँचवें उदाहरण में, दृष्टान्त और साध्य में तीन गुणों—बुद्धि, लगन और एक ही आचार्य से अध्ययन की समानता को अनुमान का आधार बताया। हमारे अनुमान में, ये तीन गुण आधार-गुण अर्थात् हेतु हैं और 70 प्रतिशत अंक प्राप्त करना साध्य-गुण है। अब मान लीजिये कि इस अनुमान को हम इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं : "देवदत्त और रविदत्त एक ही गाँव के रहने वाले हैं, दोनों के घर खेती होती है, दोनों साइकिल पर पढ़ने आते हैं, दोनों ब्राह्मण हैं। रविदत्त ने गत वर्ष की परिक्षा में 70 प्रतिशत अंक प्राप्त किये थे। इसलिए देवदत्त भी परीक्षा में 70 प्रतिशत अंक प्राप्त करेगा।" यहाँ चार गुणों को अनुमान का आधार बताया है। लेकिन इस अनुमान की सम्भाव्यता बहुत कम है क्योंकि आधार-गुण और साध्य-गुण में कोई सम्बन्ध दिखायी नहीं देता। इसी प्रकार यदि हमें यह मालूम है कि रविदत्त और देवदत्त बुद्धि और लगन में भिन्न हैं, तो उनके रंग, रूप, आयु, व्यवसाय आदि बीसियों गुणों की समानता होने पर भी अनुमान की सम्भावना बहुत कम रहेगी। इसलिए, यह ठीक कहा गया है कि साम्यानुमान का मूल्यांकन करते समय दृष्टान्त और साध्य के समान गुणों को गिनना ही नहीं चाहिये अपितु उनके "वजन" को, उनके महत्त्व को, उनकी प्रासंगिकता को भी जाँचना चाहिये।

6. **निष्कर्ष के कथन की निश्चितता :** अधिक निश्चितता के साथ प्रकट किये गये निष्कर्ष के सत्य होने की कम सम्भावना रहती है। "देवदत्त के इस वर्ष की परीक्षा में 70 प्रतिशत अंक प्राप्त करने की सम्भावना है" इस निष्कर्ष को यदि इस प्रकार प्रकट करते हैं कि "देवदत्त इस वर्ष की परीक्षा में 70 प्रतिशत अंक प्राप्त करेगा" तो इस निकर्ष के सत्य होने की कम सम्भावना है। मान लीजिए, देवदत्त के 70 प्रतिशत अंक नहीं आते, तो दूसरा निष्कर्ष तो स्पष्ट ही ग़लत है, लेकिन पहले निष्कर्ष में 70 प्रतिशत अंक प्राप्त करने की केवल सम्भावना बतायी है इसलिए देवदत्त के 70 प्रतिशत अंक न प्राप्त करने पर भी, यह निष्कर्ष निश्चितता के साथ ग़लत सिद्ध नहीं होता। यदि इसी निष्कर्ष को हम इस प्रकार प्रकट करते हैं कि "देवदत्त के 70 प्रतिशत के लगभग अंक प्राप्त करने की सम्भावना है", तो निष्कर्ष के सत्य होने की सम्भावना और भी अधिक होगी। यदि देवदत्त 65 प्रतिशत अंक प्राप्त करता है, तब भी इस निष्कर्ष के सत्य होने का दावा किया जा सकता है। यहाँ पाठक इस बात को समझ सकते हैं कि रेडियो द्वारा मौसम की भविष्यवाणी अनिश्चितता के साथ क्यों की जाती है। "हरियाणे में अगले 24 घण्टों में कहीं-कहीं बूंदा-बांदी होने की सम्भावना है" इस कथन की अपेक्षा "करनाल में कल दोपहर के 12 बजे बूंदा-बांदी होगी" इस कथन के सत्य होने की कम सम्भावना है।

### वर्णन और अनुमान में सादृश्य के प्रयोग का अन्तर

एक घटना का वर्णन करते समय, उसकी अन्य घटना से तुलना करना, वर्णन को रोचक और प्रभावशाली बना देता है। किसी कठिन विषय को समझाने के लिए, लेखक अथवा वक्ता प्रायः दृष्टान्तों का सहारा लेते हैं। लेकिन हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि इस प्रकार वर्णन अथवा प्रवचन में दृष्टान्तों के साथ सादृश्य बताकर किसी विषय को स्पष्ट करने की विधि साम्यानुमान नहीं है। जब तुलसीदास वर्षा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि पर्वत वर्षा की बूंदों का आघात ऐसे सहन करते हैं, जैसे सन्त खल के वचनों को सहन करता है तो यहाँ पर्वत और खल का सादृश्य और वर्षा की बूंद और खल के वचन का सादृश्य वर्षा के वर्णन को रोचक और प्रभावशाली बनाता है। यहाँ सादृश्य वर्णन की एक शैली के रूप में प्रयुक्त हुआ है, अनुमान के आधार के रूप में नहीं। साम्यानुमान में सादृश्य अथवा साम्य को हेतु के रूप में प्रयुक्त किया जाता है, इसमें साम्य के आधार पर कोई निष्कर्ष स्थापित किया जाता है। साम्यानुमान एक तार्किक प्रणाली है और यह सादृश्यमूलक वर्णन शैली से भिन्न है। उपमा या रूपक साम्यानुमान नहीं है।

### साम्यानुमान और केवल गणनात्मक आगमन का सम्बन्ध

साम्यानुमान और केवल गणनात्मक आगमन में सम्बन्ध है। केवल गणनात्मक आगमन में प्रेक्षित दृष्टान्तों की समानता देखकर सामान्यीकरण किया जाता है। इसमें सामान्यीकरण का आधार प्रेक्षित दृष्टान्तों की संगणना ही नहीं होती, अपितु उनका प्रेक्षित साम्य भी होता है। हमारा यह सामान्यीकरण कि सब कौए काले हैं प्रेक्षित कौओं के आपसी साम्य और उनकी संगणना, दोनों पर आधारित हैं। हम दो कौओं की शारीरिक रचना की समानता देखकर ही उन दोनों को एक जाति के अर्थात् कौआ जाति के दृष्टान्त समझते हैं। इस प्रकार, केवल गणनात्मक आगमन अथवा आगमनात्मक सामान्यीकरण का आधार प्रेक्षित दृष्टान्तों की संगणना और साम्य दोनों होते हैं। "प्रत्येक सामान्यीकरण साम्य पर ही आधारित हो सकता है, इसलिए, प्रत्येक सामान्यीकरण में साम्य और दृष्टान्तों की संगणना दोनों शामिल होते है।"[1]

दूसरी ओर, साम्यानुमान में गुप्त सामान्यीकरण होता है। पृथ्वी और मंगल के जिस ज्ञात साम्य के आधार पर मंगल पर जीवन होने की सम्भावना का अनुमान लगाया जाता है, यदि वही साम्य पृथ्वी और किसी अन्य ग्रह के बारे में ज्ञात होता है, तो उसी साम्य के आधार पर उस पर भी जीवन होने का अनुमान किया जा सकता है। इस प्रकार, संगणनात्मक सामान्यीकरण में साम्यानुमान और साम्यानुमान में सामान्यीकरण छुपा रहता है।

---

1. स्टैबिंग : A Modern Introduction to Logic p. 250.

**केवल गणनात्मक आगमन और साम्यानुमान की समानता**

केवल गणनात्मक आगमन और साम्यानुमान में निम्नलिखित बातों में समानता है :

1. केवल गणनात्मक आगमन और साम्यानुमान दोनों आगमनात्मक अनुमान के रूप हैं ।

2. दोनों में ज्ञात से अज्ञात का अनुमान लगाया जाता है । इसलिए, दोनों में आगमनिक-प्लुति होती है ।

3. दोनों में निष्कर्ष का आधार कार्य-कारण सम्बन्ध का ज्ञान नहीं होता ।

4. दोनों में आधारिकाएँ निष्कर्ष का थोड़ा-बहुत समर्थन करती हैं । ये निष्कर्ष के लिए पूर्ण प्रमाण नहीं हो सकतीं । दोनों में आधारिकाओं से निष्कर्ष की केवल सम्भाव्यता प्रतिपादित होती है ।

5. दोनों प्रकार की युक्तियाँ अत्यन्त निर्बल से लेकर अत्यन्त सबल तक के स्तर की हो सकती हैं ।

**केवल गणनात्मक आगमन और साम्यानुमान का अन्तर**

यद्यपि केवल गणनात्मक आगमन और साम्यानुमान में सम्बन्ध है और अनेक बातों में समानताएँ भी हैं, लेकिन फिर भी ये आगमनात्मक अनुमान के दो भिन्न-भिन्न रूप हैं । इन दोनों में प्रमुख अन्तर निम्नलिखित हैं :

1. केवल गणनात्मक आगमन में स्पष्ट सामान्यीकरण होता है, जबकि साम्यानुमान में स्पष्ट सामान्यीकरण नहीं होता । केवल गणनात्मक आगमन विशेष से सामान्य का अनुमान है, जबकि साम्यानुमान विशेष से विशेष का अनुमान है ।

2. केवल गणनात्मक आगमन अज्ञात दृष्टान्तों के बारे में होता है, जबकि साम्यानुमान अज्ञात गुण-धर्म के बारे में होता है । "क्योंकि सब देखे हुए कौए काले हैं, इसलिए सब कौए काले हैं" इस अनुमान में कालेपन के गुण-धर्म का अज्ञात कौओं से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है ।

पृथ्वी और मंगल ग्रह के ज्ञात साम्य के आधार पर मंगल ग्रह पर जीवन होने का अनुमान करते समय मंगल ग्रह के बारे में अज्ञात गुण-धर्म, जीवन होने के गुण-धर्म, का अनुमान करते हैं ।

**साम्यानुमान का महत्त्व**

साम्यानुमान आगमनात्मक अनुमान का एक प्रमुख रूप है । साधारण व्यवहार तथा विज्ञान दोनों में इसका बहुत व्यापक स्तर पर प्रयोग किया जाता है ।

**साधारण व्यवहार के क्षेत्र में साम्यानुमान :** साधारण व्यवहार के क्षेत्र में साम्यानुमान का प्रयोग प्रायः किया जाता है । हमने साम्यानुमान के स्वरूप को समझाने के लिए प्रारम्भ में जो उदाहरण दिये हैं, वे इस बात का संकेत देते हैं कि साम्यानुमान हमारे व्यावहारिक निर्णयों का आधार है । वकील अपने पक्ष का समर्थन करते समय

प्रायः साम्यानुमान का सहारा लेते हैं। डाक्टर भी एक विशेष रोगी के रोग का निदान करने के लिए प्रायः साम्यानुमान का प्रयोग करता है।

**विज्ञान के क्षेत्र में साम्यानुमान का महत्त्व :** वैज्ञानिक खोज में साम्यानुमान का विशेष महत्त्व है। साम्यानुमान वैज्ञानिक खोज की दिशा निर्धारित करता है। बहुत-सी वैज्ञानिक प्राक्कल्पनाओं का सुझाव साम्यानुमान द्वारा प्राप्त होता है। न्यूटन ने सेब के गिरने और चन्द्रमा के "गिरने" में सादृश्य देखकर, गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त का विस्तार किया। उद्योग क्षेत्र की प्रतिद्वन्द्वता और जीव जगत् के संघर्ष की समानता देख कर **डार्विन** को "बलवान् के संरक्षण" (Survival of the fittest) का सिद्धान्त सूझा। प्रकाश और ताप की समानता देखकर **ह्यू धेनस**, ने 1690 में यह प्राक्कल्पना बनायी कि ताप भी गति के रूप में होता है। **जगदीशचन्द्र बोस** को इस विचार का सुझाव कि पेड़-पौधों में भी चेतना है, पेड़-पौधों तथा अन्य प्रणियों और मनुष्य में सादृश्य देखकर सूझा जिसका समर्थन बाद में उन्होंने अपने प्रयोगों द्वारा किया।

वैज्ञानिक खोज में, घटनाओं का सादृश्य एक प्राक्कल्पना उपस्थित करता है और आगे का मार्ग सुझाता है। कभी-कभी जो सादृश्य बिल्कुल सतही लगता है, वह अनुसंधान द्वारा बुनियादी सिद्ध हो जाता है। आकाशीय बिजली और विद्युत् में जो प्रारम्भिक में सादृश्य दिखायी दिया उससे बाद में यह सिद्ध हो गया कि वे दोनों एक ही प्रकार के तथ्य हैं। लेकिन विज्ञान के क्षेत्र में भी साम्यानुमान के महत्त्व के सम्बन्ध से इतना स्पष्ट है कि साम्यानुमान से घटनाओं के बीच कोई सम्बन्ध प्रमाणित नहीं होता। इससे केवल एक विशेष प्रकार के सम्बन्ध का सुझाव मात्र मिलता है।

व्यापक अर्थ में साम्यानुमान का प्रयोग सभी आगमनात्मक प्रणालियों का अंग है। केवल गणनात्मक आगमन और आगमन की प्रयोगात्मक प्रणालियों, जिनका अध्ययन आगे करेंगे, में भी प्रेक्षित दृष्टान्तों के साम्य पर बल दिया जाता है। इस प्रकार, **स्टेबिंग** के शब्दों में यह कह सकते हैं कि "बहुत ही व्यापक अर्थ में, साम्यानुमान युक्ति का एक विशेष प्रकार नहीं है, अपितु सब आगमनात्मक अनुसन्धानों का एक अंग है।"

संक्षेप में, साम्यानुमान व्याख्या प्रस्तुत नहीं करता, यह केवल अनुसन्धान के, अगले कदम का सुझाव देता है, और इस दृष्टि से वैज्ञानिक खोज में महत्त्व रखता है।

**कुसाम्यानुमान**

साम्यानुमान उपयोगी भी हो सकता है और भ्रामक भी। इसके प्रयोग के सम्बन्ध में बहुत सावधानी की आवश्यकता है। अनेक साम्यानुमान वास्तव में भ्रामक होते हैं। भ्रामक साम्यानुमान के कुछ रूप निम्नलिखित हैं :

1. **अप्रासंगिक साम्य पर आधारित साम्यानुमान :** अप्रासंगिक साम्य पर आधारित साम्यानुमान मिथ्या साम्यानुमान (false analogy) अथवा कुसाम्यानुमान (bad analogy) कहलाता है।

**उदाहरण 1.** क्योंकि देवदत्त और सोमदत्त दोनों गंजे हैं, और देवदत्त एक न्यायाधीश है, इसलिए, सोमदत्त भी न्यायाधीश होगा ।

**उदाहरण 2.** ग्रामोफोन मनुष्य की तरह हंसते, गाते और रोते हैं । इसलिए, ग्रामोफोन प्राणी हैं ।

2. **मानवतारोपी साम्यानुमान :** मानवतारोपी साम्यानुमान प्रायः भ्रामक होते हैं और वैज्ञानिक खोज में अनुपयोगी ही नहीं अपितु बाधक होते हैं । जब हम मानव की क्रियाओं अथवा मनोवृत्तियों और आकांक्षाओं को प्रकृति की घटना पर आरोपित कर देते हैं तो मानवतारोपी साम्यानुमान का दोष होता है ।

**उदाहरण 3.** घड़ा एक कार्य है । घड़े को एक चेतन-प्राणी (कुम्हार) मिट्टी से बनाता है । जगत् भी एक कार्य है । इसलिए, जगत् का भी कोई बनाने वाला (ईश्वर) होगा ।

**उदाहरण 4.** मनुष्य किसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर वस्तुओं को एक विशेष व्यवस्था में रखता है । जगत् की घटनाओं में भी एक व्यवस्था दिखायी देती है । इसलिए, जगत् की रचना के पीछे कोई उद्देश्य है ।

इस प्रकार की युक्तियाँ मोहक प्राक्कल्पनाएँ उपस्थित करती हैं, लेकिन वैज्ञानिक दृष्टि से ये भ्रामक हैं क्योंकि ये किसी अनुसन्धान में सहायक नहीं हो सकतीं ।

3. **चित्रात्मक भाषा को युक्ति समझने का दोष :** हम पहले बता चुके हैं कि एक युक्ति में साम्य अथवा सादृश्य का हेतु के रूप में प्रयोग करना, और वर्णन को आकर्षक तथा प्रभावशाली बनाने के लिए साम्य अथवा सादृश्य का प्रयोग करना बिल्कुल भिन्न-भिन्न बातें हैं । वर्णन में अथवा काव्य में चित्रात्मक भाषा का प्रयोग दोष नहीं है । लेकिन सादृश्यमूलक चित्रात्मक भाषा को ही युक्ति समझ लेना दोष है । यदि एक समाज-शास्त्री समाज के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए इसकी तुलना एक शरीर-धारी जीव से करता है तो कोई दोष नहीं है । लेकिन, जब वह वर्णन की तुलनात्मक शैली को तर्क में बदल देता है तो वह युक्ति भ्रामक साम्यानुमान बन जायेगी । निम्नलिखित युक्तियाँ भ्रामक साम्यानुमान के दृष्टान्त हैं :

**उदाहरण 5.** जिस प्रकार मनुष्य बाल्यावस्था, किशोरावस्था और युवावस्था से गुजरता हुआ वृद्धावस्था पर पहुँच जाता है, उसी प्रकार एक संस्कृति उत्पत्ति, विकास और ह्रास की अवस्थाओं से गुज़रती है । इसलिए, संस्कृति वास्तव में मनुष्य की तरह एक सजीव शरीर है जिसका अपना विशिष्ट मन होता है ।

**उदाहरण 6.** राजा राज्य-रूपी जहाज़ का कप्तान होता है । इसलिए, वह जानता है कि राज्य को किस दिशा में ले जाना है ।

## अभ्यास

1. केवल गणनात्मक आगमन का स्वरूप स्पष्ट करें तथा इसकी विशेषताओं की व्याख्या करें।

2. केवल गणनात्मक आगमन के महत्त्व पर टिप्पणी लिखें। क्या इसे बिल्कुल निरर्थक मानना उचित है?

3. केवल गणनात्मक आगमन का बल किन बातों पर निर्भर करता है, उदाहरण सहित विवेचन करें।

4. केवल गणनात्मक आगमन और साम्यानुमान के सम्बन्ध, उनकी समानता तथा अन्तर का विवेचन करें। वैज्ञानिक खोज में इनके तुलनात्मक महत्त्व पर प्रकाश डालें।

5. साम्यानुमान के स्वरूप तथा विशेषताओं की विवेचना करें। क्या रूपक प्रस्तुत करना ही साम्यानुमान है?

6. साम्यानुमान के महत्त्व पर टिप्पणी लिखें। विज्ञान के क्षेत्र में इसका क्या विशिष्ट कार्य है? क्या साम्यानुमान को वैज्ञानिक व्याख्या माना जा सकता है?

7. साम्यानुमान के बल की किन बातों के आधार पर माप की जा सकती है? सोदाहरण विवेचन करें।

8. साम्यानुमान के भ्रामक रूपों पर टिप्पणी लिखें।

9. निम्नलिखित में से किन्हें साम्यानुमान कहेंगे। इनमें से जो साम्यानुमान हों उनका मूल्यांकन करें।

(1) जैसे हम पुराने वस्त्रों को उतार कर नये वस्त्र धारण करते हैं, वैसे ही मृत्यु का अर्थ जीवात्मा द्वारा पुराने शरीर को छोड़कर नया शरीर धारण करना है। (गीता)

(2) "गुरु जिस तरह शिष्य से यह कहकर कि सवाल हल करो, दूर खड़ा रहता है, उसी तरह जब तक जीव भोगमय जीवन में लिप्त रहता है, तब तक परमात्मा दूर खड़ा रहता है।" गीता प्रवचन (विनोबा)

(3) "सूर्य का यह प्रकाश-दान जैसा स्वाभाविक है, वैसा ही हाल सन्तों का है। उनका जीवित रहना ही मानो प्रकाश देना है।" गीता-प्रवचन (विनोबा)

(4) परमात्मा का ज्ञान गूंगे के गुड़ के स्वाद की तरह है।

(5) डाल्डा में देशी घी की तरह वसा, विटामिन डी और विटामिन ए होते हैं। क्योंकि देशी घी पौष्टिक होता है, इसलिए, डाल्डा भी पौष्टिक होता है।

(6) देश की सरकार घर की तरह देश का प्रबन्ध करती है। क्योंकि घर को स्त्रियाँ अच्छी तरह सम्भाल सकती हैं। इसलिए, स्त्रियाँ देश की शासन-व्यवस्था भी अच्छी तरह सम्भाल सकती हैं।

(7) क्योंकि अंग्रेज़ी में B, U और T से 'But' बनता है, जिसका उच्चारण 'बट' किया जाता है, इसलिए अंग्रेज़ी में P, U, T से बनने वाला शब्द 'Put' "पट" पढ़ा जायेगा।

(8) देवदत्त ब्राह्मण है और शाकाहारी है। हरिदत्त भी ब्राह्मण है। इसलिए, हरिदत्त भी शाकाहारी है।

(9) कालिज क और कालिज ख दोनों राजकीय कालेज हैं। दोनों में अध्यापकों तथा शिक्षकों की संख्या बराबर है। दोनों की इमारत भी समान है। कालिज क का परीक्षाफल 70 प्रतिशत रहता है। इसलिए, कालेज ख का परीक्षाफल भी 70 प्रतिशत होगा।

(10) भारत और चीन दोनों की जनसंख्या 50 करोड़ से अधिक है। दोनों एशिया के देश हैं। चीन ने साम्यवादी प्रणाली से अपनी शक्ति और समृद्धि का विकास किया है। इसलिए, भारत भी साम्यवादी प्रणाली से अपनी शक्ति और समृद्धि विकसित कर सकता है।

# 25

# वैज्ञानिक आगमन और आगमनात्मक प्रणालियाँ

### भूमिका

पिछले अध्याय में हमने आगमनात्मक अनुमान के दो रूपों, केवल गणनात्मक आगमन और साम्यानुमान, का अध्ययन किया। इस अध्याय में हम आगमनात्मक सामान्यीकरण की **मिल** की वैज्ञानिक प्रणालियों का अध्ययन करेंगे।

**फ्रांसिस बेकन** ने इस समस्या को उठाया कि आगमन की किस प्रणाली द्वारा वास्तविक सामान्य प्रतिज्ञप्तियों का निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। उन्होंने लिखा, "पूर्णतः निश्चित सामान्य प्रतिज्ञप्तियों की स्थापना करने के लिए अब तक प्रचलित आगमन की प्रणाली से भिन्न आगमन की प्रणाली की खोज होनी चाहिये, और इसका प्रयोग प्राथमिक नियमों (जैसा कि उन्हें कहा जाता है) की खोज के लिए ही नहीं होना चाहिये अपितु उनसे कम सामान्य स्वयंसिद्ध प्रतिज्ञप्तियों और वास्तव में सभी सामान्य प्रतिज्ञप्तियों के लिए होना चाहिये, क्योंकि केवल गणनात्मक आगमन तो बचकाना होता है, और इसके निष्कर्ष अविश्वसनीय होते हैं और इनमें विरोधी दृष्टान्त की सम्भावना का ख़तरा बना रहता है.....।" "लेकिन विज्ञान तथा कला की खोजों तथा उपपत्तियों के लिए जो आगमन उपलब्ध होना चाहिये वह ऐसा हो जिसमें उचित निरास के द्वारा प्रकृति का विश्लेषण किया गया हो और फिर पर्याप्त निषेधात्मक प्रतिज्ञप्तियों के बाद एक विधानात्मक प्रतिज्ञप्ति की स्थापना की गयी हो।" (बेकन)

**बेकन** ने ऐसी वैज्ञानिक प्रणाली की माँग की जो वैज्ञानिक प्रतिभा पर आश्रित न हो, जिसका अनुसरण करने वाला कोई भी व्यक्ति कारणात्मक सम्बन्ध खोज सके। उन्होंने कहा, "विज्ञान की हमारी प्रणाली बुद्धि की सूक्ष्मता और शक्ति के लिए और वास्तव में सामान्य स्तर की बुद्धि और मेधा के लिए कुछ नहीं छोड़ती। हाथ से एक सीधी रेखा खींचना या वृत्त बनाना दृढ़ता और अभ्यास पर निर्भर करता है, किन्तु यदि एक पटरी या परकार का प्रयोग किया जाये तो किसी दृढ़ता और अभ्यास की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यही बात हमारी प्रणाली के लिए भी है।"

**बेकन** ने जिस वैज्ञानिक आगमनात्मक प्रणाली की आवश्यकता महसूस की और जिसकी रूपरेखा भी तैयार की उसका विकसित रूप **जे० एस० मिल** ने प्रस्तुत किया।

**मिल** ने यह विचार प्रस्तुत किया कि यदि हम एक घटना के कुछ दृष्टान्तों का अध्ययन करके उसके कारण का निश्चय कर लेते हैं, तो उस पर आधारित हमारा सामान्यीकरण पूर्णतः निश्चित और वैज्ञानिक होगा, उसमें शंका की कोई सम्भावना नहीं रहेगी।

## 1. वैज्ञानिक आगमन का स्वरूप और विशेषताएँ

यहाँ वैज्ञानिक आगमन के स्वरूप पर कुछ और प्रकाश डालना उपयोगी रहेगा। आगमन के अन्य रूपों से वैज्ञानिक आगमन का अन्तर स्पष्ट करने के लिए वैज्ञानिक आगमन की परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं :

कार्य-कारण नियम और प्रकृति की एकरूपता के नियम में विश्वास करके तथा एक घटना के कुछ विशेष दृष्टान्तों के बारे में प्रेक्षण तथा प्रयोग द्वारा कार्य-कारण सम्बन्ध निश्चित करके वास्तविक सामान्य प्रतिज्ञप्ति स्थापित करना वैज्ञानिक आगमन है।

इस परिभाषा से वैज्ञानिक आगमन की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं :

1. वैज्ञानिक आगमन सामान्य वास्तविक प्रतिज्ञप्ति स्थापित करता है। यह विश्लेषणात्मक अथवा शाब्दिक प्रतिज्ञप्ति स्थापित नहीं करता।

2. वैज्ञानिक आगमन में सामान्यीकरण होता है। इसमें विशेष से सामान्य का, कुछ से सब का अनुमान लगाया जाता है। इसलिए, इसमें आगमनिक प्लुति (inductive leap) होती है। यह विशेषता वैज्ञानिक आगमन और केवल गणनात्मक आगमन दोनों में समान है।

3. वैज्ञानिक आगमन कार्य-कारण नियम और प्रकृति की एकरूपता को मानकर चलता है। इसके पीछे यह मान्यता रहती है कि प्रत्येक घटना का कारण होता है और एक कारण सदा एक ही कार्य उत्पन्न करता है।

4. इसमें आगमनात्मक प्रणालियों (inductive methods) का प्रयोग होता है। इसमें विशेष दृष्टान्तों का प्रेक्षण करके अथवा उन पर प्रयोग करके अप्रासंगिक परिस्थितियों का निरास किया जाता है और कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। वैज्ञानिक आगमन की यह विशेषता इसे केवल गणनात्मक आगमन से पृथक् करती है। केवल गणनात्मक आगमन दृष्टान्तों की गणना पर आधारित होता है। इसमें निरास की विधियों का प्रयोग करके कारणात्मक सम्बन्ध स्थापित नहीं किये जाते, जबकि वैज्ञानिक आगमन में निरास की विधियों का प्रयोग करके कारणात्मक सम्बन्ध स्थापित किये जाते हैं और फिर सामान्यीकरण किया जाता है।

5. वैज्ञानिक आगमन द्वारा जो सामान्य प्रतिज्ञप्तियाँ स्थापित होती हैं, उनके सत्य होने की अधिक सम्भावना होती है। **मिल** का विश्वास तो यह है कि वैज्ञानिक आगमन निरास की विधियों द्वारा कारणात्मक सम्बन्धों की स्थापना पर आधारित होने के कारण निश्चित रूप से सत्य होता है। लेकिन, जैसाकि हम आगे देखेंगे, **मिल** का यह दावा गलत है। जो सामान्य प्रतिज्ञप्तियाँ विशेष दृष्टान्तों में कारणात्मक सम्बन्ध का निश्चय करने के आधार पर बनती हैं, उनके बारे में भी यह दावा नहीं किया जा सकता कि वे असंदिग्ध रूप से सत्य हैं। वास्तव में, कोई भी आगमनात्मक सामान्यीकरण, चाहे वह किसी प्रणाली से स्थापित हुआ हो, असंदिग्ध रूप से सत्य नहीं कहा जा सकता। लेकिन, यह स्पष्ट है कि जो आगमन करणात्मक सम्बन्ध के निश्चित ज्ञान पर आधारित है उसके सत्य होने की अधिक सम्भावना रहती है। इसलिए, विज्ञान में कारणात्मक सम्बन्धों का निश्चित ज्ञान प्राप्त करने पर विशेष बल दिया जाता है।

## 2. आगमनात्मक प्रणालियों का सामान्य स्वरूप

**मिल** ने ऐसी पाँच प्रणालियाँ निश्चित की हैं जिनके द्वारा, उसके मत के अनुसार, घटनाओं के कारण-कार्य सम्बन्ध निश्चित होते हैं और हो सकते हैं।

ये पाँच आगमनात्मक प्रणालियाँ हैं :

1. अन्वय-प्रणाली (Method of Agreement)
2. व्यतिरेक-प्रणाली (Method of Difference)
3. अन्वय-व्यतिरेक प्रणाली (Joint Method of Agreement and Difference)
4. सह-परिवर्तन प्रणाली (Method of Concomitant Variations)
5. अवशेष प्रणाली (Method of Residues)

इन पाँचों प्रणालियों को **मिल** ने आगमनात्मक प्रणालियाँ कहा है। इन्हें आगमनात्मक प्रणालियाँ कहने का अभिप्राय यह है कि इनमें कुछ सीमित दृष्टान्तों का प्रेक्षण करके तथा उनके बारे में कार्य-कारण सम्बन्ध निश्चय करके सामान्यीकरण किया जाता है।

**मिल** ने इन्हें प्रयोगात्मक प्रणालियाँ भी कहा है। यद्यपि इनमें से कुछ प्रणालियाँ प्रेक्षण पर आधारित हैं, प्रयोग पर नहीं, फिर भी इन सब प्रणालियों को प्रयोगात्मक प्रणालियाँ कहा है। प्रयोग का प्रधान उद्देश्य एक घटना की प्रासंगिक परिस्थितियों को अप्रासंगिक परिस्थितियों से पृथक् करना है। इन प्रणालियों का उद्देश्य भी यही है। इसलिए, इन्हें प्रयोगात्मक प्रणालियाँ कहा है।

**मिल** ने इन प्रणालियों के सम्बन्ध में यह दावा किया है कि ये कार्य-कारण सम्बन्ध की खोज करने की तथा कार्य-कारण सम्बन्ध का पूर्ण प्रमाण अर्थात् उपपत्ति प्रस्तुत करने

की प्रणालियाँ हैं। इनके द्वारा हम घटनाओं के कार्य-कारण सम्बन्धों की खोज कर सकते हैं और यदि किसी घटना के कारण के बारे में पहले से कुछ जानते हैं तो इन प्रणालियों द्वारा उसके वास्तव में कारण होने या न होने का पूर्ण प्रमाण प्रस्तुत कर सकते हैं। बहुत-से तर्कशास्त्री प्रयोगात्मक प्रणालियों के महत्त्व के सम्बन्ध में किये गये **मिल** के इस दावे को स्वीकार नहीं करते। फिर भी आगमनिक खोज में इन प्रणालियों का महत्त्व तो सब स्वीकार करते हैं। यहाँ हम पहले इन प्रणालियों के अलग-अलग स्वरूप और महत्त्व पर विचार करते हैं और फिर इनके महत्त्व का सामान्य मूल्यांकन करेंगे।

## 3. अन्वय और व्यतिरेक दृष्टान्त

आगमनात्मक प्रणालियों के स्वरूप की व्याख्या करते समय "अन्वय-दृष्टान्त" "व्यतिरेक-दृष्टान्त" शब्दों का बार-बार प्रयोग किया जायेगा। इसलिए, इनका अर्थ समझना आवश्यक है।

जहाँ एक घटना घटती है वहाँ उस घटना का अन्वय-दृष्टान्त और जहाँ एक घटना नहीं घटती वहाँ उस घटना का व्यतिरेक-दृष्टान्त माना जाता है। जिस व्यक्ति को मलेरिया बुखार है, वह मलेरिया बुखार का अन्वय-दृष्टान्त है, और जिस व्यक्ति को मलेरिया बुखार नहीं है, वह मलेरिया बुखार का व्यतिरेक-दृष्टान्त है।

## 4. अन्वय-प्रणाली

**अधिनियम (Canon) और विशेषताएँ**

अन्वय-प्रणाली में एक घटना के दो या दो से अधिक अन्वयदृष्टान्तों का प्रेक्षण किया जाता है और यह निश्चित किया जाता है कि उन सब दृष्टान्तों की परिस्थितियों में क्या कोई एक ऐसी परिस्थिति है जो सब दृष्टान्तों में समान रूप से मिलती है। यदि एक घटना के सब प्रेक्षित दृष्टान्तों में केवल एक परिस्थिति समान रूप से मिलती है तो यह परिस्थिति उस घटना का कारण है या कार्य है। **मिल** ने अन्वय-प्रणाली का अधिनियम इस प्रकार दिया है :-

"यदि अनुसन्धानाधीन घटना के दो या अधिक दृष्टान्तों में केवल एक परिस्थिति समान है, तो यह एक परिस्थिति जिसके सम्बन्ध में ही उन सब दृष्टान्तों में समानता है, उस घटना का कारण है (अथवा कार्य है)।"

उपर्युक्त अधिनियम से अन्वय-प्रणाली की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं :

1. यह प्रणाली प्रेक्षण की प्रणाली है। इसमें प्रेक्षण द्वारा ही ऐसे दृष्टान्त इकट्ठे किये जाते हैं, जिनकी परिस्थितियों में अधिक-से-अधिक भिन्नता हो।

2. इस प्रणाली में प्रेक्षित दृष्टान्तों की संख्या कम-से-कम दो होनी चाहिये। लेकिन दो से अधिक दृष्टान्त हों तो और भी अच्छा है।

3. प्रेक्षित सब दृष्टान्तों में केवल एक परिस्थिति समान होनी चाहिये। प्रेक्षित दृष्टान्तों में एक से अधिक परिस्थिति के समान होने पर भी अन्वय-प्रणाली से कारण अथवा कार्य के बारे में अनुमान लगाना अवैध होगा।

अन्वय-प्रणाली निम्नलिखित दो मान्यताओं पर आधारित है :

(1) प्रत्येक घटना का कारण होता है।
(2) जिसके अभाव में एक घटना घटती है वह उस घटना का कारण नहीं हो सकता। यह निरास का एक नियम है जो अन्वय प्रणाली का आधार है।

**प्रतीकात्मक उदाहरण**

हम स्वर अक्षरों को पूर्ववर्ती घटनाओं का प्रतीक मानकर और व्यंजन अक्षरों को अनुवर्ती घटनाओं का प्रतीक मानकर अन्वय-प्रणाली का प्रतीकात्मक उदाहरण इस प्रकार दे सकते हैं :

अ इ उ → क ख ग
अ ए ओ → क च छ
अ उ ऋ → क ट ठ,
∴ अ, क का नियत पूर्ववर्ती अर्थात् कारण या कारण का अंश है।

अन्वय-प्रणाली के इस प्रतीकात्मक उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि क घटना के तीन दृष्टान्त देखे गये और इनमें कुल मिलाकर अ, इ, उ, ए, ओ, ऋ पूर्ववर्ती घटनाएँ या परिस्थितियाँ देखी गयीं। अब इनमें से इ और उ तो क का कारण नहीं हैं क्योंकि ये दूसरे दृष्टान्त में क के पहले नहीं आते। ए और ओ भी क का कारण नहीं हैं क्योंकि ये पहले और तीसरे दृष्टान्त में देखने में नहीं आते। ऋ भी क का कारण नहीं है क्योंकि यह पहले और दूसरे दृष्टान्त में नहीं आता। अ ही केवल एक ऐसी पूर्ववर्ती घटना है जो क के तीनों दृष्टान्तों में देखी गयी है। इसलिए, हम निष्कर्ष निकालते हैं कि अ, क का कारण है अथवा उसके कारण का अंश है।

**वास्तविक उदाहरण**

**उदाहरण 1.** राम रात्रि के एक भोज में पूरी, गोभी की सब्जी और अचार खाता है।
मोहन उसी भोज में चावल मटर-पनीर की सब्जी और अचार खाता है।
सोहन उसी भोज में तन्दूरी रोटी, आलू छोले, दही और अचार खाता है।
दूसरे दिन प्रातः राम, मोहन और सोहन तीनों के गले खराब होते हैं।
∴ अचार का खाना राम, मोहन और सोहन के गले के खराब होने का कारण है।

इस उदाहरण में हम देखते हैं कि तीनों दृष्टान्तों में अचार खाने और गला ख़राब होने का ही अन्वय है। इसलिए, यहाँ अन्वय प्रणाली से अचार खाने और गले के ख़राब होने का कारण-कार्य सम्बंन्ध स्थापित किया गया है।

**उदाहरण 2.** राम 20 वर्ष का बी० ए० का विद्यार्थी है और नित्य प्रातः योगासन और प्रणायाम करता है और स्वस्थ रहता है।

मोहन 30 वर्षीय हाई स्कूल का अध्यापक है और वह नित्य योगासन और प्राणायाम करता है और स्वस्थ रहता है।

धर्मेन्द्र 50 वर्षीय डाक्टर है और नित्य प्रातः योगासन और प्राणायाम करता है और स्वस्थ रहता है।

अतः प्रातः योगासन और प्राणायाम करने से एक व्यक्ति स्वस्थ रहता है।

इनमें से पहले उदाहरण में कार्य से कारण का अनुमान लगाया है, जबकि दूसरे उदाहरण में कारण से कार्य का अनुमान लगाया है।

**अन्वय-प्रणाली की सफलता की शर्तें**

अन्वय-प्रणाली की सफलता की निम्नलिखित दो शर्तें हैं :

1. जिस घटना के कारण की खोज की जा रही है, उसकी सभी प्रासंगिक पूर्ववर्ती तथा अनुवर्ती परिस्थितियाँ स्पष्ट होनी चाहियें और उनका ठीक-ठीक विश्लेषण होना चाहिये।

2. प्रेक्षित सब दृष्टान्तों में केवल एक ही परिस्थिति के साथ घटना का अन्वय होना चाहिये।

**अन्वय-प्रणाली की आलोचना**

वास्तविक अनुसंधान की परिस्थितियों में अन्वय-प्रणाली की उपर्युक्त शर्तों को पूरा करना कठिन होता है। इसलिए, यह प्रणाली दोषपूर्ण रहती है। इससे न तो कारण की खोज ही हो पाती है और न यह कार्य-कारण सम्बन्ध की उपपत्ति (proof) ही प्रस्तुत करती है। यह प्रणाली कार्य-कारण सम्बन्ध के खोज की तथा उसकी उपपत्ति की प्रणाली निम्नलिखित दोषों के कारण नहीं बन पाती :

1. **प्रासंगिक परिस्थिति के ध्यान में न आने की सम्भावना :** यह सम्भव हो सकता है कि प्रेक्षित दृष्टान्तों की कोई ऐसी परिस्थित हो, जिसकी ओर हमने ध्यान ही न दिया हो और जो वास्तव में घटना का कारण हो। उदाहरण (1) का हमारा निष्कर्ष ग़लत हो सकता है। यह सम्भव है कि हमने इस बात की ओर ध्यान न दिया हो कि राम, मोहन और सोहन तीनों के गले थोड़े-थोड़े पहले से ख़राब थे अथवा, यह भी सम्भव है कि उनके गले ख़राब होने का कारण कोई अज्ञात छूत है।

2. **परिस्थितियों का ठीक-ठीक विश्लेषण न कर पाना :** एक घटना की पूर्ववर्ती तथा अनुवर्ती परिस्थितियाँ जटिल होती हैं। इन जटिल परिस्थितियों में से उस तत्त्व को निकाल पाना जो प्रस्तुत घटना का कारण है, अन्वय प्रणाली द्वारा सम्भव नहीं हो सकता। इस दोष को कारण-अनेकता से पैदा होने वाला दोष भी कह सकते हैं। हम यह जानते हैं कि कारण-अनेकता का सिद्धान्त वैज्ञानिक दृष्टि से ठीक नहीं है। लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से तो कारण-अनेकता में हम विश्वास करते ही हैं। कब्ज दूर करने के लिए यूनानी हकीम पानी से ईसब गोल का सेवन बताता है, आयुर्वेद का वैद्य पानी से त्रिफला लेने का परामर्श देता है और ऐलोपैथी का डाक्टर "केस्टर ऑयल" पानी में लेने का परामर्श देता है; क्योंकि तीनों परिस्थितियों में पानी ही एक अन्वित परिस्थिति है। इसलिए, अन्वय प्रणाली का अनुसरण करते हुए, एक व्यक्ति यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि पानी ही कब्ज दूर करने की दवा है। इस प्रकार, इस प्रणाली के आधार पर बिल्कुल अप्रासंगिक बात को कारण समझा जा सकता है।

3. **अन्वय-प्रणाली कार्य-कारण सम्बन्ध और सह-अस्तित्व में अन्तर करने में असफल रहती है :** हम देखते हैं कि जो-जो पशु जुगाली करते हैं, उनके खुर फटे होते हैं। हम अन्वय-प्रणाली का अनुसरण करते हुए, यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि जुगाली करना खुरों के फटे होने का कारण है। लेकिन यह ग़लत है।

4. **एक कारण का परिणाम जटिल होता है, उनके अनेक तत्त्व होते हैं :** एक ही कारण से पैदा होने वाले कार्य के विविध तत्त्वों में हम अन्वय-प्रणाली के आधार पर कारण-कार्य सम्बन्ध मानने की ग़लती कर सकते हैं। उदाहरण के रूप में अनिद्रा और सिर दर्द दोनों ही मानसिक चिन्ता के परिणाम हो सकते हैं और हम अन्वय-प्रणाली का का अनुसरण करते हुए यह ग़लत विचार बना सकते हैं कि अनिद्रा सिर दर्द का कारण है।

अन्वय-प्रणाली में इन दोषों की सम्भावना सदा बनी रहती है। लेकिन अन्वय-दृष्टान्तों की संख्या बढ़ाकर इन दोषों को कुछ कम किया जा सकता है।

**अन्वय प्रणाली का महत्त्व**

**मिल** ने अन्वय-प्रणाली को कार्य-कारण सम्बन्ध की खोज तथा उसे असंदिग्ध रूप से प्रमाणित करने की प्रणाली बताया है। लेकिन अन्वय-प्रणाली के सम्बन्ध में **मिल** का यह दावा वास्तव में ठीक नहीं उतरता। अन्वय-प्रणाली द्वारा बिल्कुल अप्रासंगिक बात को कारण समझा जा सकता है। इसलिए, यह कारण-सम्बन्ध की खोज की प्रणाली तो है ही नहीं। यह कारण-सम्बन्ध प्रमाणित करने की विधि भी नहीं मानी जा सकती। इस प्रणाली का प्रयोग इस मान्यता पर आधारित है कि एक घटना के प्रेक्षित दृष्टान्तों की जो परिस्थितियाँ हमारे ध्यान में आयी हैं उसकी वे ही कुल प्रासंगिक परिस्थितियाँ हैं। लेकिन हमारी यह मान्यता ही ग़लत हो सकती है। अन्वय-प्रणाली का तार्किक स्वरूप हम पहले एक प्रतीकात्मक उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर चुके हैं। इस

उदाहरण का निष्कर्ष आधारिकाओं से तभी निकलता है जब यह मान लिया जाये कि अ, इ, उ, ए, ओ, ऋ ही क की कुल प्रासंगिक परिस्थितियाँ हैं। लेकिन किसी वास्तविक घटना के सम्बन्ध में हम जिन परिस्थितियों को प्रासंगिक समझ रहे हैं, वे ही कुल प्रासंगिक परिस्थितियाँ हैं, इसका निश्चय कभी नहीं हो सकता। इसलिए, इस प्रणाली द्वारा कार्य-कारण सम्बन्ध का असंदिग्ध प्रमाण प्रस्तुत नहीं हो सकता।

यदि अन्वय-प्रणाली से न तो कार्य-कारण सम्बन्ध की खोज होती है और न इससे इस सम्बन्ध का पूर्ण प्रमाण उपलब्ध होता है, तो इसका महत्त्व क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि यह निरास की प्रणाली है। यदि एक परिस्थिति प्रेक्षित दृष्टान्तों में से एक दृष्टान्त में दिखायी देती है और दूसरे में वह दिखायी नहीं देती तो इस प्रणाली से यह तो सिद्ध होता है कि वह उस घटना का कारण नहीं है। लेकिन जो परिस्थिति सब दृष्टान्तों में दिखायी देती है, वह उस घटना का कारण है और वही उस घटना का कारण है यह इस प्रणाली से स्थापित नहीं होता। इस प्रकार कुछ अप्रासंगिक परिस्थितियों का निरास करने में ही इस प्रणाली का महत्त्व है। इस प्रणाली का महत्त्व निषेधात्मक है।

## 5. व्यतिरेक-प्रणाली

**मिल** ने अन्वय-प्रणाली की कमियाँ स्वीकार कीं और उनसे बचने के लिए व्यतिरेक-प्रणाली प्रस्तुत की। व्यतिरेक-प्रणाली में एक घटना के अन्वय दृष्टान्त और व्यतिरेक-दृष्टान्त की तुलना की जाती है और यह देखा जाता है कि इन दोनों दृष्टान्तों की परिस्थितियों में किस बात का अन्तर है। यदि ऐसा देखने में आये कि अन्वय-दृष्टान्त की परिस्थिति में जो बातें हैं उनमें से केवल एक को छोड़कर शेष सब व्यतिरेक-दृष्टान्त में हैं, तो वह एक परिस्थिति जो अन्वय-दृष्टान्त में है, लेकिन व्यतिरेक-दृष्टान्त में नहीं है, घटना का कारण है अथवा कारण का अंश है। **मिल** ने व्यतिरेक-प्रणाली का अधिनियम इस प्रकार प्रकट किया है :

**अधिनियम**

"यदि हम ऐसे दो दृष्टान्त लें जिनमें से एक में अनुसन्धानाधीन घटना घटती है और दूसरे में नहीं घटती और यह देखें कि इन दोनों दृष्टान्तों में केवल उस परिस्थिति को छोड़कर जो पहले दृष्टान्त में है और दूसरे दृष्टान्त में नहीं है, शेष परिस्थितियाँ समान हैं, तो जिस एक परिस्थिति का दोनों दृष्टान्तों में अन्तर है, वह घटना का कार्य है, या कारण है या कम-से-कम कारण का आवश्यक अंश है।"

**प्रतीकात्मक उदाहरण**

व्यतिरेक-प्रणाली का प्रतीकात्मक उदाहरण इस प्रकार होगा :

अ इ उ → क ख ग (अन्वय-दृष्टान्त)
इ उ → ख ग (व्यतिरेक-दृष्टान्त)

∴ अ, क का कारण है अथवा उसके कारण का अंश है।

इस प्रतीकात्मक उदाहरण में क अनुसन्धानाधीन घटना है। उसके अन्वय-दृष्टान्त में अइउ पूर्ववर्ती परिस्थितियाँ हैं ख और ग अनुवर्ती परिस्थितियाँ हैं। व्यतिरेक-दृष्टान्त में पूर्ववर्ती परिस्थितियों में से केवल अ का और अनुवर्ती परिस्थितियों में से केवल क का अभाव है और शेष परिस्थितियाँ ज्यों की त्यों हैं। इसलिए, यह निष्कर्ष निकलता है कि अ, क का कारण है अर्थात् क को पैदा करने के लिए पर्याप्त है अथवा कारण का अंश है अर्थात् क को पैदा करने के लिए अनिवार्य है।

**वास्तविक उदाहरण**

**उदाहरण 1.** एक कलश में बिजली की घण्टी रखते हैं। बाहर से स्विच दबाने पर घण्टी बजती हुई सुनायी देती है। यह घण्टी की आवाज सुनायी देने का अन्वय-दृष्टान्त है। अब सब परिस्थितियों को ज्यों का त्यों रखते हैं और वायु-पम्प की सहायता से बर्तन से वायु बाहर निकाल देते हैं और उसमें निर्वात स्थिति पैदा कर देते हैं। अब स्विच को दबाते हैं, लेकिन आवाज सुनायी नहीं देती। यह घण्टी के बजने का व्यतिरेक-दृष्टान्त है। अन्वय और व्यतिरेक दोनों दृष्टान्तों की तुलना करने से पता चलता है कि इन दोनों में केवल वायु के होने और न होने का अन्तर है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि घण्टी के बजने के लिए वायु का होना आवश्यक है अर्थात् वायु के बिना आवाज पैदा नहीं हो सकती।

इस उदाहरण में हमने देखा कि अन्वय-दृष्टान्त की परिस्थिति में से ही एक परिस्थिति का लोप करने पर व्यतिरेक-दृष्टान्त बन जाता है। लेकिन व्यतिरेक-प्रणाली का रूप अन्वय और व्यतिरेक दोनों दृष्टातों को अलग-अलग पैदा करके भी बन सकता है। जैसे :

**उदाहरण 2.** दो एक से गमले लेते हैं और दोनों में एक-सी मिट्टी बराबर-बराबर भरते हैं। दोनों में एक-से गुलाब के पौधे लगाते हैं। दोनों में बराबर खाद और पानी देते हैं। उनमें से एक को सूर्य के प्रकाश में रखते हैं और दूसरे को बिल्कुल अन्धेरे में। कुछ दिनों के बाद हम देखते हैं कि अन्धेरे में रखे हुए गमले का पौधा मुर्झा गया है, जबकि प्रकाश में रखा पौधा स्वस्थ है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि गुलाब के पौधे के लिए सूर्य का प्रकाश आवश्यक है। यहाँ हम देखते हैं कि अन्वय और व्यतिरेक दृष्टान्त अलग-अलग तैयार हुए हैं।

**आधार-भूत मान्यता :** व्यतिरेक-प्रणाली कारण-सम्बन्धी निम्नलिखित मान्यता पर आधारित है :

घटना का लोप किये बिना उसकी जिस पूर्ववर्ती परिस्थिति का हटाना सम्भव न हो, वह परिस्थिति उस घटना का कारण है अथवा कारण का अंग है।

यह निरास का दूसरा नियम कहलाता है।

**व्यतिरेक-प्रणाली की सामान्य विशेषताएँ**

उपर्युक्त विवेचन से व्यतिरेक-प्रणाली की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं :

1. व्यतिरेक-प्रणाली में दो दृष्टान्तों की आवश्यकता होती है : एक अन्वय-दृष्टान्त और दूसरा व्यतिरेक-दृष्टान्त ।

2. व्यतिरेक-प्रणाली प्रयोग की प्रणाली है । इस प्रणाली की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि अन्वय और व्यतिरेक दृष्टान्तों में केवल एक बात का अन्तर हो । परिस्थितियों का इस प्रकार नियन्त्रण कि व्यतिरेक-दृष्टान्त में केवल एक ही परिस्थिति का लोप हो प्रयोग की अवस्था में ही सम्भव हो सकता है ।

**व्यतिरेक-प्रणाली की सफलता की शर्तें**

व्यतिरेक-प्रणाली की सफलता की निम्नलिखित दो आवश्यक शर्तें हैं :

1. अन्वय-दृष्टान्त की सब प्रासंगिक परिस्थितियाँ स्पष्ट हों । एक घटना की परिस्थिति में अनन्त बातें हो सकती हैं । उन सबको जानना और उन सबको नियन्त्रण में रखना असम्भव है । लेकिन कम-से-कम वे सब बातें जो घटना के लिए प्रासंगिक हैं, जिनका घटना पर प्रभाव सम्भव हो सकता है, वे तो स्पष्ट रूप से ध्यान में हों ।

2. दूसरी आवश्यक शर्त यह है कि अन्वय-दृष्टान्त और व्यतिरेक-दृष्टान्त में केवल एक ही परिस्थिति का अन्तर हो ।

**व्यतिरेक-प्रणाली की कठिनाइयाँ अथवा सीमाएँ**

1. व्यतिरेक-प्रणाली प्रासंगिक बातों का निश्चय करने के लिए पूर्वज्ञान अथवा अनुभव की अपेक्षा रखती है । समुचित पूर्व-अनुभव के बिना केवल व्यतिरेक-प्रणाली के आधार पर बिल्कुल अप्रासंगिक बात को कारण समझने की ग़लती हो सकती है । जैसे :

मदारी पहले खाली हाथ पर थोड़ी मिट्टी रखकर सबको दिखाता है । फिर मुट्ठी बन्द करके "घुचड़" कहता है और हाथ में रुपया दिखा देता है । व्यतिरेक-प्रणाली का अनुसरण करने पर "घुचड़" शब्द को ही मदारी की हथेली में रुपया आने का कारण मानना चाहिये । लेकिन ऐसा मानने पर हम काकतालीय-दोष में फंसते हैं । व्यतिरेक-प्रणाली का अनुसरण करने मात्र से एक घटना के कारण की खोज नहीं हो जाती । इसके साथ गांठ की अकल, अनुभव, सूझ-बूझ और प्रतिभा की भी आवश्यकता होती है ।

2. व्यतिरेक-प्रणाली की यह मांग है कि अन्वय और व्यतिरेक दृष्टान्त में केवल एक बात का अन्तर हो । केवल प्रेक्षण के आधार पर तो ऐसे दो दृष्टान्त मिलने असम्भव होते हैं, प्रयोग में भी सभी परिस्थितियों को नियन्त्रण में करना और केवल एक बात का अन्तर पैदा करना बहुत कठिन है । प्राणिशास्त्र और मनोविज्ञान में तो कम-से-कम यह बहुत ही कठिन बात है ।

3. इस प्रणाली से अधिक-से-अधिक यह निश्चित हो सकता है कि एक घटना के लिए कौन-सी परिस्थिति अनिवार्य है, इससे यह निश्चित नहीं हो सकता कि कौन-सी परिस्थिति अथवा परिस्थितियाँ घटना का कारण अर्थात् घटना के लिए पर्याप्त हैं।

**व्यतिरेक-प्रणाली का महत्त्व**

मिल ने व्यतिरेक-प्रणाली को कार्य-कारण सम्बन्ध की खोज तथा कार्य-कारण सम्बन्ध को पूर्ण रूप से प्रमाणित करने की प्रणाली बताया है। लेकिन वास्तव में केवल व्यतिरेक-प्रणाली का अनुसरण करने से न तो कार्य-कारण सम्बन्ध की खोज सम्भव है और न इसके द्वारा कार्य-कारण सम्बन्ध का असंदिग्ध प्रमाण ही प्रस्तुत हो सकता है। हम ऊपर स्पष्ट कर चुके हैं कि उपयुक्त अनुभव और सूझ-बूझ के बिना व्यतिरेक-प्रणाली का अनुसरण करने मात्र से अप्रासंगिक बातों को एक घटना का कारण समझने की ग़लती हो सकती है और प्रायः लोग ऐसी ग़लती करते हैं। इस प्रकार, यह कार्य-कारण सम्बन्ध की खोज की निश्चित प्रणाली नहीं है। इस प्रणाली से एक घटना के कार्य-कारण सम्बन्ध का और उस पर आधारित एक सामान्य प्रतिज्ञप्ति के सत्य होने का असंदिग्ध प्रमाण भी नहीं मिलता। सावधानी के साथ किये गये प्रयोग के निष्कर्ष के भी भविष्य में असत्य होने की सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता।

यद्यपि व्यतिरेक-प्रणाली न तो निश्चित रूप से कार्य-कारण सम्बन्ध के खोज की प्रणाली है और न यह पूर्ण प्रमाण की प्रणाली है, फिर भी वैज्ञानिक अनुसन्धान के क्षेत्र में तथा दैनिक जीवन के क्षेत्र में इसका अपनी सीमाओं के अन्दर महत्त्व है।

यह प्रणाली कार्य-कारण सम्बन्ध के बारे में बनायी गयी प्राक्कल्पनाओं की जांच करने में सहायक होती है।

इस प्रणाली का सबसे अधिक महत्त्व अप्रासंगिक बातों का निरास करने में है। यदि अ के बिना उ इ के होने पर क घटना नहीं घटती और उ इ के साथ अ के होने पर क घटना घटती है, तो इतना तो निश्चित है कि उ अथवा इ अथवा उ और इ दोनों मिलकर क का कारण नहीं हैं अर्थात् क के लिए पर्याप्त नहीं हैं।

सारांश यह है कि किसी भी प्रणाली का अनुसरण करने मात्र से कार्य-कारण सम्बन्ध की खोज नहीं होती और न कोई आगमनात्मक प्रणाली कार्य-कारण सम्बन्ध का असंदिग्ध प्रमाण प्रस्तुत कर सकती है। ये प्रणालियाँ कार्य-कारण सम्बन्ध के बारे में बनायी गयी प्राक्कल्पनाओं का सत्यापन करने में ही सहायक हो सकती हैं।

**अन्वय-प्रणाली और व्यतिरेक-प्रणाली का अन्तर**

अन्वय-प्रणाली और व्यतिरेक-प्रणाली का निम्नलिखित अन्तर है :

1. अन्वय-प्रणाली में सभी प्रेक्षित दृष्टान्त अन्वय-दृष्टान्त होते हैं, जबकि व्यतिरेक-प्रणाली में प्रेक्षित दृष्टान्तों में अन्वय-दृष्टान्त और व्यतिरेक-दृष्टान्त दोनों शामिल होते हैं।

2. अन्वय-प्रणाली में कम-से-कम दो दृष्टान्तों की आवश्यकता होती है, लेकिन इसमें जितने अधिक दृष्टान्त हों उतना ही अच्छा है। व्यतिरेक-प्रणाली में केवल दो दृष्टान्तों की आवश्यकता होती है।

3. अन्वय-प्रणाली में, सब प्रेक्षित दृष्टान्तों में केवल एक परिस्थिति का अन्वय होना आवश्यक है। व्यतिरेक-प्रणाली में अन्वय और व्यतिरेक दृष्टान्तों में केवल एक परिस्थिति का व्यतिरेक अर्थात् अन्तर होना आवश्यक है।

4. अन्वय-प्रणाली प्रधान रूप में प्रेक्षण की प्रणाली है और व्यतिरेक-प्रणाली प्रधान रूप में प्रयोग की प्रणाली है।

5. अन्वय-प्रणाली कारण-सम्बन्धी निम्नलिखित मान्यता पर आधारित है :

जिसके अभाव में एक घटना घटती है, वह घटना का कारण अथवा कारण का अंश नहीं है।

व्यतिरेक-प्रणाली कारण-सम्बन्धी निम्नलिखित मान्यता पर आधारित है :

जिसके होने पर एक घटना नहीं घटती वह घटना का कारण अर्थात् पर्याप्त हेतु नहीं है।

ये दोनों प्रणालियाँ यह तो स्थापित करती हैं कि घटना का कारण क्या नहीं है, लेकिन इनमें से कोई भी निश्चित रूप से यह स्थापित नहीं करती कि घटना का कारण क्या है।

## अभ्यास

निम्नलिखित युक्तियों में किस प्रणाली का प्रयोग हुआ है। युक्तियों का आलोचनात्मक विवेचन करें :

(1) एक दम्पती सुख-चैन से रह रहा है। उनके यहाँ पति की माँ आ जाती है। पति और पत्नी में कलह होने लगता है। हम समझते हैं कि बुढ़िया का आना पति-पत्नी के झगड़े का कारण है।

(2) राम और श्याम दोनों जुड़वा भाई हैं, लेकिन भिन्न-भिन्न वातावरण में इनकी परवरिश होती है। इनमें से राम बलवान् और साहसी बनता है, जबकि श्याम कमज़ोर और डरपोक। हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि राम और श्याम के व्यक्तित्व की विशेषताओं की भिन्नता का कारण उनका भिन्न-भिन्न वातावरण है।

(3) नीला लिटमस-पेपर एसिड में डालने पर लाल हो जाता है, लेकिन पानी में डालने पर लाल नहीं होता। इस प्रकार, एसिड में डालना नीले लिटमस को लाल करने का कारण है।

(4) एक भूमि तल खुश्क है और उसका तापमान उतना ही है जितना कि वहाँ पर की वायु का। भूमि तल का तापमान वहाँ पर हवा के तापमान से भी कम हो जाता है और भूमि तल पर नमी आ जाती है। इसलिए, भूमि तल के तापमान का वहाँ की वायु के तापमान से कम होना उस पर नमी का कारण है।

## 6. अन्वय-व्यतिरेक संयुक्त प्रणाली

**अधिनियम और विशेषताएँ**

हम यह देख चुके हैं कि अन्वय-प्रणाली और व्यतिरेक-प्रणाली की शर्तों को वास्तविक अनुसन्धान की अवस्थाओं में पूरा करना कठिन है। अन्वय-प्रणाली में सब प्रेक्षित दृष्टान्तों की केवल एक परिस्थिति को छोड़कर शेष सब परिस्थितियाँ भिन्न होनी चाहियें। व्यतिरेक-प्रणाली में सब प्रेक्षित दृष्टान्तों की केवल एक परिस्थिति को छोड़ कर सब परिस्थितियाँ समान होनी चाहियें। लेकिन अनुसन्धान के क्षेत्रों में घटनाओं की परिस्थितियाँ काफ़ी जटिल होती हैं और उनमें से किसी एक परिस्थिति को अलग करना अति कठिन होता है। मिल ने इस कठिनाई को ध्यान में रखकर तीसरी प्रणाली प्रस्तुत की। यह प्रणाली अन्वय-प्रणाली और व्यतिरेक-प्रणाली की संयुक्त प्रणाली है। इसे अन्वय-व्यतिरेक प्रणाली कहते हैं। मिल ने अन्वय-व्यतिरेक प्रणाली का अधिनियम इस प्रकार प्रकट किया है :

"यदि ऐसे दो या अधिक दृष्टान्तों में जिनमें एक घटना घटती है, केवल एक परिस्थिति समान हो, और ऐसे दो या अधिक दृष्टान्तों में, जिनमें वह घटना नहीं घटती केवल इस एक परिस्थिति के अभाव को छोड़कर अन्य और कोई परिस्थिति समान न हो, तो वह एक परिस्थिति जिसके सम्बन्ध में दृष्टान्तों के दोनों कुलय (sets) एक-दूसरे से भिन्न हैं प्रस्तुत घटना का कार्य है, कारण है अथवा कारण का अंश है।"

इस अधिनियम से अन्वय-व्यतिरेक प्रणाली की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं :-

1. इस प्रणाली में एक अन्वय-दृष्टान्तों (positive instances) का कुलय होता है और दूसरा व्यतिरेक-दृष्टान्तों (negative instances) का कुलय होता है।

2. अन्वय-दृष्टान्तों में घटना और उसकी एक परिस्थिति का अन्वय (साथ-साथ होना) होता है। व्यतिरेक-दृष्टान्तों में उसी परिस्थिति के अभाव और उसी घटना के अभाव का अन्वय होता है। इस प्रकार इस प्रणाली में द्विधा अन्वय (double agreement) होता है, एक घटना और परिस्थिति का अन्वय और दूसरा घटना के अभाव और परिस्थिति के अभाव का अन्वय।

3. अन्वय-दृष्टान्तों के कुलय को एक दृष्टान्त (अन्वय-दृष्टान्त) मानकर और व्यतिरेक-दृष्टान्तों के कुलय को एक दूसरा दृष्टान्त (व्यतिरेक-दृष्टान्त) मानकर और

उनकी तुलना करने पर व्यतिरेक-प्रणाली बनती है। इस प्रकार इसमें अन्वय-प्रणाली और व्यतिरेक प्रणाली दोनों का समावेश होता है।

यह प्रणाली प्रधान रूप में प्रेक्षण की प्रणाली है। यह प्रयोग द्वारा भी लागू हो सकती है।

5. इस प्रणाली की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि अन्वय-दृष्टान्त और व्यतिरेक-दृष्टान्त एक ही क्षेत्र से हों।

**प्रतीकात्मक आकार :** अन्वय-व्यतिरेक प्रणाली का प्रतीकात्मक आकार निम्नलिखित ढंग से व्यक्त किया जा सकता है :

अन्वय-दृष्टान्तों का कुलय च
- अ आ इ उ → क ख ग घ
- आ य र ल → प ख फ ब
- ए ओ आ च → ख त थ द

व्यतिरेक-दृष्टान्तों का कुलय छ
- अ इ उ → क ग घ
- य र ल → प फ ब
- ए ओ च → त थ द

∴ आ ख का कारण है या ख के कारण का अंश है।

यहाँ कुलय च में आ और ख का अन्वय है और कुलय छ में आ के अभाव और ख के अभाव का अन्वय है। लेकिन कुलय च और कुलय छ के दृष्टान्तों की तुलना से पता चलता है कि आ के होने पर ख है और शेष परिस्थितियों के ज्यों का त्यों होने पर लेकिन आ के न होने पर ख नहीं है। यहाँ व्यतिरेक-प्रणाली का प्रकार भी बनता है। इस प्रकार, यहाँ निष्कर्ष अन्वय-व्यतिरेक प्रणाली से निकलता है।

**वास्तविक उदाहरण**

1. जहाँ-जहाँ धूआँ देखते हैं, वहाँ आग भी देखते हैं। जहाँ आग नहीं देखते वहाँ-वहाँ धूआँ भी नहीं देखते। इसलिए, आग धूएँ का कारण है अथवा कम-से-कम धूएँ के कारण का एक अंश है।

2. विविध प्रकार के वे कीट जिनकी आँखों की रचना जटिल होती है (compound eyes) दूरी तक देख सकते हैं और वे कीट जिनकी आँखों के स्थान पर एक काला बिन्दु-सा (black spot) होता है, दूर की वस्तुएँ नहीं देख सकते। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जटिल रचना वाली आँखों का होना दूर की वस्तुओं को देखने के लिए आवश्यक है :

3. यह जानने के लिए कि प्रतिष्ठित व्यक्तियों के मत से लोगों के विचार किस प्रकार प्रभावित होते हैं एक प्रयोगात्मक अध्ययन किया गया। कुछ निश्चित व्यक्ति चुने गये और उनमें से प्रत्येक से यह मालूम कर लिया गया कि कुछ सुप्रसिद्ध व्यक्तियों में से वह किस को कितना पसन्द करता है। फिर इन व्यक्तियों को तीन वर्गों,—अ वर्ग,

ब वर्ग और स वर्ग में बाँट दिया गया। इन तीनों वर्गों के लोगों को तीस कथन दिये गये और उन कथनों के बारे में उनका मत जानना चाहा। वर्ग अ के व्यक्तियों को यह बताया गया कि वे कथन उनके प्रिय नेताओं के हैं। वर्ग ब के व्यक्तियों को बताया गया कि वे कथन उन नेताओं के हैं जिनको वे पसन्द नहीं करते। वर्ग स के व्यक्तियों को कुछ नहीं बताया गया। इस अध्ययन से पता चला कि वर्ग अ के व्यक्तियों ने उन कथनों के पक्ष में, वर्ग ब के व्यक्तियों ने कथनों के विपक्ष में और वर्ग स के व्यक्तियों में से कुछ ने पक्ष में और कुछ ने विपक्ष में मत दिये। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्रतिष्ठित व्यक्तियों के मतों से लोगों के मत प्रभावित होते हैं।[1]

## संयुक्त-प्रणाली का महत्त्व और इसकी सीमाएँ

अवन्य-प्रणाली और व्यतिरेक-प्रणाली की तुलना में अन्वय-व्यतिरेक प्रणाली का अपना विशिष्ट महत्त्व है।

1. केवल अन्वय-प्रणाली में अन्वय-दृष्टान्त ही लिए जाते हैं, इसलिए इसमें आकस्मिक परिस्थिति को भी अनिवार्य परिस्थिति समझने की ग़लती हो सकती है। अन्वय-प्रणाली की इस कमी को कुछ सीमा तक अन्वय-व्यतिरेक प्रणाली में अन्वय और व्यतिरेक-दृष्टान्तों के तुलनात्मक अध्ययन से दूर किया जा सकता है।

2. जिन परिस्थितियों में व्यतिरेक-प्रणाली लागू नहीं हो सकती उनमें से बहुत-सी परिस्थितियों में अन्वय-व्यतिरेक प्रणाली लागू हो सकती है। ग़रीबी और अपराध में कार्य-कारण सम्बन्ध जानने के लिए व्यतिरेक-प्रणाली का प्रयोग नहीं हो सकता। लेकिन, इसके लिए अन्वय-व्यतिरेक-प्रणाली का प्रयोग हो सकता है।

3. व्यतिरेक-प्रणाली में केवल एक अन्वय-दृष्टान्त और एक व्यतिरेक-दृष्टान्त होता है। इसलिए, इसमें भी अप्रासंगिक बात को प्रासंगिक समझने की ग़लती हो सकती है। क्योंकि अन्वय-व्यतिरेक प्रणाली में प्रेक्षण द्वारा अथवा जहाँ सम्भव हो सके वहाँ प्रयोग द्वारा भी कई अन्वय-दृष्टान्त और कई व्यतिरेक-दृष्टान्त इकट्ठे किये जाते हैं, इसलिए, इसमें व्यतिरेक-प्रणाली की त्रुटियों को कम किया जा सकता है।

4. यह प्रणाली विशेष रूप से उन अध्ययनों में उपयोगी होती है जिनमें विभिन्न वर्गों के बहुत-से व्यक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। समाज-शास्त्र तथा समाज-मनोविज्ञान में यह प्रणाली विशेष रूप से उपयोगी है।

अन्त में हमें इस प्रणाली की सीमाएँ भी स्वीकार करनी चाहियें। जिस प्रकार केवल अन्वय-प्रणाली अथवा केवल व्यतिरेक-प्रणाली कार्य-कारण सम्बन्ध की खोज और उपपत्ति की निश्चित प्रणालियाँ नहीं हैं, उसी प्रकार यह प्रणाली भी न तो निश्चित रूप से कार्य-कारण सम्बन्ध की खोज कर सकती है और न कार्य-कारण सम्बन्ध का पूर्ण प्रमाण ही प्रस्तुत कर सकती है। अन्वय-प्रणाली और व्यतिरेक-प्रणाली दोनों

---

1. Boring Langefield and Weld: Foundations of Psychology.

की त्रुटियाँ अन्वय-व्यतिरेक प्रणाली में भी रहती हैं, यद्यपि इसके बहुत व्यापक प्रयोग से ये त्रुटियाँ कम हो जाती हैं। यह प्रणाली भी अन्य प्रणालियों की तरह निरास की विधि है।

## 7. सह-परिवर्तन प्रणाली
## (Method of Concomitant Variations)

अन्वय-प्रणाली, व्यतिरेक-प्रणाली और अन्वय-व्यतिरेक प्रणाली का प्रयोग उन्हीं क्षेत्रों में सम्भव है, जिनमें एक घटना के विविध परिस्थितियों वाले दृष्टान्त उपलब्ध होते हों अथवा जिनमें घटना की एक परिस्थिति को इच्छानुसार हटाया या जोड़ा जा सकता हो। लेकिन प्रकृति में ऐसे क्षेत्र भी हैं जहाँ घटना पर प्रभाव डालने वाले तत्त्वों को पूर्णतः पृथक् नहीं किया जा सकता। उन परिस्थितियों में इस बात का निश्चय कैसे करें कि एक तथ्य दूसरे तथ्य से कार्य-कारण सम्बन्ध रखता है या नहीं? इस प्रश्न के सन्दर्भ में मिल ने चौथी प्रणाली प्रस्तुत की है। यह प्रणाली सह-परिवर्तन प्रणाली के नाम से जानी जाती है।

**अधिनियम :** सह-परिवर्तन प्रणाली का अधिनियम इस प्रकार है :

"यदि एक घटना में एक विशेष प्रकार का परिवर्तन होने के साथ-साथ दूसरी घटना में भी एक निश्चित परिवर्तन होता हो, तो पहली घटना दूसरी घटना का कार्य है, कारण है अथवा उनमें कोई कारण-सम्बन्ध है।"

सार यह है कि जिन दो घटनाओं में किसी प्रकार का परिवर्तन साथ-साथ होता हो तो उनमें कारण-सम्बन्ध है। दो घटनाओं में साथ-साथ होने वाले परिवर्तन को सहचारी परिवर्तन अथवा सह-परिवर्तन (con-comitant variation) कहते हैं। सह-परिवर्तन एक ही दिशा में हो सकता है, और विपरीत दिशा में भी। यदि एक घटना में वृद्धि होने के साथ-साथ दूसरी घटना में भी वृद्धि होती है तो यह सह-परिवर्तन एक ही दिशा में परिवर्तन है। एक ही दिशा में होने वाले सह-परिवर्तन को अनुलोम सह-परिवर्तन कहते हैं। यदि घटना में वृद्धि होने पर दूसरी घटना में ह्रास होता है, तो यह सह-परिवर्तन विलोम सह-परिवर्तन है; यह विपरीत दिशा में सह-परिवर्तन है।

**मान्यता :** सह-परिवर्तन की प्रणाली कारण-सम्बन्धी निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है :

"जब पूर्ववर्ती और अनुवर्ती दो घटनाओं में एक संख्यात्मक अनुपात में अनुलोम या प्रतिलोम सहपरिवर्तन होते हों तो हम यह अनुमान कर सकते हैं कि उनमें कारण-सम्बन्ध है।"

**अनुलोम सह-परिवर्तन का प्रतीकात्मक उदाहरण**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| अ | आ | इ | क | ख | ग |
| अ2 | आ | इ | क2 | ख | ग |
| अ3 | आ | इ | क3 | ख | ग |
| अ4 | आ | इ | क4 | ख | ग |

∴ अ और क में कारणात्मक सम्बन्ध है।

**वास्तविक उदाहरण**

1. एक किसान एक-सी भूमि वाले तीन खेतों में भिन्न-भिन्न मात्रा में खाद डालता है, तीनों में एक प्रकार की फसल उगाता है। पानी आदि की व्यवस्था भी तीनों में समान रखता है। लेकिन, वह देखता है कि जिस खेत में अधिक खाद डाली गयी उसमें अधिक अन्न पैदा हुआ। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि खाद और पैदावार का कारणात्मक सम्वन्ध है।

2. उत्तेजक की तीव्रता और संवेदना की तीव्रता में कारणात्मक सम्बन्ध भी इसी विधि से स्थापित होता है। हम चाय में आधा चम्मच चीनी डालते हैं, चाय कुछ मीठी लगती है। चाय में आधा चम्मच और चीनी डालते हैं, चाय और अधिक मीठी लगती है। इस प्रकार चाय में चीनी की मात्रा और उसके मिठास की मात्रा का कारणात्मक सम्बन्ध है।

3. एक व्यापारी देखता है कि वह अपने माल का विज्ञापन जितना अधिक करता है, उतनी ही उसके माल की बिक्री अधिक होती है। इस प्रकार विज्ञापन और बिक्री में कारणात्मक सम्बन्ध है।

4. हवा का दबाव स्थिर रखकर उसका ताप ज्यों-ज्यों बढ़ाया जाता है, त्यों-त्यों उसका फैलाव अधिक होता है। इस प्रकार, हवा के ताप और उसके फैलाव में कारणात्मक सम्बन्ध है।

5. ज्यों-ज्यों ताप बढ़ता है, त्यों-त्यों थर्मामीटर का पारा फैलता है। इस प्रकार, ताप पारे के फैलने का कारण है।

**प्रतिलोम सह-परिवर्तन का प्रतीकात्मक उदाहरण**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| अ | आ | इ | क | ख | ग |
| अ2 | आ | इ | क$\frac{1}{2}$ | ख | ग |
| अ3 | आ | इ | क$\frac{1}{3}$ | ख | ग |
| अ4 | आ | इ | क$\frac{1}{4}$ | ख | ग |

∴ अ और क का कारण सम्बन्ध है।

**वास्तविक उदाहरण**

1. हवा का ताप स्थिर रखकर ज्यों-ज्यों उसका दबाव बढ़ता है, त्यों-त्यों उसका आयतन कम होता है। इसलिए, हवा के दबाव और उसके आयतन का कारणात्मक सम्बन्ध है।

2. यदि एक माल की माँग स्थिर रहती है तो उसकी आपूर्ति में वृद्धि के साथ-साथ उसकी कीमत कम होती जाती है। इस प्रकार माल की आपूर्ति और उसकी कीमत में कारणात्मक सम्बन्ध है।

**महत्त्व**

अन्य प्रणालियों की तुलना में इस प्रणाली का अपना विशिष्ट महत्त्व है।

1. इस प्रणाली से स्थायी कारणों का महत्त्व प्रकाशित होता है। गुरुत्वाकर्षण, ताप, घर्षण, वायु-मण्डल का दबाव आदि ऐसी अवस्थाएँ हैं जो प्रत्येक भौतिक घटना के सम्बन्ध में वर्तमान रहती हैं। इन्हें कम या अधिक तो किया जा सकता है, लेकिन इनका पूर्ण लोप नहीं किया जा सकता। सह-परिवर्तन की विधि से हम इनका कारणात्मक महत्त्व स्थापित कर सकते हैं। उदाहरण के रूप में एक पहिये में घर्षण को ज्यों-ज्यों कम करते हैं (स्नेहन आदि द्वारा) त्यों-त्यों उसकी गति बढ़ती है। इस प्रकार, घर्षण के कम होने और गति के बढ़ने का कारणात्मक सम्बन्ध स्थापित होता है। हम घर्षण का पूर्णतः विलोप नहीं कर सकते। इसलिए, घर्षण और गति का कारणात्मक सम्बन्ध स्थापित करने में न तो व्यतिरेक-प्रणाली उपयोगी होती है और न अन्वय-प्रणाली।

2. जहाँ अन्वय और व्यतिरेक प्रणालियाँ लागू हो सकती हैं वहाँ कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित करने के लिए सह-परिवर्तन प्रणाली से साक्ष्य में वृद्धि होती है। उदाहरण के रूप में, जड़वामनता रोग को लें। यह रोग विकास की अवस्था में होता है। इसमें व्यक्ति का शारीरिक और मानसिक विकास रुक जाता है। जिन व्यक्तियों में यह रोग देखा गया है उनमें थाइरॉक्सिन (thyroxin) की कमी देखी गयी है। इस प्रकार अन्वय-प्रणाली से यह संकेत मिलता है कि "थाइरॉक्सिन" की कमी जड़वामनता रोग का कारण है। जड़वामन व्यक्तियों को थाइरॉक्सिन के टीके दिये गये तो उनकी स्थिति में सुधार हुआ। यहाँ व्यतिरेक-प्रणाली लागू होती है। थाइरॉक्सिन के टीके की मात्रा के घटाने और बढ़ाने से भी रोग के सुधार में कमी और वृद्धि देखने में आती है। इस प्रकार यहाँ सह-परिवर्तन प्रणाली से और अधिक साक्ष्य उपलब्ध हुआ। यहाँ हम थाइरॉक्सिन की कमी और जड़वामनता रोग में कारणात्मक सम्बन्ध स्थापित करने में तीनों प्रणालियों का प्रयोग देखते हैं।

3. जहाँ कारण और कार्य के परिवर्तन की मात्रा को ठीक-ठीक मापा जा सकता है, वहाँ इस प्रणाली का विशिष्ट महत्त्व होता है। मनोविज्ञान में वेबर-फेक्नर नियम इस प्रणाली के महत्त्व को प्रदर्शित करता है। संवेदनाओं की तीव्रता के सम्बन्ध

में एक प्रश्न यह है कि संवेदना की तीव्रता में कम-से-कम वृद्धि करने के लिए उत्तेजक की मात्रा में कितनी वृद्धि की जाये ? इस प्रश्न का समाधान ढूंढ़ने में सह-परिवर्तन की प्रणाली का प्रयोग हुआ है। इस प्रणाली के आधार पर यह नियम बना है कि एक संवेदना में वृद्धि करने के लिए उसके उत्तेजक की एक निश्चित भिन्न की मात्रा से उसमें वृद्धि करनी चाहिये। जैसे, भार की संवेदना में कम-से-कम वृद्धि करने के लिए उसके उत्तेजक के 1/10 भाग से उसमें वृद्धि करनी चाहिये।

**सीमाएँ**

सह-परिवर्तन की प्रणाली की सीमाएँ हैं।

1. यह प्रणाली साधारण सूझ-बूझ और अनुभव की अपेक्षा रखती है। अन्धाधुन्ध इस प्रणाली का अनुसरण करने पर बेतुके निष्कर्ष निकल सकते हैं। मान लीजिये, पिछले पाँच वर्षों से देहली के देवदत्त के कारोबार में निरन्तर वृद्धि हो रही है और मद्रास के किसी सुब्रह्मण्यम के कारोबार में निरन्तर ह्रास या वृद्धि हो रही है, तो क्या हम कह सकते हैं कि सह-परिवर्तन की प्रणाली के अनुसार इनमें कारणात्मक सम्बन्ध है ? सारांश यह है कि सह-परिवर्तन की प्रणाली अन्य प्रणालियों की तरह अनुभव और सूझ-बूझ की अपेक्षा रखती है।

2. सह-परिवर्तन की प्रणाली एक विशेष सीमा के बाहर लागू नहीं होती। उदाहरण के रूप में सामान्य रूप से ऐसा कहना ठीक है कि गर्म करने पर पानी फैलता है और ठण्डा किया जाने पर सिकुड़ता है। सह-परिवर्तन का यह नियम 212° फारेनहाइट और 390° फारेनहाइट के बीच लागू होता है। लेकिन 390° फारेनहाइट से कम ताप होने पर पानी सिकुड़ने की अपेक्षा फैलने लगता है। वहाँ सह-परिवर्तन की नियतता नहीं दिखायी देती।

3. सह-परिवर्तन की प्रणाली गुणात्मक परिवर्तनों के सम्बन्ध में लागू नहीं होती। यह परिमाणात्मक सह-परिवर्तनों के सम्बन्ध में ही लागू होती है।

**सह-परिवर्तन की प्रणाली खोज और उपपत्ति की प्रणाली के रूप में**

अन्य प्रणालियों की तरह सह-परिवर्तन की प्रणाली भी न तो खोज की प्रणाली कही जा सकती है और न उपपत्ति की प्रणाली ही।

यह खोज की प्रणाली नहीं कही जा सकती क्योंकि इसे लागू करने से पहले अनुसन्धानकर्ता को प्राक्कल्पना बनानी पड़ती है और वह ठीक-ठीक प्राक्कल्पना बना पाता है या नहीं यह उसके अपने अनुभव, सूझ-बूझ और प्रतिभा पर निर्भर करता है, इस प्रणाली के प्रयोग पर नहीं। हम देखते हैं कि पढ़े-लिखों की बेकारी प्रति वर्ष बढ़ती जा रही है। इसे देश में होने वाले किस परिवर्तन से जोड़ा जा सकता है ? इसके सम्बन्ध में अनुभव और प्रतिभा के आधार पर पहले प्राक्कल्पना ही बनायी जा सकती है और इस प्राक्कल्पना की जाँच करने में सह-परिवर्तन की प्रणाली सहायक हो सकती है।

यह प्रणाली कार्य-कारण सम्बन्ध को भी सिद्ध नहीं कर सकती। दो घटनाओं में कार्य-कारण सम्बन्ध सिद्ध करने का अर्थ यह सिद्ध करना है कि उनमें से एक का दूसरे के बिना होना असम्भव है। कोई भी आगमनात्मक प्रणाली यह स्थापित करने का दावा नहीं कर सकती कि प्रेक्षित दृष्टान्तों में जो बात लागू होती है, वह अप्रेक्षित दृष्टान्तों में अवश्य ही लागू होगी। सभी आगमनात्मक प्रणालियों के निष्कर्ष केवल सम्भाव्य होते हैं।

"सह-परिवर्तन की प्रणाली को, इसलिए, न तो खोज की और न उपपत्ति की प्रणाली माना जा सकता है। इसका कुछ महत्त्व तो कारणात्मक सम्बन्धों की खोज की दिशा सुझाने में है और कारण-सम्बन्धी प्राक्कल्पनाओं के समर्थन में सहायता करने में है। मगर इसका प्रमुख महत्त्व अप्रासंगिक परिस्थितियों का निरास करने में है।"[1]

## 8. अवशेष-प्रणाली

**अधिनियम :** अन्तिम प्रणाली अवशेष-प्रणाली है। इसका अधिनियम इस प्रकार है :

"एक घटना के जिन भागों के बारे में पूर्व आगमनों द्वारा यह ज्ञात है कि वे किन-किन पूर्ववर्ती परिस्थितियों के कार्य हैं, उन्हें निकाल देने पर घटना का जो भाग अवशिष्ट रहे वह अवशिष्ट अनुवर्ती परिस्थितियों का कार्य है।"

इस प्रणाली में दो प्रक्रियाएँ स्पष्ट रूप से शामिल हैं—पहली प्रक्रिया विश्लेषण की है। इस प्रणाली को लागू करने के लिए घटना के विभिन्न भागों का और परिस्थिति के विभिन्न तत्त्वों का स्पष्ट विश्लेषण किया जाता है। दूसरी प्रक्रिया निरास की प्रक्रिया है। निरास का अर्थ यह निश्चित करना है कि प्रस्तुत घटना अथवा उसके एक विशिष्ट भाग के लिए कौन-सी परिस्थितियाँ कारण नहीं हैं।

**मान्यता :** निरास का आधार कारण-सम्बन्धी निम्नलिखित मान्यता है :

जो एक घटना का कारण है, वह दूसरी घटना का कारण नहीं हो सकता।

**प्रतीकात्मक उदाहरण**

अ आ इ क ख ग  
अ, ख का कारण है।  
इ, ग का कारण है।  
∴ आ, ख का कारण है।

हम क, ख, ग से पहले अ-आ इ देखते हैं। हमें पहले से मालूम है कि ख, अ का कार्य है और ग, इ का कार्य है। इसलिए, अ और इ, क के कारण नहीं हो सकते। लेकिन क का कारण तो अवश्य होना चाहिये। आ ही अवशेष है, इसलिए, आ, क का कारण है।

1. Cohen & Nagel: An Introduction to Logic and scientiful Method, p. 263.

**अवशेष-प्रणाली की दो अवस्थाएँ :** अवशेष-प्रणाली की दो अवस्थाओं में हमें अन्तर करना चाहिये :

एक अवस्था तो वह है जिसमें घटना की अवशिष्ट-परिस्थिति ज्ञात होती है, लेकिन पहले से यह ज्ञात नहीं होता कि इसका कार्य क्या है अर्थात् यह घटना के किस भाग का कारण है। ऐसी अवस्था में अवशेष-प्रणाली द्वारा "अवशिष्ट परिस्थिति" और घटना के "अवशिष्ट-भाग" में कारण-सम्बन्ध निश्चित किया जाता है। जैसे :

**उदाहरण 1.** मान लीजिए एक खाली ट्रक का वजन ज्ञात है। उस ट्रक में कोयला भर कर उसका वज़न किया जाता है। भरे हुए ट्रक के वज़न में से खाली ट्रक का वज़न घटाने पर जो वज़न शेष रहेगा वह उसमें भरे हुए कोयले का वजन होगा। इस उदाहरण में, हमें पहले से खाली ट्रक का वजन ज्ञात है और कोयले से भरे ट्रक का वज़न ज्ञात है। लेकिन कोयले का वज़न ज्ञात नहीं है। भरे ट्रक के वज़न से ट्रक का वज़न निकालकर कोयले का वज़न ज्ञात किया जाता है।

अवशेष-प्रणाली के प्रयोग की दूसरी अवस्था वह है जिसमें अनुसन्धानाधीन घटना पर प्रभाव डालने वाली अवशिष्ट परिस्थिति ज्ञात नहीं होती। इस प्रणाली द्वारा ऐसी अवशिष्ट-परिस्थिति का संकेत मिलता है। जैसे :

**उदाहरण 2.** वास्तविक वायु से आक्सीजन, नमी आदि तत्त्वों को पृथक् करके जो नाइट्रोजन गैस प्राप्त होती थी वह रसायनिक प्रक्रिया द्वारा तैयार की गयी नाइट्रोजन गैस से अधिक भारी होती थी। इससे यह संकेत मिला कि वास्तविक वायु से प्राप्त नाइट्रोजन विशुद्ध नाइट्रोजन नहीं है, उसमें कोई और गैस मिली हुई है। बाद के अनुसन्धानों से यह पता चला कि यह अन्य गैस आर्गन गैस है।

इस उदाहरण में हम देखते हैं कि अवशेष-प्रणाली एक घटना के अज्ञात कारण की ओर संकेत करती है और इस प्रकार उसे खोजने में सहायक होती है, लेकिन केवल इस प्रणाली से कारण की खोज नहीं हो जाती।

**उदाहरण 3.** अज्ञात तथ्य की खोज में अवशेष-प्रणाली के सहायक होने का सबसे प्रसिद्ध उदाहरण **ऐडम्स और ले वेरियर** (Le Verrier) द्वारा 1846 में **नेप्चून** ग्रह की खोज समझा जाता है। लगभग 1804 से ही ज्योतिर्वैज्ञानिकों को **यूरेनस** ग्रह का मार्ग समस्या बना हुआ था। उस समय वैज्ञानिकों ने यह देखा कि ज्ञात ग्रहों के गुरुत्वाकर्षण के हिसाब से यूरेनस का जो मार्ग होना चाहिये, उसका वास्तविक मार्ग उससे कुछ हटा हुआ है। तभी से वैज्ञानिकों के मन में यह बात आने लगी थी कि शायद कोई अन्य ग्रह यूरेनस पर प्रभाव डाल रहा है। बाद में **ऐडम्स और ले वेरियर** इस ग्रह को, जिसका नाम **नेप्चून** रखा गया, खोजने में सफल हो गये।

इस उदाहरण के सम्बन्ध में हमें यह नहीं सोचना चाहिये कि नेप्चून ग्रह की खोज अवशेष-प्रणाली से हुई। अवशेष-प्रणाली नेप्चून ग्रह की खोज तक वैज्ञानिकों को नहीं ले जा सकी थी। अवशेष-प्रणाली वैज्ञानिकों को केवल इस विचार तक ले जा सकी थी

कि कोई एक ग्रह और है जो यूरेनस पर प्रभाव डाल रहा है। वह ग्रह कहाँ है, उसकी संहति और दूरी कितनी है, इन प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए अवशेष-प्रणाली समर्थ नहीं थी और न ही इनकी खोज इस प्रणाली से हुई।

**महत्त्व**

अवशेष-प्रणाली के महत्त्व के सम्बन्ध में दो बातें प्रमुख हैं।

1. जहाँ हम अवशेष-प्रणाली से कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित करने में सफल होते हैं, वहाँ यह प्रणाली आगमनात्मक नहीं होती अपितु निगमनात्मक होती है। जब हम, घी से भरे हुए पीपे के वज़न से खाली पीपे का वज़न निकालकर घी का वज़न निकालते हैं, तब हम निगमनात्मक प्रणाली का अनुसरण करते हैं। **मैलोन** के शब्दों में, "जहाँ तक "अवशेष-प्रणाली" को एक "प्रणाली" कहा जा सकता है, वहाँ तक यह निगमनात्मक है, आगमनात्मक नहीं।"[1]

2. जिन उदाहरणों में, जैसे नेप्चून की खोज के उदाहरण में, इसे खोज की प्रणाली बताया जाता है, वहाँ यह खोज की "प्रणाली" ही नहीं है। इन उदाहरणों में यह प्रणाली खोज का कोई मार्ग निर्धारित नहीं करती, केवल उन परिस्थितियों की ओर ध्यान आकर्षित करती है, जिनके सम्बन्ध में खोज की अत्यधिक आवश्यकता है।[2]

उपर्युक्त विवेचन का सार यह है कि खोज की प्रणाली के रूप में **अवशेष-प्रणाली** का महत्त्व अप्रासंगिक तत्त्वों का निरास करने में है। इससे वास्तविक कारण की खोज में सफलता नहीं मिलती, अपितु जो कारण नहीं है, उनका निरास करने में सफलता मिलती है। इस प्रकार इस प्रणाली को खोज की प्रणाली नहीं कहा जा सकता है। कहीं-कहीं यह प्रणाली कार्य-कारण सम्बन्ध सिद्ध करने में, जैसे पीपे में घी के वज़न का ठीक-ठीक निर्धारण करने में, सफल होती है। लेकिन वहाँ यह "आगमनात्मक" नहीं है बल्कि निगमनात्मक है।

इस प्रकार, इस प्रणाली के सम्बन्ध में भी **मिल** का यह दावा ठीक नहीं उतरता कि अवशेष-प्रणाली आगमनात्मक है और यह कार्य-कारण सम्बन्ध की खोज और कार्य-कारण सम्बन्ध को सिद्ध करने की प्रणाली है।

## 9. मिल की प्रणालियों के महत्त्व पर टिप्पणी

**बेकन** ने आगमनात्मक तर्क को निगमनात्मक तर्क के समान प्रामाणिक अर्थात् असंदिग्ध बनाने की अभिलाषा प्रकट की थी और इसके सम्बन्ध में उसने कुछ प्रयास भी किया था। उसके विचार में आगमनात्मक-प्रणाली इतनी निश्चित और स्पष्ट होनी चाहिये, कि उसका अनुसरण करने वाला साधारण-बुद्धि का व्यक्ति भी नयी खोजें कर सके। उसने यह दावा भी किया कि वह ऐसी प्रणाली प्रस्तुत करने में सफल हुआ है।

1. Mellon. "Elements of Modern Logic" p. 238.
2. Mellon. वही पृ० 239.

बेकन का अनुसरण करते हुए मिल ने पाँच प्रणालियाँ प्रस्तुत कीं और यह दावा किया कि ये प्रणालियाँ वैज्ञानिक अन्वेषण की प्रणालियाँ हैं अर्थात् वैज्ञानिक अन्वेषण इन्हीं प्रणालियों से होता है और हो सकता है। मिल ने इनके सम्बन्ध में यह दावा भी प्रस्तुत किया कि ये प्रणालियाँ कार्य-कारण सम्बन्ध को असंदिग्ध रूप से सिद्ध करती हैं और इनके द्वारा केवल कुछ दृष्टान्तों के अध्ययन के आधार पर कार्य-कारण सम्बन्ध सिद्ध करके असंदिग्ध सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्तियाँ स्थापित हो सकती हैं। जिस प्रकार निगमनात्मक प्रणालियाँ एक सत्य सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्ति से अंशव्यापी प्रतिज्ञप्ति निकालकर अंशव्यापी प्रतिज्ञप्ति की सत्यता का असंदिग्ध प्रमाण प्रस्तुत करती हैं, उसी प्रकार ये आगमनात्मक प्रणालियाँ, मिल के अनुसार, अंशव्यापी प्रतिज्ञप्तियों की सत्यता के आधार पर अर्थात् कुछ दृष्टान्तों में कार्य-कारण सम्बन्ध सिद्ध करके, सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्तियों की सत्यता सिद्ध करती हैं। इस प्रकार मिल ने इन प्रणालियों को वैज्ञानिक अन्वेषण अर्थात् कारणात्मक सम्बन्ध के अन्वेषण और कारणात्मक सम्बन्ध को सिद्ध करने की प्रणालियाँ कहा।

आगमनात्मक प्रणालियों के सम्बन्ध में मिल के ये दावे अतिरंजित थे और निम्नलिखित कारणों से मान्य नहीं समझे जाते :

1. विज्ञान में कार्य-कारण सम्बन्ध के प्रत्यय का सीमित प्रयोग होता है। यह कहना ठीक नहीं है कि प्रत्येक वैज्ञानिक खोज कारण-सम्बन्ध की खोज है और प्रत्येक प्राकृतिक नियम कारणात्मक नियम हैं। सभी प्राकृतिक नियम जो वैज्ञानिक खोजों से स्थापित होते हैं घटनाओं के पूर्वापर क्रम के नियम नहीं हैं। उदाहरण के रूप में गुरुत्वाकर्षण का नियम घटनाओं के पूर्वापर क्रम के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाता अपितु गणित के एक फार्मूले के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। ऐसे नियमों को प्रस्तुत करते समय कार्य के प्रत्यय के स्थान पर फलन (function) का प्रत्यय प्रयोग में लाया जाता है।

2. कुछ वैज्ञानिक खोजें सांख्यिकीय नियमों (Statistical laws) के रूप में प्रस्तुत की जाती हैं, कार्य-कारण सम्बन्धों के रूप में नहीं।

3. जो नियम कार्य-कारण सम्बन्ध प्रकट करते हैं उनकी खोज आगमनात्मक प्रणालियों के प्रयोग मात्र से हो जाती है, ऐसा दावा करना गलत है। इन प्रणालियों को लागू करने से पहले घटना के तत्त्वों और परिस्थितियों का ठीक-ठीक विश्लेषण आवश्यक है और यह विश्लेषण करना इन प्रणालियों का काम नहीं है। "मिल की प्रणालियाँ अन्वेषण के लिए पर्याप्त उपकरण नहीं हैं, क्योंकि इनके सफल प्रयोग के लिए पूर्ववर्ती परिस्थितियों के घटकों का समुचित विश्लेषण आवश्यक है और ये प्रणालियाँ स्वयं यह नहीं बतातीं कि समुचित और अनुचित विश्लेषण में भेद कैसे किया जाये।"[1]

4. ये प्रणालियाँ कारणात्मक सम्बन्ध के सिद्ध करने की प्रणालियाँ नहीं हैं, क्योंकि ये प्रणालियाँ कारण-अनेकत्व की सम्भावना का निराकरण करने में सफल नहीं

1. इर्विंग कोपी : Introduction to Logic, p. 395.

हो सकतीं। प्रेक्षित दृष्टान्तों में एक घटना के कारण की खोज होने पर भी, इस बात का कोई आनुभविक असंदिग्ध प्रमाण नहीं मिल सकता कि भविष्य में वह घटना किसी अन्य कारण से नहीं हो सकती। क घटना ख घटना का कारण है, यह सिद्ध करने का अर्थ है कि कभी भी क के बिना ख घटना नहीं हो सकती और क कभी ख के बिना नहीं हो सकता। लेकिन इन प्रणालियों के प्रयोग से अधिक-से-अधिक प्रेक्षित दृष्टान्तों में कारणात्मक सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। अप्रेक्षित दृष्टान्तों में भी यही सम्बन्ध लागू होगा, यह इन प्रणालियों से सिद्ध नहीं हो सकता और वास्तव में यह किसी भी आनुभविक प्रमाण से सिद्ध नहीं हो सकता।

**महत्त्व :** **मिल** की प्रणालियों को अन्वेषण अथवा सिद्धि की प्रणाली तो नहीं माना जा सकता। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वैज्ञानिक अनुसन्धान में इनका महत्त्व कुछ नहीं है। वैज्ञानिक अनुसन्धान में इनका महत्त्व निम्नलिखित है :

1. ये अप्रासंगिक परिस्थितियों का निरास करने में सहायक हैं। एक घटना का कारण क्या है, यह तो इन प्रणालियों से स्थापित नहीं होता, लेकिन एक घटना की कौन-सी पूर्ववर्ती परिस्थितियाँ उसका कारण नहीं है, यह इन प्रणालियों से स्थापित हो जाता है।

2. **मिल** की प्रणालियाँ कारणात्मक प्राक्कल्पनाओं के परीक्षण के साधन हैं। एक घटना के कारण के सम्बन्ध में अनेकों प्राक्कल्पनाएँ बन सकती हैं। ये प्रणालियाँ इन प्राक्कल्पनाओं का परीक्षण करने में सहायक हैं और इस प्रकार वैज्ञानिक अनुसन्धान को आगे बढ़ाने में और कारणात्मक सम्बन्ध खोजने में सहायक होती हैं।

संक्षेप में इन प्रणालियों का महत्त्व **इर्विंग कोपी** के शब्दों में इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं :

"कारणात्मक नियमों या सामान्य प्रतिज्ञप्तियों का अन्वेषण कभी **मिल** की प्रणालियों द्वारा नहीं होता और न कभी ये उनसे निदर्शनात्मक रूप में (demonstratively) स्थापित होती हैं। मगर, ये प्रणालियाँ, कारण-सम्बन्धी प्राक्कल्पना का प्रेक्षण अथवा प्रयोग द्वारा समर्थन अथवा असमर्थन करने के मूल तार्किक ढाँचे प्रस्तुत करती है।"[1]

निष्कर्ष के रूप में, हम यहाँ यह फिर दोहराना आवश्यक समझते हैं कि आगमनात्मक-प्रणाली का निष्कर्ष कभी असंदिग्ध नहीं हो सकता। कोई भी आगमनिक प्रमाण पर्याप्त प्रमाण नहीं बन सकता। आगमनात्मक तर्क का निष्कर्ष सम्भाव्य ही होगा।

## अभ्यास

1. **मिल** की आगमनात्मक प्रणालियों के अधिनियमों का स्पष्ट कथन करें। वैज्ञानिक अनुसन्धान में इन प्रणालियों के महत्त्व पर प्रकाश डालें।

---

1. Irving Copy : Introduction to Logic, p. 407.

2. अन्वय प्रणाली के स्वरूप का उदाहरण सहित विवेचन करें। क्या इसे कारण-सम्बन्ध के अन्वेषण और उपपत्ति की प्रणाली माना जा सकता है ?

3. व्यतिरेक-प्रणाली के स्वरूप का विवेचन करें। इसके महत्त्व पर प्रकाश डालें।

4. अन्वय-प्रणाली और व्यतिरेक-प्रणाली का अन्तर स्पष्ट करें और इनके तुलनात्मक महत्त्व पर प्रकाश डालें।

5. अन्वय-व्यतिरेक प्रणाली का क्या स्वरूप है ? इसमें अन्वय-प्रणाली और व्यतिरेक-प्रणाली का रूप किस प्रकार शामिल होता है ? इस प्रणाली की समीक्षा करें.

6. सह-परिवर्तन की प्रणाली और उसके महत्त्व पर प्रकाश डालें।

7. अवशेष-प्रणाली का स्वरूप उदाहरण सहित स्पष्ट करें। वैज्ञानिक अनुसन्धान में इसका वास्तविक महत्त्व क्या है ?

8. "निरास" शब्द से आप क्या समझते हैं ? निरास के मूलभूत नियम क्या हैं और ये किस प्रकार आगमनात्मक प्रणालियों के आधार हैं ?

9. "कारण-अनेकत्व" से आप क्या समझते हैं ? किस प्रकार कारण-अनेकत्व की सम्भावना आगमनात्मक प्रणालियों के विषय में **मिल** के दावों को अप्रमाणित कर देती है ?

10. निम्नलिखित युक्तियों का स्पष्ट विवेचन करते हुए, यह स्पष्ट करें कि इनका निष्कर्ष किस आगमनात्मक प्रणाली पर आधारित है ? निष्कर्ष की प्रामाणिकता की समीक्षा करें।

(1) जो व्यक्ति बौद्धिक दृष्टि से बहुत योग्य होते हैं, उनका लेख खराब होता है। इसके विपरीत जिनका लेख बहुत अच्छा होता है, वे बहुत कम बौद्धिक काम करते हैं। इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकलता है कि अत्यधिक मानसिक कार्य लेख के खराब होने का कारण होता है।

(2) वायु-युक्त एक बर्तन में पैसा और पंख साथ-साथ डालने पर पैसा पंख से जल्दी गिरता है, जबकि उसे निर्वात करने पर दोनों साथ-साथ गिरते हैं। इसलिए, वायु पंख के धीरे-धीरे गिरने का कारण है।

(3) पशुओं के गिल्टी रोग (anthrax) से बचाव के लिए एन्थ्रेक्स का टीका लगाने की अपनी प्राक्कल्पना के समर्थन में **पाश्चर** (Pasteur) ने 1881 की बसन्त ऋतु में पशु-चिकित्सकों के सामने एक प्रयोग किया। उसने 24 भेड़ों, एक बकरी और पाँच अन्य पशुओं को एन्थ्रेक्स का टीका लगाया और 24 भेड़, एक बकरी और पाँच अन्य पशु बिना टीका लगाये इस झुण्ड में शामिल कर दिये। इसके बाद इन सब पशुओं पर एन्थ्रेक्स के

खटमलों का भयानक आक्रमण हुआ। लेकिन, इनमें से वे पशु जिनको टीके लगे थे बच गये और जिनको टीके नहीं लगे थे वे सब मर गये। इस प्रयोग से पाश्चर ने यह प्रमाणित किया कि एन्थ्रेक्स का टीका एन्थ्रेक्स रोग के बचाव का कारण है।

(4) एक विद्यार्थी चालीस पंक्तियों की एक कविता को दो भागों में बाँटता है। वह 20 पंक्तियों के एक-एक टुकड़े को समग्र-विधि से याद करता है और दूसरे टुकड़े को खण्ड-विधि से याद करता है। वह देखता है कि समग्र-विधि से कम समय लगा है। इस प्रकार वह निष्कर्ष निकालता है कि समग्र-विधि से याद करने में समय की बचत होती है।

(5) ज्यों-ज्यों सूर्य चढ़ता जाता है त्यों-त्यों परछाईं छोटी होती जाती है। इसलिए, सूर्य का चढ़ना परछाईं के छोटे होने का कारण है।

(6) ज्यों-ज्यों सूर्य ढलता जाता है त्यों-त्यों परछाईं बड़ी होती जाती है। इसलिए, सूर्य का ढलना परछाईं के बड़े होने का कारण है।

(7) ज्यों-ज्यों क्रोध बढ़ता है, त्यों-त्यों व्यक्ति की चिन्तन शक्ति अवरुद्ध होती जाती है। इसलिए, क्रोध चिन्तन के अवरोध का कारण है।

(8) प्रायः मोटे व्यक्तियों को हृदय रोग अधिक होता है और पतले व्यक्तियों व्यक्तियों को कम। इसलिए, मुटापा हृदय रोग का कारण है।

(9) जिन व्यक्तियों को रतौंध (रात में दिखायी न देना) आता है, उनमें विटामिन ए की कमी होती है। ऐसे व्यक्तियों का रतौंध विटामिन ए की खुराक से ठीक होते हुए देखा गया है। इसलिए, विटामिन ए की कमी रतौंध का कारण है।

(10) वायु ध्वनी का कारण है क्योंकि (1) निर्वात में घण्टी बजाने पर आवाज नहीं होती, (2) उसमें थोड़ी-सी वायु छोड़ने पर हल्की-सी आवाज सुनाई देती है; (3) अधिक वायु छोड़ने पर अधिक स्पष्ट आवाज सुनाई देती है।

(11) ज्यों-ज्यों शिक्षा बढ़ती है, त्यों-त्यों अन्ध-विश्वास घटते हैं। अज्ञानता अन्ध-विश्वासों का कारण है।

(12) इस व्यक्ति का रहन-सहन ऐसा है जैसा कि प्रति मास 2000 रुपये आय वाले व्यक्ति का हो सकता है। लेकिन इसका मासिक वेतन 500 रुपये ही है। इसलिए, इसकी आय का कोई और भी स्रोत है।

# 27

# प्राक्कल्पना और वैज्ञानिक प्रणाली

विज्ञान का उद्देश्य घटनाओं की व्याख्या करने के लिए सामान्य कारणात्मक नियमों की खोज करना और इन नियमों की व्याख्या करने के लिए अधिक व्यापक नियमों की खोज करना है। विज्ञान की विशेषता यह है कि इसमें इन नियमों की खोज करने के लिए एक विशेष प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। संक्षेप में, यह प्रणाली न तो केवल आगमनात्मक है और न केवल निगमनात्मक है, अपितु यह आगमनात्मक-निगमनात्मक है। इसमें प्रेक्षण और प्रयोग का जितना महत्त्व है, उतना ही प्राक्कल्पना और प्राक्कल्पना की सत्यता की जाँच करने में लिए निगमनात्मक तर्क का महत्त्व है। वास्तव में, जिसे हम आगमनात्मक प्रक्रिया कहते हैं, अर्थात् विशेष तथ्यों के प्रेक्षण के आधार पर सामान्य नियम स्थापित करने की प्रक्रिया कहते हैं, वह विशुद्ध रूप से आगमनात्मक नहीं है, उसमें निगमन की प्रक्रिया भी सहायक होती है। आगमन और निगमन का यह सम्बन्ध तथा आगमनात्मक प्रक्रिया में प्रेक्षण और प्रयोग के साथ-साथ प्राक्कल्पना का महत्त्व आगमनात्मक प्रक्रिया के विभिन्न चरणों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है।

## 1. आगमनात्मक प्रक्रिया के विभिन्न चरण

आगमनात्मक प्रक्रिया के निम्नलिखित चार चरण हैं :

1. **समस्या :** चिन्तन की प्रक्रिया समस्या के अनुभव से प्रारम्भ होती है। समस्या एक प्रकार की उलझन होती है जिसे सुलझाने का कोई स्पष्ट उपाय दिखायी नहीं देता। जब हमें एक निश्चित लक्ष्य तक पहुँचना हो और हमें वहाँ तक पहुँचने का कोई स्पष्ट मार्ग न दिखायी देता हो तो हम अपने आपको समस्या की स्थिति में पाते हैं। प्रेक्षणात्मक तथ्य भी हमारे लिए बौद्धिक उलझन पैदा करते हैं। घटनाओं के सम्बन्ध में, हमें यह स्पष्ट नहीं दिखायी देता कि वे कैसे घटती हैं। लेकिन इनके बारे में साधारण व्यक्ति की जिज्ञासा इतनी प्रबल नहीं होती, जितनी वैज्ञानिक की। वैज्ञानिक मन की यह विशेषता है कि बड़ी साधारण दिखायी देने वाली घटनाएँ भी उसके लिए उलझनपूर्ण दिखायी देने लगती हैं। पेड़ से सेब के गिरने की जो घटना जन-

साधारण को एक स्पष्ट वास्तविकता दिखायी देती है, वही वैज्ञानिक प्रतिभा वाले **न्यूटन** के लिए कितनी गम्भीर समस्या बन गयी यह सर्वविदित है। किसी वैज्ञानिक को कोई समस्या कब और कैसे सूझती है इसका कोई नियम नहीं है। वास्तव में, वैज्ञानिक प्रतिभा की पहली झलक महत्त्वपूर्ण समस्या अनुभव करने में दिखायी देती है।

2. **प्रेक्षणात्मक सामग्री का संग्रह :** समस्या अनुभव करने के बाद समस्या से सम्बन्धित तथ्यों का प्रेक्षण करने की अवस्था आती है। इस अवस्था में व्यक्ति अपनी स्मृति के आधार पर प्रासंगिक विचारों का स्मरण करता है तथा प्रेक्षण द्वारा आवश्यक तथ्यात्मक विचार-सामग्री इकट्ठा करता है। यह अवस्था गहन अध्ययन और व्यापक प्रेक्षण की अवस्था है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि एक वैज्ञानिक अथवा किसी भी खोज करने वाले व्यक्ति का प्रेक्षण किसी न किसी प्राक्कल्पना अथवा सिद्धान्त से निर्देशित अवश्य होता है। **चार्ल्स डार्विन** यह ठीक ही कहता था कि जो व्यक्ति सिद्धान्त रचना में चुस्त नहीं है, वह अच्छा प्रेक्षक भी नहीं बन सकता।[1]

3. **प्राक्कल्पना की रचना :** समस्या से सम्बन्धित पर्याप्त विचार-सामग्री इकट्ठा करने का एक लाभ यह तो होता है कि इससे समस्या का स्वरूप स्पष्ट होता है, जोकि वास्तव में प्रारम्भ में नहीं होता और दूसरा लाभ यह होता है कि इससे समस्या के समाधान के अनेक विचार सूझने लगते हैं। समस्या के समाधान के बारे में जो विचार सूझता है, उसे जब एक निश्चित प्रतिज्ञप्ति का रूप प्रदान कर दिया जाता है, तो वह प्राक्कल्पना कहलाता है। प्राक्कल्पना समस्या का ऐसा समाधान नहीं है जो निश्चित रूप से सत्य हो। यह तो समस्या के समाधान के बारे में ऐसी अटकल है जो सत्य या असत्य हो सकती है और इसलिए जिसकी सत्यता/असत्यता की आगे जाँच होना आवश्यक है।

एक समस्या के सम्बन्ध में एक साथ अनेकों प्राक्कल्पनाएँ सूझ सकती हैं। इनमें से बहुत-सी प्राक्कल्पनाएँ तो थोड़ा बहुत विचार करने पर ही अनुपयोगी दिखायी देने लगती हैं और छोड़ दी जाती हैं। ऐसी प्राक्कल्पना जो समस्या का समाधान प्रस्तुत करती हो सरलता से ध्यान में नहीं आती। जब तक खोज करने वाले को कोई ऐसी प्राक्कल्पना नहीं सूझती जो संग्रहीत तथ्यात्मक सामग्री की व्याख्या करती हो, तब तक अनुसन्धानकर्ता अपनी विचार-सामग्री को उलट-पलट कर नये-नये ढंग से व्यवस्थित करता रहता है। यह अवस्था वास्तव में, बड़ी मानसिक बेचैनी और तनाव की अवस्था होती है। जासूस तो इस अवस्था में, सारी-सारी रात सिगरेट पीता रहता है और सोचता रहता है।

अनुसन्धानकर्ता को कब और कैसे उपयोगी प्राक्कल्पना सूझती है, इसका कोई नियम नहीं है। वास्तव में, उपयोगी प्राक्कल्पना की रचना प्रतिभा पर निर्भर करती है। यहाँ हम स्पष्ट रूप से वैज्ञानिक खोज के क्षेत्र में प्रतिभा का महत्त्व देख सकते हैं

---

1. देखिये Mellon.

और यहीं **बेकन** के इस कथन की कि वैज्ञानिक खोज में प्रेक्षण की तकनीक ही पर्याप्त है और इसमें किसी प्रतिभा की आवश्यकता नहीं है असत्यता भी देख सकते हैं।

यद्यपि उपयोगी प्राक्कल्पना प्रतिभा की देन है, फिर भी हमें यह तथ्य भी स्वीकार करना चाहिये कि गहन अध्ययन, क्रमबद्ध व्यापक प्रेक्षण तथा प्रेक्षित तथ्यों में सादृश्य के अवलोकन से उपयोगी प्राक्कल्पना का सुझाव प्राप्त होने में सहायता मिल सकती है। एक उपयोगी प्राक्कल्पना की रचना में व्यापक प्रेक्षण और सादृश्य के महत्त्व का एक उदाहरण **डार्विन** के अध्ययन से मिलता है। **डार्विन** को प्राणियों के विकास की व्याख्या के लिए **प्राकृतिक चुनाव की प्राक्कल्पना** आकस्मिक ढंग से नहीं सूझी। इससे पहले उसने विविध प्रकार के प्राणियों का व्यापक अध्ययन किया था। प्राणियों का प्रेक्षण करते समय उसका ध्यान इस तथ्य की ओर भी गया कि पालतू पशुओं की नसलों का सुधार करने में लोगों को जो सफलता मिली है, उसमें महत्त्वपूर्ण हाथ उपयुक्त प्राणियों के चयन का है। लेकिन बहुत समय तक उसके लिए यह समस्या उलझन बनी रही कि प्रकृति की गोद में पलने वाले प्राणियों पर चयन की क्रिया किस प्रकार लागू होती है। जब उसने प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **मालथस** के जनसंख्या तथा खाद्य-सामग्री के सम्बन्ध में तथा आर्थिक क्षेत्र में होने वाले संघर्ष के बारे में विचार पढ़े तो उसका ध्यान इस बात की ओर गया कि जिस प्रकार खाद्य-सामग्री की तुलना में जनसंख्या में बहुत बड़े अनुपात में वृद्धि होने के कारण आर्थिक क्षेत्र में संघर्ष होता है, उसी प्रकार प्रकृति के क्षेत्र में भी प्राणियों के अत्यधिक संख्या में सन्तान उत्पन्न करने और खाद्य-सामग्री सीमित होने के कारण उनमें जीवन के लिए संघर्ष होता है और इस संघर्ष में वही बचता है जो अपने विशेष गुणों के कारण जीवित रह सकता है। इस प्रकार आर्थिक-क्षेत्र और प्राणि-क्षेत्र के सादृश्य से **डार्विन** को प्राकृतिक चुनाव की प्राक्कल्पना सूझी।

4. **प्राक्कल्पना का सत्यापन** (Verification of hypothesis) : उपयुक्त प्राक्कल्पना सूझने के बाद वैज्ञानिक खोज की अगली अवस्था उस प्राक्कल्पना के सत्यापन की अवस्था है। "सत्यापन" पारिभाषिक शब्द है जिसका प्रयोग प्राक्कल्पना का समर्थन करने वाली तार्किक प्रक्रिया के लिए किया जाता है। सत्यापन की प्रक्रिया के दो प्रमुख चरण हैं : (क) निगमन-विधि द्वारा प्राक्कल्पना से विशेष निष्कर्ष निकालना, (ख) प्रेक्षण अथवा प्रयोग द्वारा यह देखना कि इस प्रकार जो निष्कर्ष निकले हैं, वे वास्तव में सत्य हैं या असत्य। यदि प्राक्कल्पना से निगमित निष्कर्ष असत्य निकलते हैं, तो प्राक्कल्पना का असत्यापन (falsification) हो जाता है। ऐसी अवस्था में या तो प्राक्कल्पना को छोड़ दिया जाता है अथवा उसमें संशोधन किया जाता है। यदि प्राक्कल्पना से निकाले गये निष्कर्ष वास्तव में सत्य निकलते हैं तो प्राक्कल्पना का सत्यापन (verification) हो जाता है।

**साधारण जीवन से एक उदाहरण**

मान लीजिये आप शाम को घर पहुँचते हैं, तो आपको घर का दरवाज़ा खुला मिलता है, जबकि आप उसमें सुबह ताला लगा कर गये थे। आपके सामने एकदम

यह प्रश्न आयेगा कि यह कैसे हुआ। इसके साथ कई प्राक्कल्पनाएँ भी मन में आयेंगी। जैसे : (1) क्या मैं प्रातः जल्दी में दरवाजा खुला ही छोड़ गया था ? (2) क्या पीछे पत्नी और बच्चे आ गये हैं ? (3) क्या किसी चोर ने ताला खोला है ? आदि। इनमें से पहली प्राक्कल्पना तो थोड़ा-सा ध्यान देने पर यह बात निश्चित रूप से याद आने पर कि मैं घर में ताला लगा कर गया था अमान्य लगेगी और छोड़ दी जायेगी। दूसरी प्राक्कल्पना इस बात की अपेक्षा रखती है कि ताले की दूसरी चाबी पत्नी के पास है। यदि आपको यह निश्चय है कि दूसरी चाबी पत्नी के पास है, तो यह प्राक्कल्पना विचारणीय बनेगी। इस प्राक्कल्पना का सत्यापन करने के लिए आप इस प्रकार चिन्तन कर सकते हैं :

यदि पत्नी ने दरवाजा खोला है, तो बच्चे और पत्नी घर में होंगे।
पत्नी ने दरवाजा खोला है। (प्राक्कल्पना)
∴ बच्चे और पत्नी घर में होंगे।

अब आप घर में जाकर यह देखते हैं कि इस प्रकार निकाला गया निष्कर्ष ठीक है या नहीं। यदि सचमुच निष्कर्ष सत्य निकलता है, तो प्राक्कल्पना (2) का सत्यापन हो जाता है। लेकिन यदि घर में आपको कोई नहीं मिलता, न वहाँ सूटकेस आदि सामान जो पत्नी लेकर आतीं, मिलता है तो इस प्राक्कल्पना का असत्यापन हो जाता है। अब आप तीसरी प्राक्कल्पना की जाँच करने के लिए विचार करते हैं। विचार करने का निगमनात्मक रूप इस प्रकार होगा :

यदि चोर ने ताला तोड़ा है, तो उसने घर का कीमती सामान चुराया होगा।
चोर ने ताला तोड़ा है। (प्राक्कल्पना)
∴ चोर ने क़ीमती सामान की चोरी की होगी।

अब आप घर का अपना सामान देखते हैं। यदि आपको कुछ सामान घर में नहीं मिलता अर्थात् यदि निष्कर्ष सत्य निकलता है, तो प्राक्कल्पना (3) का सत्यापन हो जाता है। और यदि, घर का सामान ज्यों का त्यों मिलता है, तो प्राक्कल्पना का असत्यापन हो जाता है।

इस प्रकार प्राक्कल्पना से निकाले गये निष्कर्ष की सत्यता अथवा असत्यता का प्रेक्षण द्वारा निश्चय करने पर प्राक्कल्पना का सत्यापन अथवा असत्यापन होता है।

**विज्ञान के क्षेत्र से उदाहरण :** विज्ञान के क्षेत्र में भी प्रेक्षण द्वारा प्राक्कल्पना के सत्यापन के अनेक उदाहरण मिलते हैं। यूरेनस ग्रह के परिगणित मार्ग से विचलित होने की व्याख्या करने के लिए वैज्ञानिकों ने किसी अज्ञात ग्रह की उपस्थिति की जो प्राक्कल्पना की थी उसका सत्यापन गणित की निगमनात्मक प्रक्रिया और प्रेक्षण द्वारा हुआ। पहले गणित की निगमनात्मक प्रक्रिया द्वारा उस ग्रह की स्थिति के बारे में

निष्कर्ष निकाला और फिर दूरवीक्षक द्वारा उस ग्रह का प्रेक्षण करके उस निष्कर्ष की सत्यता की जाँच की।

**प्रयोग द्वारा सत्यापन :** वैज्ञानिक खोजों में प्रायः प्राक्कल्पना से निगमित निष्कर्ष की सत्यता की जाँच करने के लिए प्रयोग की आवश्यकता पड़ती है। **पाश्चर** ने अपनी इस प्राक्कल्पना का कि एन्थ्रेक्स का टीका लगने पर पशुओं में एन्थ्रेक्स रोग (गिल्टी रोग) नहीं होता, समर्थन प्रयोग द्वारा किया जो विज्ञान के इतिहास में प्रसिद्ध है।

**विशेष टिप्पणी 1. असत्यापन तथा सत्यापन का मूल्यांकन**

एक प्राक्कल्पना के असत्यापन का अर्थ यह है कि उस प्राक्कल्पना को एक आधारिका मानकर जो निष्कर्ष निकाले गये हैं, वे असत्य हैं; इसका अर्थ प्राक्कल्पना की असत्यता का पूर्ण-प्रमाण (proof) नहीं है। प्राक्कल्पना का सत्यापन/असत्यापन करने के लिए जिस निगमनात्मक युक्ति का प्रयोग करते हैं, उसकी एक आधारिका तो उस प्राक्कल्पना को रखते हैं और दूसरी आधारिका एक अन्य प्रतिज्ञप्ति होती है जिसे सत्य समझा जाता है। इस प्रकार निकाला गया **विशेष** निष्कर्ष यदि असत्य निकलता है तो इससे यह प्रमाणित होता है कि दोनों आधारिकाओं में से कम-से-कम एक आधारिका असत्य है, अर्थात् या तो दोनों आधारिकाएँ असत्य हैं या उनमें से कोई एक आधारिका असत्य है। लेकिन यह एक आधारिका कौन-सी है, यह इससे प्रमाणित नहीं होता। यह सम्भव हो सकता है कि प्राक्कल्पना तो सत्य हो और उसके साथ जो अन्य आधारिका जोड़ी गयी है वह असत्य हो। **न्यूटन** के गुरुत्वाकर्षण की-खोज के सम्बन्ध में जो बात हम पृष्ठ 333 पर कह चुके हैं यदि उसे स्मरण करें तो यह बात स्पष्ट हो जायेगी। **न्यूटन** ने गुरुत्वाकर्षण की अपनी प्राक्कल्पना का सत्यापन करने के लिए चन्द्रमा की गति के सम्बन्ध में जो निष्कर्ष निकाले वे वास्तव में असत्य निकले। अब इससे यह प्रमाणित नहीं हुआ कि **न्यूटन** की यह प्राक्कल्पना असत्य है। केवल यह प्रमाणित हुआ कि या तो **न्यूटन** की प्राक्कल्पना ग़लत है या पृथ्वी और चन्द्रमा की जो माप मानकर उसने निष्कर्ष निकाले हैं, उनमें से कोई ग़लत है और बाद में यही स्थापित हुआ कि पृथ्वी की परिधि की जो माप उस समय मानी जाती थी और जिसके आधार पर **न्यूटन** ने गुरुत्वाकर्षण की अपनी प्राक्कल्पना से निष्कर्ष निकाले थे वह वास्तव में ग़लत थी। पृथ्वी की ठीक माप के आधार पर जो निष्कर्ष निकला वह सत्य पाया गया।

इस प्रकार, प्राक्कल्पना को एक आधारिका मानकर जो निष्कर्ष निकाला जाता है, वह यदि असत्य है, तो उससे यह प्रमाणित नहीं होता कि वह प्राक्कल्पना असत्य है। लेकिन यदि किसी अन्य प्रमाण के आधार पर हम यह जानते हैं कि प्राक्कल्पना के अतिरिक्त जो दूसरी आधारिका हम मानकर चले हैं वह वास्तव में सत्य है, तो निष्कर्ष के असत्य होने पर प्राक्कल्पना की असत्यता प्रमाणित होती है।

**सत्यापन का मूल्यांकन—सत्यापन और प्रमाण**

जिस प्रकार प्राक्कल्पना का असत्यापन उसकी असत्यता का पूर्ण-प्रमाण नहीं है, उसी प्रकार सत्यापन भी प्राक्कल्पना की सत्यता का पूर्ण-प्रमाण नहीं है। प्राक्कल्पना के सत्यापन का अर्थ केवल यह है कि उसे एक आधारिका मानकर जो निष्कर्ष निकाले गये हैं, वे सत्य हैं। लेकिन जहाँ आधारिकाओं की सत्यता निष्कर्ष की सत्यता का पूर्ण प्रमाण होती है, वहाँ निष्कर्ष की सत्यता आधारिकाओं की सत्यता का पूर्ण प्रमाण नहीं होती। आधारिकाओं की सत्यता निष्कर्ष की सत्यता के लिए पर्याप्त होती है, लेकिन निष्कर्ष की सत्यता आधारिकाओं की सत्यता के लिए आवश्यक होती है, पर्याप्त नहीं। इस प्रकार, प्राक्कल्पना को आधारिका मानकर निकाले गये निष्कर्ष की सत्यता से प्राक्कल्पना की सत्यता प्रमाणित करने की चेष्टा में फल-वाक्य विधान दोष (fallacy of affirming the consequent) होता है। मान लीजिए, प एक प्राक्कल्पना है और इससे $त_1$, $त_2$, $त_3$, $त_4$ प्रतिज्ञप्तियाँ निकलती हैं और ये सत्य हैं। यदि हम इन प्रतिज्ञप्तियों की सत्यता के आधार पर प की सत्यता निकालना चाहेंगे, तो हमारा तर्क अवैध होगा, जैसा कि युक्ति के निम्नलिखित रूप से स्पष्ट है :

$$प \supset (त_1 . त_2 . त_3 . त_4)$$
$$त_1 . त_2 . त_3 . त_4$$
$$\therefore प$$

स्पष्ट है कि इसमें फल-वाक्य विधान दोष है।

इस प्रकार, प्राक्कल्पना से निगमित तथ्यात्मक प्रतिज्ञप्तियों के सत्य होने पर उस प्राक्कल्पना के सत्य होने का थोड़ा-बहुत प्रमाण तो मिलता है; लेकिन इससे उसकी सत्यता का पूर्ण-प्रमाण नहीं मिलता। पाश्चर का प्रयोग भी उसकी इस प्राक्कल्पना को कि एन्थ्रेक्स के टीके से पशुओं में एन्थ्रेक्स रोग नहीं होता, केवल सत्यापित करता है, उसकी सत्यता प्रमाणित नहीं करता। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि प्राक्कल्पना का सत्यापन (verification) उसकी सत्यता का पूर्ण-प्रमाण (proof) नहीं है।

**विशेष टिप्पणी 2. सत्यापन और पूर्वकथन** (Verification and prediction)

सत्यापन की प्रक्रिया घटनाओं का पूर्वकथन करने की प्रक्रिया से जुड़ी है। प्राक्कल्पना से जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं, उनकी सत्यता/असत्यता की जाँच तो आगे प्रेक्षण से होनी होती है। इस प्रकार ये निष्कर्ष घटनाओं के पूर्वकथन होते हैं। यदि आगे हम यह देखते हैं कि प्राक्कल्पना के आधार पर किये गये पूर्वकथन सत्य निकलते हैं तो प्राक्कल्पना का सत्यापन हो जाता है अर्थात् उसके सत्य होने की सम्भावना बढ़ जाती है और आगे उसके आधार पर घटनाओं का पूर्वकथन करने में विश्वास दृढ़ होता जाता है। लेकिन यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि "एक प्राक्कल्पना के आधार पर किये

गये पूर्वकथनों के सफल निकलने पर उसका केवल सत्यापन होता है, इससे वह असंदिग्ध रूप से सत्य प्रमाणित नहीं होती।"[1]

**विशेष टिप्पणी 3. आगमन और निगमन का सम्बन्ध**

प्राक्कल्पना के सत्यापन की प्रक्रिया से आगमन और निगमन का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से दिखायी देता है। यहां हम यह स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि विशुद्ध आकारिक निगमनात्मक तर्कशास्त्र जिसका परिचय हम पुस्तक के खण्ड 1 और 2 में दे चुके हैं निरर्थक बौद्धिक खेल नहीं है, अपितु वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति में सहायक एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है।

आगमन का उद्देश्य विशेष तथ्यों के आधार पर सामान्य प्रतिज्ञप्तियाँ स्थापित करना है। इसमें पहले तथ्यों का प्रेक्षण करते हैं और फिर प्राक्कल्पनाएँ बनाते हैं। इन प्राक्कल्पनाओं की सत्यता की परख के लिए निगमन द्वारा, जिसमें गणित भी शामिल है, विशेष निष्कर्ष निकालते हैं, और फिर प्रेक्षण तथा प्रयोगों द्वारा इन निष्कर्षों की जाँच करते हैं। यदि आकारिक निगमनात्मक तर्कशास्त्र विकसित न हो, तो हम यह नहीं जान सकते कि अमुक प्राक्कल्पना से कौन-कौन-सी प्रतिज्ञप्तियाँ वैध ढंग से निगमित होती हैं और तब प्राक्कल्पना का विकास या संशोधन नहीं हो सकता। विज्ञान का सम्पूर्ण इतिहास प्रेक्षण के आधार पर नयी-नयी प्राक्कल्पनाएँ बनाने, निगमनात्मक प्रक्रिया द्वारा उनसे निष्कर्ष निकालने, तथ्यों के साथ उन निष्कर्षों की अनुरूपता की जाँच करने और प्राक्कल्पनाओं में यथोचित संशोधन करने की कहानी है।

संक्षेप में, वैज्ञानिक खोज में, आगमन और निगमन, प्रेक्षण, प्रयोग और गणित की निगमनात्मक प्रक्रिया दोनों का सहयोग होता है। इस प्रकार, वैज्ञानिक प्रणाली केवल आगमनात्मक या प्रयोगात्मक ही नहीं है, अपितु यह आगमनात्मक-निगमनात्मक है और इस प्रकार, ज्ञान के क्षेत्र में आगमन और निगमन दोनों का सहयोग होता है।

## 2. प्राक्कल्पना की सत्यता का प्रमाण

यह स्पष्ट कर चुके हैं कि सत्यापन से प्राक्कल्पना की सत्यता का थोड़ा-बहुत समर्थन तो होता है, लेकिन इससे प्राक्कल्पना की सत्यता का पूर्ण तार्किक प्रमाण प्रस्तुत नहीं होता। अब प्रश्न यह है कि प्राक्कल्पना की सत्यता का पूर्ण प्रमाण क्या हो सकता है। यदि एक प्राक्कल्पना के सम्बन्ध में यह प्रमाणित हो जाये कि वही एक प्राक्कल्पना ऐसी है जिससे प्रेक्षणात्मक सामग्री की व्याख्या होती है अर्थात् अनुसन्धान के क्षेत्र में जितनी तथ्यात्मक प्रतिज्ञप्तियाँ हैं वे उससे निकल सकती हैं और केवल उसी से निकल सकती हैं, तो उस प्राक्कल्पना की सत्यता का पूर्ण प्रमाण मिल सकता है। मान लीजिए, प प्राक्कल्पना है और $त_1$, $त_2$, $त_3$, $त_4$ सत्य तथ्यात्मक प्रतिज्ञप्तियाँ हैं, जिनकी

1. Cohen and Nagel : Introduction to Logic and Scientific Method.

व्याख्या प से करना चाहते हैं। $त_1$, $त_2$, $त_3$, $त_4$ की सत्यता प की सत्यता का पूर्ण प्रमाण तब मानी जायेगी जब प से और केवल प से ये तथ्यात्मक प्रतिज्ञप्तियाँ निगमित होती हों। प्रतीकात्मक भाषा में इनका यह सम्बन्ध इस प्रकार प्रकट किया जायेगा :

$$[प \supset (त_1 . त_2 . त_3 . त_4)] . [(त_1 . त_2 . त_3 . त_4) \supset प]$$

जब प्राक्कल्पना और तथ्यात्मक प्रतिज्ञप्तियों में ऐसा सम्बन्ध हो तो तथ्यात्मक प्रतिज्ञप्तियों, $त_1$, $त_2$ आदि की सत्यता से प्राक्कल्पना की सत्यता प्रमाणित हो जायेगी। सत्यापन (verification) और प्रमाण (proof) के तार्किक रूपों का अन्तर इनके आकारों की तुलना से हो जायेगा :

सत्यापन का तार्किक आकार :

$$\begin{array}{l} प \supset (त_1 . त_2 . त_3 . त_4) \\ त_1 . त_2 . त_3 . त_4 \\ \hline \therefore\ प \end{array}$$

यह अवैध आकार है।

प्राक्कल्पना की सत्यता के प्रमाण का आकार :

$$\begin{array}{c} [प \supset (त_1 . त_2 . त_3 . त_4)] . [(त_1 . त_2 . त_3 . त_4) \supset प] \\ त_1 . त_2 . त_3 . त_4 \\ \hline \therefore\ प \end{array}$$

यह वैध है।

लेकिन ये तो केवल आकारिक बातें हैं। वास्तविक अनुसन्धान के क्षेत्र में किसी प्राक्कल्पना के सम्बन्ध में यह पूर्ण रूप से प्रमाणित होना कि उस प्राक्कल्पना के अतिरिक्त अन्य कोई और प्राक्कल्पना प्रस्तुत तथ्यों की व्याख्या नहीं कर सकती, बहुत कठिन बात है। वास्तव में, जिन प्राक्कल्पनाओं का सीधे प्रत्यक्ष द्वारा सत्यापन नहीं होता, और विज्ञान के क्षेत्र में अधिकांश प्राक्कल्पनाएँ ऐसी ही होती हैं, उनकी सत्यता का पूर्ण तार्किक प्रमाण मिलना असम्भव होता है। **डार्विन** के विकासवाद का, आधुनिक परमाणु सिद्धान्त का, **न्यूटन** के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त का पूर्ण तार्किक प्रमाण नहीं प्रस्तुत हो सकता।

**निर्णायक दृष्टान्त** (Crucial instance)

यद्यपि एक प्राक्कल्पना के सम्बन्ध में यह दावा करना कि उसके अतिरिक्त न कोई ऐसी प्राक्कल्पना है और न कोई ऐसी आगे हो सकती है, जो अनुसन्धानगत तथ्यों की व्याख्या करती हो, निराधार हठ करना समझा जायेगा। लेकिन, यह दावा कि जितनी भी प्राक्कल्पनाएँ प्रचलित हैं, उनमें से केवल एक से ही अनुसन्धानगत तथ्यों की

व्याख्या होती है प्रमाणित किया जा सकता है। यदि कोई ऐसा तथ्य ध्यान में आ जाता है जिसकी व्याख्या अनेक प्रतिद्वन्द्वी प्राक्कल्पनाओं में से केवल एक से ही होती है, तो यह तथ्य उस एक प्राक्कल्पना को छोड़कर शेष सबका असत्यापन करता है। वह तथ्य जिससे अनेक प्रतिद्वन्द्वी प्राक्कल्पनाओं में से केवल एक को छोड़कर शेष सब प्राक्कल्पनाओं का असत्यापन होता है, निर्णायक दृष्टान्त (crucial instance) कहलाता है। ऐसा दृष्टान्त प्रेक्षण द्वारा उपलब्ध हो सकता है और प्रयोग द्वारा भी। जिस प्रयोग से अनेक विरोधी प्राक्कल्पनाओं में से एक को छोड़कर शेष सबका असत्यापन होता है निर्णायक प्रयोग (crucial experiment) कहलाता है।

प्रेक्षण द्वारा उपलब्ध निर्णायक दृष्टान्त का एक उदाहरण पृथ्वी की रचना-सम्बन्धी दो विरोधी प्राक्कल्पनाओं में से एक का चयन करने में मिलता है। एक प्राक्कल्पना के अनुसार, जो अब मान्य नहीं है, पृथ्वी चपटी है। दूसरी प्राक्कल्पना के अनुसार, पृथ्वी गोलाकार है। यह तथ्य कि समुद्र में आते हुए जहाज का मस्तूल पहले दिखायी देता है और उसका पिछला भाग बाद में एक निर्णायक दृष्टान्त है जिससे पहली प्राक्कल्पना का असत्यापन होता है और दूसरी प्राक्कल्पना का सत्यापन।

**निर्णायक प्रयोग** (Crucial Experiment)

ऊष्मा सम्बन्धी दो प्राक्कल्पनाओं में से एक का चुनाव करने में निर्णायक प्रयोग का एक उदाहरण मिलता है। ऊष्मा के सम्बन्ध में दो सिद्धान्त प्रचलित थे, एक कैलोरिक सिद्धान्त (caloric theory) और दूसरा गतिज सिद्धान्त (kinetic theory)। पहले सिद्धान्त के अनुसार ऊष्मा एक प्रकार का अविनाशी, अदृष्ट तरल पदार्थ है जो वस्तुओं में समाहित रहता है और जो वस्तुओं के छिद्रों में से एक वस्तु से दूसरी में प्रवाहित हो जाता है। इस प्राक्कल्पना से ताप सम्बन्धी सभी तथ्यों की व्याख्या होती थी। गर्म दूध का बर्तन ठण्डे पानी में रखने पर दूध ठण्डा होता जाता है और पानी गर्म, और यह परिवर्तन तब तक चलता है, जब तक दोनों का एक ही ताप नहीं हो जाता। ऐसा कैसे होता है? इस सिद्धान्त के अनुसार दूध के बर्तन से ऊष्मा नामक तरल पदार्थ के पानी में प्रवाहित होने के कारण ऐसा होता है। इसी प्रकार जब हम तेज़ चलते हैं, तो हमारे अन्दर ऊष्मा-द्रव प्रवेश करता है, इसलिए हमें गर्मी लगती है। और, जब आराम करते हैं, तो ऊष्मा-द्रव बाहर निकलता है। दूसरे सिद्धान्त के अनुसार, ऊष्मा गतिज शक्ति है। ये दोनों प्राक्कल्पनाएँ प्रेक्षण में आने वाले ताप-सम्बन्धी सभी नियमों की व्याख्या करती हैं। लेकिन इसका निर्णय कैसे हो कि इनमें से कौन-सी प्राक्कल्पना सत्य है और कौन-सी असत्य? **सर हंफ्री डेवी** ने एक प्रयोग किया जिसके निष्कर्ष की व्याख्या दूसरे सिद्धान्त से होती थी, पहले सिद्धान्त से नहीं। उन्होंने बर्फ़ के दो टुकड़ों को ऐसे बन्द बर्तन में रखा जिसके अन्दर-बाहर का ताप न जा सके, लेकिन उन दोनों टुकड़ों में निरन्तर रगड़ होती रहे। कुछ समय के बाद बर्तन खोल कर देखा, तो दोनों बर्फ़ के टुकड़ों का पानी हो गया था। पहली प्राक्कल्पना से तो

इस निष्कर्ष की व्याख्या नहीं होती, लेकिन दूसरी प्राक्कल्पना से इसकी व्याख्या हो जाती है। इस प्रकार इस प्रयोग ने, ऊष्मा के कैलोरिक सिद्धान्त का असत्यापन कर दिया और गतिज सिद्धान्त का समर्थन किया। इस प्रकार, यह एक निर्णायक प्रयोग था।

**प्राक्कल्पना की सरलता और प्राक्कल्पना का प्रयोग**

जब दो प्राक्कल्पनाएँ समान रूप से उसलब्ध तथ्यों की व्याख्या करती हों और उन दोनों के आधार पर समान रूप से घटनाओं का पूर्वकथन होता हो, तो उनमें से उस प्राक्कल्पना का चयन किया जाता है, जो अधिक सरल हो। सरलता का सम्बन्ध मान्यताओं के लाघव से है। जिस प्राक्कल्पना में तथ्यों की व्याख्या करने के लिए कम मान्यताओं की आवश्यकता होती है, वह उस प्राक्कल्पना से अधिक सरल होती है जिसमें अधिक मान्यताएँ की गयी हों। इस अर्थ में **कार्पनिक्स** का सिद्धान्त **टालेमी** के सिद्धान्त से अधिक सरल था और वास्तव में इसकी सरलता इसका चुनाव करने का एक प्रमुख कारण रहा है।

**टालेमी** की प्राक्कल्पना में दो मूल मान्यताएँ थीं—इसकी एक मान्यता यह थी कि सूर्य तथा अन्य सभी ग्रह पृथ्वी के इर्द-गिर्द घूमते हैं और दूसरी मान्यता यह थी कि पृथ्वी के इर्द-गिर्द ग्रहों के घूमने का मार्ग वृत्ताकार है। लेकिन जब वैज्ञानिकों ने यह देखा कि ग्रहों की गति निरन्तर वृत्ताकार मार्ग में आगे बढ़ने की नहीं होती अपितु वे अपने मार्ग में कभी-कभी पीछे की ओर गति करते हुए भी दिखायी देते हैं, तब उन्हें यह और मान्यता जोड़नी पड़ी कि ग्रह छोटे-छोटे वृत्तों (epicycles) में चक्कर लगाते हुए पृथ्वी के इर्द-गिर्द चक्कर लगाते हैं। इस प्रकार, इस सिद्धान्त में एक मान्यता के बाद दूसरी जुड़ती गयी और यह सिद्धान्त बहुत जटिल बन गया। इसके विपरीत कार्पनिक्स की इस प्राक्कल्पना के साथ कि सभी ग्रहों की गति का केन्द्र सूर्य है, केवल यह मान्यता जोड़नी पड़ी कि ग्रह सूर्य के इर्द-गिर्द दीर्घ वृत्ताकार मार्ग में घूमते हैं। इस प्रकार, यद्यपि ये दोनों प्राक्कल्पनाएँ सूर्य-ग्रहण आदि घटनाओं की भविष्यवाणी करने में समर्थ हैं, लेकिन इनमें से **कार्पनिक्स** के सिद्धान्त में लाघव है और इसलिए, इसे मान्य समझा गया।

**आगमन की अनुरूपता** (Consilience of Induction) **और प्राक्कल्पना का प्रमाण**

**व्हेवैल** के अनुसार, 'आगमन की अनुरूपता' से भी प्राक्कल्पना की सत्यता का समर्थन होता है। 'आगमन की अनुरूपता' का अर्थ विविध क्षेत्रों की घटनाओं में समानता होना है। जब एक प्राक्कल्पना से विविध क्षेत्रों की घटनाओं की व्याख्या होती हो, तो उस प्राक्कल्पना की सत्यता की सम्भावना बहुत अधिक बढ़ जाती है। उदाहरण के रूप में, गुरुत्वाकर्षण की प्राक्कल्पना से पृथ्वी पर गिरने वाली वस्तुओं की ही व्याख्या नहीं होती अपितु ग्रहों की गति, ज्वार-भाटे के नियम आदि की भी व्याख्या होती है। इस प्रकार, आगमन की एकरूपता प्राक्कल्पना की सत्यता का एक प्रबल प्रमाण है।

लेकिन आगमन की अनुरूपता भी प्राक्कल्पना की सत्यता का असंदिग्ध प्रमाण नहीं है। यह सम्भव हो सकता है कि कल को कोई ऐसी प्राक्कल्पना सूझ जाये जो गुरुत्वाकर्षण की प्राक्कल्पना भी अधिक व्यापक हो।

**निष्कर्ष :** प्राक्कल्पना का सत्यापन, उसके द्वारा सफल प्राक्कथन, ज्ञान के विशेष क्षेत्र में उसी एक प्राक्कल्पना का होना तथा उसका अधिक-से-अधिक व्यापक क्षेत्र में लागू होना, तथा अन्य प्राक्कल्पनाओं से उसका सरल होना ऐसे प्रमाण हैं जिनके आधार पर विज्ञान के क्षेत्र में एक प्राक्कल्पना को मान्य समझा जाता है। लेकिन इनमें से कोई भी एक प्रमाण अथवा ये सब प्रमाण मिलकर भी किसी प्राक्कल्पना की सत्यता का पूर्ण तार्किक प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सकते। इन प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विज्ञान के क्षेत्र में कौन-सी प्राक्कल्पना मान्य होनी चाहिये। इनके आधार पर किसी प्राक्कल्पना के बारे में यह दावा नहीं किया जा सकता कि वह निश्चिततः सत्य है और आगे के अनुसन्धान उसमें कोई संशोधन नहीं कर सकते। यहाँ हमें यह फिर स्मरण रखना चाहिये कि वैज्ञानिक प्रणाली तथ्यात्मक ज्ञान को अधिक-से-अधिक प्रमाणित बनाने की प्रणाली है और इसमें यह मानकर चला जाता है कि उपलब्ध ज्ञान में आगे संशोधन हो सकता है। वैज्ञानिक प्रणाली निरन्तर विकासशील प्रणाली है।

## 3. उपयुक्त प्राक्कल्पना की विशेषताएँ

## (Characteristics of a valid or legitimate hypothesis)

यहाँ अब यह विचारणीय विषय रहता है कि किस प्राक्कल्पना को उपयुक्त प्राक्कल्पना कहा जायेगा। उपयुक्त प्राक्कल्पना का अर्थ सत्य प्राक्कल्पना नहीं है, बल्कि ऐसी प्राक्कल्पना है जो खोज को आगे बढ़ाती हो। एक असत्य प्राक्कल्पना भी खोज को आगे बढ़ाने में सहायक हो सकती है। एक उपयुक्त प्राक्कल्पना में, अर्थात् ऐसी प्राक्कल्पना में, जो खोज में उपयोगी है, निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहियें :

1. **प्राक्कल्पना तथ्यों के प्रेक्षण पर आधारित होनी चाहिये।** प्राक्कल्पना कोरी कल्पना नहीं होती। इसका उद्देश्य तथ्यों की व्याख्या करना होता है। इसलिए, उपयुक्त प्राक्कल्पना वही हो सकती है जो तथ्यों के प्रेक्षण पर आधारित हो। मान लीजिए, दक्षिण भारत के किसी नगर में, एक सप्ताह के अन्दर हजारों व्यक्तियों के मरने का समाचार देहली के स्वास्थ्य विशेषज्ञ पढ़ते हैं। यदि वे उस नगर की वास्तविक परिस्थितियों का, वहाँ के जल तथा खाद्य-सामग्री का, मरने वाले व्यक्तियों के घरों तथा मौहल्लों का ठीक प्रेक्षण किये बिना ही, इन मृत्युओं की व्याख्या करने के लिए कोई प्राक्कल्पना बना लेते हैं, तो वह प्राक्कल्पना अनुपयुक्त प्राक्कल्पना होगी। लेकिन जो प्राक्कल्पना वहाँ की परिस्थितियों के प्रेक्षण पर आधारित होगी वह उपयुक्त प्राक्कल्पना समझी जायेगी।

2. **प्राक्कल्पना निश्चित होनी चाहिये।** अनिश्चित प्राक्कल्पना निरर्थक होती है। उस प्राक्कल्पना को अनिश्चित प्राक्कल्पना कहेंगे जिसका मेल प्रत्येक तथ्य के साथ खींच-तान कर बैठाया जा सकता हो और इस प्रकार जिसका खण्डन सम्भव न हो। मान लीजिए, एक दिन फाल्गुन मास में अचानक कुरुक्षेत्र में शीत लहर अनुभव होने लगती है। इसकी व्याख्या के लिए यह प्राक्कल्पना कि कहीं बर्फ़ या ओले पड़े हैं अनिश्चित प्राक्कल्पना होगी और इसलिए यह निरर्थक होगी। लेकिन इसकी व्याख्या के लिए यह प्राक्कल्पना कि शिमला में बर्फ़ पड़ी है, निश्चित होगी। यदि शिमला में बर्फ़ नहीं पड़ी है, तो दूसरी प्राक्कल्पना तो ग़लत सिद्ध हो जाती है, लेकिन पहली प्राक्कल्पना, शिमला में, मंसूरी में अथवा भारत के किसी भी कोने में बर्फ़ न पड़ने पर भी ग़लत सिद्ध नहीं होती क्योंकि भारत से बाहर भी कहीं बर्फ़ पड़ सकती है।

3. **जिन तथ्यों की व्याख्या के लिए, एक प्राक्कल्पना बनायी गयी है उनकी उस प्राक्कल्पना से व्याख्या होनी चाहिये।** इसका भाव यह है कि प्राक्कल्पना प्रासंगिक (relevant) होनी चाहिये, वह अप्रासंगिक (irrelevant) नहीं होनी चाहिये। मान लीजिए, परीक्षा के दिनों में एक विद्यार्थी शाम के समय एक दिन पेट में दर्द अनुभव करता है। यदि डाक्टर, उसके कारण के सम्बन्ध में उससे यह प्रश्न करे कि क्या तुम्हारा पर्चा ख़राब हुआ है, तो इस प्रश्न को अप्रासंगिक ही कहा जायेगा। पर्चे के ख़राब होने अथवा ठीक होने से पेट के दर्द का कोई सम्बन्ध नहीं बनता। पेट के दर्द की व्याख्या न तो पर्चा अच्छा होने से होती है और न पर्चा ख़राब होने से होती है। लेकिन विद्यार्थी के पीले चेहरे को देखकर, यदि डाक्टर यह प्राक्कल्पना बनाता है कि उसके पेट में 'हुकवर्म' हैं तो इस प्राक्कल्पना को प्रासंगिक कहेंगे, क्योंकि इससे पेट के दर्द की व्याख्या होती है, भले ही यह प्राक्कल्पना बाद में ग़लत सिद्ध हो जाये।

4. **प्राक्कल्पना पहले से निश्चित नियमों के विरुद्ध नहीं होनी चाहिये।** प्रत्येक प्राक्कल्पना का मूल्यांकन, उपलब्ध ज्ञान के सन्दर्भ में होता है। यदि विज्ञान का एक विद्यार्थी किसी तथ्य की व्याख्या के लिए, ऐसी प्राक्कल्पना बनाता है जो गुरुत्वाकर्षण के नियम के अथवा **गैलिलियो** के पृथ्वी के निकट भाग में ऊपर से नीचे की ओर वस्तुओं के पतन के नियम के विरुद्ध है, तो उस प्राक्कल्पना को कोई महत्त्व नहीं दिया जायेगा।

यह नियम प्राक्कल्पना के निर्माण के सम्बन्ध में केवल सावधानी का नियम है। इसका भाव केवल यह है कि जो नियम तथा सिद्धान्त विज्ञान के क्षेत्र में प्रतिष्ठित हैं, उनकी विरोधी प्राक्कल्पना बनाने की उतावली नहीं करनी चाहिये। एक अनुसन्धान-कर्ता को अपने क्षेत्र के अर्जित ज्ञान से, उसमें स्थापित नियमों तथा सिद्धान्तों से परिचित होना चाहिये। लेकिन यदि एक अनुसन्धानकर्ता यह अनुभव करता है कि पूर्व स्थापित सिद्धान्त तथ्यों की ठीक व्याख्या नहीं करते हैं, तो वह उनकी विरोधी प्राक्कल्पना बनाने का अधिकार रखता है। **कैप्लर** के अनुसन्धानों से पहले विज्ञान के क्षेत्र में यह सिद्धान्त प्रचलित था कि ग्रह वृत्ताकार कक्ष में सूर्य के इर्द-गिर्द घूमते हैं। लेकिन, इस

सिद्धान्त में कठिनाइयों का अनुभव करने के बाद, कैप्लर ने अपनी यह प्राक्कल्पना प्रस्तुत की कि ग्रह दीर्घ-वृत्ताकार कक्ष में घूमते हैं। यदि पूर्व प्रतिष्ठित सिद्धान्तों की विरोधी प्राक्कल्पना न बनतीं तो विज्ञान का विकास ही न होता। टालेमी का यह सिद्धान्त कि सूर्य और ग्रह पृथ्वी के इर्द-गिर्द घूमते हैं, अपने समय में बहुत प्रतिष्ठित था, लेकिन इसके बिल्कुल विपरीत, कार्पनिक्स ने यह सिद्धान्त बनाया कि पृथ्वी और ग्रह सूर्य के इर्द-गिर्द घूमते हैं। इसलिए, इस नियम का सार केवल यह है कि पूर्व प्रतिष्ठित सिद्धान्तों की विरोधी प्राक्कल्पना बनाते समय बहुत सावधानी बरतनी चाहिये।

5. **प्राक्कल्पना सत्यापन योग्य होनी चाहिये :** उपयोगी प्राक्कल्पना की यह सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है। यह बात पहले बतायी जा चुकी है कि विज्ञान के क्षेत्र में जो प्राक्कल्पनाएँ महत्त्वपूर्ण होती हैं उनका सत्यापन सीधे प्रत्यक्ष द्वारा नहीं हो सकता, अपितु निगमन और प्रयोग की सम्मिलित विधि से अपरोक्ष ढंग से हो सकता है।

**न्यूटन** की गुरुत्वाकर्षण की इस प्राक्कल्पना का कि "इस ब्रह्माण्ड में प्रत्येक वस्तु अन्य दूसरी वस्तुओं को अपनी ओर उस बल से आकर्षित करती है जो उन वस्तुओं की संहति (mass) के गुणनफल का अनुक्रमानुपाती (directly propoitional) और उनके बीच की दूरी के वर्ग का व्युत्क्रमानुपाती (inversely propositional) होता है," सीधे प्रत्यक्ष द्वारा सत्यापन सम्भव नहीं। लेकिन गणित की जटिल निगमनात्मक प्रक्रिया द्वारा इससे ऐसे निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं जो प्रेक्षणीय हों। इस प्रकार, इसका परोक्ष सत्यापन सम्भव हो सकता है। लेकिन जिन प्राक्कल्पनाओं से, उन तथ्यों के अलावा जिनके लिए वे बनी हैं, कोई अन्य निष्कर्ष ही नहीं निकाला जा सकता, वे बिल्कुल अनुपयोगी प्राक्कल्पनाएँ होती हैं। 'संसार में प्रत्येक घटना परमात्मा के आदेश से होती है' इस प्राक्कल्पना से कोई नया निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। जिन प्राक्कल्पनाओं से कोई नया निष्कर्ष नहीं निकल सकता, वे निष्फल प्राक्कल्पनाएँ (berran hypothesis) कहलाती हैं। सूर्य-ग्रहण राहु, केतु नामी राक्षसों के द्वारा सूर्य-देवता को दबाने के कारण होता है, पृथ्वी गाय के सींग पर टिकी है और जब गाय एक सींग से दूसरे सींग पर पृथ्वी को बदलती है तो भूचाल आते हैं, स्वप्न आत्मा के विचरण से पैदा होते हैं, आदि प्राक्कल्पनाएँ निष्फल प्राक्कल्पनाएँ हैं, इनका प्रत्यक्ष या परोक्ष सत्यापन नहीं हो सकता, इनसे कोई निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते।

## 4. प्राक्कल्पना के विविध प्रकार

प्राक्कल्पना के दो प्रमु प्रकार हैं : (अ) वर्णनात्मक प्राक्कल्पना (Descriptive hypothesis) और (आ) व्याख्यात्मक प्राक्कल्पना (Explanatery hypothesis)।

**वर्णनात्मक प्राक्कल्पना :** वर्णनात्मक प्राक्कल्पना विशेष दृष्टान्तों के प्रेक्षण पर आधारित सामान्यीकरण के रूप में होती हैं। ये प्राक्कल्पनाएँ इस प्रश्न का उत्तर देती हैं

कि क्या है अथवा क्या होता है। इन प्राक्कल्पनाओं में किसी अदृष्ट तत्त्व की कल्पना नहीं होती। इनमें केवल दृष्ट बातों का ही सामान्यीकरण होता है। उदाहरण के रूप में, कुछ उदाहरणों में यह देखकर कि जुगाल करने वाले पशुओं के खुर फटे होते हैं यह प्राक्कल्पना बनाना कि "सब जुगाल करने वाले पशुओं के खुर फटे-होते हैं" वर्णनात्मक प्राक्कल्पना बनाना होगा।

**व्याख्यात्मक प्राक्कल्पना :** व्याख्यात्मक प्राक्कल्पना वे होती हैं जो घटनाओं के सम्बन्ध में "कैसे" तथा "क्यों" के प्रश्नों का उत्तर प्रस्तुत करती हैं। व्याख्यात्मक प्राक्कल्पनाएँ दृष्टव्य कारण-सम्बन्धी हो सकती हैं और नियम-सम्बन्धी भी। कारण-सम्बन्धी प्राक्कल्पनाएँ अथवा कल्पित कारण से सम्बन्ध रखती हैं। **नेप्चून** ग्रह के परिगणित मार्ग से विचलन की व्याख्या करने के लिए अज्ञात ग्रह के सम्बन्ध में जो प्राक्कल्पना बनायी थी, वह ऐसे कारण के बारे में थी जिसका प्रत्यक्ष सम्भव था। लेकिन विज्ञान में कारण सम्बन्धी अनेकों प्राक्कल्पनाएँ ऐसे कारणों के बारे में होती हैं जिनका प्रत्यक्ष सम्भव नहीं होता। ईथर, इलेक्ट्रॉन, हीनता की मानसिक ग्रन्थि (inferiority complex) की प्राक्कल्पनाएँ ऐसे तत्त्वों के बारे में हैं जिनका प्रत्यक्ष सम्भव नहीं है। प्रत्यक्ष में न आ सकने वाले तत्त्वों की कारण के रूप में प्राक्कल्पनाओं को प्रतिनिध्यात्मक प्राक्कल्पनाएँ (representative fiction) कहा जाता है। इस प्रकार ईथर, इलेक्ट्रॉन आदि की प्राक्कल्पनाएँ प्रतिनिध्यात्मक प्राक्कल्पनाएँ हैं। नियम सम्बन्धी प्राक्कल्पनाएँ किसी तत्त्व अथवा कारक के बारे में प्राक्कल्पनाएँ नहीं होतीं अपितु ये ज्ञात तत्त्वों के सम्बन्धों, तथा क्रिया-प्रतिक्रिया के रूप के बारे में होती हैं। उदाहरण के रूप में **केप्लर** की यह प्राक्कल्पना कि ग्रह सूर्य के इर्द-गिर्द दीर्घ-वृत्ताकार मार्ग में घूमते हैं, एक नियम-सम्बन्धी प्राक्कल्पना है। इसी प्रकार **न्यूटन** की गुरुत्वाकर्षण की प्राक्कल्पना नियम-सम्बन्धी प्राक्कल्पना है।

## 5. प्राक्कल्पना, सिद्धान्त, नियम तथा तथ्य

**प्राक्कल्पना और सिद्धान्त :** "प्राक्कल्पना", "सिद्धान्त", "नियम" तथा "तथ्य" शब्दों का अर्थ बहुत स्पष्ट और निश्चित नहीं है। अनुभव में आने वाली किसी घटना की अथवा प्रयोगों द्वारा निश्चित सीमित अनुभवात्मक नियम की व्याख्या करने के लिए जो विचार सूझता है, वह प्राक्कल्पना कहलाता है। प्राक्कल्पना की विशेषता यह है कि इसकी सत्यता/असत्यता का निश्चय आगे प्रमाणों द्वारा करना होता है। जब एक प्राक्कल्पना का सत्यापन हो जाता है अर्थात् जब यह निश्चित हो जाता है कि उससे उपलब्ध तथ्यों की व्याख्या होती है, तो वह प्राक्कल्पना सिद्धान्त कहलाने लगती है। सिद्धान्त का स्वरूप प्राक्कल्पना से अधिक विकसित होता है। प्राक्कल्पना में जो जो बातें निहित होती हैं, उनका स्पष्ट कथन सिद्धान्त के रूप में किया जाता है। उदाहरण के रूप में, मानसिक रोगों की व्याख्या करने के लिए **फ्रायड** को यह विचार सूझा कि मानसिक रोगों का कारण अचेतन मन में दबी हुई काम प्रवृत्तियाँ हैं। यह विचार एक प्राक्कल्पना

था । बाद में **फ्रायड** ने इस प्राक्कल्पना का विस्तार किया, इसका निहितार्थ स्पष्ट किया, इसमें अन्य अनेक प्राक्कल्पनाएँ जोड़कर इसका संशोधन तथा परिवर्धन किया और तब अचेतन मन की फ्रायडीय प्राक्कल्पना, फ्रायडीय सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध हुई । इस प्रकार सिद्धान्त प्राक्कल्पना का परिवर्धित तथा प्रमाणों द्वारा पुष्ट रूप है ।

प्राक्कल्पना और सिद्धान्त में यह अन्तर होते हुए भी कि सिद्धान्त प्राक्कल्पना से अधिक विकसित, अधिक विस्तृत तथा प्रमाणों द्वारा अधिक समर्थित होता है, इन दोनों के बीच निश्चित विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती । हम यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि कब एक प्राक्कल्पना सिद्धान्त बनी । यही कारण है कि जिस बात को कुछ लोग प्राक्कल्पना कहते हैं उसी को कुछ लोग सिद्धान्त भी कह देते हैं । 'फ्रायडीय प्राक्कल्पना' और 'फ्रायडीय सिद्धान्त' दोनों का प्रयोग प्रायः एक ही बात का कथन करने के लिए किया जाता है ।

**सिद्धान्त और नियम :** प्राक्कल्पना अथवा सिद्धान्त तथ्यों की सर्वमान्य व्याख्या नहीं होते । एक ही साथ विरोधी प्राक्कल्पनाएँ तथा विरोधी सिद्धान्त प्रचलित हो सकते हैं । जिस सिद्धान्त का कोई प्रतिद्वन्द्वी सिद्धान्त न रहे और जो सर्वमान्य निश्चित सिद्धान्त बन जाये उसे प्रायः नियम (law) कहते हैं । जैसे, **न्यूटन** का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त गुरुत्वाकर्षण का नियम कहा जाता है । लेकिन, यह अन्तर भी बहुत स्पष्ट नहीं है । **आइन्स्टाइन** का सापेक्षता सिद्धान्त **न्यूटन** के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त से अधिक विकसित और अधिक प्रमाणित होने पर भी 'सिद्धान्त' नाम से ही विख्यात है जबकि **न्यूटन** का सिद्धान्त नियम के नाम से प्रतिष्ठित है ।[1]

**तथ्य :** जो वस्तु-स्थिति है वह तथ्य है । तथ्य का विपरीत काल्पनिक है । लेकिन वस्तु-स्थिति अर्थात् तथ्य क्या है और क्या नहीं है, यह कैसे निश्चित किया जाये ? कुछ सीमा तक तो यह बात मान्य है कि जो बात प्रत्यक्ष द्वारा सीधे प्रमाणित होती है, वह तथ्य है । इस प्रकार में कह सकता हूँ कि मेरे हाथ में इस समय कलम है यह एक तथ्य है । मेरे हाथ में इस समय तलवार नहीं है, यह भी एक तथ्य है जिसे हम अभावात्मक तथ्य कहेंगे । लेकिन कुछ सीमा के बाद केवल उन्हीं बातों को तथ्य कहना जो प्रत्यक्ष द्वारा प्रमाणित होती हैं, ठीक नहीं समझा जायेगा । उदाहरण के रूप में, अब हम यह नहीं मान सकते कि 'पृथ्वी चपटी है' यह एक तथ्य है । बल्कि यह कहते हैं कि 'पृथ्वी गोलाकार है', यह तथ्य है । लेकिन पृथ्वी का गोलाकार रूप प्रत्यक्ष में नहीं आता । वास्तव में "पृथ्वी गोलाकार है" यह एक प्राक्कल्पना अथवा सिद्धान्त था लेकिन अब यह एक तथ्य समझा जाता है । इस प्रकार, जो बात कभी केवल एक प्राक्कल्पना होती है, वह असंदिग्ध रूप में प्रमाणित होने पर तथ्य बन जाती है ।

---

1. नियम और सिद्धान्त के अन्तर के लिए देखिये : अध्याय 28 अनुच्छेद 5.

## 6. विज्ञान के क्षेत्र में प्राक्कल्पना का महत्त्व

वैज्ञानिक प्रणाली में प्राक्कल्पना के महत्त्व के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न तर्कशास्त्रियों में मतभेद रहा है। **बेकन और मिल** ने वैज्ञानिक प्रणाली में जहाँ सबसे अधिक महत्त्व प्रेक्षण और प्रयोग को दिया है, वहाँ **विलियम ह्वेवैल** (1794—1866) ने प्राक्कल्पना को महत्त्व दिया है। **विलियम ह्वेवैल मिल** के समाकालीन थे। इन दोनों में एक लम्बी अवधि तक वैज्ञानिक प्रणाली के स्वरूप के सम्बन्ध में वाद-विवाद चलता रहा। वैज्ञानिक प्रणाली के आधुनिक अध्ययन से यह निश्चित होता है कि इसके तीन महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं—प्रेक्षण और प्रयोग, प्राक्कल्पना तथा निगमन द्वारा प्राक्कल्पना का विस्तार और सत्यापन। इस सम्बन्ध में, इस विवाद में पड़ना कि इनमें से कौन-सा तत्त्व सबसे अधिक महत्त्व का है व्यर्थ है। हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि ये तीनों तत्त्व आवश्यक हैं।

वैज्ञानिक खोज में प्राक्कल्पनाओं की निरर्थकता बताने के लिए प्रायः यह तर्क दिया जाता है कि विज्ञान के इतिहास में हम एक के बाद दूसरी प्राक्कल्पना को ढहते हुए देखते हैं, इसलिए प्राक्कल्पनाओं का सत्य की खोज में कोई महत्त्व नहीं है। लेकिन यह गुमराह करने वाला तर्क है। जो प्राक्कल्पना असत्य सिद्ध हो जाती है, वह भी व्यर्थ नहीं जाती। वह भी वैज्ञानिक अनुसन्धान को आगे बढ़ाती है, नये-नये तथ्यों का उद्घाटन करने में सहायक होती है और अन्त में अपने से भी बेहतर प्राक्कल्पना का मार्ग तैयार करती है। जब एक नयी प्राक्कल्पना के सूझने पर किसी पुरानी प्राक्कल्पना को असत्य मानकर छोड़ देते हैं, तो हमें यह नहीं समझना चाहिये कि वह पुरानी प्राक्कल्पना निरर्थक थी। वह तो अपना काम कर चुकी होती है। आज हम **टालेमी** की इस प्राक्कल्पना को नहीं मानते कि पृथ्वी स्थिर है और आकाशीय पिण्ड इसके इर्द-गिर्द घूमते हैं। लेकिन यह नहीं कह सकते कि यह निरर्थक थी।

सत्य की खोज की इसके अलावा और कोई वैज्ञानिक विधि ही नहीं है कि प्राक्कल्पनाएँ बनायी जायें और उनका परीक्षण किया जाये। वास्तव में, जैसा कि हम पहले भी प्रकट कर चुके हैं, वैज्ञानिक को इस बात को स्वीकार करने में हीनता की भावना नहीं होती, अपितु गर्व होता है, कि वह नये तथ्यों के मिलने पर प्रतिष्ठित प्राक्कल्पना को छोड़ने को भी तैयार रहता है।

वैज्ञानिक प्रणाली में प्राक्कल्पना का महत्त्व इसके कार्यों पर विचार करने से स्पष्ट हो जायेगा। संक्षेप में, प्राक्कल्पना के निम्नलिखित कार्य हैं:

1. **प्रेक्षण का निदेशन** : प्राक्कल्पना से प्रेक्षण का निर्देशन होता है। वैज्ञानिक खोज तथ्यों के संग्रह से प्रारम्भ होती है और तथ्यों का संग्रह प्रेक्षण से ही हो सकता है। लेकिन संसार में अनन्त तथ्य हैं। उनमें से कौन-से तथ्य प्रासंगिक हैं और कौन-से अप्रासंगिक—इसका निश्चय किये बिना प्रेक्षण आगे नहीं बढ़ सकता और इसका निश्चय खोज पूरा होने से पहले नहीं हो सकता। इसलिए, तथ्यों का प्रेक्षण करने से

पहले उनकी प्रासंगिकता के बारे में वैज्ञानिक को कोई न कोई प्राक्कल्पना बनानी पड़ती है। प्रयोग करने से पहले भी प्राक्कल्पना बनायी जाती है और फिर बाद में प्रयोग द्वारा उसकी सत्यता की जाँच होती है।

2. **प्राक्कल्पना सामान्यीकरण में सहायक है** : विज्ञान का उद्देश्य सामान्य नियमों की खोज है। लेकिन सामान्य नियम प्रत्यक्ष का विषय नहीं होते। विशेष तथ्यों के प्रेक्षण के आधार पर सामान्य नियमों की पहले प्राक्कल्पना ही की जा सकती है। जो बात दृष्ट दृष्टान्तों में लागू होती है, वह अदृष्ट दृष्टान्तों में भी लागू होगी, यह सामान्यीकरण प्रारम्भ में एक प्राक्कल्पना के रूप में ही किया जाता है। सामान्यीकरण के बिना भी खोज आगे नहीं बढ़ सकती और सामान्यीकरण का प्रारम्भिक रूप प्राक्कल्पना होता है। इस प्रकार, प्राक्कल्पना वैज्ञानिक खोज का आधार है।

3. **प्राक्कल्पना का एक अन्य प्रमुख कार्य तथ्यों तथा अनुभवात्मक नियमों की व्याख्या है** । वैज्ञानिक व्याख्या में अनेक ऐसे तत्त्वों की प्राक्कल्पना की जाती है जिनका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। यदि वैज्ञानिक ऐसे तत्त्वों की प्राक्कल्पना न करते तो विभिन्न वैज्ञानिक सिद्धान्तों की रचना न होती और वैज्ञानिक ज्ञान सुव्यवस्थित तन्त्र के रूप में न होता। प्राक्कल्पना से तथ्यों की तथा नियमों की व्याख्या होती है, इससे सभी अनुभवात्मक विचार-सामग्री एक सुव्यवस्थित तन्त्र में बंधती है।

संक्षेप में, वैज्ञानिक खोज का पथ-प्रदर्शन और तथ्यों की व्याख्या प्राक्कल्पना के दो प्रमुख कार्य हैं।

## अभ्यास

1. आगमनात्मक प्रक्रिया के विभिन्न चरणों की व्याख्या कीजिये और इसमें प्राक्कल्पना के महत्त्व पर प्रकाश डालिये।

2. प्राक्कल्पना के सत्यापन पर टिप्पणी लिखिये। क्या प्राक्कल्पना का सत्यापन ही उसकी सत्यता का पूर्ण प्रमाण है ? स्पष्ट कीजिये।

3. किसी प्राक्कल्पना की सत्यता का पूर्ण तार्किक प्रमाण कब माना जायेगा ? इस प्रमाण का तार्किक स्वरूप स्पष्ट कीजिये और सत्यापन और पूर्ण प्रमाण के तार्किक स्वरूप का अन्तर स्पष्ट कीजिये।

4. क्या वैज्ञानिक खोज में निगमनात्मक तर्क की भी आवश्यकता होती है ? यदि होती है, तो किस अवस्था में ? स्पष्ट कीजिये।

5. इस बात को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये कि वैज्ञानिक प्रणाली आगमनात्मक-निगमनात्मक है।

6. "प्राक्कल्पना की सरलता" और "आगमन की अनुरूपता" से आप क्या समझते हैं ? किसी प्राक्कल्पना की सत्यता पुष्ट करने में इनका क्या महत्त्व है ?

7. "निर्णायक दृष्टान्त" किसे कहते हैं ? इनका स्वरूप स्पष्ट कीजिये और किसी प्राक्कल्पना की सत्यता प्रमाणित करने के सम्बन्ध में इनके महत्त्व पर प्रकाश डालिये ।

8. वर्णनात्मक प्राक्कल्पना और व्याख्यात्मक प्राक्कल्पना का अन्तर उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये ।

9. "प्राक्कल्पना", "सिद्धान्त", "नियम" तथा "तथ्य" का अर्थ स्पष्ट कीजिये ।

10. प्राक्कल्पना किसे कहते हैं ? उपयुक्त प्राक्कल्पना की विशेषताओं पर उदाहरण सहित प्रकाश डालिये ।

11. प्राक्कल्पना के महत्त्व पर टिप्पणी लिखिये । क्या असत्य प्राक्कल्पना बिल्कुल निरर्थक होती है ? प्राक्कल्पना के कार्यों का विवेचन कीजिये ।

# 28

# विशुद्ध विज्ञान और आनुभविक विज्ञान

संकुचित अर्थ में "विज्ञान" शब्द का प्रयोग आनुभविक-विज्ञानों (empirical sciences) के लिए ही किया जाता है। लेकिन व्यापक अर्थ में विज्ञान के क्षेत्र में आनुभविक-विज्ञान और विशुद्ध-विज्ञान (pure science) दोनों प्रकार के विज्ञान आते हैं। विज्ञान की यह परिभाषा कि "विज्ञान तन्त्रबद्ध ज्ञान है", विशुद्ध-विज्ञान और आनुभविक-विज्ञान दोनों पर लागू होती है। इन दोनों प्रकार के विज्ञानों का स्वरूप समझना आवश्यक है।

## 1. विशुद्ध-विज्ञान
## (Pure Science)

विशुद्ध-विज्ञान की सबसे पहली विशेषता यह है कि इसकी विषय-सामग्री अनुभव द्वारा प्राप्त नहीं होती। उदाहरण के रूप में, गणित और निगमनात्मक तर्कशास्त्र विशुद्ध-विज्ञान हैं। इनकी विषय-सामग्री अनुभव पर आश्रित नहीं है। जिस प्रकार, रंग की संवेदना आँखों से होती है, ध्वनि की संवेदना कानों से होती है, और रस की संवेदना जीभ से होती है, उसी प्रकार शून्य, एक, दो, तीन आदि संख्याओं का ज्ञान किसी विशेष ज्ञानेन्द्रिय द्वारा संवेदनाओं के रूप में नहीं होता। शून्य, एक, दो, तीन, आदि संख्याएँ बाह्य वस्तुएँ या गुण नहीं हैं अपितु बुद्धि द्वारा कल्पित प्रत्यय हैं। एक विशुद्ध-विज्ञान में कल्पित मूल प्रत्ययों के अलावा उन सम्बन्धों तथा संक्रियाओं की भी कल्पना की जाती है, जिनके द्वारा प्रत्ययों से प्रतिज्ञप्तियाँ निर्मित हो सकती हैं। इस प्रकार गणित में $\times$, $\div$, $+$, $-$, आदि संक्रियाओं और '$=$' (सर्व-सामिका) आदि सम्बन्धों की कल्पना की जाती है। इस प्रकार, '$2+2=4$' एक गणितीय कथन है। इस कथन की रचना के सभी तत्त्व, 2, $+$, $=$, 4 कल्पित तत्त्व हैं, ये बुद्धि द्वारा निर्मित तत्त्व हैं, ज्ञानेन्द्रियों द्वारा संवेदनीय तत्त्व नहीं हैं। क्योंकि इस कथन का कोई भी तत्त्व संवेदनीय नहीं है, इसलिए अनुभव द्वारा इसका सत्यता या असत्यता स्थापित करने का प्रश्न नहीं उठता। यह कथन सत्य है, लेकिन इस अर्थ में सत्य नहीं है जिस अर्थ में 'पानी नीचे की ओर बहता है' सत्य है।

**अभिगृहीत** (Axioms) **और प्रमेय** (Theorems) : एक विशुद्ध-विज्ञान के कथनों या प्रतिज्ञप्तियों को, दो वर्गों में रखा जाता है—(1) अभिगृहीत और (2) प्रमेय। अभिगृहीत वे प्रतिज्ञप्तियाँ हैं जिनका सत्य बिना किसी तार्किक प्रमाण के स्वीकार कर लिया जाता है। प्रमेय वे कथन हैं जिन्हें अभिगृहीतों से निगमित किया जा सकता है और इस प्रकार जिनकी सत्यता की उपपत्ति (proof) प्रस्तुत की जा सकती है।

अभिगृहीत और प्रमेय का सम्बन्ध हैं। अभिगृहीत वे प्रतिज्ञप्तियाँ हैं जिनसे अन्य प्रतिज्ञप्तियाँ निकाली जा सकती हैं और जो प्रतिज्ञप्तियाँ अभिगृहीतों से निकाली जा सकती हैं वे प्रमेय कहलाती हैं। एक प्रमेय अभिगृहीतों से कैसे निकलता है, यह बात सदा बहुत स्पष्ट नहीं होती। इसलिए, इसे स्पष्ट करने की आवश्यकता होती है।

एक प्रमेय अभिगृहीतों से कैसे निगमित होता है, इसे स्पष्ट करना प्रमेय की उपपत्ति (proof) प्रस्तुत करना समझा जाता है। उपपत्ति प्रमेय की होती है। अभिगृहीतों से प्रमेय तक निगमन के जितने चरण बनते हैं उन सब चरणों को क्रम से प्रस्तुत करते हुए अभिगृहीतों से प्रमेय का निगमित होना दिखाना प्रमेय की उपपत्ति माना जाता है।

एक विशुद्ध-विज्ञान में सभी प्रतिज्ञप्तियाँ निगमन-तन्त्र (deductive system) में बंधी होती हैं। वे या तो निगमन की मूल आधारिकाएँ होती हैं और या उनसे निगमित निष्कर्ष होती हैं। वे या तो अभिगृहीत होती हैं या प्रमेय और उपप्रमेय होती हैं। इस प्रकार, एक विशुद्ध-विज्ञान निगमन-तन्त्र होता है। यूक्लियद ज्यामिति एक निगमन-तन्त्र है। यह अभिगृहीतों और प्रमेयों की निगमनात्मक व्यवस्था है। अरस्तू का वर्ग तर्कशास्त्र एक अन्य निगमन-तन्त्र है। आधुनिक समुच्चय-सिद्धान्त (set theory) एक अन्य निगमन-तन्त्र है।

निगमन-तन्त्र की सशक्तता (rigor) आत्म-संगति पर निर्भर करती है। विशुद्ध-विज्ञान का निगमन-तन्त्र जगत् के वास्तविक स्वरूप को प्रतिबिम्बित नहीं करता। इस प्रकार यह विशुद्ध परिकल्पनात्मक-तन्त्र (theoretical system) होता है, जिसके सभी तत्त्व परिकल्पित होते हैं।

दो निगमनात्मक-तन्त्रों में से एक की अपेक्षा दूसरे को अधिक पसन्द करने का आधार दूसरे तन्त्र की अधिक सशक्तता (rigor) और उसकी अधिक व्यापकता (generality) होती है। उदाहरण के रूप में अरस्तू के वर्ग तर्कशास्त्र की अपेक्षा आधुनिक वर्ग तर्कशास्त्र को इसलिए पसन्द करते हैं कि दूसरे में पहले से अधिक आत्म-संगति है और वह अधिक व्यापक है। अरस्तू के तर्कशास्त्र में कुछ असंगतियाँ हैं। उदाहरण के रूप में, अरस्तू के विरोध-चतुरस्र (square of opposition) में असंगतियाँ हैं। लेकिन ऐसी कोई असंगति आधुनिक वर्ग तर्कशास्त्र में नहीं है। दूसरे, आधुनिक वर्ग तर्कशास्त्र के अन्तर्गत अरस्तु के वर्ग तर्कशास्त्र की मूल बातें समाहित हो जाती हैं।

संक्षेप में, विशुद्ध-विज्ञान की विषय-सामग्री परिकल्पित होती है और इसकी प्रणाली निगमनात्मक (deductive) होती है।

## 2. आनुभविक-विज्ञान
## (Empirical Science)

आनुभविक-विज्ञान आनुभविक तथ्यों (empirical facts) को क्रमबद्ध करके उन्हें एक तन्त्र (system) के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। आनुभविक-विज्ञान का प्रारम्भिक बिन्दु प्रेक्षण द्वारा तथ्यों का संग्रह है और इसका लक्ष्य ऐसे सुव्यवस्थित तन्त्र की स्थापना है जो अपनी आन्तरिक रचना की दृष्टि से निगमनात्मक-तन्त्र हो लेकिन जिसमें सत्यता की अन्तिम कसौटी अनुभव हो। सभी विज्ञान इस स्तर तक पहुँचे हुए नहीं हैं। लेकिन सब विज्ञानों का आदर्श यही है।

**विज्ञान के दो उद्देश्य**

आनुभविक-विज्ञान के दो प्रमुख उद्देश्य हैं—(1) प्रकृति को समझना, (2) प्रकृति पर नियन्त्रण प्राप्त करना। इनमें से पहला उद्देश्य केवल जिज्ञासा से सम्बन्धित है, जबकि दूसरा उद्देश्य व्यावहारिक आवश्यकताओं से सम्बन्धित है। हम प्रकृति पर नियन्त्रण इसलिए प्राप्त करना चाहते हैं कि वांछित घटनाओं, जैसे अच्छी फसल, को पैदा कर सकें और अवांछित घटनाओं, जैसे, महामारी, अकाल, आदि से बचा जा सके। लेकिन मानव केवल व्यावहारिक आवश्यकताओं से प्रेरित होकर ही वैज्ञानिक खोजों के लिए प्रवृत्त नहीं होता, वह प्रकृति को समझने के लिए भी प्रवृत्त होता है। प्रकृति को समझने का अर्थ प्रकृति की घटनाओं की व्याख्या करना है। जो घटनाएँ घटती दिखायी देती हैं, वे कैसे घटती हैं, उनके घटने के क्या नियम हैं, घटनाएँ एक विशेष नियम से ही क्यों घटती हैं, आदि प्रश्नों का उत्तर जानना भी विज्ञान का काम है। बिजली की चमक के बाद सदा बादलों की गड़गड़ाहट सुनायी देती है। लोहे को नमी से जंग लग जाती है। सब ग्रह दीर्घ-वृत्ताकार मार्ग में सूर्य के इर्द-गिर्द घूमते हैं, आदि अनेक सामान्य नियम अनुभव सिद्ध हैं। ये नियम क्यों लागू होते हैं? क्या इनके पीछे भी कोई अधिक व्यापक नियम है? विज्ञान अधिक-से-अधिक व्यापक नियमों की खोज करता है जिससे अनुभव द्वारा सीमित व्यापकता वाले नियमों को एक तन्त्र में, एक व्यवस्था में बांधा जा सके। विज्ञान का यह प्रमुख काम है। सामान्य नियमों के ज्ञान के आधार पर ही भविष्यत् की घटनाओं का पूर्वकथन सम्भव है और घटनाओं का पूर्वकथनात्मक ज्ञान होने पर ही उन पर नियन्त्रण सम्भव है। विज्ञान अपने मूल रूप में साध्य-मूल्य है, यह ज्ञान के लिए ज्ञान प्राप्त करना है, लेकिन गौण रूप में यह साधन-मूल्य है; यह मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के उपकरण तैयार करने का एक साधन है।

**विशुद्ध-विज्ञान और आनुभविक-विज्ञान में अन्तर**

आनुभविक-विज्ञान के सम्बन्ध में कुछ और कहने से पहले यहाँ आनुभविक-विज्ञान और विशुद्ध-विज्ञान का अन्तर स्पष्ट करना आवश्यक है ।

आनुभविक-विज्ञान जैसे, भौतिकी और रसायन-शास्त्र, और विशुद्ध-विज्ञान जैसे, गणित और तर्कशास्त्र में प्रमुख अन्तर इस प्रकार है :

1. **विषय-सामग्री का अन्तर :** आनुभविक-विज्ञान की मूल-सामग्री आनुभविक होती है, यह अनुभव द्वारा प्राप्त होती है । विशुद्ध-विज्ञान की विषय-सामग्री आनुभविक नहीं होती, यह बुद्धि-कल्पित होती है ।

2. **प्रणाली का अन्तर :** विशुद्ध-विज्ञान की प्रणाली निगमनात्मक होती है, जबकि आनुभविक-विज्ञान की प्रणाली आगमनात्मक-निगमनात्मक होती है ।

3. **सत्य के स्वरूप का अन्तर :** आनुभविक-विज्ञानों का सम्बन्ध वास्तविक सत्य (real truth) अथवा आनुभविक सत्य (empirical truth) से होता है, जबकि विशुद्ध-विज्ञानों का सम्बन्ध आकारिक सत्य (formal truth) अथवा प्रागनुभविक सत्य (a priol truth) से होता है ।

यद्यपि विशुद्ध-विज्ञान और आनुभविक-विज्ञानों में ये प्रमुख अन्तर हैं, फिर भी इनमें यह समानता है कि दोनों प्रकार के विज्ञान तन्त्रबद्ध होते हैं । दोनों में अनेक काल्पनिक अमूर्त तत्त्वों में विश्वास किया जाता है । लेकिन फिर भी, इनका यह अन्तर बना रहता है कि जहाँ गणित की किसी प्रतिज्ञप्ति की सत्यता का प्रमाण अनुभव नहीं होता, वहाँ आनुभविक-विज्ञानों के सभी नियमों का अन्तिम प्रमाण अनुभव होता है ।

**आनुभविक-विज्ञान की तीन अवस्थाएँ**

आनुभविक-विज्ञानों के प्रमुख तीन स्तर हैं :

1. वर्णनात्मक स्तर (Descriptive level)
2. नियमात्मक स्तर (Nomological level)
3. प्राक्कल्पनात्मक अथवा सैद्धान्तिक स्तर (Hypothetical or Theoretical level)

**वर्णनात्मक स्तर :** विज्ञान का उद्देश्य तथ्यों को व्यवस्थित करना है । तथ्यों को व्यवस्थित करने की विज्ञान की पहली अवस्था वर्णनात्मक है । इस अवस्था में वैज्ञानिक का काम तथ्यों का प्रेक्षण करने, उनका वर्गीकरण करने, और भिन्न-भिन्न वर्गों की सामान्य विशेषताओं का वर्णन करने तक सीमित रहता है । जैविकी (genetics) के विकास से पहले जीव-विज्ञान इसी अवस्था में था । इस अवस्था में कार्य-कारण सम्बन्ध का निश्चित ज्ञान नहीं होता । इसलिए, इस अवस्था में कारणात्मक सामान्य नियम स्थापित नहीं हो पाते ।

**नियमात्मक स्तर :** विज्ञान के विकास का दूसरा स्तर नियमात्मक है । इस अवस्था में, प्राकृतिक घटनाओं के सीमित क्षेत्रों में लागू होने वाले सामान्य नियमों की

स्थापना होती है। ये नियम आनुभविक नियम (empirical laws) कहलाते हैं क्योंकि ये विशेष तथ्यों के अनुभव के सामान्यीकरण के रूप में होते हैं। इन नियमों की रचना में कोई तत्त्व काल्पनिक नहीं होता। **न्यूटन** के गुरुत्वाकर्षण के सामान्य नियम की स्थापना से पहले भौतिकी की यही अवस्था थी। इस अवस्था में **गैलिलियो** ने प्रेक्षण और प्रयोग द्वारा पृथ्वी पर गिरने वाली वस्तुओं के सम्बन्ध में नियम निश्चित किये, **केप्लर** ने ग्रहों के मार्ग के सम्बन्ध में तीन प्रमुख नियम निश्चित किये। ये सभी नियम आनुभविक नियम कहलाते हैं क्योंकि इनकी स्थापना सीधे अनुभव द्वारा प्रमाणित होती है। इस अवस्था में सब नियम अलग-अलग रहते हैं और ये एक व्यापक व्यवस्था का अंग नहीं बन जाते।

विज्ञान के विकास में, यह अवस्था बहुत महत्त्वपूर्ण है। नियमों की खोज घटनाओं के पूर्वकथन की और घटनाओं पर नियन्त्रण प्राप्त करने की क्षमता प्रदान करती है। "मलेरिया एनोफ्लिस मच्छर से फैलता है" इस सामान्य नियम का ज्ञान ऐसे मच्छरों से युक्त प्रदेश में मलेरिया फैलने का पूर्वकथन करने में ही सहायक नहीं है अपितु मलेरिया के फैलने को रोकने में भी सहायक है।

**सैद्धान्तिक अवस्था :** विज्ञान की तीसरी अवस्था में ऐसे सुगठित सिद्धान्त की रचना होती है जिससे विभिन्न आनुभविक नियमों की व्याख्या होती हो। इस अवस्था में विज्ञान का रूप बहुत अमूर्त (abstract) हो जाता है। इसमें परमाणु, इलैक्ट्रॉन, बल (force), क्वान्टम (quantum) आदि अनेक ऐसे तत्त्वों की कल्पना की जाती है, जो स्पर्श-योग्य नहीं होते। विज्ञान की यह अवस्था, वैज्ञानिक ज्ञान के कलेवर (body of scientific knowledge) को सुगठित रूप प्रदान करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होती है।

## 3. नियम (Law)

यहाँ यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि विज्ञान में "नियम" और "सिद्धान्त" शब्दों से क्या समझा जाता है और एक वैज्ञानिक सिद्धान्त का नियमों से क्या सम्बन्ध और अन्तर होता है।

**नियम की परिभाषा :** सत्य आनुभविक सामान्यीकरण को विज्ञान में नियम कहते हैं। नियम की पहली विशेषता यह है कि ये सामान्य प्रतिज्ञप्तियों के रूप में होते हैं, विशेष प्रतिज्ञप्तियों के रूप में नहीं। दूसरी विशेषता यह है कि ये संश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्तियों के रूप में होते हैं, विश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्तियों के रूप में नहीं। विश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्तियाँ अनुभव पर आधारित सामान्यीकरण नहीं होतीं। इसलिए, इन्हें नियम नहीं कह सकते। "सब व्यक्ति प्रबलतम प्रेरक से कर्म में प्रवृत्त होते हैं" एक विश्लेषात्मक प्रतिज्ञप्ति है। इसलिए इसे नियम नहीं कह सकते।

प्रत्येक आनुभविक सामान्यीकरण को भी नियम नहीं कह सकते। केवल सत्य आनुभविक सामान्यीकरण को ही नियम कहते हैं। इसका अभिप्राय केवल यह है कि केवल

वे ही अनुभव पर आधारित सामान्यीकरण नियम कहलाते हैं जिनकी सत्यता असंदिग्ध रूप से प्रमाणित हो चुकी होती है। वैज्ञानिक नियमों की सत्यता के सम्बन्ध में यह दावा नहीं किया जाता कि वे अटल और सनातन हैं। इनके सम्बन्ध में केवल इतना दावा किया जाता है कि जहाँ तक मानव ज्ञान का क्षेत्र है, वहाँ तक ये सत्य हैं और इनमें शंका का कोई आधार नहीं है।

अन्त में, वैज्ञानिक नियम प्राकृतिक नियम हैं। ये प्राकृतिक घटनाओं की एक-रूपताएँ हैं। ये किसी के आदेश नहीं हैं। ये राजनैतिक तथा नैतिक नियमों से भिन्न होते हैं। क्योंकि वैज्ञानिक नियम अथवा प्राकृतिक नियम किसी के आदेश नहीं हैं, इसलिए इन नियमों का पालन करने अथवा इनका उल्लंघन करने का प्रश्न निरर्थक है। ग्रहों को सूर्य के इर्द-गिर्द घूमने का अथवा पानी को नीचे की ओर बहने का विधाता का आदेश मिला हुआ है, ऐसा वैज्ञानिक नहीं कहते। वैज्ञानिक की दृष्टि से नियम केवल इस बात को प्रकट करता है कि विशेष परिस्थिति में प्रकृति में विशेष घटना घटती है।

**नियमों के विभिन्न स्तर :** प्रामाणिकता तथा व्यापकता की दृष्टि से वैज्ञानिक नियमों को तीन वर्गों में रखा जाता है :

1. **आनुभविक नियम** (Empirical Laws) : जो नियम अनुभव-सिद्ध हैं, लेकिन जिनका अधिक व्यापक नियमों से सम्बन्ध नहीं स्थापित हो सका है, आनुभविक नियम कहलाते हैं। जैसे, ताप से धातुएँ फैलती हैं, मिश्रधातु (अलाय) विशुद्ध धातुओं से अधिक मजबूत होती है, जिन वस्तुओं का अधिक विज्ञापन होता है, वे अधिक बिकती हैं, आदि आनुभविक नियम हैं। इनके सम्बन्ध में हम केवल इतना कह सकते हैं कि वास्तव में ऐसा ही होता है। लेकिन, ऐसा ही क्यों होता है, यह नहीं बता सकते।

2. **व्युत्पन्न नियम :** जिस नियम के बारे में यह प्रदर्शित किया जा चुका है कि वह अधिक व्यापक नियमों से निकलता है, व्युत्पन्न नियम (derivative Law) कहलाता है। **कैप्लर** का यह नियम कि ग्रह दीर्घ-वृत्ताकार कक्ष में सूर्य के इर्द-गिर्द घूमते हैं, **न्यूटन** के गुरुत्वाकर्षण नियम से निकलता है, इसलिए, **कैप्लर** के इस नियम को व्युत्पन्न नियम कहेंगे।

3. **मूल नियम** (Fundamental Law or Principle) : एक विशेष क्षेत्र में, जो नियम सबसे अधिक व्यापक है, अर्थात् जिससे कम व्यापक नियमों का निगमन होता है लेकिन जो अन्य किसी व्यापक नियम से निगमित नहीं होता, मूल नियम (fundamental law or principle) कहलाता है। **न्यूटन** के गुरुत्वाकर्षण नियम से, **कैप्लर** के ग्रहों की गति-सम्बन्धी तीनों नियम, **गैलिलियो** के पृथ्वी पर पिण्डों के पतन-सम्बन्धी नियम तथा ज्वार-भाटा के नियम निगमित होते हैं। लेकिन, यह किसी अधिक व्यापक नियम से निगमित नहीं होता। इसलिए, इसे मूल-नियम समझा जाता है। मूल-नियम का एक और दृष्टान्त ऊर्जा संरक्षण का नियम (law of conservation of energy) है।

## 4. वैज्ञानिक सिद्धान्त

हम इस बात का संकेत दे चुके हैं कि, विज्ञान का आदर्श न तो केवल तथ्यों का संग्रह है, न केवल भिन्न-भिन्न प्रकार की घटनाओं पर लागू होने वाले भिन्न-भिन्न नियमों का संग्रह है, अपितु ऐसे सिद्धान्त की रचना है, जो सम्पूर्ण वैज्ञानिक नियमों को तन्त्रबद्ध करता हो। एक ओर अखिल ब्रह्माण्ड है, दूसरी ओर वैज्ञानिक है। यद्यपि वैज्ञानिक स्वयं ब्रह्माण्ड में शामिल है, लेकिन वह इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को, जिसमें वह और उसकी वैज्ञानिक क्रिया शामिल है, समझना चाहता है। वह ज्ञान का ऐसा तन्त्र प्रस्तुत करना चाहता है, जो ब्रह्माण्ड की व्यापक रचना को चित्रित करता हो। लेकिन यह अप्राप्य आदर्श है। यद्यपि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को चित्रित करने वाले सिद्धान्त की रचना असम्भव है, लेकिन ब्रह्माण्ड के एक विशेष क्षेत्र को चित्रित करने वाले सिद्धान्त की रचना सम्भव है। एक विज्ञान ब्रह्माण्ड के एक विशेष क्षेत्र का तन्त्रबद्ध प्रतीकात्मक चित्रण है। इस प्रकार, विज्ञान चयनात्मक है। व्यापक अर्थ में, एक विज्ञान एक ऐसा सिद्धान्त है जो अनुभव के एक विशेष क्षेत्र को तन्त्रबद्ध करता है। इस प्रकार भौतिकी, रसायन-शास्त्र, जीव-शास्त्र तथा समाज-शास्त्र आदि विभिन्न विज्ञान विभिन्न सिद्धान्त हैं जो अनुभव के व्यापक क्षेत्र से भिन्न-भिन्न दृष्टियों से चुने गये क्षेत्रों का प्रतीकात्मक तन्त्रबद्ध चित्रण प्रस्तुत करने का मानवीय प्रयास है। जिस प्रकार एक प्रदेश के विभिन्न पहलुओं, प्राकृतिक, राजनैतिक औद्योगिक, आदि को चित्रित करने के लिए भिन्न-भिन्न मानचित्र होते हैं, उसी प्रकार जगत् के विभिन्न पहलुओं को चित्रित करने के लिए विभिन्न विज्ञान हैं और जिस प्रकार एक प्रदेश के पूर्ण रूप को समझने के लिए उसके विभिन्न मानचित्रों को एक-दूसरे में ओत-प्रोत करके देखना होगा, उसकी प्रकार, जगत् की व्यापक रचना की झलक पाने के लिए विभिन्न विज्ञानों की एक व्यापक व्यवस्था बनाकर देखना होगा। जिस प्रकार अध्ययन की सुविधा के लिए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है, जो भिन्न-भिन्न विज्ञानों के अध्ययन के विषय बनते हैं, उसी प्रकार सुविधा की दृष्टि से एक विज्ञान का क्षेत्र भी भिन्न-भिन्न शाखाओं और प्रशाखाओं में बँट जाता है। एक विज्ञान के एक विशेष क्षेत्र में भिन्न-भिन्न नियम अनुभव द्वारा स्थापित होते हैं और फिर एक ऐसे व्यापक सिद्धान्त की आवश्यकता होती है, जो उस क्षेत्र का व्यापक रूप प्रस्तुत करता हो और उस क्षेत्र में स्थापित नियमों को तन्त्र में व्यवस्थित करता हो। यहाँ हम "सिद्धान्त" शब्द के बहुत प्रचलित तथा संकुचित अर्थ पर आ जाते हैं।

संकुचित अर्थ में वैज्ञानिक सिद्धान्त की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं: वैज्ञानिक सिद्धान्त ऐसी प्राक्कल्पना है, जो आनुभविक नियमों की व्याख्या करती हो। प्राक्कल्पना (hypothesis) के स्वरूप और महत्त्व पर विचार कर चुके हैं। यहाँ हम केवल इतना कहना चाहते हैं कि प्राक्कल्पना और सिद्धान्त में कोई गुणात्मक अन्तर नहीं है। जिस प्राक्कल्पना का सत्यापन हो गया है, उसे सिद्धान्त कहते हैं। यहाँ हमारा विचारणीय विषय सिद्धान्त और नियम का अन्तर है।

## 5. नियम और सिद्धान्त का अन्तर

नियम और सिद्धान्त में प्रमुख अन्तर इस प्रकार है :

1. नियमों की व्याख्या करने के लिए सिद्धान्तों की रचना होती है। इसलिए, सिद्धान्तों की रचना नियमों की खोज के बाद होती है। ताप के सम्बन्ध में, यह नियम कि ताप से धातुएँ फैलती हैं, पहले निश्चित हुआ और ताप के सम्बन्ध में कैलोरिक सिद्धान्त (caloric theory) तथा गतिज सिद्धान्त (kinetic theory) बाद में बने। कैप्लर के ग्रहों की गति सम्बन्धी नियम जो यह बताते हैं कि ग्रह दीर्घ-वृत्ताकार कक्ष में सूर्य के इर्द-गिर्द घूमते हैं, पहले निश्चित हुए और गुरुत्वाकर्षण का सामान्य सिद्धान्त बाद में विकसित हुआ।

2. नियम आनुभविक (empirical) होते हैं, जबकि सिद्धान्त परिकल्पनात्मक (speculative) होते हैं। नियम प्रेक्षणीय घटनाओं के अनुभवसिद्ध सम्बन्ध प्रकट करते हैं। इनमें केवल अनुभव का सामान्यीकरण होता है। इनमें किसी ऐसे तत्त्व की प्राक्कल्पना (hypothesis) नहीं की जाती जो अप्रेक्षणीय हो। लेकिन सिद्धान्त में प्रायः ऐसे तत्त्वों की प्राक्कल्पना की जाती है, जो सीधे प्रत्यक्ष का विषय नहीं बन सकते। उदाहरण के रूप में, ताप से धातुएँ फैलती हैं, इस नियम में कोई तत्त्व ऐसा नहीं है, जिसका प्रत्यक्ष न हो सकता हो। लेकिन "ऊष्मा भारहीन, अविनाशी और कभी उत्पन्न न होने वाला तरल-द्रव्य है", ऊष्मा के इस कैलोरिक सिद्धान्त में, जो अब मान्य नहीं है, ऊष्मा की एक अप्रेक्षणीय तत्त्व के रूप में कल्पना की गयी है। गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त, जिसे अब गुरुत्वाकर्षण का नियम भी कहा जाता है, की रचना में **आइन्स्टाइन** के सापेक्षता सिद्धान्त में ऐसे तत्त्वों की प्राक्कल्पना की गयी है, जो प्रत्यक्षगम्य नहीं हैं। इसी प्रकार परमाणु के आधुनिक सिद्धान्त में इलैक्ट्रोन प्राक्कल्पनात्मक तत्त्व हैं।

3. क्योंकि सिद्धान्तों में प्राक्कल्पनात्मक तत्त्व होते हैं, इसलिए, यह कहा जाता है कि सिद्धान्तों की रचना की जाती है, जबकि नियमों के सम्बन्ध में, यह कहा जाता है कि नियमों की खोज होती है। एक वैज्ञानिक अपनी वैज्ञानिक परिकल्पना (psecula-tion) द्वारा सिद्धान्त की रचना करता है, जबकि अवलोकन तथा प्रयोगात्मक प्रणालियों द्वारा नियम की खोज करता है।

4. सिद्धान्त नियम से अधिक व्यापक होते हैं। गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त **कैप्लर** के नियमों से अधिक व्यापक है और **आइन्स्टाइन** का सापेक्षता सिद्धान्त गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त से भी अधिक व्यापक है।

5. नियमों की सत्यता सिद्धान्तों की सत्यता की अपेक्षा अधिक निश्चित होती है। नियमों के सत्य होने पर भी उनकी व्याख्या करने वाला सिद्धान्त ग़लत हो सकता है। लेकिन, ऐसा नहीं हो सकता कि एक सिद्धान्त तो सत्य हो और वह जिन नियमों की व्याख्या करता है, वे असत्य हों।

"ताप से धातुएँ फैलती हैं" नियम तो सत्य है, लेकिन ऊष्मा के सम्बन्ध में कैलोरिक सिद्धान्त ग़लत हो चुका है ।

विज्ञान के विकास में एक सिद्धान्त दूसरे सिद्धान्त का स्थान ग्रहण करता रहता है, लेकिन एक नियम दूसरे नियम का स्थान ग्रहण नहीं करता ।

संक्षेप में, विज्ञान के क्षेत्र में एक सिद्धान्त को "सिद्धान्त" दो कारणों से कहते हैं: एक तो उसमें प्राक्कल्पनात्मक तत्त्व अर्थात् सैद्धान्तिक प्रत्यय शामिल होते हैं और दूसरे उसकी सत्यता पूर्णरूप से प्रमाणित नहीं होती ।

## 6. वैज्ञानिक सिद्धान्तों के दो रूप : भौतिक (Physical) और गणितीय (Mathematical)

सभी वैज्ञानिक सिद्धान्तों में, जो भौतिक जगत् का स्वरूप, प्रस्तुत करते हैं, अप्रेक्षणीय तत्त्वों की कल्पना होती है । इन सिद्धान्तों की रचना की विशेषताओं को ध्यान में रखकर इनके दो वर्ग किये जाते हैं : (1) भौतिक सिद्धान्तों का वर्ग और (2) गणितीय सिद्धान्तों का वर्ग ।

जिस वैज्ञानिक सिद्धान्त में भिन्न-भिन्न भौतिक तत्त्वों और उनकी रचना-व्यवस्था की कल्पना की गयी होती है, उन्हें भौतिक सिद्धान्त कहते हैं । जैसे, परमाणु की रचना का आधुनिक सिद्धान्त भौतिक सिद्धान्त कहा जायेगा । **मैण्डल** का जीन्स का सिद्धान्त भी इसी वर्ग में आयेगा ।

भौतिक जगत् के सम्बन्ध में उन सिद्धान्तों को गणितीय सिद्धान्त कहते हैं, जिनमें भौतिक तत्त्वों से उनके सम्बन्धों को पृथक् करके गणितीय भाषा में प्रकट किया गया हो । **न्यूटन** का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त इस वर्ग में आता है । न्यूटन के इस सिद्धान्त में किसी भौतिक तत्त्व की कल्पना प्रधान नहीं है, अपितु किन्हीं भी दो भौतिक वस्तुओं के पारस्परिक सम्बन्ध में उनके एक-दूसरे के प्रति गतिशील होने के बल का गणितीय फार्मूला प्रधान है । **आइन्स्टाइन** का सापेक्षता सिद्धान्त भी इसी वर्ग में आता है ।

## 7. तथ्य और सिद्धान्त

एक वस्तु-स्थिति को तथ्य कहते हैं । तथ्य वस्तु या तत्त्व नहीं है । एक वस्तु और दूसरी वस्तु के सम्बन्ध से अथवा वस्तु और गुण के सम्बन्ध से एक तथ्य बनता है । संसार में अनन्त वस्तुएँ, अनन्त गुण और अनन्त सम्बन्ध हैं । इसलिए, संसार की रचना का पूर्ण चित्र किसी भी वैज्ञानिक सिद्धान्त में प्रस्तुत करना मानव के लिए असम्भव है । वैज्ञानिक जगत् का अपूर्ण चित्र ही प्रस्तुत कर सकता है । वह संसार की सब वस्तुओं, सब गुणों और सब सम्बन्धों का चित्र प्रस्तुत नहीं कर सकता । लेकिन वह एक विशेष प्रकार के तथ्यों का पूर्ण चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास कर सकता है । भिन्न-भिन्न विज्ञान भिन्न-भिन्न प्रकार के तथ्यों की व्याख्या का प्रयास हैं ।

यद्यपि यह माना जाता है कि तथ्य मानव ज्ञान से स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं, लेकिन फिर भी तथ्यों का चुनाव मानव की अभिरुचि और उसके ज्ञान के स्तर पर निर्भर करता है। एक ही परिस्थिति में से भौतिक, रासायनिक, जैविक अथवा मानविक तथ्यों को चुनना हमारी अभिरुचि पर निर्भर करता है। व्यक्ति का अर्जित ज्ञान तथ्यों को देखने की दृष्टि को भी प्रभावित करता है। पौराणिक विचारों से प्रभावित व्यक्ति, जिस दृष्टि से सूर्य-ग्रहण देखता है, उसी दृष्टि से वैज्ञानिक नहीं देखता। तथ्य और सिद्धान्त अन्योन्याश्रित हैं। यद्यपि सूर्य हमें निकलता हुआ दिखायी देता है, लेकिन प्रतिष्ठित वैज्ञानिक सिद्धान्तों की दृष्टि से देखने पर यह एक तथ्य नहीं है अपितु भ्रम है। हम प्रत्यक्ष विषय का अर्थ स्वीकृत सिद्धान्त के आधार पर ही लगाते हैं। इसलिए, तथ्य सिद्धान्तों से स्वतन्त्र नहीं हैं।

## अभ्यास

1. "विशुद्ध-विज्ञान" से आप क्या समझते हैं ? उदाहरण सहित विशुद्ध-विज्ञान का स्वरूप स्पष्ट करें।

2. आनुभविक-विज्ञान किसे कहते हैं ? आनुभविक-विज्ञानों के उदाहरण दें तथा आनुभविक-विज्ञानों के उद्देश्यों पर टिप्पणी लिखें।

3. विशुद्ध-विज्ञान और आनुभविक-विज्ञान का अन्तर स्पष्ट करें।

4. आनुभविक-विज्ञान के तीन स्तर कौन-से हैं ? उदाहरण सहित इनका विवेचन करें।

5. विज्ञान में "नियम" शब्द से क्या समझा जाता है। वैज्ञानिक नियमों को व्यापकता तथा प्रमाणिकता की दृष्टि से कितने वर्गों में रखा जा सकता है ? उदाहरण सहित इनकी व्याख्या करें।

6. वैज्ञानिक सिद्धान्त का स्वरूप स्पष्ट करें। भौतिक सिद्धान्त और गणितीय सिद्धान्त का अन्तर स्पष्ट करें।

7. नियम और सिद्धान्त का अन्तर स्पष्ट करें।

8. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखें :

अभिगृहीत; प्रमेय; निगमन-तन्त्र; तथ्य।

29

# वैज्ञानिक व्याख्या

विज्ञान का उद्देश्य तथ्यों तथा नियमों की व्याख्या करना है। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि "व्याख्या" शब्द से हम क्या समझते हैं और वैज्ञानिक व्याख्या का क्या स्वरूप है और वैज्ञानिक व्याख्या लोक प्रसिद्ध व्याख्या से किस प्रकार भिन्न है।

## 1. व्याख्या का अर्थ

सरल शब्दों में "व्याख्या" का अर्थ किसी अस्पष्ट बात को स्पष्ट करना है। एक कविता की एक कठिन पंक्ति को समझने में एक विद्यार्थी कठिनाई अनुभव करता है और उसे बिना समझे मानसिक बेचैनी अनुभव करता है। ऐसी अवस्था में, विद्यार्थी पंक्ति की व्याख्या की माँग करता है। जब उसका अध्यापक उस पंक्ति का अर्थ स्पष्ट कर देता है, तो उसे पंक्ति की व्याख्या मिल जाती है और उसकी जिज्ञासा सन्तुष्ट हो जाती है और उसके साथ जुड़ी हुई मानसिक बेचैनी शान्त हो जाती है। जो बात कविता की एक पंक्ति की व्याख्या के सम्बन्ध में सही है वही प्राकृतिक तथ्य अथवा घटना की व्याख्या के सम्बन्ध में भी लागू होती है। आलंकारिक भाषा में हम यह कह सकते हैं कि यह दृश्यमान सम्पूर्ण जगत् एक पुस्तक है और मानव इसे पढ़ना चाहता है, इसे समझना चाहता है। इस प्राकृतिक जगत् की पुस्तक को समझना एक बड़ा कठिन कार्य है, लेकिन मानव की जिज्ञासा भी असीमित है। इसलिए, वह सदा से इसे समझने का, इसकी व्याख्या करने का प्रयास करता रहा है। धर्म, दर्शन और विज्ञान इस जगत् को समझने के, इसकी घटनाओं और तथ्यों की व्याख्या करने के मानव के विभिन्न प्रयास हैं। लेकिन वैज्ञानिक व्याख्या, धार्मिक व्याख्या अथवा दार्शनिक व्याख्या से भिन्न है।

## 2. विज्ञान के तीन प्रश्न : क्या, कैसे और क्यों; वर्णन और व्याख्या

विज्ञान तीन प्रकार के प्रश्नों का अध्ययन करता है—क्या है अथवा क्या घटता है ? जो घटता है वह कैसे घटता है ? एक घटना जैसे घटती हुई दिखायी देती है

वैसे क्यों घटती है ? इनमें से पहला प्रश्न केवल तथ्य-सम्बन्धी है, दूसरा प्रश्न तथ्य के वर्णन से सम्बन्ध रखता है और तीसरा प्रश्न व्याख्या से सम्बन्ध रखता है।

यहाँ यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि जिस प्रकार साधारण भाषा में कैसे और क्यों का बुनियादी भेद किया जाता है, उस प्रकार विज्ञान में इनका बुनियादी भेद नहीं किया जाता। साधारण व्यवहार में, हम जब यह प्रश्न करते हैं कि एक घटना कैसे घटी तो हम उस घटना की उन सब परिस्थितियों को जानना चाहते हैं, जिनके कारण वह घटना घटी। लेकिन जब यह प्रश्न करते हैं कि एक घटना क्यों घटी तो हम यह जानना चाहते हैं कि उस घटना का उद्देश्य क्या है। इस प्रश्न के पीछे हमारी यह मान्यता होती है कि प्रत्येक घटना का कोई उद्देश्य अवश्य होता है। उदाहरण के रूप में, जब एक व्यक्ति की दुर्घटना में टांग टूट जाती है और कोई जिज्ञासावश यह प्रश्न करता है कि वह दुर्घटना कैसे घटी, तो वह यह जानना चाहता है कि उस घटना की पूर्ववर्ती परिस्थितियाँ क्या थीं। लेकिन जब यह प्रश्न किया जाता है कि वह घटना क्यों घटी, तो उस घटना का उद्देश्य जानना चाहते हैं और अन्य कोई उत्तर न मिलने पर यह कहकर सन्तोष करना पड़ता है कि भगवान ने पुराने पापों का दण्ड देने के उद्देश्य से वह घटना घटायी।

विज्ञान में "क्यों" का उद्देश्यपरक अर्थ नहीं लिया जाता। इसमें इसका नियमपरक अर्थ लिया जाता है। वैज्ञानिक एक घटना को अन्य घटनाओं से जोड़ना चाहता है। वह किसी घटना के सम्बन्ध में क्यों का उत्तर देने के लिए उसके उद्देश्य की कल्पना नहीं करता। क्योंकि विज्ञान में किसी घटना के उद्देश्य का प्रश्न निरर्थक समझा जाता है और क्यों का प्रश्न उद्देश्यपरक प्रश्न होता है और "क्यों" का उत्तर ही व्याख्या समझा जाता है, इसलिए कभी-कभी यह कहा जाता है कि विज्ञान का सम्बन्ध व्याख्या से नहीं अपितु वर्णन से है; इसका सम्बन्ध "क्यों" के प्रश्न से नहीं है अपितु "कैसे" से प्रश्न से है।

हमें यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि विज्ञान में भी क्यों के रूप में प्रश्न किये जाते हैं। परन्तु वहाँ "क्यों" का उद्देयपरक अर्थ नहीं लिया जाता।

यदि हम यह ध्यान रखें कि "क्यों" का सदा अर्थ उद्देश्यपरक नहीं होता, तो "क्यों" के प्रश्न को भी वैज्ञानिक व्याखया से जोड़ सकते हैं। उदाहरण के रूप में "क्यों" के रूप में निम्नलिखित प्रश्न सार्थक प्रश्न हैं। लकड़ी पानी में क्यों नहीं डूबती जबकि पत्थर पानी में डूब जाता है ? याद करने के बाद के पहले आधे घण्टे में विस्मरण अधिक और बाद में कम क्यों होता है ? गर्मियों में दूध का भाव क्यों बढ़ जाता है ? गर्मियों में गंगा में जल अधिक और सर्दियों में कम क्यों होता है ? ये सब सार्थक प्रश्न हैं। लेकिन यहाँ "क्यों" का अर्थ "किस उद्देश्य से" नहीं है अपितु "किस कारण" से है। **इस प्रकार किसी घटना की व्याख्या करने का अर्थात् इस प्रश्न का उत्तर देने, का कि वह घटना क्यों घटी है, उसका कारण और उस पर लागू होने वाला सामान्य नियम बताना है।**

## 3. व्याख्या के मनोवैज्ञानिक और तार्किक पहलू

व्याख्या के दो पहलू होते हैं, एक मनोवैज्ञानिक और दूसरा तार्किक । व्याख्या का मनोवैज्ञानिक पहलू तो यह है कि इससे व्यक्ति की जिज्ञासा सन्तुष्ट होती है और उसकी बौद्धिक बेचैनी शान्त होती है । एक व्यक्ति के मन में जो भी प्रश्न उठते हैं, उनका उत्तर मिलने पर उसे सन्तुष्टि का अनुभव होता है । व्यक्तियों के बौद्धिक विकास के विभिन्न स्तरों के अनुरूप व्याख्या के भी विभिन्न स्तर होते हैं । प्राकृतिक घटनाओं, जैसे सूर्यग्रहण, दिन-रात के चक्र, आदि के सम्बन्ध में जो व्याख्या आदिवासियों तथा बच्चों को सन्तुष्ट कर सकती है, वही व्याख्या सुशिक्षित व्यक्ति को सन्तुष्ट नहीं कर सकती ।

वैज्ञानिक व्याख्या की प्रमुख विशेषता तार्किक है । तार्किक दृष्टि से एक तथ्य की व्याख्या करने का अर्थ अन्य तथ्यों के साथ उसका इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित करना है कि वह अलग-अलग दिखायी न देकर, तथ्यों की व्यवस्था का अंग दिखायी देने लगे । संक्षेप में, किसी तथ्य की व्याख्या का अर्थ तथ्यों की व्यापक व्यवस्था में उसका स्थान बताना है ।

## 4. वैज्ञानिक व्याख्या के सोपान

**वर्गीकरण :** वैज्ञानिक व्याख्या के विभिन्न स्तर हैं । इसकी सबसे पहली अवस्था वर्गीकरण है । वर्गीकरण का अर्थ एक विशिष्ट वस्तु, घटना अथवा तथ्य को एक वर्ग में शामिल करना है । उदाहरण के रूप में साँप की व्याख्या इसे रेंगने वाले जीवों के वर्ग में शामिल करके की जाती है और ह्वेल की व्याख्या स्तनपायी प्राणियों के वर्ग में शामिल करके की जाती है ।

कठोर तकनीकी दृष्टि से, वर्गीकरण व्याख्या नहीं है, अपितु व्याख्या का प्रारम्भिक बिन्दु है । वर्गीकरण की अवस्था वर्णन की अवस्था मानी जाती है, व्याख्या की नहीं । इस अवस्था में, एक प्राणी की उन सामान्य विशेषताओं का वर्णन करके सन्तोष कर लिया जाता है जो उस वर्ग के सब प्राणियों में मिलती हैं, जिसमें उसे शामिल किया गया है । इस अवस्था में हम एक तथ्य को किसी नियम के दृष्टान्त के रूप में समझ पाने में असमर्थ रहते हैं । लेकिन वर्गीकरण एक तथ्य को अन्य तथ्यों से जोड़ने का अथवा उसे एक व्यवस्था में रखने का सबसे पहला वैज्ञानिक कदम होता है । इस अर्थ में वर्गीकरण व्याख्या का प्रारम्भिक प्रयास कहा जा सकता है ।

**विशिष्ट तथ्यों की नियमों द्वारा व्याख्या :** वैज्ञानिक व्याख्या की प्रक्रिया में अगला कदम जिसे व्याख्या का वास्तविक रूप कह सकते हैं ज्ञात नियमों द्वारा दिये हुए तथ्य अथवा तथ्यों की व्याख्या करना है । उदाहरण के रूप में, हम काँच के एक गिलास में उबलता दूध डालते हैं, तो गिलास चटक जाता है । हमारे सामने यह प्रश्न उठता है कि गिलास कैसे टूटा । इस प्रश्न का उत्तर अर्थात् काँच के गिलास के चटकने की व्याख्या इस नियम के आधार पर करते हैं कि ताप से धातुएँ फैलती हैं । इस नियम से

हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि गर्म होने पर काँच भी फैलेगा। इस प्रकार, एक सामान्य नियम से विशेष तथ्य को निगमित करके, विशेष तथ्य की व्याख्या की जाती है।

**अधिक व्यापक नियमों द्वारा कम व्यापक नियमों की व्याख्या** : व्याख्या की अगली अवस्था, और जो वास्तव में वैज्ञानिक व्याख्या का सबसे महत्त्वपूर्ण रूप है, कम व्यापक नियमों की अधिक व्यापक नियमों द्वारा अथवा सिद्धान्तों द्वारा व्याख्या करना है। विज्ञान के क्षेत्र में अनेक नियम आगमनात्मक सामान्यीकरण के रूप में होते हैं। ये नियम केवल यह बताते हैं कि प्रकृति में विशेष परिस्थितियों में विशेष प्रकार की घटनाएँ घटती हैं। लेकिन मानव-बुद्धि यह भी जानना चाहती है कि ये नियम क्यों लागू होते हैं। जब तक एक नियम अलग-थलग नियम है, तब तक वह केवल आनुभविक नियम है और उसकी व्याख्या की आवश्यकता होती है। जब एक नियम को अधिक व्यापक नियम से निगमित कर लिया जाता है तो पहले नियम की व्याख्या हो जाती है।

**गैलिलियो** ने पृथ्वी पर पतनशील पिण्डों के बारे में प्रेक्षण द्वारा नियम स्थापित किये। **कैप्लर** ने आकाशीय पिण्डों अर्थात् ग्रहों के पतन के सम्बन्ध में अनुभव द्वारा तीन नियम स्थापित किये जो यह बताते हैं कि ग्रह दीर्घ-वृत्ताकार मार्ग में सूर्य के इर्द-गिर्द घूमते हैं। इन नियमों की व्याख्या **न्यूटन** के गुरुत्वाकर्षण के सामान्य नियम के आधार पर हो जाती है। **न्यूटन** के गुरुत्वाकर्षण के नियम से **कैप्लर** के आकाशीय पिण्डों के "पतन" सम्बन्धी नियम तथा **गैलिलियो** के पृथ्वी पर भौतिक पिण्डों के पतन सम्बन्धी नियम निगमित हो जाते हैं। इस प्रकार अधिक व्यापक नियमों से कम व्यापक नियमों की व्याख्या हो जाती है।

## 5. वैज्ञानिक व्याख्या का तार्किक रूप

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि वैज्ञानिक व्याख्या का तार्किक रूप निगमनात्मक है। इसमें एक दिये हुए तथ्य को जिसकी व्याख्या की जाती है ज्ञात नियम अथवा नियमों से निगमित किया जाता है। इसमें दिया हुआ तथ्य व्याख्येय (explanundum) होता है, जबकि वह नियम जिससे उसे निगमित किया जाता है व्याख्याकारक (explanen) कहा जाता है। व्याख्या में ज्ञात सामान्य नियम साध्य-आधारिका (major premise) का काम करता है और जिस तथ्य की व्याख्या की जाती है उसे सामान्य नियम से निगमित निष्कर्ष के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। व्याख्या की प्रक्रिया में, तथ्य का प्रेक्षण, व्याख्या करने वाले नियम का स्मरण और उस नियम से उस तथ्य का निगमन करने की प्रक्रिया शामिल है। हमारे अनुभव में ऐसा आता है कि जब हम लालटेन की बत्ती बहुत ऊँची कर देते हैं तो थोड़ी देर के बाद लालटेन की चिमनी चटक जाती है। हम लालटेन की चिमनी के चटकने की व्याख्या की माँग करते हैं। इसकी व्याख्या निगमनात्मक ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत की जायेगी :

ताप से धातुएँ फैलती हैं। (साध्य-आधारिका)

बत्ती ऊँची करने से लालटेन की चिमनी बहुत तप गयी है। (पक्ष आधारिका)

∴ लालटेन की चिमनी का शीशा फैल गया है (चटक गया है)। (निष्कर्ष)

यहाँ यह ध्यान देना चाहिये कि व्याख्या केवल निगमनात्मक अनुमान नहीं है। निगमनात्मक अनुमान तो सामान्य नियम के ज्ञान से प्रारम्भ होता है और विशेष निष्कर्ष पर इसकी प्रक्रिया समाप्त होती है। लेकिन व्याख्या की प्रक्रिया एक तथ्य से प्रारम्भ होती है और यह जिस तथ्य से प्रारम्भ होती है उसी पर समाप्त होती है। व्याख्या में किसी नये नियम की खोज नहीं होती। इसमें एक तथ्य को ज्ञात नियम के दृष्टान्त के रूप में देखा जाता है। उपर्युक्त उदाहरण में लालटेन की चिमनी के चटकने के तथ्य से व्याख्या प्रारम्भ होती है और इसी पर समाप्त होती है।

**वैज्ञानिक व्याख्या और आगमन :** यद्यपि वैज्ञानिक व्याख्या का तार्किक रूप निगमनात्मक है लेकिन इसका आगमन से भी सम्बन्ध है। हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि एक नियम से तथ्य को निगमित करके तथ्य की व्याख्या होती है और अधिक सामान्य नियम से कम सामान्य नियम को निगमित करके कम व्यापक नियम की व्याख्या हो सकती है ? लेकिन जिस नियम से कम व्यापक नियम की व्याख्या होती है, उसकी सत्यता का क्या प्रमाण है ? प्रायः ऐसे नियमों अथवा सिद्धान्तों की सत्यता का पूर्ण प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। इसलिए, इन्हें हम नियम न कहकर प्राक्कल्पना या सिद्धान्त कहते हैं। कहने का भाव यह है कि एक दिये हुए तथ्य अथवा नियम की व्याख्या प्राक्कल्पना अथवा सिद्धान्त से भी हो सकती है। वह प्राक्कल्पना या सिद्धान्त जिससे निगमित करके एक तथ्य की या नियम की व्याख्या की जाती है स्वयं प्रमाण की अपेक्षा रखता है। जब नियमों की व्याख्या करने वाले अधिक व्यापक सिद्धान्त की सत्यता के प्रमाण का प्रश्न उठाया जाता है, तो हमें वैज्ञानिक व्याख्या से आगमन के क्षेत्र में प्रवेश करना पड़ता है। व्याख्या करने वाले सिद्धान्त की सत्यता का प्रमाण इससे अधिक कुछ नहीं मिल सकता कि इससे तथ्यों अथवा नियमों की व्याख्या होती है। इस प्रकार, व्याख्या से आगमनात्मक प्राक्कल्पनाओं और सिद्धान्त का समर्थन होता है।

व्याख्या के निगमनात्मक स्वरूप तथा आगमन से उसके सम्बन्ध के विषय में **प्रो० जोसेफ** के ये वचन उद्धरणीय हैं :

"अपने रूप में व्याख्या निगमनात्मक है : यह दिखाना कि विशेष ज्ञात तथ्य, अथवा नियम, अथवा सामान्य कारणात्मक सम्बन्ध उन क्षेत्रों में पहले से ही स्थापित सामान्य नियमों से निगमित होते हैं, इसका स्वरूप है। इसलिए, यह किसी नयी बात की खोज नहीं है। जिस बात को हम केवल एक तथ्य के रूप में स्वीकार करते रहे हैं,

यह केवल उसका तार्किक आधार समझने में मदद देती है। लेकिन जहाँ वे सामान्य नियम जिनसे तथ्यों अथवा नियमों अथवा सामान्य कारणात्मक सम्बन्धों का निगमन प्रदर्शित किया जाता है, स्वयं पहले से स्थापित नहीं होते और वे अब यह दिखाकर स्थापित किये जाते हैं कि वास्तविक तथ्य अथवा नियम अथवा कारणात्मक सम्बन्ध उन्हीं से निगमत होते हैं और अन्य किसी नियम से निगमित नहीं होते वहाँ व्याख्या का प्रवेश आगमन के क्षेत्र में भी हो जाता है।"[1]

## 6. वैज्ञानिक व्याख्या के तीन प्रकार

वैज्ञानिक व्याख्या के तीन प्रमुख प्रकार माने जाते हैं :—

1. विश्लेषण (Resolution)
2. शृंखला-बंधन (Concatenation)
3. अन्तर्भाव (Subsumption)

**विश्लेषण द्वारा व्याख्या :** जिन घटनाओं पर अनेक कारणों का मिश्रित प्रभाव होता है उन घटनाओं की व्याख्या उन पर असर डालने वाले विभिन्न कारणों का पृथक्-पृथक् प्रभाव बताकर तथा उनके मिश्रण का नियम बताकर की जाती है। उदाहरण के रूप, में ज़ोर से फेंकी गयी गेंद के मार्ग की व्याख्या गेंद को फेंकने के प्रारम्भिक बल के नियम, गुरुत्वाकर्षण के नियम, वायु के अवरोध के नियम के प्रभाव को अलग-अलग करके और फिर उनके संयोजन के नियम को बताकर की जा सकती है। न्यूटन ने ग्रहों की गति के मार्ग की व्याख्या गुरुत्वाकर्षण के सामान्य नियम और गतिशील वस्तुओं के सीधी रेखा में गति करने की प्रवृत्ति के नियम के प्रभावों का विश्लेषण करके और फिर इनका संयुक्त परिणाम दिखाकर की। गुब्बारा ऊपर की ओर क्यों जाता है, इस तथ्य की व्याख्या वायु के दबाव का विश्लेषण करके की सकती है। गुब्बारे में वायु होती है और उसके ऊपर-नीचे तथा चारों तरफ वायु होती है और चारों तरफ से गुब्बारे पर वायु का दबाव पड़ता है। लेकिन नीचे की हवा का दबाव अधिक होने के कारण गुब्बारा ऊपर की ओर उठता है।

**शृंखला-बन्धन :** जब हमें एक घटना का दूरस्थ कारण ज्ञात हो, लेकिन यह न मालूम हो कि वह दूरस्थ कारण उस घटना को कैसे पैदा करता है, तब उस दूरस्थ कारण और घटना के बीच की घटनाओं की शृंखला को पूरा करके प्रस्तुत घटना की व्याख्या की जाती है। व्याख्या के इस रूप को शृंखला-बन्धन द्वारा व्याख्या कहते हैं।

**उदाहरण 1.** सोते हुए बच्चे के पैर में सुई चुभोएँ तो वह टाँग सिकोड़ लेता है। इसकी व्याख्या यह बताकर की जा सकती है कि पैर में सुई चुभोने पर ग्राहक तन्तुओं में तन्त्रिका-लहर पैदा होती है जो संवेदी तन्त्रिका द्वारा सुषुम्ना तक पहुँचती है

---

1. Joseph : An Introduction to Logic, p. 521.

और सुषुम्ना से प्रेरक तन्त्रिका पर पहुँचती है और प्रेरक तन्त्रिका पेशियों से जुड़ी होती है । इस प्रकार पेशियों में उत्तेजन पहुँचने पर उनकी क्रिया होती है और बच्चे की टाँग सिकुड़ जाती है ।

**उदाहरण 2.** क्लोरीन गैस की खोज होने पर यह देखने में आया कि इससे वस्तुओं के रंग उड़ जाते हैं । लेकिन यह समझ में नहीं आया कि क्लोरीन से वस्तुओं का रंग कैसे उड़ता है । बाद के अनुसन्धान से यह पता चला कि क्लोरीन रंग उड़ाने का सीधा कारण नहीं है अपितु नवजात् आक्सीजन है जो पानी में क्लोरीन के पड़ने पर हाइड्रोजन से अलग हो जाती है ।

**अन्तर्भाव :** वैज्ञानिक व्याख्या का तीसरा रूप अन्तर्भाव है । इसमें विशेष घटनाओं का सामान्य नियमों में अन्तर्भाव करके और विशेष नियमों का अधिक व्यापक नियमों में अन्तर्भाव करके व्याख्या की जाती है । पृथ्वी पर वस्तुओं के पतन की घटना की, जल के नीचे की ओर बहने की घटना की व्याख्या इन्हें पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के नियम का दृष्टान्त बताकर की जाती है और, पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण नियम, ग्रहों की गति के नियम, ज्वार-भाटे के नियम की व्याख्या, इन नियमों को गुरुत्वाकर्षण के सामान्य नियम में शामिल करके की जा सकती है ।

## 7. वैज्ञानिक व्याख्या और अवैज्ञानिक व्याख्या

तथ्यों की व्याख्या की माँग वैज्ञानिक ही करता हो ऐसी बात नहीं है । प्रत्येक मनुष्य अनुभव में आने वाली घटनाओं की व्याख्या चाहता है । छोटे बच्चे, अशिक्षित ग्रामीण जन सब यह जानना चाहते हैं कि सूर्य, चन्द्रमा, तारे क्या हैं, दिन-रात कैसे बनते हैं । एक तारा कभी एक स्थान पर और कभी दूसरे स्थान पर कैसे दिखायी देता है । लेकिन जो व्याख्या जन-साधारण को सन्तुष्ट कर सकती है, वह वैज्ञानिक को नहीं कर सकती । वैज्ञानिक व्याख्या और अवैज्ञानिक व्याख्या में निम्नलिखित अन्तर हैं :

1. इनमें पहला अन्तर व्याख्या के प्रति मानसिक दृष्टिकोण का है । जो लोग अवैज्ञानिक या पौराणिक व्याख्या को स्वीकार करते हैं, वे उसे अन्तिम व्याख्या समझते हैं, वे उसके विरुद्ध कुछ सुनने को तैयार नहीं रहते । लेकिन महान् से महान् वैज्ञानिक जो व्याख्या प्रस्तुत करता है, उसके प्रति उसका तथा अन्य वैज्ञानिकों का खुला दृष्टिकोण रहता है । वैज्ञानिक किसी नियम को अटल नियम के रूप में प्रस्तुत नहीं करता । मानव ज्ञान के सन्दर्भ में ही एक वैज्ञानिक सिद्धान्त या व्याख्या स्वीकृत की जाती है । अब तक की वैज्ञानिक खोजों के सन्दर्भ में हम **न्यूटन** के गुरुत्वाकर्षण के नियम को अथवा **आइन्स्टाइन** के सापेक्षता सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं । लेकिन वैज्ञानिक इस सम्भावना को अस्वीकार नहीं करते कि गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त तथा सापेक्षता के सिद्धान्त में संशोधन हो सकता है, अथवा इन्हें बिल्कुल ही त्याज्य समझा जा सकता है । जब कोई वैज्ञानिक व्याख्या के रूप में कोई सिद्धान्त प्रस्तुत करता है, तो वह यह दावा नहीं करता कि उसका वचन अन्तिम वचन है । लेकिन इसके विपरीत पौराणिक व्याख्याओं को

प्रस्तुत करते समय अथवा उन्हें स्वीकार करते समय दावा यह किया जाता है कि वे अन्तिम वचन हैं, उनमें कोई संशोधन नहीं हो सकता। वास्तव में, धार्मिक ग्रन्थों में प्रस्तुत व्याख्याओं के विपरीत वैज्ञानिकों ने जब नयी व्याख्याएँ प्रस्तुत करने का साहस किया तो उन्हें अनेक यातनाएँ सहनी पड़ीं।

2. वैज्ञानिक व्याख्या और अवैज्ञानिक व्याख्या का दूसरा अन्तर व्याख्या के तार्किक स्वरूप में है। हम यह जानते हैं कि विज्ञान में तथ्यों की व्याख्या के लिए प्रमाण के रूप में नियमों को प्रस्तुत किया जाता है और नियमों की व्याख्या के लिए अधिक व्यापक नियमों या सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया जाता है। वैज्ञानिक सिद्धान्तों में ऐसी अनेक बातों की प्राक्कल्पना की गयी होती है जो स्पर्श योग्य या सीधे प्रत्यक्ष योग्य नहीं होतीं। अणु, परमाणु, इलैक्ट्रोन आदि ऐसे तत्त्व हैं जिन्हें वैज्ञानिक सिद्धान्त में स्वीकार करते हैं लेकिन जो प्रत्यक्षगम्य नहीं हैं। पौराणिक व्यख्याओं में भी ऐसे तत्त्वों की प्राक्कल्पना की गयी होती है जो दृश्य नहीं होती। अनेकों देवी-देवताओं की प्राक्कल्पना ऐसी ही है। यदि वैज्ञानिक व्याख्या और पौराणिक व्याख्या दोनों में ऐसे प्रमाण प्रस्तुत किये जाते हैं जो सीधे प्रत्यक्षगम्य नहीं हैं, तो इनमें क्या अन्तर है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जहाँ पौराणिक व्याख्या को स्वयंसिद्ध आप्तवचन माना जाता है, वहाँ वैज्ञानिक व्याख्याओं को इस आधार पर स्वीकार किया जाता है कि उनके आनुभविक प्रमाण हैं। यह ठीक है कि वैज्ञानिक व्याख्याओं के रूप में प्रस्तुत अनेक प्राक्कल्पनाओं अथवा सिद्धान्तों को सीधे प्रत्यक्ष द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता, लेकिन उनसे ऐसी प्रतिज्ञप्तियाँ निकाली जा सकती हैं, जिनकी सत्यता की परीक्षा प्रत्यक्ष द्वारा हो सकती है, जबकि पौराणिक व्याख्याओं में जो प्राक्कल्पनाएँ स्वीकार की जाती हैं उनसे कोई ऐसा कथन नहीं निकाला जा सकता। संक्षेप में, वैज्ञानिक व्याख्या के लिए जो प्राक्कल्पना बनायी जाती है उसका प्रत्यक्ष या परोक्ष आनुभविक प्रमाण प्रस्तुत हो सकता है। लेकिन पौरा-णिक व्याख्या के लिए जो प्राक्कल्पना बनायी जाती है उसका ऐसा कोई प्रमाण सम्भव नहीं होता और न ऐसे प्रमाण की इसमें आवश्यकता ही समझी जाती है। **प्रो० कोपी** के शब्दों में, "एक तथ्य की वैज्ञानिक व्याख्या के रूप में प्रस्तुत सिद्धान्त से ऐसी प्रति-ज्ञप्तियाँ निकाली जा सकती हैं जिनकी सत्यता की परख प्रत्यक्ष द्वारा हो सकती है और ये प्रतिज्ञप्तियाँ उस प्रतिज्ञप्ति से भिन्न होंगी जो उस तथ्य का कथन करती हैं जिसकी व्याख्या होनी है। लेकिन अवैज्ञानिक व्याख्या (सिद्धान्त) से ऐसी कोई अन्य प्रतिज्ञप्ति नहीं निकाली जा सकती जिसकी प्रत्यक्ष द्वारा परख हो सके। वैज्ञानिक प्रतिज्ञप्तियों की यह विशेषता है कि इनके सत्य की अनुभव द्वारा परख हो सकती है।"[1]

3. वैज्ञानिक व्याख्या नियमों से आगे नहीं जाती, जबकि पौराणिक व्याख्या में नियमों के विधाता की कल्पना होती है।

---

1. Irving M. Copi : Introduction to Logic.

वैज्ञानिक व्याख्या में प्राकृतिक घटनाओं के पीछे ऐसे पुरुष की, देवी-देवता या ईश्वर की कल्पना नहीं होती जिसे प्राकृतिक नियमों अथवा प्रकृति की व्यवस्था का विधाता माना जा सके। वैज्ञानिक केवल इतना मानता है कि प्रकृति में नियम हैं, इसमें व्यवस्था है। नियम और व्यवस्था क्यों है इस प्रश्न को वह निरर्थक मानता है। वैज्ञानिक दृष्टि से, एक तथ्य को तथ्यों की व्यवस्था में रखकर, एक नियम को नियमों की व्यवस्था में रखकर व्याख्या हो सकती है, लेकिन सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की या प्रकृति की कोई व्याख्या नहीं हो सकती।

4. पौराणिक व्याख्या अथवा धर्म-शास्त्रीय व्याख्या मूल्य-परक अथवा उद्देश्य-परक होती है, जबकि वैज्ञानिक व्याख्या केवल तथ्य-परक होती है। धर्म-शास्त्रीय व्याख्या में सम्पूर्ण प्रकृति की व्यवस्था के पीछे कोई उद्देश्य माना जाता है और इसके साथ-साथ ऐसे पुरुष (ईश्वर) की भी कल्पना की जाती है जो नैतिक उद्देश्य को ध्यान में रखकर जगत् की व्यवस्था करता है। लेकिन वैज्ञानिक व्याख्या उद्देश्य-परक या मूल्य-परक नहीं होती। वैज्ञानिक व्याख्या केवल प्रकृति की व्यवस्था तक जाती है इससे आगे नहीं। प्रकृति में नियमों की व्यवस्था क्यों है, इस व्यवस्था का क्या उद्देश्य है, इन प्रश्नों का उत्तर धर्म-शास्त्रीय व्याख्या में यह कहकर दिया जाता है कि पापियों को दुःख देने के लिए और पुण्यात्माओं को सुख देने के लिए संसार में विधाता ने नियमों की व्यवस्था की है। लेकिन विज्ञान में यह प्रश्न नहीं उठाया जाता।

## 8. वैज्ञानिक व्याख्या की सीमाएँ

वैज्ञानिक व्याख्या का स्वरूप एक तथ्य को तथ्यों की व्यापक व्यवस्था में बैठाना है। लेकिन जो तत्त्व बिल्कुल विलक्षण हैं, जिनकी अन्य तत्त्वों से समानता नहीं है उनकी व्याख्या नहीं हो सकती। निम्नलिखित तत्त्वों की वैज्ञानिक व्याख्या नहीं हो सकती।

1. अनुभव के मूल तत्त्वों की व्याख्या नहीं हो सकती। रंग, रूप, स्वाद, ध्वनि आदि की संवेदनाओं तथा सुख-दुःख आदि भावों की व्याख्या नहीं हो सकती।

2. द्रव्य के मौलिक गुणों जैसे विस्तार, गति की व्याख्या नहीं हो सकती।

3. किसी वस्तु के वैशिष्ट्य की व्याख्या नहीं हो सकती क्योंकि एक वस्तु का वैशिष्ट्य उसमें अनन्त गुणों के कारण बनता है और अनन्त गुणों की व्याख्या नहीं हो सकती।

4. विज्ञान की मूल-भूत मान्यताओं जैसे प्रकृति की एकरूपता के सामान्य नियम की व्याख्या नहीं हो सकती।

लेकिन इस सम्बन्ध में सावधानी के एक संकेत के रूप में यह ध्यान में रखना भी आवश्यक है कि कभी-कभी प्रमादवश एक वैज्ञानिक नियम अथवा सिद्धान्त को व्याख्या की सीमा समझ लिया जाता है। लेकिन वास्तव में, कोई भी वैज्ञानिक नियम अथवा सिद्धान्त वैज्ञानिक व्याख्या की सीमा नहीं होता। एक समय था जब भौतिकी के क्षेत्र में **न्यूटन**

के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त को मूल नियम माना जाता था और यह समझा जाता था कि इसकी व्याख्या नहीं हो सकती। लेकिन **आइन्स्टाइन** के सापेक्षता सिद्धान्त से गुरुत्वाकर्षण के नियम की व्याख्या होती है। इस प्रकार, गुरुत्वाकर्षण का नियम मौलिक नियम नहीं रहता। यहाँ यह संकेत भी मिलता है कि वैज्ञानिक व्याख्या प्रगतिशील व्याख्या होती है।

## अभ्यास

1. "व्याख्या" शब्द से आप क्या समझते हैं ? व्याख्या के मनोवैज्ञानिक और तार्किक पहलुओं को स्पष्ट करें और वैज्ञानिक व्याख्या के स्वरूप का विवेचन करें।

2. यह स्पष्ट करें कि वैज्ञानिक व्याख्या का स्वरूप निगमनात्मक है। वैज्ञानिक व्याख्या और आगमन का सम्बन्ध भी स्पष्ट करें।

3. वैज्ञानिक व्याख्या के तीन प्रकारों का उदाहरण सहित विवेचन करें।

4. वैज्ञानिक व्याख्या और अवैज्ञानिक व्याख्या का अन्तर स्पष्ट करें।

5. वैज्ञानिक व्याख्या की सीमाओं पर टिप्पणी लिखें।

# पारिभाषिक शब्दावली

( हिन्दी-अंग्रेजी )

अचर constant

अणु प्रतिज्ञप्ति molecular proposition

अधिभाषा metalanguage

अनिश्चितार्थ vagueness

अनुमान inference

अव्यवहित immediate

व्यवहित mediate

अनेकार्थता equivocation

अन्त:प्रज्ञा intuition

अन्तर्भावी युक्ति subsumptive argument

अन्वय दृष्टान्त positive instance

अन्वय प्रणाली method of agreement

अ प्रतिज्ञप्ति a proposition

अभिगृहीत axiom

अवशेष प्रणाली method of residue

अवैध invalid/illicit

अव्याप्त undistributed

अस्तित्वाभिग्रह existential assumption

आकस्मिक धर्म accident

आकार form

आकारिक प्रमाण formal proof

आकृति figure

आगमन induction

आत्माश्रय दोष petitio/principii

आधारिका premise

आनुप्रयोगि युक्ति applicative argument

आपातिकता contingency

आपादक implicans

आपादन implication

आपादित implicate

इ प्रतिज्ञप्ति I proposition

उत्क्रम आपादन implication in-reverse

उद्देश्य subject

उपवैपरीत्य sub-contrariety

उपाधि condition

उपापादन sub-implication

उपाश्रितता sub-alternation

उभयत:पाश dilemma

एकव्यापी प्रतिज्ञप्ति singular proposition

एकावयव युक्ति third order enthe-meme
ए प्रतिज्ञप्ति E proposition

ओ प्रतिज्ञप्ति O proposition

क्रम विनिमेय commutation

गुणार्थ connotation

चर variable

तन्त्र system
तात्पर्य import
तादात्म्य नियम law of identity
तुल्यता equivallence

दोष (युक्ति) fallacy
द्वि-निषेध double negation

निगमन तन्त्र deductive system
निरुपाधिक categorical
न्याय-वाक्य syllogism

पक्ष आधारिका premise
पक्ष पद major term
पद term
पद चर term variable
पदाघात युक्ति fallacy of accent
पराज्ञानमूलक युक्ति ignoratio elenchi
परिभाषा definition
  अतिव्याप्त too wide
  अव्याप्त too narrow
  आकस्मिक accidental
  आलंकारिक figurative
  कोशीय lexical
  गुणार्थक connotative
  निदर्शनात्मक ostensive
  पर्याय synonymous
  वास्तविक real
  वस्त्वर्थक denotative
  शाब्दिक verbal
  स्वनिर्मित stipulative
परिभाषक definiens
परिभाष्य definientum
परिमाणन quantification
परिवर्तन conversion
पर्याप्त हेतु नियम law of sufficient reason
पुनरुक्ति tautology
प्रकृति की एकरूपता uniformity of nature
प्रतिज्ञप्ति proposition
प्रतिज्ञप्ति कलन propositional calculus
प्रतिज्ञप्ति-फलन propositional function
प्रतिपरिवर्तन contraposition
प्रतिवर्तन obversion
प्रतिवर्तित obverse
प्रतिवर्त्य obvertend
प्रतिस्थापन नियम law of replacement
प्रत्यापादन counter-implication
प्रश्न छल fallacy of many questions
प्राक्कल्पना hypothesis

फल-वाक्य विधान दोष fallacy of affirming the consequent

मध्य पद middle term
मध्याभाव नियम law of excluded middle
मुष्टि युक्ति argumentum au baculum

लांछन युक्ति argumentum ad hominem
लोकोत्तेजक युक्ति argumentum ad populum

वर्ग class
वर्गान्तर्वेशन class inclusion
वस्तुगत आपादन material implication
वस्त्वर्थ denotation
वाक्य-छल fallacy of amphiboly
वाक्य-विन्यास syntax
वाक्य-विन्यास विज्ञान syntactics
वाद-विश्व universe of discourse
वास्तविक आपादन real implication
विग्रह दोष fallacy of division
विधेय predicate
विधेय चर predicate variable
विन्यास mood (of syllogism)
वियुतक disjunct
वियोजन disjunction
विरोध-चतुरस्र square of opposition
वैधता validity
वैपरीत्य contrariety
वैषयिक तुल्यता material implication

व्याघात contradiction
व्याघात नियम law of contradiction
व्याघात प्रदर्शन प्रमाण पद्धति method of reductio ad absurdum
व्याप्त distributed
व्याप्ति नियम law of distribution

संकेत विज्ञान semiotics
संक्रामिता transitinity
संग्रह दोष fallacy of division
संघटन addition
संबंधक connective
संयुतक conjunct
संयोजन conjunction
सत्यता-फलन truth-function
सत्यता-सारणी truth table
सममिति symmetry
सरलीकरण simplification
सर्वपरिमाणन universal quantification
साक्ष्य testimony
साध्य आधारिका major premise
साध्य पद major term
साम्यानुमान argument from analogy
साहचर्य नियम law of association

हेतुफलात्मक न्याय-वाक्य hypothetical syllogism
हेत्वाश्रित प्रतिज्ञप्ति hypothetical proposition

# हमारे अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | दर्शनशास्त्र का परिचय | जार्ज टामस व्हाइट पैट्रिक | 75-00 |
| 2. | तर्कशास्त्र अथवा ज्ञान की आकारिका | बर्नार्ड बोसाँके | 24-00 |
| 3. | समकालीन दर्शन | डॉ० अजीत कुमार सिन्हा | 60-00 |
| 4. | मानव प्रकृति : एक अध्ययन | डेविड ह्यूम | 70-00 |
| 5. | नीतिशास्त्र की भूमिका | डॉ० मिश्र : डॉ० अवस्थी | 30-00 |
| 6. | भाषा दर्शन | डॉ० धर्मेन्द्र गोयल | 40-00 |
| 7. | महात्मा गाँधी का समाज दर्शन | महादेव प्रसाद | 35-00 |
| 8. | पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त | डॉ० मैथिलीप्रसाद भारद्वाज | 75-00 |
| 9. | शैली विज्ञान : प्रकार और प्रतिमान | डॉ० पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु | 40-00 |
| 10. | भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन | डॉ० बच्चन सिंह | 60-00 |
| 11. | हिन्दी साहित्य का आदिकाल | डॉ० हरिश्चन्द्र वर्मा | 35-00 |
| 12. | पाठालोचन के सिद्धान्त | डॉ० गो० ना० राजगुरु | 50-00 |
| 13. | समकालीन कविता का यथार्थ | डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव | 45-00 |
| 14. | हिन्दी विधाएँ : स्वरूपात्मक अध्ययन | डॉ० बैजनाथ सिंहल | 40-00 |
| 15. | मध्यकालीन काव्य धाराएँ एवं प्रतिनिधि कवि भाग-1 | डॉ० बलराज शर्मा | 55-00 |
| 16. | वैदिक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन भाग-2 | डॉ० सुधीकांत भारद्वाज | 30-00 |
| 17. | आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्य | डॉ० चौथीराम यादव | 35-00 |
| 18. | भाषिकी एवं संस्कृत भाषा | डॉ० देवीदत्त शर्मा | 50-00 |
| 19. | हिन्दी की प्रगतिशील कविता | डॉ० लल्लन राय | 40-00 |
| 20. | मध्यकालीन काव्य धाराएँ एवं प्रतिनिधि कवि भाग-2 | डॉ० सत्यप्रकाश मिश्र | 50-00 |
| 21. | साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका | डॉ० मैनेजर पांडेय | 40-00 |

**सम्पर्क :**

निदेशक

**हरियाणा साहित्य अकादमी**

1563, सेक्टर 18-डी, चण्डीगढ़-160018